संस्कार मञ्जूषा

(उत्तरार्द्ध)

(किशोरावस्था से संन्यासावस्था तक के संस्कार)

प्रस्तुतकर्त्री

आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माता जी

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म. प्र.)

संस्कार मञ्जूषा

(उत्तरार्द्ध)

प्रस्तुतकर्त्री	:	आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माता जी
सम्पादक	:	डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर
संस्करण	:	सप्तम, फरवरी 2013
ISBN	:	978-93-82950-02-8
आवृत्ति	:	2200 प्रतियाँ
मूल्य	:	60/– रुपये
संकल्पना	:	निधि कम्प्यूटर्स, जोधपुर
मुद्रक	:	विकास आफसेट, भोपाल
प्राप्ति स्थान	:	**धर्मोदय साहित्य प्रकाशन** जैन मंदिर के पास बाहुबली कॉलोनी, सागर (म. प्र.) मो. 94249–51771

卐 कृति के सम्बन्ध में 卐

एक जापानी प्रार्थना का भाव यह है कि ''हे प्रभो! मुझे इतनी शक्ति प्रदान करें कि मेरे जन्म के समय यह दुनिया जैसी थी मैं संसार से विदा होते समय इसे उससे अधिक सुन्दर बना के जाऊँ।'' निहितार्थ यह है कि व्यक्ति स्वयं संस्कारित हो तभी तो उसकी दुनिया सुन्दर बन सकेगी या वह दुनिया को सुन्दर बना सकेगा। संस्कार शब्द का अभिप्राय है वस्तु की प्राकृतिक क्षमता की परिष्कृति करके उसका भाव-स्वरूप निखारना जिससे वस्तु पहले से अच्छी, बेहतर और उन्नत हो सके। स्वर्णपाषाण संस्कारित होने पर ही कुन्दन बनता है। मिट्टी संस्कारित होकर ही घटरूप में शीतल जल धारण करती है। भूमि को संस्कारित करने पर ही उस पर फसलें लहलहाती हैं। इसी तरह जीवात्मा को संस्कारित करने पर ही स्वयं उसका जीवन और उसके आसपास का जीवन उन्नत बनता है।

प्रस्तुत पुस्तक को **'संस्कार मंजूषा'** नाम से अभिहित किया गया है। नाम से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसमें १६ संस्कारों का और आदिपुराण में निर्दिष्ट संस्कार सम्बन्धी १०८ क्रियाओं का उल्लेख हुआ होगा परन्तु ऐसा नहीं है। इसमें सम्पूर्ण मानव जीवन की प्रमुख आठ अवस्थाओं – गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था और संन्यासावस्था - समाधिमरण के माध्यम से आज की जटिल परिस्थितियों के बीच आने वाली समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करते हुए जीवात्मा को संस्कारित करने की प्रेरणा दी गई है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के अन्तर्गत संस्कारित आत्मा ही अपनी मानवपर्याय के अवसान काल में समाधिमरण धारण करने का साहस करती है। यानी इस पुस्तक के माध्यम से पूज्य आर्यिकाश्री ने निरापद सुखी जीवन जीने की और मरण को भी मांगलिक बनाने की कला सिखाने का समीचीन पुरुषार्थ किया है।

आधुनिक भौतिकताप्रधान जगत् में बस 'येन केन प्रकारेण' जीने की बात ही सबको अच्छी लगती है, मरण का तो कोई नाम भी लेना नहीं चाहता परन्तु जीवन और मरण दोनों यथार्थ हैं - एक दूसरे से जुड़े हैं अत: एक में घोर आसक्ति और दूसरे से पूर्ण विरक्ति बुद्धिमान मनुष्य के लिए उचित नहीं है। उसे अपना जीवन भी 'मानव' बने रह कर सफल करना है तो 'मरण' को भी महोत्सव बना कर महाप्रयाण करना है। आज जो भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं कि सल्लेखना या संन्यासमरण आत्महत्या है, पूज्य आर्यिकाश्री ने उन सबका निरसन करते हुए सिद्ध किया है कि दोनों में

महान् अन्तर है - संन्यासमरण प्रकाश है तो आत्महत्या अन्धकार। पुस्तक का यह अन्तिम प्रकरण - 'संन्यास अवस्था के संस्कार' मरण को ससम्मान गले लगाने हेतु सबका मार्गदर्शन करता है।

सम्पूर्ण पुस्तक आबालवृद्ध स्त्री-पुरुष के लिए पठनीय और अनुगमनीय है। पुस्तक का प्रकाश न पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध रूप में दो भागों में हुआ है। पूर्वार्द्ध का प्रकाशन श्रवणबेलगोला में भगवान बाहुबली स्वामी के २१वीं सदी के प्रथम महामस्तकाभिषेक (फरवरी २००६) के अवसर पर हुआ था। डिमाई आकार के लगभग २५० पृष्ठों के प्रथम खण्ड में गर्भावस्था, शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था के संस्कारों पर गहराई से विमर्श प्रस्तुत किया गया था। पुस्तक की जनप्रियता का अनुमान इसी से लग जाता है कि अब तक इसकी बीस हजार से भी ज्यादा प्रतियाँ वितरित हो चुकी हैं और पाठकगण 'उत्तरार्द्ध' की प्रतीक्षा कर रहे हैं – जो इस समय आपके हाथों में है। इसमें किशोरावस्था, यौवनावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था एवं जीवन के अन्त में होने वाले संन्यास-समाधि के संस्कारों का व्यावहारिक एवं विश्वसनीय शैली में गहन विवेचन किया गया है। शास्त्रीय शब्दावली या क्रियाकाण्ड रूप व्यवधान सम्पूर्ण पुस्तक में कहीं भी पाठक के लिए पठन-प्रवाह में अवरोध रूप नहीं बने हैं। परिशिष्ट में ईश प्रार्थना, समाधिमरण गीत और भजन संकलित हैं अन्त में प्रशस्ति।

गर्भ से लेकर मरण तक व्यक्ति संस्कारित हो, इसी भावना के साथ पूज्य **आर्यिका विज्ञानमती माताजी** ने **'मंजूषा'** का संकलन-लेखन अपने द्वारा 'श्रुत-अधीत और अनुभूत' सामग्री के आधार पर किया है। सिद्धान्तों का आधार लेकर भी आर्यिकाश्री शुष्क उबाऊ नीरस उपदेशी स्थापनाओं से बचती रही हैं और इसीलिए पाठक जब पुस्तक में प्रस्तुत विभिन्न संक्षिप्त रोचक जीवन झाँकियों के सम्पर्क में आता है तो उसे सारा विवेचन ग्राह्य, अनुकरणीय और अनुसरणीय लगता है। पुस्तक का वाचन या पठन करते समय ऐसा लगता है कि जैसे पूज्य माँ (माताजी) साथ बैठ कर 'फ्रेण्ड, फिलोसोफर एण्ड गाइड' के रूप में मार्गदर्शन कर रही हों। पाठक के मन में प्रकरण सम्बन्धी उठने वाली शंकाओं या जिज्ञासाओं का अगले ही क्षण समाधान मिल जाने के कारण ऐसा लगता है जैसे जिज्ञासु और समाधानकर्त्ता साथ ही बैठे हों। पूरी कृति में पूज्य माताजी का व्यक्तित्व पृष्ठभूमि में रहता है और उसके विविध रूप – माँ, बड़ी बहन, सखी, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक, चिकित्सक, अर्थशास्त्री, पाककला विशेषज्ञ, धर्मज्ञ, दार्शनिक, परामर्शक, हितचिन्तक आदि मुखरित होते हैं।

आशा ही नहीं, विश्वास है कि पूर्वार्द्ध की भाँति 'उत्तरार्द्ध' मंजूषा भी पाठकों में समादृत होगी। युगीन परिप्रेक्ष्य को दृष्टि में रखकर लिखी गई इस महत्त्वपूर्ण कृति के लिए पूज्य माताजी अभिवन्दनीय भी हैं और अभिनन्दनीय भी। मैं पूज्य **आर्यिकाश्री विज्ञानमती माताजी** के श्रीचरणों में सविनय वन्दामि निवेदन करता हूँ और अपेक्षा करता हूँ कि उनकी निश्छल लेखनी इसी तरह पाठकों का मार्गदर्शन करती रहे।

संघस्थ सभी आर्यिकावृन्द के श्रीचरणों में सादर सविनय वन्दामि निवेदन करता हूँ। **आर्यिका आदित्यमतीजी** ने पूज्य आर्यिकाश्री विज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त जीवन परिचय लिखा है, एतदर्थ उनका आभारी हूँ।

'मंजूषा' (उत्तरार्द्ध) के प्रकाशन हेतु **श्रीमती प्रभा बड़कुल, गणेशगंज, शाहपुर (सागर-म.प्र.)** से अर्थसहयोग प्राप्त हुआ है, एतदर्थ उनका आभारी हूँ।

संघस्था ब्रह्मचारिणी बहनों – **ब्र. कंचन दीदी, ब्र. कुमकुम दीदी** आदि ने पत्रों के द्वारा व दूरभाष पर निर्देश भिजवाकर प्रकाशन-कर्म को सरल किया है, एतदर्थ उनका आभार।

कम्प्यूटरीकरण हेतु निधि कम्प्यूटर्स के **श्री क्षेमंकर पाटनी** को और मुद्रण के लिए **हिन्दुस्तान प्रिन्टिंग हाउस**, जोधपुर को धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

सम्पादन-प्रस्तुतीकरण में रही भूलों के लिए सविनय क्षमाप्रार्थी हूँ।

विनीत

डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी

'अविरल', ५४-५५, इन्द्रा विहार

न्यू पावर हाउस रोड, जोधपुर

श्रुत पंचमी

१९ जून, २००७

卐 卐 卐

कृतिकर्त्री के दीक्षा गुरु परमपूज्य उग्रतपस्वी 108 मुनि श्री विवेकसागर जी महाराज का जीवन परिचय

जन्म, अध्ययन एवं विवाह :

परमपूज्य आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी महाराज का इस नर पर्याय में जन्म मिति आषाढ़ कृष्णा दसमी वि.सं.1970 को मरवा ग्राम, जिला-जयपुर (राज.) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सुगमचन्द्र जी जैन छाबड़ा तथा माता का नाम श्रीमति राजमति देवी था। आपका जन्म नाम लक्ष्मीनारायण रखा गया आपके माता-पिता अत्यन्त धर्मनिष्ट एवं चारित्रवान् थे। माता-पिता के धार्मिक संस्कारों से संस्कारित श्री लक्ष्मीनारायण ने बाल्यावस्था में ही लौकिक ज्ञान के साथ-साथ धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया। युवावस्था में सेठ चौथमल जी गंगवाल, निवासी जोबनेर (जयपुर) की सुपुत्री श्री मति मनफुल देवी से आपका विवाह हुआ। दुर्भाग्यवश विवाह के चार वर्ष बाद ही आपकी पत्नि का देहावसान हो गया। अतः श्रीमान् सेठ लालचन्द्र जी गोधा की सुपुत्री श्रीमति रत्नमाला बाई के साथ आपका दूसरा विवाह सम्पन्न हुआ।

व्यापार एवं वैराग्य :

वि.सं. 2001 में आप मरवा से वासम जिला-अकोला (महा.) चले गये। वहाँ किराने की दो दुकानें की एवं व्यापार किया एवं पर्याप्त अर्थोपार्जन भी किया परन्तु धार्मिक संस्कारों से ओत-प्रोत इस प्रशम व संवेग सम्पन्न महात्मा को उसमें अभिरुचि नहीं थी, इसी धार्मिक भावना के फलस्वरूप वासम में ही आपने पूज्य क्षुल्लक 105 श्री विमलसागर जी से प्रथम प्रतिमा ग्रहण की। प्रथम प्रतिमा धारण करने के 4 वर्ष बाद आपने पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज से दूसरी प्रतिमा अंगीकृत की। आपके तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ थीं (ये सभी द्वितीय पत्नि श्रीमति रत्नमाला देवी जी के ही थे) क्योंकि प्रथम पत्नि से कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई। उनमें से दो पुत्र और तीन पुत्रियों का विवाह करने के पश्चात् आपके भाव विशेषतः विरक्ति के हो गये। इसके फलस्वरूप आपने पूज्य मुनि श्री आर्यनन्दी जी महाराज से आजीवन सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। क्रमशः ये महापुरुष वैराग्य से संबंधित होते ही गये तथा सकल कुटुम्ब को त्याग कर आश्विन कृष्णा 3 वि.सं. 2025 को चारित्र विभूषण, ज्ञानमूर्ति, न्याय आदि शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् पूज्य 108 आचार्य श्री

ज्ञानसागर जी महाराज के संघ में आ गये। संघ में आने के बाद आपको अनेक व्याधियों ने आ घेरा, परन्तु आप किंचित् भी विचलित नहीं हुए। व्याधियों को धैर्य पूर्वक सहन करते हुए संघ में पदार्पण के 5 माह बाद ही आपने फाल्गुन कृष्णा 5 संवत् 2025 को प्रशस्त मुहुर्त में लगभग 30,000 जनता के समक्ष नसीराबाद में मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज से मुनि दीक्षा ले ली, नाम रखा गया विवेकसागर जी महाराज। इसी मुनिदीक्षा के दिन पूज्य ज्ञानसागर जी महाराज को भी आचार्य पद से विभूषित किया गया। तत्पश्चात् आचार्य श्री की आज्ञानुसार ही आपने सं. 2026 में नसीराबाद (अजमेर) में प्रथम चातुर्मास किया। तब से ही आप महाव्रतों को तत्परता से पालन करते थे।

तपस्वी जीवन :

आप शांत स्वभावी, सरल प्रकृतिमय एवं स्वकीय मूलगुणों की अन्मूल प्रतिपालक थे। आपका चारित्र उच्चकोटि का था। आप सामायिक में 5-5, 6-6 घंटे तक एक आसन में बैठते थे। अल्पनिद्रा, अनशन वृत्ति, परिसंख्यान आदि के आप दृढ़ परिपालक थे। आप भोजन अतिनीरस लेते थे। प्रतिक्रमण, सामायिक आदि क्रियायें आप में विशेष दृढ़ता को लिए हुए थीं। निश्चय ही आप एक आदर्श महापुरुष एवं उच्चकोटि के साधु थे।

श्रुत सेवा :

नसीराबाद में प्रथम चातुर्मास होने के बाद जिन-जिन स्थानों पर आपका चातुर्मास हुआ। वहाँ-वहाँ आपने स्तुत्य श्रुतसेवा की है। प्रायः प्रत्येक चातुर्मास में आप एक-एक ग्रन्थ का प्रकाशन कराते रहे थे तथा जिनवाणी के प्रचार-प्रसार की प्रेरणा करते रहे थे। मरोठ में आपकी प्रेरणा से ''शुद्ध श्रावक धर्म प्रकाश'' (द्वितीयावृत्ति) प्रकाशित किया गया। कुचामन में आपके प्रेरक उपदेशों से धर्मध्यान (द्वितीयावृत्ति) का प्रकाशन हुआ तथा रामगंजमण्डी में परमात्मप्रकाश प्रवचन का उत्तरार्ध प्रकाशित हुआ।

विद्यालयों के जीवनदाता :

जहाँ-जहाँ आप पधारते थे, वहाँ-वहाँ प्रायः विद्यालय खुलवाने का उपदेश देते थे। जिससे बालकों की जीवन धारा में धर्मबोध का श्री गणेश होता था। आपके उपदेश से ही कुचामन में लम्बे समय से बन्द विद्यालय पुर्नजीवित होकर सफलता पूर्वक कार्य कर रहा है। इसी प्रकार नावां, कूकनवाली, लाडनूँ, दूदू, मालपुरा, जूनियां आदि अनेक स्थानों पर आपने जैन पाठशालायें प्रारम्भ करवायीं थीं। प्रायः

ये सभी पाठशालाएँ वर्तमान में चल रही हैं।

दीक्षाएँ एवं समाधि :

संवत् 2030 में रेनवाल (किशनगढ़) में आपने पूज्य 105 क्षुल्लक विनयसागर जी को प्रथम वार मुनिदीक्षा दी तथा उनका नाम मुनि श्री विजयसागर जी महाराज रखा। दूसरी मुनि दीक्षा सं. 2033 में नावां (कुचामन रोड) में ब्र. रतनलाल जी दूदू वालों को प्रदान की और नाम मुनि श्री विनयसागर जी रखा। संवत् 2034 में ब्र. रतनमाला को बड़वानी में आर्यिका दीक्षा दी और नाम रखा आर्यिका विपुलमती माता जी। तदुपरांत अगहन वदी 12 को गृहस्थ की बहिन ब्र. उमराव बाई को भी आर्यिका दीक्षा दी और नाम रखा आर्यिका विद्युतमती माता जी और भी संघ ब्र. कंचन, ब्र. सरला, ब्र. संतोष बाई एवं ब्रह्मचारी भी साधनारत रहे।

संवत् 2040 दिनांक 7 मार्च, 1984 ई. को पिडावा में पूज्य ब्र. कुसुम दीदी को आर्यिका दीक्षा प्रदान की नाम रखा 'आर्यिका श्री विशालमती माता जी'। इसी तरह माघ शुक्ला 12 संवत् 2041 दिनांक 2 फरवरी, 1985 को कूकनवाली में ब्र. लीला बाई जी को आर्यिका दीक्षा प्रदान की नाम रखा 'विज्ञानमती माता जी' उसी समय समाज ने ''चारित्र मण्डल विधान'' मुद्रित कराने का निर्णय लिया जो अब प्रकाश्य है। इस प्रकार जैसे आपने अनेक भव्यों को दीक्षाएँ दीं वैसे ही अनेकों को समाधिमरण भी कराया था। संघ के दो क्षुल्लक 105 श्री सुखसागर जी 105 श्री संभवसागर जी का क्रमशः रेनवाल और रानोली में समाधिमरण कराया। इसी तरह वि.सं. 2037 तदनुसार 25 जनवरी, 1981 का मन्दसौर में पूज्य 105 विपुलमती माता जी का समाधिमरण कराया। धन्य हो स्व-पर हितैषी इस संत को।

अंत में फाल्गुन कृष्णा अष्टमी ईसवी सन् 1986 को सीकर, राजस्थान में समाधिमरण करके अपनी साधना के अन्तिम पड़ाव को प्राप्त कर आत्मकल्याण किया। ऐसे तपस्वी, योगी, परमोपकारी, गुरु के चरणों में सादर सविनय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु...........

गुरुचरण चञ्चरीक

गुरुभक्त

卐 स्वकथ्य 卐

मैं जब कभी विवाहित-अविवाहित युवक-युवतियों को देखती हूँ तो मुझे लगता है कि ये भोले मासूम युवा यद्यपि उम्र और भोगों के क्षेत्र में बच्चे नहीं हैं फिर भी अज्ञानता के कारण अपने शरीर, धर्म और जीवन से कुछ ही दिनों में हाथ धो बैठेंगे अर्थात् इनका शरीर शक्तिहीन और युवावस्था में ही झुर्रियों से युक्त, वृद्ध दिखने लगेगा। इनका धर्म नष्ट हो जायेगा अर्थात् स्वच्छन्द वृत्ति के कारण धर्म के बिना दुर्गति की तैयारी शुरू हो जायेगी और यह जीवन स्वयं को ही भारस्वरूप लगने लगेगा। क्योंकि इनको भोग-भोगना नहीं आता है। जिस प्रकार धन अर्जन करने, शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने, परभव सुधारने आदि प्रत्येक कार्य की कोई-न-कोई विधि किये बिना कार्य सफलता रूपी निधि को नहीं दे सकता, उसी प्रकार भोग-भोगने की भी एक विधि होती है। खाना-पीना, सोना-बैठना, देखना-सुनना आदि की भी कोई विधि होती है। लोक में चार पुरुषार्थ माने गये हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्मपुरुषार्थ पूर्वक किया गया धन का अर्जन निश्चित रूप से इहलोक और परलोक सुधारता है। इसी प्रकार धर्म पुरुषार्थ के साथ किये गये भोग भी वर्तमान में संतुष्टि एवं शान्ति प्रदान करने वाले होते हैं तो भविष्य में भोगों को पूर्ण रूप से छोड़ने में सक्षम बनाने वाले भी होते हैं और मोक्ष पुरुषार्थ तो धर्म पुरुषार्थ का सर्वोत्तम तथा स्थायी फल है। जिस फल को प्राप्त करने के बाद पुन: कभी धर्मादि पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती है, संसार के किसी सुख-दु:ख से मुलाकात नहीं होती है।

यहाँ पुरुषार्थ का अर्थ-पुरुष-आत्मा, अर्थ-प्रयोजन अर्थात् आत्मा-जीव चेतन को लक्ष्य में रख कर जो किया जाता है, आत्मा के लिए जो किया जाता है, वह पुरुषार्थ है। आत्मा जो इस संसार में जिह्वा, नाक, आँख, कान एवं कामेन्द्रिय, इन सबको कामेन्द्रिय एवं भोगेन्द्रिय के नाम से भी कहा जा सकता है; इन पाँच इन्द्रियों, शरीर शक्ति, वचन शक्ति, मन: शक्ति, श्वास और आयु आदि प्राणों से जीता है, जीता था और जीवेगा। इन प्राणों की रक्षा एवं सुरक्षा करते हुए अर्थार्जन आदि से इनका घात न हो, इन प्राणों को क्षति नहीं पहुँचे, ये अन्तिम समय तक अर्थात् मरण पर्यन्त सुरक्षित रहें, इन भावों के साथ विधि पूर्वक अर्थार्जन आदि करना पुरुषार्थ कहलाता है।

मेरे मन में अनेक बार ऐसे विकल्प उत्पन्न होते हैं कि काश इस (युवा पीढ़ी) को भी कुछ संस्कार मिलें, इनको भी कोई संस्कार देने वाला मिले जिससे ये स्वयं अपने जीवन को सुखी बनाने का पुरुषार्थ करते हुए आगे आने वाली पीढ़ी को भी संस्कारित करने में सफल हो सकें। लेकिन इनको संस्कार कौन दे, कैसे दे यह विचारणीय विषय

है। वैसे हमारा देश संस्कार-प्रधान है। भारत के प्रत्येक प्राणी में प्रत्यक्ष-परोक्ष, कम-ज्यादा संस्कार होते ही हैं फिर भारत के ऋषि-सन्त तो विशेष रूप से संस्कारित होते हैं। वे अपनी साधना के समय में से भी समय निकाल कर समाज/प्रजा को संस्कारित करने का प्रयास करते हैं। उनके प्रयास से काफी लोग संस्कारित होते हैं, अपने जीवन का विकास करते हैं। वे लोग भी अपनी शक्ति के अनुसार आगे की पीढ़ी को संस्कारित करते हैं, करना चाहते हैं, लेकिन भौतिक चकाचौंध, कुसंगति के कारण वर्तमान परिवेश में अच्छे-अच्छे संस्कारित भी संस्कारविहीन के समान होते जा रहे हैं, फिर जो पहले ही संस्कारविहीन हैं उनके बारे में क्या कहा जा सकता है। समाज को संस्कारित करने के विषय में काफी साहित्य भी आज उपलब्ध है। उसके माध्यम से भी बुद्धिजीवी लोग अपने जीवन को कुछ-कुछ संस्कारित करते हैं। इसी शृंखला में मैंने भी अनेक बार युवापीढ़ी (विशेष रूप से पुरुष वर्ग) को संस्कारित करने का प्रयास किया, कुछ सफलता भी मिली।

सन् २००२ में वर्षायोग स्थल आरौन नगर में संस्कार सम्बन्धी प्रवचन चल रहे थे। मन में आया कि इसी शृंखला को थोड़ा और आगे बढ़ाया जाये। लगभग १५-२० दिन तक संस्कार का प्रकरण चलता रहा। फिर एक दिन मन हुआ कि इस पूरे प्रकरण को किसी पुस्तक में संगृहीत कर दिया जाये तो संभव है भावी पीढ़ी को संस्कारित होने में सहयोग मिल सके। संघस्थ साध्वियों के सामने यह बात रखी। सबने मेरी भावनाओं का सम्मान किया। उन्हीं दिनों यह कार्य प्रारम्भ हो गया। समय-समय पर सबने अपने अनुभव की बातें बताईं। अनेक लौकिक-अलौकिक ग्रन्थों का सहयोग लेकर इस पुस्तक का संकलन-लेखन हुआ है। इसके दो भाग हैं प्रथम भाग में गर्भावस्था, शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था के संस्कारों का उल्लेख है; दूसरे भाग में किशोरावस्था, यौवनावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था एवं जीवन के अन्त में होने वाले संन्यास-समाधि के संस्कार हैं। इस पुस्तक को पढ़कर गर्भ से लेकर वृद्धावस्था तक जीव संस्कारित हों, इसी भावना के साथ प्रस्तुत पुस्तक भगवान बाहुबली स्वामी के २१वीं सदी के प्रथम महामस्तकाभिषेक के अवसर पर उन्हीं के चरणों में सादर समर्पित। सभी की बेटियाँ भगवान बाहुबली की अद्भुत प्रतिमा के निर्माता सेनापति चामुण्डराय की माता काललला देवी के समान प्रभुभक्त एवं सभी के बेटे चामुण्डराय के समान अपनी माँ की भावना पूर्ण करने वाले मातृभक्त बनें। इस पुस्तक में जिन-जिन पुस्तकों से सहायता ली गई है, उन सबके लेखकों के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

– आर्यिका विज्ञानमती

पूज्य १०५ आर्यिकाश्री विज्ञानमती माताजी

(संक्षिप्त परिचय)

राजस्थान प्रान्त के झीलों की नगरी उदयपुर के निकटवर्ती ग्राम भीण्डर में श्रीमान् बालूलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती कमलाबाई की कुक्षि से कुंवार शुक्ला पंचमी सन् १९६३ को कन्यारत्न के रूप में जन्मी लीला, जिन्हें आज सारा जग **आर्यिकाश्री विज्ञानमती माताजी** के नाम से जानता है। बचपन में आचार्य शिवसागर जी महाराज से संस्कारित हो मन में जिनेन्द्र भगवान के प्रति अगाढ़ श्रद्धा लिये हुए हाईस्कूल तक लौकिक पढ़ाई करते हुए भी लीला धार्मिक अध्ययन के प्रति विशेष जागरूक रही। समयानुसार १८ वर्ष में वैवाहिक जीवन को मजबूरी से स्वीकार किया लेकिन ''जहाँ चाह वहाँ राह'' को चरितार्थ करती हुई मात्र १८ माह में ही बंधन को छोड़कर अन्तर्मुखी हो गुरुवर आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी महाराज के सान्निध्य को प्राप्त किया और पंचम गति को प्राप्त करने की उत्कृष्ट भावना से मोक्षमार्ग पर बढ़ चलीं। २ फरवरी १९८५ को गुरुवर आचार्यकल्प विवेकसागर जी महाराज से कूकनवाली (राजस्थान) में आर्यिका पद को प्राप्त किया। तभी से स्वपर-कल्याण में निरत हो अपने आपको साधना, संयम और सृजन की परिभाषा ही बना दिया।

पंचमकाल में चतुर्थकाल की चर्या के आचरण से जो महिमा आपने संपूर्ण भारतवर्ष में बिखेरी है, उससे दिगम्बर साधुओं की कठोर साधना और तपश्चर्या के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव संपूर्ण जैन/जैनेतर समाज में एवं विशेषत: नारी जगत् में जागृत हुआ है।

आज जिस परिवेश में मानव रह रहा है उस परिवेश में सुख-शांति से जीने के लिए धर्म एवं संस्कारों की महती आवश्यकता है। संस्कारों व धर्म का सही व्याख्याता ही कुशल मनोवैज्ञानिक और अनुभवी वैद्य की भाँति रोगों का निदान और उपचार एक साथ कर सकता है। उनका सही व्याख्यान भी संस्कारित धर्म को आत्मसात् करने वाले तपस्वी साधु-संत ही कर सकते हैं। वे ही भौतिकता के कीचड़ में फँसी विकारयुक्त सृष्टि का काया-कल्प कर सकते हैं। इसीलिए तो दिगम्बर संतों को भारत की अमूल्य निधि कहा है।

समय की शिला पर जीवन के शाश्वत सत्य की तस्वीर तराशने का श्रमसाध्य कार्य शब्दशिल्पी करता है, तस्वीर का आकार, रूपांकन, अंतस् प्राणवत्ता शब्दशिल्पी के गहन चिंतन, मनन, अध्ययन और प्रतिभा पर आश्रित रहते हैं। शब्द की सुंदर साधना, गंभीर से गंभीर बात को भी सहजता से प्रस्तुत करना कृतिकार के आत्म-चिन्तन, बोध का पर्याय और उसकी वैचारिक शैली और जीवन कौशल का प्रतिबिम्ब है।

जिस प्रकार नेत्रविहीन मुख, नीतिविहीन राजा, चन्द्रमाविहीन रजनी का कोई मूल्य नहीं; ठीक वैसे ही संस्कारविहीन मानव का कोई मूल्य नहीं है। पूज्या आर्यिकाश्री की लेखनी से प्रवाहित संस्कार रूपी ज्ञानगंगा ऐसी है कि जिसमें संतप्त मानव जब अपने आपको सराबोर कर देता है तब वह अपूर्व शांति का अनुभव करता है।

पूज्य माँ श्री का ज्ञानगाम्भीर्य, साधना का उत्कर्ष, प्रवचनों का जादू, सौम्य मुद्रा का आकर्षण एवं हर शब्द के प्रति सकारात्मक सोच इतना जबरदस्त है कि श्रद्धालु तो क्या श्रद्धा भी साष्टांग नमस्कार करती है। मन उनके साथ अभिभूत होकर आनन्द के सरोवर में डुबकी लगाता रहता है।

मुझे तो ऐसा लगता है कि पूज्य आर्यिकाश्री निश्चित ही सत्यं शिवं सुन्दरं की विराट् अभिव्यक्ति के मुक्तिद्वार खोलने में सफल होंगी क्योंकि आपके जीवन से धर्म, दर्शन, आचरण, संस्कृति-संस्कार तथा अध्यात्म का पावन पंचामृत सदैव प्रवाहित होता रहता है।

उपमातीत असीम विशेषताओं की पुंज पूज्य आर्यिकाश्री के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को सीमित जड़ शब्दों में बाँध पाना संभव नहीं है। ऋजुता, मृदुता की अद्‌भुत संगम एवं माधुर्य, गांभीर्य और औदार्य की इस विशाल त्रिवेणी को देखकर अनायास ही मन कह उठता है-

देखे जब भी जो भी तुमको सबको अपनी-सी लगती।
भोली-भाली सहज सरल सी तेरी प्यारी छवि लगती॥
पंचम युग में चतुर्थकाल की चर्या को है अपनाया।
सती अंजना जैसे तुमने धर्मध्वजा को फहराया॥

ऐसी ममतामयी, वात्सल्यदात्री, मेरे जीवन की पूंजी मेरी माँ के चरणों में मेरे हृदय की हर धड़कन हर क्षण अर्पित समर्पित नमित........

- आर्यिका आदित्यमती

पूज्य 105 आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी: जीवन-झाँकी

पूर्वनाम	: लीला
पिता	: श्री बालूलाल जी
माता	: श्रीमती कमला जी
जन्मतिथि	: मिति आश्विन शुक्ला पंचमी, सन् 1963
जन्मस्थान	: भीण्डर (उदयपुर-राजस्थान)
लौकिक शिक्षा	: हाईस्कूल
परिणय	: भीण्डर में ही, 18 वर्ष की आयु में, सन् 1981
गृहत्याग	: परिणय के 18 माह बाद
प्रतिमाधारण	: अलोध में 5 प्रतिमा, कुचामन में 9 प्रतिमा के व्रत
आर्यिकादीक्षातिथि	: 2 फरवरी 1985, कूकनवाली (कुचामनसिटी- राजस्थान)
दीक्षागुरु	: परम पूज्य आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी मुनिराज
रुचियाँ	: स्वाध्याय, तप-त्याग, चिन्तन-मनन, लेखन
विशिष्टता	: मधुर, गम्भीर पौराणिक शैली में प्रवचन
कृतियाँ	: तत्त्वार्थसूत्र विधान, चौंसठ ऋद्धि विधान, सम्मेदशिखर विधान, शीलमञ्जूषा, तत्त्वार्थमञ्जूषा, संस्कार मञ्जूषा, भोगोपभोगपरिमाणविधि, दोहा शतक, गुरु स्तुति, कल्पद्रुम मण्डल विधान, सच्चे देव का स्वरूप, बड़ेबाबा विधान, भक्तिपुञ्ज मञ्जूषा, पलायन क्यों ?
दीक्षित शिष्याएँ	: आर्यिका वृषभमती, आर्यिका आदित्यमती, आर्यिका पवित्रमती, आर्यिका गरिमामती, आर्यिका सम्भवमती, आर्यिका वरदमती, आर्यिका शरदमती, आर्यिका चरणमती, आर्यिका करणमती, आर्यिका शरणमती।
वर्षायोग स्थल	: 1985 गुरुदेव के साथ मारोठ, 1986 मदनगंज-किशनगढ़, 1987 अजमेर, 1988 सिंगोली, 1989 रामगंजमण्डी, 1990 शाहपुर, 1991रहली, 1992 कटंगी, 1993 हरदा, 1994 नीमच, 1995 बिजौलिया, 1996 केकड़ी, 1997 नसीराबाद, 1998 नसीराबाद, 1999 आष्टा, 2000 केसली , 2001 सम्मेदशिखर, 2002 आरौन, 2003 मालथौन, 2004 करमाला, 2005 पांडिचेरी, 2006 श्रीरामपुर, 2007 घुवारा, 2008 तेंदूखेड़ा, 2009, 2011 किशनगढ़ , 2012 भीण्डर

अनुक्रम

विषय	पृ.सं.
भूमिका	**१-२**
(४) किशोरावस्था के संस्कार	**३-७४**
♦ विद्यार्थी जीवन में	४
♦ लड़कों के साथ सम्पर्क से हानि	७
♦ शृंगार और कला	९
♦ शृंगार से बड़ी सादगी	१०
♦ स्त्रीधर्म समझावें	११
♦ एम.सी. में विशेष ध्यान दें	१२
♦ आँखों दिखती हानियाँ	१४
♦ वैज्ञानिकों के मत	१५
♦ देश-विदेशों में	१५
♦ धार्मिक मान्यताएँ	१६
♦ आधुनिक लोगों के तर्क एवं समाधान	१७
♦ एम.सी. में संत को भोजन देने से	२१
♦ मुँहासे मिटावें, सुन्दरता बढ़ावें	२०
♦ उबटन की सामग्री	२२
♦ शरीर को संतुलित बनायें	२२
♦ सौन्दर्य प्रसाधनों से हानि	२३
♦ नेलपॉलिश	२३
♦ लिपस्टिक	२४
♦ आई ब्रो पेंसिल	२४
♦ हेयर डाई	२४
♦ हेयर स्प्रे	२५
♦ बॉडी लोशन	२५
♦ सुगंधित साबुन-क्रीम	२५
♦ शंका-समाधान	२५
♦ विवाह सम्बन्धी भाव देखें	२७
♦ सावधान रहें/रखें	२९
♦ पिता ने पुत्री को छेड़ा	२९
♦ सफर के समय	३०
♦ गलत पुरुष को कैसे पहिचानें	३१
♦ दृष्टि पहचान कर शील बचाया	३२
♦ रिश्तेदारी में भेजते समय	३३
♦ शील की रक्षा के उपाय	३४
♦ आने जाने में	३५
♦ लड़कों से ज्यादा बोलने का फल	३६
♦ कला एवं सफाई सिखावें	३६
♦ अच्छी बहुओं की चर्चा करें	३७
♦ बहू आई बहार आई	३९
♦ खराब बहुओं की चर्चा करें	४०
♦ ससुराल जाने के पहले लड़की ध्यान दे	४१
♦ विवाह किससे	४३
♦ जब बेटा बड़ा दिखने लगे	४५
♦ बेटे से भी सलाह लें	४५
♦ बेटे को भोजन बनाना सिखावें	४७
♦ खोटी आदत की तरफ ध्यान दें	४८
♦ खोटी आदतों के लक्षण	४८
♦ बेटे को समय अवश्य दें	४९
♦ शील का महत्त्व समझावें	५०
♦ न इधर का रहा न उधर का	५२
♦ संकेत देकर आवें-जावें	५५
♦ मित्रों पर ध्यान दें	५६
♦ मित्र बनाने की प्रेरणा दें	५७
♦ धन से मित्रता टूटी	५८
♦ व्यापार की विधि समझावें	६१
♦ जैसा आया वैसा गया	६३
♦ कैसा व्यापार करें/करावें	६४
♦ दान का पैसा तत्काल दें	६६

♦ मूल सींचें चूल नहीं ६८
♦ आस्तिक बनें ६९
♦ बेटे का विवाह कब करें ७२
♦ रुचि पर ध्यान दें ७३
उपसंहार **७४**
(५) यौवन अवस्था के संस्कार **७५-१७४**
♦ पूर्व भूमिका ७५
♦ बीच वाली को मार जूते की ७६
♦ शादी होते ही लड़की ७८
♦ दोष नहीं देखें ७९
♦ खोटी आदतें कैसे सुधारें ८०
♦ शराब की लत छुड़ाने के लिए ८२
♦ गुटखा पाउच आदि छोड़ने के लिए ८२
♦ छानबीन नहीं करें ८३
♦ ससुराल का बखान पीहर में नहीं करें ८४
♦ ससुराल को अपना समझें ८५
♦ पीहर का बखान ससुराल में नहीं करें ८६
♦ पैसे बचावें ८७
♦ आलसी नहीं बनें ८८
♦ घर की बात बाहर नहीं करें ८९
♦ कम धन में सुखी रहें ९०
♦ धन का सही उपयोग करें ९२
♦ हैसियत देखें, तुलना नहीं करें ९४
♦ सुख से सोवें ९५
♦ पागल को भी लिफ्ट न दें ९७
♦ बड़ों के पहले नहीं खावें ९८
♦ बड़ों के बाद खाने के लाभ ९९
♦ पातिवृत धर्म को समझें १००
♦ भोजन रूखा पर सम्मान से पुष्ट १०१
♦ आवश्यकताओं का ध्यान रखें १०२

♦ पति की बुराई नहीं करें १०३
♦ अतिथि का सम्मान करें १०४
♦ आतिथ्य के समय ध्यान दें १०५
♦ कम बोलें १०८
♦ घर में सफाई रखें ११०
♦ आवश्यकता के समय किसको बुलावें ११२
♦ धर्म/पुण्य करावें ११२
♦ यदि दूसरे के बच्चे आपके पास रहते हैं तो ११४
◈ **शादी के पहले लड़का ध्यान दे** **११६**
♦ विवाह का उद्देश्य समझे ११६
♦ विवाह क्या है? ११७
♦ दहेज के चक्कर में न पड़ें ११९
♦ दहेज देते समय ध्यान दें १२२
♦ दहेज देने योग्य आवश्यक सामग्री १२२
♦ जिवानी की विधि १२४
♦ गुण देखें, कोरी सुन्दरता नहीं १२५
♦ कुरूप में भी सुन्दर गुण १२६
♦ योग्यकन्या के साथ विवाह करने से लाभ १२९
♦ पत्नी के लट्टू नहीं बनें १३१
♦ संकेत से समझाया १३२
♦ सास-बहू के झगड़े में न पड़ें १३३
♦ माँ का पक्ष लेने से १३४
♦ माँ के इतने भक्त नहीं बनें कि १३६
♦ पत्नी की हर बात सच न मानें १३६
♦ पत्नी का पक्ष लेने से १३७
♦ मूड देखकर बात करें १३९
♦ सबके सामने नहीं डाँटे १४०
♦ कारण ढूँढ़ें १४१
♦ सभ्य-समझदार बनें १४२
♦ पत्नी को सहयोग दें १४४

♦ घर के कार्य में डिस्टर्ब न करें १४६
♦ व्यवहार समझें १४८
♦ ससुराल में ज्यादा रहने से १५०
♦ हाथ खर्च दें १५२
♦ माँ आदि की बुराई न सुनें १५२
♦ बड़ों का सम्मान करें १५३
♦ वृद्धों के अनुभव १५४
♦ बहू हो तो ऐसी १५५
◈ पति-पत्नी १५७
♦ हठ के कारण १५८
♦ सुख-दुःख की बात करें/सुनें १५९
♦ पति-पत्नी का सामञ्जस्य कब कैसे १६०
♦ बराबरी नहीं करें १६१
♦ अभिवादन करें १६३
♦ आपस में सन्देह नहीं करें १६५
♦ जगतकाकी की कला १६६
♦ मेरिज डे मनावें १६७
♦ पति-पत्नी का प्रेम कैसा हो १६८
♦ प्रातःकाल प्रार्थना अवश्य करें १६९
♦ सोने से पहले सत् साहित्य पढ़ें १७१
♦ पत्नी पति से विरक्त क्यों होती है १७२
♦ पति पत्नी से विरक्त क्यों होता है १७३
♦ विशेष ध्यान दें १७३
♦ साधना कक्ष अवश्य बनावें १७४
♦ उपसंहार १७५
(६) प्रौढ़ावस्था के संस्कार १७६-२०४
♦ यदि लड़की ससुराल से भाग आवे तो १७८
♦ गुप्त को गुप्त रखें १८२
♦ गुप्त बात बताने से १८३
♦ बहू को बेटी के समान रखें लेकिन १८४

♦ अपनी जिम्मेदारी कम करें १८५
♦ बहू को स्वतंत्रता दें १८७
♦ आस्था का प्रभाव १८९
♦ कर्तृत्व बुद्धि नहीं रखें १९०
♦ व्यंग्य नहीं करें १९१
♦ पीहर वालों को बीच में न लें १९३
♦ अपने बच्चों का पक्ष न लें १९४
♦ बहू को सी.आई.डी. न लगावें १९५
♦ अच्छा कार्य करने पर प्रशंसा करें १९७
♦ बहू से पैर अवश्य दबवावें १९८
♦ ऐसा व्यवहार करें कि बेटे-बहू में प्रेम बढ़े २००
♦ बिगड़े बेटे को भी एकदम न नकारें २००
♦ ध्यान दें बेटे-बहू क्या चाहते हैं? २०२
♦ बेटे को उलाहने न दें २०३
♦ सास बनो तो ऐसी २०४
♦ बहू के आने के बाद सास-ससुर के साथ व्यवहार २०४
(७) वृद्धावस्था के संस्कार २०६-२२३
♦ बँटवारा करते समय ध्यान रखें २१०
♦ बँटवारा नहीं करने से २११
♦ बँटवारा करते समय पक्षपात नहीं करें २१२
♦ आदेशात्मक नहीं बोलें २१४
♦ कुछ-न-कुछ अवश्य करते रहें २१५
♦ एक ही बेटे के पास बँध कर नहीं रहें २१६
♦ बोलते समय जबान पर लगाम रखें २१७
♦ कुछ सम्पत्ति अपने पास अवश्य रखें २२०
♦ दो-चार मित्र अवश्य बनायें २२२
♦ बेटे बहू की धारणा बनायें २२३
♦ सकारात्मक विचार रखें २२४
♦ एक वृद्धा की सकारात्मक सोच २२६
♦ प्रसन्न रहें २२७

♦ बेटी से अधिक लगाव नहीं रखें २२९
♦ वृद्धावस्था में दिनचर्या बनावें २३१

(८) संन्यास अवस्था के संस्कार २३४-३१३

♦ भूमिका २३४
♦ क्या पापी भी सल्लेखना कर सकता है २३५
♦ संन्यास क्या है २३७
♦ मरण क्या है २३९
♦ संन्यासमरण किसे कहते हैं २४१
♦ आत्महत्या क्या है २४३
♦ संन्यास मरण के कारण २४३
♦ आत्महत्या के कारण २४५
♦ संन्यासमरण एवं आत्महत्या में अन्तर २४५
♦ संन्यासमरण का फल २४७
♦ सम्राट् चन्द्रगुप्त २४८
♦ आत्महत्या का फल २५०

◈ संन्यासमरण के भेद २५१

♦ सल्लेखना के विषय में लोगों के विचार २५५
♦ चलते-फिरते मरना कैसा है २५६
♦ मृत्यु के पहले प्रगट होने वाले चिह्न २५७
♦ महिला को आभास हुआ २५८
♦ मृत्यु के समय को जान लेने से लाभ २५९
♦ ज्ञानी के विचार २६०
♦ भील ने भव सुधारा २६२
♦ क्या तुम अमर होना चाहते हो २६४
♦ सल्लेखना सुधारने के लिए ध्यान दें २६६
♦ मृत्यु का स्मरण रखें २६७
♦ सल्लेखना के समय क्षेत्र कैसा हो २६८
♦ परिवार वालों को दूर रखें २६९
♦ ब्राह्मण की भूल २७१
♦ प्रायश्चित्त का लक्षण २७७

♦ प्रायश्चित्त किस प्रकार करें २७७
♦ प्रायश्चित्त नहीं करने से हानि २७७
♦ प्रायश्चित्त कब किससे २८०
♦ प्रायश्चित्त लेते समय सावधानियाँ २८३
♦ भोजन छोड़ दिया और नहीं मरे तो २८४
♦ एक व्यक्ति ने घर में सल्लेखना की २८६
♦ अफ्रीका का हाथी २८९
♦ क्या सल्लेखना के लिए ज्ञान आवश्यक है २९३
♦ भगवान का नाम कब सुनें/लें २९५
♦ सल्लेखना के समय ध्यान दें २९६
♦ चर्बी कम करने के लिए २९६
♦ पेट साफ रखें २९७
♦ क्षमायाचना करें २९७
♦ अपनी सम्पत्ति किसको दें २९८
♦ खाने-पीने में २९८
♦ वाहन २९९
♦ लेन-देन का विकल्प छोड़ें ३००
♦ बोलना कम करें ३०१
♦ समाधि लेते समय भोजन कैसा/कितना हो ३०२
♦ सल्लेखना लेने के बाद कैसा भोजन न लें? ३०३
♦ मेरे विचार से भोजनत्याग का क्रम ३०४
♦ सेवा करने वाले कितने/कैसे हों ३०५
♦ सल्लेखना कराने वाले विशेष ध्यान दें ३०८
♦ सल्लेखना करने वाले को सम्बोधन ३०९
♦ अन्त समय की वैचारिक साधना ३१०

• **उपसंहार** ३१३-३१८
• **परिशिष्ट** ३१८-३२१
• **प्रशस्ति** ३२२

◆ ◆ ◆

भूमिका

संस्कार मञ्जूषा के **पूर्वार्ध** में संस्कार क्या हैं, संस्कार के कितने भेद होते हैं, संस्कार किसे कहते हैं, संस्कारों की जीवन में क्या आवश्यकता है, संस्कारित करने की विधि क्या है, आदि पर प्रकाश डालते हुए शिशु के गर्भ में आने के पहले से लेकर गर्भ में आने के बाद अर्थात् माँ को गर्भावस्था में किस प्रकार अपनी दैनिक चर्या एवं विचार बनाने चाहिए, किस प्रकार उठने-बैठने, खाने-पीने से गर्भस्थ शिशु सुखी-स्वस्थ एवं संस्कारित हो सकता है, आदि बातों पर भी विशेष रूप से विचार किया गया है क्योंकि गर्भावस्था में मुख्य रूप से माँ के रहन-सहन, आचार-विचार-वातावरण तथा शारीरिक एवं वाचिक चेष्टाओं का गर्भस्थ शिशु के साथ घनिष्ठ संबंध रहता है अर्थात् माँ और वातावरण का गर्भस्थ शिशु के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता है। जन्म के बाद शैशवावस्था में शिशु को किसका, कितना, कब और किस तरह दूध पिलाना चाहिए जिससे शिशु और माँ दोनों सुरक्षित रहें और जीवन के अन्त समय तक दोनों का सम्बन्ध अर्थात् दोनों एक दूसरे से संरक्षित रहें। शिशु को बचपन में क्या खिलावें, कैसे खिलावें, कहाँ खिलावें और कितना खिलावें ताकि बच्चा स्वस्थ रहे और भविष्य में दुर्गति का पात्र न बने। बचपन से ही बच्चे को किस प्रकार पालन-पोषण के साथ परोपकार, सदाचार, एकता आदि गुणों से संस्कारित करें जिससे बच्चा भविष्य में जीवन निर्वाह के साथ-साथ जीवन-निर्माण करता हुआ आत्मविकास की चरमावस्था निर्वाण (भगवत्ता को) प्राप्त कर सके। इन सब बातों का मैंने अपनी अल्पबुद्धि, संघस्थ त्यागी वृतियों की सलाह और अनेक गृहस्थों के अनुभवों के आधार से गर्भावस्था, शैशवावस्था तथा बचपन के संस्कारों का थोड़ा सा वर्णन पूर्वार्ध में किया है। अब इस **उत्तरार्ध** में किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था एवं संन्यासावस्था के संस्कारों का वर्णन प्रस्तुत है।

किशोरावस्था

बचपन बीत जाने के बाद किशोरावस्था का प्रारम्भ होता है। किशोरावस्था में बच्चा न विशेष समझदार होता है और न ही एकदम नासमझ होता है। इस अवस्था में लड़के-लड़कियों में योग्य अंगोपांगों का विकास होने लगता है। लड़कों के दाढ़ी-मूंछ के बाल निकलने लगते हैं, कुछ गम्भीरता आ जाती है, उनका मन धनार्जन की तरफ आकर्षित होने लगता है, जल्दी से बहकावे में आ जाते हैं, थोड़े से प्रलोभन में बह जाते हैं, किसी के थोड़ा सा डाँटने पर डर जाते हैं, पढ़ाई आदि के क्षेत्र में महत्त्वाकांक्षाएँ अर्थात् डिवीजन, रैंक, मेरिट लिस्ट में नाम आदि प्राप्त करने की प्रतियोगिताओं में विजय प्राप्त करने आदि की इच्छाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। नीति में कहा है-

लालयेत् पञ्चवर्षाणि, दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।।

लगभग १६-१७ वर्ष की उम्र में घटित घटनाओं की स्मृतियाँ बनने लगती हैं। जिस प्रकार बच्चा बचपन की बातों को भूल जाता है ऐसा अब नहीं होता है। उनमें भविष्य सम्बन्धी कल्पना जाल भी बढ़ने लगते हैं। इस उम्र में यदि बच्चे को मार्गदर्शक समझदार, निर्लोभी और निःस्वार्थी मिल जाता है तो बच्चे के जीवन में चार चांद लग जाते हैं और यदि माता-पिता के प्रमाद से बच्चा कुसंगति में पड़ जाता है तो जीवन मानवता के मार्ग को छोड़कर दानवता की ओर बढ़ने लगता है। इसी प्रकार लड़कियाँ भी लज्जा, संकोच एवं माता-पिता के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार का अनुभव करने लगती हैं। विवाह, पति-पत्नी, भाई-भाभी, ससुराल, सास-बहू सम्बन्धी बातों को सुनने, पढ़ने, देखने आदि में उनकी विशेष रुचि उत्पन्न होने लगती है। कभी-कभी तो लड़कियाँ साड़ी पहनने, यदि घूंघट की परम्परा हो तो घूंघट डालने, व्यवस्थित ढंग से उठने-बैठने का, छुप-छुपकर अभ्यास करने लगती हैं। कोई-कोई तो बिछिया तक पहनकर देखने लगती हैं। बाजार में अकेली जाने, दुकान पर बैठने, अपरिचित पुरुषों से बात करने आदि में सहमने लगती हैं। इस समय माँ यदि प्रमाद करती है, उसको पराया धन समझकर लापरवाही बरतती है तो लड़की का जीवन सभ्यताहीन, उद्दण्ड और स्त्री योग्य लज्जा, आज्ञाकारिता, गुणग्राहकता, सौम्यता आदि सद्गुणों से रहित होने लगता है अर्थात् उसके जीवन में स्त्री के योग्य आवश्यक गुणों का उद्भावन नहीं हो पाता है। उन गुणों के अभाव

में वह भविष्य में न शान्ति से जी पाती है और न आने वाली पीढ़ी को जीना सिखा पाती है। बस, यही किशोरावस्था है।

(४) किशोरावस्था के संस्कार

घर में बेटी एक ऐसी सन्तान है जो काच की चूड़ी के समान नाजुक होती है। यदि थोड़ी सी असावधानी हुई तो उसका जीवन काच के समान टूटकर निरर्थक हो जाता है। असावधानी होती है मुख्य रूप से शील-ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में। वैसे पूर्व में इस विषय में बेटी की सुरक्षा के लिए माँ को प्रेरणा दी गई है। उस समय (बचपन में) लड़की नासमझ होती है। उसमें वासनाएँ जागृत नहीं होती हैं, उसकी कषायें मन्द होती हैं। कहा भी है कि आठ वर्ष की उम्र तक बच्चा जितने पाप करता है उसका विशेष अंश (भाग) माता-पिता को लगता है क्योंकि बच्चा पाप-पुण्य में नहीं समझता है, उसमें विवेक नहीं होता है। इसलिए जब डेढ़ माह की उम्र में उसको संत-धर्मात्मा किसी से संस्कारित करवाया जाता है तब बच्चे की पूरी जिम्मेदारी उसके माता-पिता को सौंपी जाती है और यह कहा जाता है कि आठ वर्ष की उम्र के बाद इस बच्चे को भगवान के दर्शन का नियम, मद्य-मांस आदि के त्याग का नियम समझा देना। माता-पिता के समझा देने के बाद बच्चा अपने जीवन में जितने पुण्य-पाप करता है उसका पूरा-पूरा फल उसीको मिलेगा। ८ वर्ष की उम्र में लड़की में गर्भधारण की एवं लड़के में संतान उत्पत्ति की क्षमता आ जाती है। यही समय उसमें वासना जागृति की शुरुआत का होता है। इसी समय में लड़की के शरीर में भी कुछ ऐसे लक्षण प्रकट होने लगते हैं जिनको देखकर माँ समझ सकती है कि बेटी किशोरावस्था में प्रवेश करने वाली है या कर चुकी है। माँ इन चिह्नों (स्तन आदि का विकास होना) को देखकर उसके वस्त्र, खान-पान, रहन-सहन आदि में यदि सावधानी नहीं रखती है तो उसके जीवन में एक ऐसा कलंक लग जाता है जो समझदारी आने के बाद मृत्यु पर्यन्त उसके दिल में चुभता रहता है। वह उस बात को किसी से कह भी नहीं सकती और भूल भी नहीं सकती। इसी कलंक से बचाने के लिए माँ क्या करे, माँ का क्या कर्त्तव्य है, माँ बेटी को किस प्रकार समझावे, किस प्रकार सावधान करे/रखे, किस प्रकार संकेत दे कि बेटी को यह भी नहीं लगे कि माँ मुझे दबाव डालकर या डरा-धमकाकर मेरी रुचि का काम नहीं करने देती है, मुझे खाने-खेलने, बोलने-चलने, बैठने-उठने आदि में स्वतंत्र नहीं रहने देती है, आदि-आदि विचार बेटी के दिमाग में उत्पन्न न होने पावें। इसी प्रकार बेटे के जीवन

में भी नासमझी के कारण ऐसी कोई खोटी आदतें, खोटे कार्य न होने पावें इसके लिए माता-पिता बच्चों को किशोरावस्था में पहुँचने के पहले या पहुँचते-पहुँचते ही संस्कारित करना/उस सम्बन्धी संस्कार डालना प्रारम्भ कर दें। यहाँ सर्वप्रथम माँ के द्वारा बेटी को दिये गये संस्कारों के बारे में कहा जाता है।

आप (माँ) बेटी को जब वह दस-ग्यारह वर्ष की हो जावे, यह शिक्षा देना प्रारम्भ कर दें कि उसे (लड़की को) लड़कों के साथ किस प्रकार रहना, बोलना एवं व्यवहार करना चाहिए। क्योंकि इस उम्र में लड़कियों में स्त्रीत्व सम्बन्धी हारमोन्स उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाते हैं। इन हार्मोन्स के कारण लड़की में लड़कों/पुरुष वर्ग के साथ बोलने, हँसने, खाने, घूमने, पढ़ने, मजाक आदि करने की उत्सुकता रहती है। इस उम्र में माँ बेटी को बेटी न समझकर अपने बराबर की सहेली समझे और उसे हर बात खुलकर समझावे, और उसके मन की बात सुने। माँ यदि बेटी के साथ सहेली जैसा व्यवहार नहीं करती है तो बेटी अपने अन्दर उत्पन्न होने वाली जिज्ञासाओं/कल्पनाओं का जिनको वह खुलकर किसी के सामने कहने में संकोच/शर्म की अनुभूति करती है, माँ के सामने स्पष्ट रूप से नहीं कह पाती है तब वह उन जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त करने के लिए अज्ञानता से जिस किसी का सहयोग लेकर जीवन कलंकित कर सकती/लेती है। इस उम्र में माँ के निर्देशन बेटी के लिए अमृत का काम करते हैं।

विद्यार्थी जीवन में

जहाँ तक बने आप अपनी बेटी को गर्ल्स-स्कूल में पढ़ावें ताकि उसके शील की सुरक्षा सहज रूप से हो सके। यदि लड़कों के स्कूल में पढ़ाना है तो कुछ सहेलियों के साथ ही स्कूल/कॉलेज भेजें, अकेली नहीं भेजें। लड़कों के साथ पुस्तक, पेन-पेन्सिल आदि के लेन-देन का व्यवहार नहीं करने दें। यदि कोई लड़का बिना माँगे आगे होकर पुस्तक, पेन, न्यू इयर गिफ्ट या बर्थ डे कार्ड आदि देवे तो लड़की नहीं लेवे क्योंकि यदि लड़का लड़की को बिना माँगे कोई चीज देता है, बिना प्रयोजन, बिना जान-पहिचान के बोलता है तो उसमें कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य होता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार पुराने जमाने में भी लड़के, लड़की (स्त्री) की इच्छा देखने के लिए सबसे पहले दासी या दूती के हाथ से वस्त्राभूषण आदि मूल्यवान वस्तुएँ भेजते थे। यदि लड़की उनको स्वीकार कर लेती थी तो लड़का/पुरुष अपना आगे का कार्य प्रारम्भ कर देता था और यदि लड़की वस्त्राभूषण

लाने वाली को दुत्कार-फटकार कर या मार-पीटकर भगा देती थी तो लड़का या तो विरक्त हो जाता था या किसी षड़यंत्र आदि से कार्यसिद्धि में लग जाता था। उसी प्रकार वर्तमान में भी लड़का किसी सहेली, परिचित लड़की या अड़ोस-पड़ोस-रिश्तेदार आदि के साथ कार्ड या कोई मूल्यवान वस्तु भिजवावे तो लड़की नहीं लेवे औद यदि अनजान में कभी ले ले तो आप लाने वाले के हाथ से ही तत्काल वापस भिजवा दे। उस सहेली आदि को आप (माँ) प्रेमपूर्वक समझा दें। प्रेमपूर्वक समझाने के बाद भी बात सही नहीं बने तो सहेली आदि के माता-पिता-भाई को यदि लोकव्यवहार के अनुसार उचित लगे तो संकेत दे दें ताकि भविष्य में उसका भी शील सुरक्षित रहे। माता-पिता को संकेत देना उचित नहीं समझें तो उस सहेली आदि के साथ धीरे-धीरे मित्रता कम करवा करके समाप्त कर दें। एक दिन किसी एक लड़के ने किसी लड़की से कहा- ''तुम जिस कक्षा में प्रवेश कर रही हो उसकी पुस्तकें, गाइड्स आदि मेरे पास रखी हैं, मैं तुम्हें दे दूँगा।'' लड़की ने यह सोचकर कि बिना पैसे पुस्तकें भी मिल जायेंगी और यह कह रहा है तो इसकी बात भी रह जायेगी, कुछ नहीं कहा। लड़के ने उसकी चुप्पी देखकर पूरी पुस्तकें फ़्री में उसके परिवार वालों के पास भिजवा दीं। लेकिन एक पुस्तक जब लड़की स्कूल जा रही थी तब उसे बुलाकर देते हुए बोला- ''इसमें एक चिट रखी है उसे पढ़ लेना।'' लड़की को यह सुनकर उत्सुकता बढ़ी कि आखिर चिट में क्या लिखा है। वह रास्ते में चिट निकालकर पढ़ने लगी। उसमें लड़की को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ऐसे-ऐसे वाक्य लिखे थे जिनको (लड़की ने शर्म के कारण मुझे भी नहीं बताये) शब्दों में कहने में भी लज्जा आती है। लड़की संस्कारित थी इसलिए उसने वह चिट पढ़ते ही उल्टे पैर लौटकर पुस्तक वापिस कर दी। आप अपनी बेटी को ये सब बातें पहले ही समझा दें ताकि वह संकोच, व्यवहार या लोभ के वश होकर किसी लड़के से कोई भी चीज नहीं लेवे। इसी प्रकार कभी कार्ड आदि लेने-देने पर भी कोई घटना घटने की पूर्व भूमिका प्रारम्भ हो सकती है और भविष्य में घटना घट भी सकती है, घटना नहीं भी घटे तो भी लोक में बदनामी तो हो ही जाती है।

कभी-कभी पीएच.डी. (शोध कार्य), जॉब आदि के लिए अनेक लोगों से सम्पर्क बनाना पड़ता है। उस समय उनकी चिकनी-चुपड़ी, मीठी बातों को सर्वथा सत्य नहीं मानें। क्योंकि कहा भी है- अधिक मधुरता एवं सहयोग का भाव जैसे- हमेशा स्कूटर से घर छोड़ देना, आवश्यकताओं की पूर्ति में सहज रूप से

तैयार रहना, पैसा खर्च करने में नहीं हिचकना आदि कार्य अधिकांशत: कुछ रहस्य लिये होते हैं। आवश्यकतानुसार सुयोग्य, सीमित एवं संतुलित संपर्क के साथ लक्ष्य-प्राप्ति का ध्येय रखना उचित है।

आप अपनी बेटी को सहेली के घर भेजते समय ध्यान दें।यदि सहेली के यहाँ बराबर के भाई, चाचा आदि हैं, उनके यहाँ मित्रों का आना-जाना अधिक बना रहता है तो पढ़ने के लिए या और किसी काम से अधिक नहीं भेजें, बेटी से सहेली को अपने घर बुलाकर पढ़ने की प्रेरणा दें। कोचिंग-ट्यूशन आदि में लड़कियों के साथ पढ़ाने का प्रयास करें। ट्यूशन के लिए बन सके तो मेडम के पास भेजें और नहीं मिले तो अनुभवी प्रौढ़ आयु वाले अध्यापक के पास सहेलियों के ग्रुप में भेजें ताकि पढ़ाई भी अच्छी हो और सुरक्षा भी रहे। इसी प्रकार पिकनिक, गर्ल-गाइड, टूर्नामेंट आदि किसी भी कार्यकृम में भेजते समय भी उपर्युक्त बातों का ध्यान रखें। यदि किसी दूसरे शहर में प्रतियोगिता है तो किसी जिम्मेदार के साथ भेजें।

आप बेटी के साथ ऐसा मधुर व्यवहार करें कि बेटी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी घटना भी बिना किसी संकोच के आपको बता दे, डाँट आदि के भय से छुपाने की कोशिश नहीं करे ताकि उसके जीवन का कोई भी कदम गलत मार्ग पर न बढ़े और उससे कोई गलती हो जावे तो आप इस ढंग से डांटे-समझावें कि उसे अपनी गलती का अहसास भी हो जावे और डाँट भी समझ में न आवे। यदि स्कूल-कॉलेज से लेट आवे तो उसकी पूछताछ अवश्य करें। यदि हमेशा कुछ बहाने बनावे तो छोटे भाई-बहिन आदि के माध्यम से गुप्त जानकारी लेते रहें, समय पर आवे तो भी उमृ के अनुसार थोड़ा ध्यान रखें। बेटी की सहेलियों को समय-समय पर (बर्थ डे, त्यौहार आदि किसी भी बहाने से या ऐसे ही) घर पर बुलाते रहें ताकि वे चोरी आदि खोटी आदत वाली हैं, चरित्रहीन लड़कों से विशेष सम्पर्क रखने वाली हैं, यह बात समझ में आ जावे। ऐसी सहेलियाँ हों तो बेटी को उससे दूर रखें क्योंकि ऐसी लड़कियों की संगति से आपकी बेटी का भी चरित्र बिगड़ सकता है, शील नष्ट हो सकता है, लड़की गलत आदतों का शिकार बन सकती है और न भी बने तो कलंक तो लगता ही है। जैसे कोई शराब की दुकान पर बैठकर दूध भी पीता है तो भी लोग उसे शराबी ही समझते हैं क्योंकि वह शराब की दुकान पर बैठकर पी रहा है। इसी प्रकार अपनी लड़की का चरित्र शिथिल न भी हो लेकिन चरित्रहीनों के साथ रहती है तो वह भी कलंकी ही कही जायेगी। इस उमृ में लड़कों

के साथ सम्पर्क करने से होने वाली हानियों को समझाते रहें क्योंकि हानि समझ में आ जाने पर फिर रोकने-टोकने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

लड़कों के साथ अधिक सम्पर्क से हानि

लड़कों के साथ अधिक सम्पर्क रखने से लड़के, लड़की के साथ गलत काम करके इस प्रकार की दशा कर देते हैं जिस प्रकार की सिगरेट की होती है। कोई सिगरेट का एक कस लेकर दूसरे को पकड़ा देता है तो कोई एक-दो कस लेकर फेंक देता है। इसी प्रकार लड़के भी लड़की के साथ एक बार गलत काम करके अपने मित्र आदि को गलत काम करने के लिए सौंप देते हैं या जिन्दगी में न कभी सामने देखते हैं और न ही याद करते/स्वीकार करते हैं। जैसे- राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के साथ भोग कर लिया। शकुन्तला गर्भवती हो गई। उसने राजा को अनेक बार अपनी परिस्थिति के समाचार दिये। यहाँ तक कि वह अपने बेटे को लेकर राजदरबार में पहुँच गई। यद्यपि उसने (राजा ने) शकुन्तला के साथ गंधर्व विवाह किया था फिर भी उसने उसको (शकुन्तला को) अपनी पत्नी स्वीकार करने के लिए स्पष्ट मना कर दिया। बेचारी शकुन्तला आश्रम में अकेली वर्षों तक तड़फती रही। पुण्य योग से उनका मिलन हो गया। नहीं तो पूरी जिन्दगी इसी प्रकार व्यतीत करनी पड़ती। कई लड़के तो वर्षों तक भोग करते रहते हैं और विवाह का समय आने पर मना कर देते हैं या माता-पिता का बहाना बनाकर तिरस्कृत कर देते हैं। कोई गर्भवती बनाकर समाज में बदनाम करके छोड़ देते हैं। कोई आधी जिन्दगी में भी तलाक देने को तैयार हो जाते हैं। प्रेम करने वाली लड़की खुद ही सोचे कि जो लड़का छुप करके तुम्हारे साथ प्रेम कर सकता है वह क्या किसी दूसरी लड़की से प्रेम नहीं कर सकता है और यदि उसका किसी और लड़की से प्रेम है तो आपकी जिन्दगी का क्या होगा? कहा भी है-

दिल न दीजिए कभी किसी नादान को।
जो जलाकर खाक कर दे आपके अरमान को॥

कई बार लड़का तैयार हो भी जाता है तो उसके माता-पिता तैयार नहीं होते हैं। एक लड़की हमेशा बस से शहर में कॉलेज जाती थी। उसका कंडक्टर से प्रेम हो गया। कंडक्टर ने उससे शादी कर ली। जब वह उसको लेकर घर पहुँचा तो उसकी माँ एवं बहिन ने उसको रखने के लिए मना कर दिया। लड़के के द्वारा बार-बार समझाये जाने पर वे इस शर्त पर रखने के लिए तैयार हुईं कि हम पूरे परिवार

वाले आधे ग्लास पानी में थूकेंगे। उस पानी को यदि यह पी ले तो हम रख लेंगे। लड़की ने मजबूर होकर उस पानी को पीना भी मंजूर कर लिया अर्थात् उस पानी को पी लिया। लेकिन उसके बाद भी सास-ननद आदि उसको हमेशा कुछ-न-कुछ त्रास देती ही रहती थीं और पति उनसे अलग होने को तैयार नहीं था। इस प्रकार उसे न पति का सुख मिला न वह परिवार की ही बन पाई। भोलेपन में अपने मन से जिस किसी के साथ प्रेम (लव) करने का यह दुष्परिणाम होता है। एक लड़की ने अपनी दीदी के देवर के प्रेम को देखकर भगवान के सामने संकल्प कर लिया कि यदि मैं शादी करूंगी तो मात्र इसी लड़के के साथ करूंगी क्योंकि उसको इतना विश्वास था कि यह लड़का मेरे रूप-गुणों पर इतना न्योछावर है कि मुझे छोड़कर और किसी लड़की से शादी नहीं कर सकता है। जब वह २०-२२ वर्ष की हुई तब तक लड़के को भी कुछ समझदारी आ गई थी, वह पाप-पुण्य समझने लग गया था। तब उसने लड़की से कहा, ''मैं अपने माता-पिता के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता, जो वे कहेंगे वही सही होगा'' और माता-पिता ने कह दिया कि ऐसी मनचली लड़की से हम अपने लड़के की शादी करेंगे तो वह हमारी वृद्धावस्था में क्या सेवा करेगी। आखिर लड़की के सामने दो ही बातें रह गयीं। या तो वह मर जावे या जिन्दगी भर कुँवारी रहकर अपना जीवन निर्वाह करे। कभी-कभी तो किसी एक लड़के से प्रेम होता है और उसके सभी मित्रों के हाथ भी अपना शील बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। कभी लड़के प्रेम के वशीभूत होकर लड़की को भगाकर ले जाते हैं और भोग भोगकर वेश्याओं के हाथ बेच देते हैं, कोई पहले प्रेम में फँसा लेते हैं और बाद में उससे वेश्यावृत्ति करवाकर अथवा धन्धा अर्थात् आजीविका का साधन बनाते हैं तो कोई धन और पुरुषार्थहीन लड़के-लड़की के साथ शादी करके जीवन भर के लिए दु:ख के गर्त में पटक देते हैं। एक लड़के ने तो लड़की के साथ प्रेम की सीमा ही लांघ दी। लड़की विवाह के पहले ही माँ बनने वाली थी, विवाह का प्रकरण आया तो लड़के की माँ ने कहा- मैं ऐसी लड़की से शादी कैसे करवा सकती हूँ जो शादी के पहले ही माँ बनने वाली है। फलत: मजबूर होकर लड़की को सुसाइड (Suicide) करनी पड़ी।

ऐसी सैकड़ों दुर्घटनाएँ प्रतिवर्ष होती रहती हैं। उन सबके दु:खप्रद फलों को देख-समझकर अपने सुनहले जीवन को धूमिल होने से बचाना चाहिए। कहा भी है- प्रेमी का प्रेम अस्थिर और आवेशपूर्ण होता है तथा पति का प्रेम धीर, स्थिर

और निर्णयात्मक होता है। प्रेमी का प्रेम पहाड़ी नदी के समान होता है जो कुछ ही समय में बहकर सूख जाता है, जबकि पति का प्रेम सागर के समान गम्भीर युगों-युगों तक स्थायी और आजन्म बना रहता है। प्रेमी के प्रेम से उत्पन्न आनन्द चंचल होता है, चला जाता है क्योंकि उसका आधार इन्द्रियाँ होती हैं। वह सुख के समय तक रहता है, दु:ख/आपत्ति आने पर भाग जाता है। पति-पत्नी का प्रेम आनन्द, सुख-दु:ख, आपत्ति-विपत्ति आदि किसी भी समय में परिवर्तित नहीं होता है, मृत्युपर्यन्त एक दूसरे का साथ देता है। प्रेमी से प्राप्त आनन्द वृक्ष के पत्तों के समान होता है जो कुछ ही समय में सूख कर झड़ जाता है तो पति से प्राप्त आनन्द वृक्ष की जड़ों के समान हमेशा पोषण देने वाला होता है।

शृंगार और कला

इस उम्र में लड़की को साज-सज्जा, शृंगार से बचावें। अश्लील कपड़े नहीं पहनावें जिनमें से शरीर के अंगोपांग झलकते हों, जो बहुत चुस्त हों, जिनको देखकर लड़के विशेष रूप से आकर्षित होते हैं, जिनको पहन लेने पर मन बार-बार इस विचार में लगा रहे कि मैं कितनी सुन्दर लग रही हूँ, मेरे कपड़े कितने सुन्दर हैं, मुझे कोई देख रहा है या नहीं; आदि में ही उलझी रहे, बल्कि अपना पूरा ध्यान पढ़ाई की ओर देने के लिए प्रेरित करें। शायद इसीलिए स्कूलों में यूनिफॉर्म की व्यवस्था एवं साज-शृंगार की मनाही रहती है ताकि विद्यार्थी का ध्यान पढ़ाई को छोड़कर किसी के रंग-रंगीले वस्त्र, आभूषण, शृंगार आदि को देखने में न जाकर मात्र पढ़ाई की ओर ही केन्द्रित रहे। वास्तव में, पढ़ाई/विद्यार्जन जीवन भर नहीं होता, पढ़ाई तो प्रारम्भ के २०-२२ वर्ष की उम्र तक ही होती है जो जीवन भर काम आती है। इस उम्र में मन के साज-सज्जा, फैशन-व्यसन में लग जाने पर पढ़ाई गोल हो जाती है और पढ़ाई के बिना जीवन का कोई महत्त्व नहीं है, चाहे सर्विस नहीं भी करनी हो, ज्ञान तो जीवन का सर्वोत्तम आभूषण है। ज्ञानी में सभ्यता होती है, ज्ञानी विनयवान होता है। एक विद्या ही ऐसी वस्तु है जो बड़े-बड़े विद्वानों की सभा में व्यक्ति को सम्मानित करवाती है। ज्ञान के बिना व्यक्ति विद्वानों के बीच में ऐसा ही नजर आता है जैसा कि हंसों के बीच में बगुला। कहा भी है- **'विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्'** विद्या रूपी धन सब धनों में प्रधान है, इसको कोई चुरा नहीं सकता, न कोई जला सकता है और न ही कभी किसी माध्यम से यह नष्ट किया जा सकता है और भी कहा है, **'विद्याहीन: पशुभि: समान:'**। अर्थ- विद्वत्ता से

विहीन व्यक्ति पशु के समान है। इसी तरह इस उम्र में कढ़ाई, बुनाई, सिलाई आदि अनेक प्रकार की कलाएँ सीखी जा सकती हैं जो जीवन की सभी परिस्थितियों में सहायक होती हैं। कला के माध्यम से जीवननिर्वाह एवं जीवन का निर्माण भी शांति पूर्वक सरलता से किया जा सकता है। इसके अलावा कला से लोक में ख्याति भी प्राप्त होती है, कलावान व्यक्ति इतिहास के पन्नों पर अजर-अमर हो जाता है। कभी-कभी तो कला ऊबे हुए मन को पुनर्जीवित करने में भी सफल होती है। बड़ी से बड़ी वेदना में यदि मन कलाकृति में लग जाता है तो वेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं, वेदना भूल जाता है। कहा जाता है कि जो विश्व का आठवाँ आश्चर्य माना गया है, जिसकी ऊँचाई सत्तावन फुट (खड़े रूप में) है, जो कर्नाटक के श्रवणबेलगोल (बैंगलूर) में स्थित है उस प्रतिमा को गढ़ने वाले कलाकार को उसकी माँ छह महीने तक नमक रहित भोजन देती रही, वह प्रतिमा निर्माण में इतना लीन था कि उसे पता ही नहीं चला कि वह नमक रहित भोजन कर रहा है। प्रतिमा का कार्य पूर्ण हो जाने पर जब वह भोजन करने बैठा तो उसने माँ से पूछा- ''माँ, आज भोजन में नमक क्यों नहीं डाला, क्या भूल गई थी?'' यह सुन माँ को समझ में आ गया कि आज प्रतिमा का कार्य पूरा हो चुका है। सच ही है, कला जीवन की सभी चिन्ताओं से छूटने का एक उपाय है। साज-सज्जा के बिना भी व्यक्ति में यदि गुण हों तो वह सर्वत्र सम्मान को प्राप्त होता है क्योंकि कहा भी है- **''गुणा: सर्वत्र पूज्यन्ते''** अत: अभी मात्र विद्यार्जन और कलार्जन में ही अपना मन लगाना चाहिए।

शृंगार से बड़ी सादगी

महारानी अहल्याबाई कभी किसी प्रकार का शृंगार नहीं करती थी। शारीरिक रूप से वह सुन्दर भी नहीं थी, फिर भी अपने व्यक्तित्व अर्थात् धर्मप्रेम, पूजा-पाठ, लोककल्याणकारी भावना, दान-प्रवृत्ति, गरीब और असहायों की सहायता करने के कारण लोक में प्रशंसा को प्राप्त हुई थी। एक दिन पूना के पेशवा रघुनाथ राव की पत्नी आनन्दी बाई ने अहल्या बाई की लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा से जलते हुए अपने पति से पूछा- ''नाथ! लोग अहल्याबाई की इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं?'' राव ने कहा- ''वे महान् हैं, सद्गुणी, धर्मपरायणा नारी हैं, सेवा और त्याग की देवी हैं और सादगी की साक्षात् मूर्ति हैं।'' पति के मुख से अहल्या बाई की प्रशंसा सुनकर आनन्दी बाई जलभुन गई। वह बोली, ''मैं अहल्या बाई को देखना चाहती हूँ। क्या वह मुझसे भी सुन्दर है?'' राव बोले- ''हाँ, तुमसे अधिक

चतुर है, गुणी है, ज्ञानी है।'' कुछ दिनों के बाद आनन्दीबाई सजधज कर कीमती साड़ी, सोने-चाँदी, हीरे-मोती के गहने पहन कर सोने की मढ़ी पालकी में बैठ बड़े वैभव के साथ अहल्या बाई के पास पहुँची। वह उन्हें देखती ही रह गई। एक राज्य की महारानी सादी-सफेद धोती पहने थी, गले में तुलसी की माला, हाथ में भगवान का चित्र था। वह सांवली, सलोनी, चेहरे पर असाधारण चमक लिये अहल्याबाई को देखकर दंग रह गई। सच में वह सादगी की देवी दिख रही थी। अत: साज-शृंगार की अपेक्षा अपना व्यक्तित्व बनाना चाहिए।

दूसरी बात, इस प्रकार के वस्त्र पहनने से अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं। जैसे- अति चुस्त जीन्स आदि पहनने से शरीर के अंगोपांगों का विकास सही नहीं हो पाता है, रक्त संचार में भी अन्तर आ जाता है। इसी प्रकार ऊँची हील की चप्पल, सेंडिल आदि पहनने से शरीर की बनावट बेडौल हो जाती है, कूल्हे भारी हो जाते हैं, कमर मोटी हो जाती है और चाल बिगड़ जाती है।

स्त्रीधर्म समझावें

आप ग्यारह-बारह वर्ष की होते-होते बेटी को दीदी, बुआ, भाभी, चाची, मामी आदि से या उसकी सहेलियों से जो एम.सी. होने लगी हैं एम.सी. के बारे में बताने के लिए कह दें या आप ही प्रसंग छेड़कर या प्रसंग आने पर अकेले में बता दें कि एम.सी. क्या होती है, एम.सी. के समय क्या-क्या सावधानी रखनी चाहिए। एम.सी. में किस प्रकार वस्त्र आदि का उपयोग करने से हमारी लज्जा बची रहती है अर्थात् एम.सी. के दाग आदि किसी को नहीं दिखते हैं। और यह भी कह दें कि यदि तुम्हारी एम.सी. हो जावे तो तुम नि:शंक होकर मुझे या भाभी दीदी आदि को बता देना। इसमें डरने और संकोच करने की कोई बात नहीं है। यह तो हर लड़की/स्त्री को होती है। इसे शास्त्रों में स्त्रीधर्म कहा है। यदि यह नहीं होती है तो स्त्री में स्त्रीत्व अर्थात् गर्भ धारण की क्षमता नहीं होती है। वह एक प्रकार से नपुंसक की कोटि में आती है, आदि। ताकि वह कहीं मेरी एम.सी. तो नहीं हो गई है, यह कैसे होती है, मेरी एम.सी. होगी तो मैं क्या करूंगी, मुझे कौन बतायेगा कि मेरी एम.सी. हो गई है, आदि विचारों से मुक्त रहे। और एम.सी. होने पर जो धार्मिक अनुष्ठान, भगवान-गुरु के दर्शन, धार्मिक-ग्रन्थों का पठन-स्पर्श आदि नहीं किये जा सकते हैं अर्थात् कर लेने पर भारी पापों का बन्ध होता है; उनको करके भविष्य में दुर्गति का पात्र न बने।

बेटी की कम उम्र में एम.सी. हो जाने पर भी आप उसको हीन दृष्टि से नहीं देखें और न ही इतना छुपा कर रखें कि लड़की को मन में ऐसा लगने लगे कि मैं बहुत पापी हूँ या मेरी एम.सी. माँ के लिए दु:ख उत्पन्न करने वाली है। इन दिनों में बेटी के भोजन-पानी-स्नान आदि की व्यवस्था आप स्वयं सहज रूप से ध्यान से कर दें, ऐसा मौका नहीं आने दें कि उसे भैया या पापा से भोजन आदि माँगना पड़े और भैया, पापा से उसे भोजन-पानी आदि दिलावें भी नहीं क्योंकि इस समय में स्त्रियों में रक्तस्राव के कारण कुछ विशेष लज्जा एवं संकोच की अनुभूति होती है। इन तीन दिनों में यदि पेट और नलों में दर्द हो, उल्टी-दस्त आदि हो तो उसे साहस और धैर्य से सहन करने की प्रेरणा दें। उसे समझावें कि यह एक-दो-तीन दिन के बाद सहज रूप से ठीक हो ही जाता है। इसलिए घबराने की कोई बात नहीं है। यदि ब्लीडिंग नहीं होने के कारण दर्द है तो बॉटल आदि से सेक कर दें और गुड़ अजवाइन आदि को उबाल कर दे दें। इस दर्द को ठीक करने के लिए अंग्रेजी दवाइयों का उपयोग नहीं करें क्योंकि अंग्रेजी दवाइयों का साइड-इफेक्ट जिन्दगी में कभी भी किसी भी रोग के रूप में प्रस्फुटित हो सकता है। अत: थोड़ा सहन करने की आदत डालें।

एम.सी. में विशेष ध्यान दें

(१) साइकिल चलाना, तैरना, लम्बी दौड़, ऊँची कूद ऐसे खेल या काम जिनको करने से पेट पर दबाव पड़े या पेट को ज्यादा हिलाना पड़े न करें। जल से भरा घड़ा-टंकी-बाल्टी आदि नहीं उठावें, बहुत देर उकडू (जैसे शौच जाते समय बैठते हैं) न बैठें, अधिक दौड़भाग नहीं करें। ऐसा करने से रक्तस्राव बढ़ सकता है, और भी कुछ हो सकता है जो जिंदगी भर दु:ख देता रहे।

(२) इन तीन दिनों में जिसके रक्तस्राव अधिक होता है वह अधिक गरम जैसे- मेथी, तिली, राजगिर, पपीता, पिण्डखजूर आदि नहीं खावे, इनको खाने से रक्तस्राव और ज्यादा बढ़ता है। रक्तस्राव बढ़ने से शरीर में खून की कमी हो जाती है और विशेष कमजोरी की अनुभूति होती है। यदि रक्तस्राव कम होता हो तो पहले-दूसरे दिन थोड़ी-थोड़ी मेथी आदि खा लें।

(३) अधिक ठण्डे पदार्थ जैसे- केला, अनार, सेव आदि फल, चावल, दूध, दूध की बनी (मिठाइयाँ) वस्तुएँ, अधिक मात्रा में घी, सिकंजी, ठण्डाई, लस्सी, फ्रिज का ठण्डा पानी आदि पदार्थों का सेवन नहीं करें क्योंकि इनको खाने

से रक्तस्राव बन्द हो जाता है और वह खून शरीर में थक्के के रूप में जमता जाता है जो भविष्य में गाँठ के रूप में परिवर्तित होकर विशेष रूप से गर्भाशय के कैंसर का रूप धारण कर लेता है। इन तीन दिनों में खटाई जैसे- अमचूर, नीबू, इमली से भी परहेज करें, यदि छाछ लेनी हो तो मीठी छाछ लें, खट्टी न लें क्योंकि इन पदार्थों को खाने से पेट तथा आँतों में सूजन आ जाती है; जिसको आम भाषा में नलों में दर्द हो रहा है, नल फूल रहे हैं, आदि कहा जाता है।

इन तीन दिनों में हो सके तो अपने घर के पुराने सूती (जैसे- बिस्तर, रजाई का कवर या चादर आदि) कपड़े का ही उपयोग करें और दो-चार बार लेने के बाद उसको जहाँ कहीं नहीं फेंके अपितु जला दें ताकि वह किसी की दृष्टि में नहीं आवे। कहा जाता है कि उस कपड़े पर किसी गर्भवती स्त्री का पैर पड़ जावे तो उसके गर्भपात भी हो सकता है, सामान्य स्त्री हो तो उसकी समय के पहले ब्लीडिंग शुरू हो सकती है तथा कभी किसी विशेष कारण से (फेंकने वाली की) एम.सी. भी बिगड़ सकती है अर्थात् एम.सी. में विशेष तकलीफ की अनुभूति होने लगती है।

जब कभी परीक्षा देने जाना हो, बाहर जाने पर सही व्यवस्थाएँ नहीं हो पा रही हों, वहाँ की बात अलग है; लेकिन बाजार के पैड का उपयोग कभी नहीं करें, क्योंकि उनसे आपके कपड़े आदि तो सुरक्षित रहेंगे लेकिन पैड गीला हो जाने पर उसमें हवा नहीं लगने से जननांग में फुंसियाँ, चर्म रोग, छाले आदि भी हो सकते हैं।

इन दिनों में विशेष रूप से गर्भाशय कमजोर रहता है। अत: उछलकूद मचाने से कोई भी खराबी हो सकती है अर्थात् वह नीचे भी खिसक सकता है, उसमें गर्भधारण की शक्ति भी समाप्त हो सकती है।

इन दिनों में आप लड़की को किसी के घर, पार्टी, टूर्नामेंट या और किसी सामूहिक कार्यक्रम में नहीं भेजें, क्योंकि लोक में कहते हैं कि अशुद्धि के दिनों में किसी देवालय या मंदिर के सामने से निकल जावे तो देव कुपित होकर कुछ भी बुरा कर सकते हैं, क्योंकि उनके लिए यह एक बहुत बड़े अपमान की बात होती है या यूं कह दो कि अशुद्धि के समय धार्मिक स्थानों पर जाने से भयंकर पाप का बंध होता है; जिसके फल में नरक-तिर्यःा आदि दुर्गतियों के दु:खों को भोगना पड़ता है। यहाँ तक कि कई जाति वर्ग की स्त्रियाँ भी जहाँ शुद्धि-अशुद्धि का कोई विवेक नहीं रखा जाता है अपने धार्मिक वृत, उपवास, रोजा आदि नहीं करती हैं।

इन दिनों में गाना, बजाना, नाचना, शोक, दु:ख, काम-भाव बढ़ाने वाली

पुस्तकें पढ़ना, दृश्य देखना आदि काम नहीं करने चाहिए, क्योंकि इन कार्यों को करने से शारीरिक हानि के साथ-साथ मन में वासना उत्पन्न होती है, प्रमाद वृत्ति से कोई अनहोनी घटनाएँ घट सकती हैं। इन तीन दिनों में अपने सिर को नहीं छूएँ क्योंकि मस्तक बुद्धि का मूलकेन्द्र है, उसको छूने से इस समय में उत्पन्न हुए विष के परमाणु उसमें पहुँचने से बुद्धि क्षीण होती रहती है, स्मृति कम हो जाती है, आदि।

आँखों दिखती हानियाँ

लोक में गाय, भैंस के प्रसव के बाद १०-१२ दिन तक उसका दूध नहीं पिया जाता है। वैज्ञानिकों का मत है कि लगभग ९ माह तक गाय, भैंस के गर्भ में एम.सी. सम्बन्धी दूषित रक्त इकट्ठा होता रहता है जो प्रसव के बाद लगभग १०-१२ दिन तक थोड़ा-थोड़ा बाहर निकलता रहता है। ऐसे में गाय-भैंस के थन से निकाला गया दूध भी संक्रमित हो जाता है। संक्रामक दूध से विषाणु-जनित बीमारियाँ हो सकती हैं। जब रक्तस्राव का दूध पर भी इतना प्रभाव पड़ता है तो उससे उपर्युक्त प्रभाव पड़ते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है।

इसी प्रकार स्त्री के प्रसव होने पर उस स्त्री को ४५ दिन तक सूतक माना जाता है। वह इतने दिन तक किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान नहीं कर सकती है, रसोईघर में नहीं जा सकती है, घर के किसी पदार्थ को नहीं छू सकती है। बाजार, बगीचा आदि में घूमने नहीं जा सकती है क्योंकि उसके भी शरीर में से डेढ़ माह तक रजस्वला संबंधी रक्त (जहर) भले ही किसी को नहीं दिखाई दे तो भी निकलता रहता है और इन सब नियमों का पालन करने से स्वास्थ्य भी सहज रूप से सुधर जाता है। और भी आपने देखा होगा कि आपके घर पर पापड़-खीचले (खार वाले पदार्थ) आदि बन रहे हैं और यदि कोई रजस्वला स्त्री आ जाती है या छाया/परछाईं भी पड़ जाती है तो पापड़ आदि खराब हो जाते हैं, लाल पड़ जाते हैं, कड़क हो जाते हैं। ऐसा इसलिए हो जाता है कि रजस्वला स्त्री के शरीर का जहर इनको खराब कर देता है। कभी-कभी यदि किसी को टाइफाइड (मोतीझरा, मियादी बुखार) हो रहा है और उसके पास यदि कोई रजस्वला स्त्री पहुँच जाती है तो उसका टाइफाइड बिगड़ जाता है या फिर लौट जाता है अर्थात् बहुत दिनों तक वह ठीक नहीं होता है या पुन: उतने दिनों तक उसका पथ्य, औषधि आदि पालन (प्रयोग) करना पड़ता है। इसका भी कारण रजस्वला स्त्री के शरीर से उत्पन्न/विकृत होने वाला जहर ही है। यहाँ तक कि कोई पहले से ही कमजोर रोगी है तो वह मृत्यु को

भी प्राप्त कर सकता है।

वैज्ञानिकों के मत

अमेरिका के प्रोफेसर 'शीक' ने यह प्रमाणित किया है कि रजस्वला नारी के शरीर में ऐसा कोई प्रबल विष होता है कि वह जिस बगीचे में चली जाती है उस बगीचे के फूल-पत्ते आदि सूख जाते हैं, पौधे मर (मुरझा) जाते हैं। फल सड़ जाते हैं। यहाँ तक कि वृक्ष में कीड़े भी लग जाते हैं। इस विष के संसर्ग में आई हुई चीजों को भी विष के समान समझकर त्याग कर देना चाहिए।

अमेरिका के ही सुप्रसिद्ध होपकिन्स विश्वविद्यालय में दो महिला डॉक्टर सुश्री मार्केट और लोबिन ने डॉ. बी.सी. द्वारा किये गये प्रयोग का अनुकरण करते हुए विविध पेड़-पौधों व वनस्पति पर प्रयोग किये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि मासिक धर्म की अवधि में स्त्री के शरीर में **'मीनोटोसीन'** नामक जहर उत्पन्न होता है जो रासायनिक फार्मूला की तरह कालसटरीन नामक पदार्थ से मिलता-जुलता होता है। मासिक धर्म के समय स्त्री को एक प्रकार का दर्द होता है जो शीतल ज्वर जैसा लगता है। जी घबराना, उल्टी-कै मतली होने का अहसास होना, मानसिक उदासी व दुधमुँहे बच्चे की बीमारी आदि ये सब अवस्थाएँ वास्तव में उपर्युक्त 'मीनो' जहर के कारण ही होती हैं।

देश-विदेशों में

(१) न्यूजीलैण्ड- में रजस्वला स्त्री जमीन को नहीं छूती। उनकी मान्यता है कि जमीन पर चलने से उनके शरीर में रजोधर्म से प्रवाहित होने वाला जहर चारों ओर फैलता है।

(२) लेबनान- में किसान लोग रजस्वला स्त्री को खेत में और अन्यत्र भी कहीं मजदूरी पर नहीं जाने देते हैं। यदि भूल से चली जावे तो पेड़-पौधे, पुष्प-वृक्ष, क्यारियाँ तथा अन्य वनस्पति घास-फूस-फसल आदि पर विपरीत परिणाम होता है, ऐसी स्त्री को बैलगाड़ी, घोड़ा-गाड़ी एवं मोटर में नहीं बैठने देते हैं।

(३) जर्मनी- में रजस्वला स्त्री 'मुझे कागज मिला है', इस प्रकार कहकर अपनी पहचान बताती है। वहाँ मादक (शराब आदि) पदार्थों के गोदाम में रजस्वला का प्रवेश निषेध है क्योंकि उसके प्रवेश से कितनी भी ऊँची जाति की शराब क्यों न हो वह खट्टी हो जाती है, उसका स्वाद बिगड़ जाता है।

(४) फ्रांस- सम्राट् नेपोलियन बोनापार्ट के इस देश में रजस्वला स्त्रियों

को शक्कर की फैक्ट-ी में प्रवेश नहीं दिया जाता है क्योंकि उनके प्रवेश से शक्कर काली पड़ जाती है।

(५) दक्षिण फ्रांस में भी रेशम की फैक्ट-ी में मासिक धर्म वाली स्त्रियों को वहाँ खड़ा नहीं रहने दिया जाता है क्योंकि उनकी उपस्थिति मात्र ही रेशम की सोफ्टनेस कम कर देती है।

धार्मिक मान्यताएँ

(१) ईसाई धर्म - में स्त्री को सात दिन अशुद्ध माना गया है और जो उसका स्पर्श करता है वह भी सूर्यास्त तक अशुद्ध माना जाता है। जब तक वह स्त्री अशुद्ध होती है तब तक वह जिस किसी भी वस्तु को स्पर्श करती है वे सब वस्तुएँ अशुद्ध मानी जाती हैं। जो रजस्वला स्त्री की शय्या का स्पर्श करता है वह अपने कपड़े धोकर स्नान करता है, फिर भी वह सूर्यास्त तक अशुद्ध माना जाता है। उसके द्वारा स्पर्शित कोई वस्तु उपयोग के योग्य नहीं होती है। रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करके शुद्ध हो तो भी सात दिन के बाद ही पूर्ण शुद्ध मानी जाती है।

(२) यहूदी धर्म में कहा है- रजस्वला स्त्री नदी, नाले, तालाब एवं कुए आदि जल के स्थानों को नहीं छूए। वह अनाज, फसल, सोना-चाँदी, फर्नीचर आदि को स्पर्श नहीं करे। यदि भूल से स्पर्श हो जावे तो उस वस्तु को जला देना चाहिए। वह अपने उपयोग करने का फर्नीचर हरे रिबिन से बाँध कर रखती है ताकि कोई दूसरा उसका उपयोग नहीं करे।

(३) पारसी धर्म में रजस्वला स्त्री को नमाज पढ़ने और रोजा रखने की सख्त पाबन्दी है। प्राय: ऐसी स्त्रियों को छह दिन तक अलग रहना पड़ता है और जो उसका स्पर्श करता है उसे लगभग ४०-५० दिन तक नियमित रूप से पश्चाताप करना होता है।

हम लोगों को अर्थात् जैन धर्म में साध्वियों के लिए गुरुओं का आदेश है कि रजस्वला आर्यिका (साध्वी) तीन दिन तक उपवास करे या एक, दो उपवास करे अथवा नीरस (घी, दूध, दही, नमक, शक्कर और तेल से रहित) भोजन करे तथा ठंडे फल (मौसमी, संतरा आदि), काजू, किसमिस आदि ड-ाईफ्रूट्स से रहित आहार करे अर्थात् छाछ-रोटी, उबली सब्जी रोटी आदि, हल्का, सुपाच्य रस रहित भोजन करे। विशेष परिस्थितियों में गुरु की अनुमति से और कुछ गृहण करे। इन दिनों एकान्त में रहे, पुरुषों से बोलना, उन्हें देखना, उनसे बात करना आदि

किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं करे तथा गृहस्थों के लिए रजस्वला स्त्री तीन दिन तक अपने पति, पिता, पुत्र, सास, ननद, बेटी आदि किसी भी सदस्य को भोजन, पानी, नास्ता आदि अपने हाथ से अर्थात् छूकर न दे। घर के किसी पदार्थ को न छूएँ, यहाँ तक कि नहाने-धोने के पानी को भी न छूएँ।

अभी कुछ दिन पहले करमाला (जिला सोलापुर महाराष्ट-) में एक लड़की ने बताया, ''अम्मा! आपके समान हम लोगों को भी तीन दिन तक जेल के समान घर के पीछे वाले कमरे में ही रहना पड़ता है। हम लोग घर से बाहर भी नहीं निकल सकती हैं और पूरे घर में नहीं घूम सकतीं क्योंकि घर में घूमने पर किसी भी वस्तु को छूने का डर रहता है। आधुनिक युग में भी महाराष्ट- के बहुप्रतिशत घरों में इसी कठोरता के साथ इस धर्म का पालन किया जाता है। शायद इसीलिए महाराष्ट- धनाढ्य प्रदेशों में आता है।

वास्तव में देखा जाय तो यह बात सही है कि यदि नहाने-धोने के पानी को भी कोई रजस्वला स्त्री छूती है तो उसी पानी से घर के लोग नहा-धोकर जो कपड़े पहनते हैं वे कपड़े भी उस छुए पानी से गीले हो जाते हैं। और उन्हीं कपड़ों से वे जाकर अपने इष्ट देवता का स्पर्श करते हैं, पूजन करते हैं, शास्त्र का अध्ययन, गुरु की सेवा करते हैं तो उनको कितना पाप लगेगा और उन सब पापों का निमित्त कारण आप बनेंगी, सोचो, आपकी कौनसी गति होगी, आप स्वयं विचारें।

कहते हैं अशुद्धि में यदि महिलाएँ किसी वस्तु को छूती हैं, अशुद्धि का सही-सही पालन नहीं करती हैं तो वे मरकर कुतिया, सुअरी, चण्डालिनी आदि पर्यायों को प्राप्त होती हैं जहाँ शुद्धि-अशुद्धि का कोई विवेक ही नहीं है। उसको गर्भधारण की शक्ति भी नहीं मिलती है। इसी प्रकार आज भी कर्नाटक में लड़की की जब सबसे पहली बार एम.सी. होती है तब शुद्धि होने पर समाज, रिश्तेदार आदि को बुलाकर जुलूस के साथ भगवान के दर्शन कराये जाते हैं, इसके बहाने मानों समाज को संकेत ही दिया जाता है कि हमारी लड़की स्त्रीत्व गुण से युक्त है, माँ बनने योग्य है।

आधुनिक लोगों के तर्क एवं उनका समाधान

आधुनिक लोग कहते हैं कि एम.सी. तो फोड़े-फुन्सी के सदृश है। जैसे-फोड़े-फुन्सी आदि में खून निकलता है उसी प्रकार एम.सी. में खून निकलता है लेकिन ऐसा कहने वाले को विचार करना चाहिए कि-

(१) फोड़ा-फुन्सी प्रत्येक स्त्री को एवं हर महीने नहीं होते हैं जबकि एम.सी. प्रत्येक महीने में सामान्य रूप से सभी स्त्रियों को होती है और यदि नहीं होती हो तो सन्तान उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

(२) फोड़ा-फुन्सी औषधि लगाकर ठीक किये जा सकते हैं जबकि एम.सी. का रक्त किसी भी मलहम आदि के माध्यम से नहीं रोका जा सकता है।

(३) फोड़ा-फुन्सी के रक्त से किसी पदार्थ पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, जबकि एम.सी. के रक्त से लगभग सभी पदार्थों पर कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है।

(४) फोड़ा-फुन्सी में यदि एम.सी. जितना रक्त बह रहा हो तो टाँके लगाए बिना किसी भी हालत में ठीक नहीं हो सकता जबकि एम.सी. का रक्त सहज रूप से तीन-चार दिन में ठीक हो ही जाता है।

और भी आप स्वयं इन दोनों में तुलना करके विवेकपूर्वक कार्य करें।

कई लोगों की मान्यता है कि होटल के खाने की अपेक्षा तो अशुद्धि वाली के हाथ का भोजन कर लेना अच्छा ही है क्योंकि होटल में तो सौ जातियों के हाथों का छुआ हुआ भी होता है और अशुद्ध अभक्ष्य भी होता है। लेकिन ऐसा कहना किसी भी अपेक्षा सही नहीं है। यद्यपि अशुद्धि वाली के हाथ का भोजन आपकी दृष्टि में शुद्ध और भक्ष्य हो सकता है क्योंकि अशुद्धि के बारे में जो कुछ भी पूर्व में बताया गया है, उसके बारे में आपने ध्यान नहीं दिया, इसीलिए आपके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ है, यदि आप थोड़ा पक्षव्यामोह छोड़कर पूर्वापर में होने वाले हिताहित का विचार कर लेते तो आपके मन में अशुद्धि वाली के हाथ से बना भोजन करने का विचार ही उत्पन्न नहीं होता। आप अशुद्धि वाली के हाथ की बात तो बहुत दूर उसका स्पर्श किया हुआ भोजन भी करेंगे तो-

(१) आपके विचारों में अपवित्रता, वासना, तामसिकता एवं विकार उत्पन्न होगा।

(२) आपके घर से लक्ष्मी कुछ ही दिनों में विदा हो जायेगी।

(३) आपका एवं आपके परिवार का शरीर रोगों का घर बन जायेगा।

(४) आप शीघ्र ही स्वर्गवासी अर्थात् मौत के पास जाने की तैयारी करने लगेंगे।

(५) आपका घर साधु-सन्तों के भोजन करने के योग्य नहीं रहेगा।

यदि कभी भूलकर किसी सन्त ने आपके घर का भोजन कर भी लिया तो उसे भी जानकारी होने पर प्रायश्चित्त लेना पड़ेगा और ये सब बातें जब आपको अनुभव में आने लगेंगी तब आप स्वयं दु:ख एवं पश्चाताप के आँसू बहाते हुए दुर्गति की तैयारी में लग जायेंगे। अत: सावधान ! समय रहते ही अपने जीवन में सुधार कर लें, इसीलिए मैं बहुत बार महिला वर्ग को प्रेरणा देती रहती हूँ कि तुम अपनी लड़की को भोजन बनाना न भी सिखा पाओ तो कोई बात नहीं, क्योंकि यह तो उसका काम ही है, स्वयं सीख जायेगी लेकिन अपने बेटे को बचपन में ही भोजन बनाना जरूर सिखा देना और कुछ नहीं तो दाल-चावल, रोटी-सब्जी, चाय-दूध बनाना तो सिखा ही देना।

नोट:- बेटे को भोजन बनाना सिखाने से होने वाले लाभों का वर्णन आगे बेटे के संस्कारों में किया जायेगा।

एम.सी. में संत को भोजन देने से

एक नगर में बहुत वर्षों के बाद एक सन्त का आगमन हुआ था। उस नगर के श्रेष्ठी ने, जो संतों को भोजन देने में प्रसिद्ध था, संत को भोजन देने का विचार करते हुए घर जाकर सेठानी से अच्छा शुद्ध भोजन तैयार करने के लिए कहा। यह सुनकर सेठानी ने कहा- ''सेठ जी ! मैं आज भोजन नहीं बना सकती क्योंकि मैं एम.सी. में हूँ।'' सेठ ने कहा- ''पगली, तू कुछ भी समझती नहीं है, कितने वर्षों के बाद तो अपने नगर में संत आये हैं और अपना घर संत को भोजन के लिए हमेशा खुला ही रहता है। यदि अपने घर में आज संत का भोजन नहीं हुआ, संत को भोजन के लिए नहीं बुलाया तो लोग क्या कहेंगे, तुम तो जल्दी अच्छा भोजन तैयार करो। मैं संत के पास जाता हूँ। तुम एम.सी. में हो इस बात को कोई जानता भी कहाँ है, जो तुम इस बात की चिंता करती हो कि मैं एम.सी. में हूँ इसलिए संत को भोजन नहीं करवा सकती.....।'' सेठानी धर्मात्मा, पापभीरु और दुर्गति के दु:खों से परिचित थी। उसने सेठजी को बहुत समझाया लेकिन सेठजी ने उसकी एक भी बात नहीं सुनी। आखिर सेठानी को मजबूर होकर भोजन तैयार करके संत को देना पड़ा। संत भोजन करके चले गये लेकिन दो-चार दिन में ही उसके (सेठानी के) शरीर में कुष्ठ रोग उत्पन्न हो गया। उसके शरीर में स्थान-स्थान पर सफेद दाग दिखाई देने लगे। कोई-कोई दाग तो घाव का रूप लेने लगा। किसी-किसी दाग में से पानी

झरने लगा। पूरे शरीर में से बदबू आने लगी। धीरे-धीरे शरीर गलने लगा और घर की लक्ष्मी भी शनै:-शनै: विदा होने लगी। सेठ-सेठानी चिंता में पड़ गये, वे बार-बार सोचने लगे, हमने ऐसा कौनसा पाप किया है, जिसके फल में पहले तो इतनी निंदनीय दु:खदाई बीमारी हुई और ऊपर से धन-सम्पत्ति भी समाप्त होती जा रही है....। एक दिन सेठानी को अचानक संत को भोजन देने की बात याद आई। उसने सेठ जी से कहा कि आपने मुझे एम.सी. के समय में जबरन संत को भोजन दिलवाया था, उसका ही यह दुष्फल होना चाहिए। सेठजी को भी बात कुछ-कुछ समझ में आने लगी। दोनों विचार कर संत के पास गये और अपनी समस्या (कुष्ठ रोग एवं धन नष्ट होना) रखी। संत ने कहा- तुम लोग याद करो तुमने अपने जीवन में किसी संत का अपमान, निन्दा या तिरस्कार किया होगा। अथवा किसी संत को अशुद्धि के समय भोजन दिया होगा। इसके अलावा और कोई ऐसा पाप नहीं हो सकता जिसके फल में कुष्ठ रोग हो। संत की बात सुनकर सेठ-सेठानी ने अपनी गलती को स्वीकार करते हुए संत से प्रायश्चित्त के लिए निवेदन किया। संत ने उनको प्रायश्चित देकर शुद्ध किया। आप भी सावधान रहें। सेठानी ने मजबूरी में संत को भोजन दिया और सेठ ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए संत को भोजन दिया, उसका फल कुष्ठ की बीमारी और धन का नाश मिला। अत: आप भूलकर भी कभी ऐसा काम नहीं करें।

मुँहासे मिटावें, सुन्दरता बढ़ावें

इसी उम्र में हार्मोन्स में बदलाव के कारण लड़की के चेहरे पर मुँहासे तथा फुंसियाँ हो जाती हैं। इन मुँहासों को ठीक करने के लिए नाना प्रकार के ट्यूब क्रीम का प्रयोग न करें क्योंकि किसी भी ट्यूब से कुछ दिन तो ऐसा लगता है कि मुँहासे ठीक होते जा रहे हैं लेकिन कुछ दिनों के बाद पूर्ववत् स्थिति होने लगती है और उसके साथ नाना प्रकार की ट्यूबों के प्रयोग से चेहरे की रौनक समाप्त होने लगती है। इन मुँहासों को ठीक करने के लिए घरेलू नुस्खे काम में लेने चाहिए। जैसे-

(१) बादाम को दूध में घिसकर प्रात:काल मुँहासों तथा फुंसियों पर उसका लेप कर लें।

(२) प्रात:काल कुल्ला करके जितना शुद्ध छना जल खाली पेट पी सकते हैं, पी लें। इससे कब्जियत नहीं होगी, पेट साफ होने से मुँहासे फुंसियाँ अपने आप ठीक हो जायेंगे क्योंकि कहते हैं- कब्जी होना सैकड़ों बीमारियों का घर है। पानी पीकर तुलसी के ४-५ पत्ते चबा

लें।

(३) तुलसी, नीम तथा पोदीना के पत्तों का लेप भी लगा सकती हैं। इसके अलावा तुलसी में संक्रामक रोगों को रोकने की अद्‌भुत शक्ति है। तुलसी से कब्जी की बात तो ठीक है, टी.बी., कैंसर जैसे रोग भी ठीक हो सकते हैं।

(४) संतरे का प्रयोग अर्थात् दिन में २-४ संतरे खाने या संतरों का रस पीने से तथा संतरे के छिलकों को रगड़ने से भी मुँहासे ठीक हो जाते हैं। वास्तव में देखा जाय तो मुँहासों का मूल कारण पेट साफ नहीं होना है अत: पेट साफ रखें ताकि मुँहासे हो ही नहीं।

(५) चेहरे की सुन्दरता बढ़ाने के लिए साबुन के स्थान पर हाथ से बने उबटन का प्रयोग करें ताकि चेहरे का सौन्दर्य सुरक्षित रहे, अहिंसा का परिपालन हो तथा अपव्यय से भी बच जावें। नहाने-धोने की साबुन कितनी भी कीमती हो फिर भी कास्टिक तेजाब के बिना नहीं बनती है।

(६) एक लड़की का अपना अनुभव है। वह कहती है- मैंने तांबे के लोटे में पानी भरकर उसे पिरामिड के भीतर पाँच सप्ताह तक रखा। पानी के लोटे की ऊँचाई पिरामिड की ऊँचाई के एक-तिहाई नाप की थी, अत: लोटे को बराबर पिरामिड के शिखर के नीचे ही रखा था। इस प्रकार ''चार्ज'' हुआ पानी, पाँच सप्ताह तक चेहरे पर छिड़का और बाद में हल्के हाथों से चेहरे की मालिश की। फलस्वरूप चेहरे की चमड़ी अधिक ऋजु बनी चेहरा तेजस्वी-ताम्रवर्ण बना।

नोट:- पिरामिड बनाने की विधि के लिए देखें पूर्वार्ध पृ. १४९।

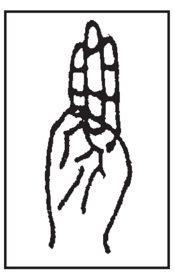

(७) वरुण मुद्रा का उपयोग भी मुँहासे मिटाने में बहुत लाभप्रद है- कनिष्ठा अँगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्र भाग से लगाकर मिलाना वरुणमुद्रा है। यह मुद्रा शरीर में रूखापन नष्ट करके चिकनाई बनाती है। यह मुद्रा चर्म रोग, रक्त विकार एवं जल तत्त्व की कमी से उत्पन्न व्याधियों को दूर करती है, मुँहासों को नष्ट करती है और चेहरे को सुन्दर बनाती है।

विशेष- कफ प्रकृति वाले इस मुद्रा का प्रयोग अधिक नहीं करें।

(८) दोनों हाथों को रगड़ (घर्षण) करके मुँहासे पर सेक करने से भी मुँहासे ठीक हो जाते हैं।

उबटन की सामग्री

चन्दन, बेसन, दही, हल्दी, ठण्डा दूध, संतरे के छिलके, नारियल का पानी, पपीते का गूदा, खीरे का रस, सरसों के तेल का उबटन बनाकर इससे सप्ताह में एक-दो बार नहा लेना काफी है। इतनी वस्तुएँ उपलब्ध न हो पाएँ तो तेल, बेसन, हल्दी या बेसन और नीबू या मलाई-नीबू से भी लाभ मिलता है क्योंकि इनका प्रयोग/उपयोग करने से शरीर के रोमछिद्र खुल जाते हैं, मैल साफ हो जाता है। नहाने के तीन-चार घण्टे पहले तेल की मालिश अवश्य करें, ताकि त्वचा रुक्ष न हो पाये।

दूध के बर्तन को धोने के पहले थोड़ा सा बेसन डालकर खुरच लें। इसमें ३-४ बूंद नीबू की डाल लें और उपलब्ध हो तो एक चम्मच दही भी डाल दें। इस लेप को चेहरे पर लगा लें, सूख जाने पर धो लें। सर्दी में बॉडी लोशन के स्थान पर स्नान के पहले थोड़े से तेल की मालिश कर लें और कुनकुने पानी से नहा लें, त्वचा चमकने लगेगी। पूरे शरीर में भी टमाटर, ककड़ी, पपीता या दही आदि को रगड़कर नहाने से त्वचा मुलायम रहती है। इन सबके प्रयोग से आप आर्थिक व्यय, हिंसा रूप पाप तथा त्वचा संबंधी एलर्जी से बच सकती है और अपने सौन्दर्य को स्थायी बना सकती हैं।

शरीर को संतुलित बनायें

यदि आपको अपनी सुन्दरता में निखार लाना है तो आप अपने भोजन को अभी से संतुलित रखें ताकि बाद में डायटिंग आदि का श्रम न करना पड़े क्योंकि असंतुलित और खान-पान की बुरी आदतें शरीर को बेडौल-मोटा और पोला अर्थात् शक्तिहीन बना देती हैं। सावधानी रखें, जहाँ कहीं जब कभी और जो कुछ भी खा लेना किसी भी दृष्टि से लाभप्रद नहीं है, न ही स्टेन्डर्ड है और न सभ्यता ही मानी गई है। समय पर सोचकर तथा स्वास्थ्यानुकूल खावें ताकि शरीर और स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ न हो, पाचन शक्ति अच्छी बनी रहे। जैसे- किसी कुकर में अधिक पानी डाल देने पर वह पानी बाहर फेंक देता है, रबर रिंग, सेफ्टी वाल्व आदि खराब हो जाते हैं और कम पानी डालने पर कुकर फट जाता है तथा उसे

बार-बार खोलकर पानी आदि डालने पर कोई भी वस्तु ढंग से तैयार नहीं हो पाती है और कुकर भी खराब हो जाता है; उसी प्रकार ज्यादा और यद्वा-तद्वा खाने से शरीर एवं स्वास्थ्य दोनों खराब हो जाते हैं। भोजन में चावल, चीनी, सूखे मेवा, मिठाइयाँ, मक्खन-पनीर आदि का उपयोग कम करें और चाय, कॉफी, धूम्रपान, पान-मसाला आदि का उपयोग कभी नहीं करें। ये सब चीजें धीरे-धीरे शरीर को कान्तिहीन बना देती हैं। इसी प्रकार नेलपॉलिश, लिपिस्टिक आदि से शरीर पर अनेक दुष्प्रभाव होते हैं। इन पदार्थों के प्रयोग से धार्मिक, शारीरिक एवं आर्थिक हानि होती है। इन पदार्थों के प्रयोग से किसी प्रकार से लाभ की कोई सम्भावना नहीं है, महिलाएँ तत्काल में मन को सन्तुष्ट करने के लिए सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करती हैं, लेकिन उनका परिणाम, जब शरीर पर उम्र ढलने के पहले ही वृद्धावस्था की झुर्रियाँ नजर आने लगती हैं, सुन्दरता समाप्त होने लगती है, तब समझ में आता है और जीवहत्या से उनका उत्पादन होने के कारण धार्मिक हानि भी होती है अर्थात् पाप का बन्ध भी होता है। अत: सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करते समय ध्यान रखें ताकि शारीरिक एवं धार्मिक हानि से बच सकें।

सौन्दर्य प्रसाधनों से हानि

नेलपॉलिश

नेलपॉलिश से नाखूनों में रियेक्सन हो सकता है। नेलपॉलिश बनाने में मुख्य रूप से ऐसीटोन नामक रसायन का प्रयोग किया जाता है जिससे अंगुलियों में त्वचा के सम्पर्क में आने पर छोटी-छोटी लाल रंग की फुंसियाँ निकल आती हैं। नेलपॉलिश में मिले रासायनिक पदार्थों के कारण नेलपॉलिश का लगातार उपयोग करने से नाखूनों की नमी खराब हो जाती है, कोमलता नष्ट हो जाती है तथा स्वाभाविक चमक नष्ट होकर उनका रंग पीला, मटमैला या सफेद पड़ जाता है और धीरे-धीरे काला हो जाता है। थोड़ी सी ठोकर लगने पर वे टूट जाते हैं। नेलपॉलिश के हाथों से भोजन बनाने, खाना-खिलाने आदि किसी भी माध्यम से पेट में पहुँच जाने पर शरीर में उन रसायनों की मात्रा बढ़ जाती है तो सिरदर्द, मतली, चक्कर, भूख न लगना, जलन आदि शिकायतें पैदा हो जाती हैं। इससे त्वचा भी प्रभावित होती है जिनसे जलन, सूजन, मुँहासों का ज्यादा होना आदि परेशानियाँ होने लगती हैं। उसमें स्थित फिनाइल तो शरीर में कैंसर की सम्भावना को कई गुना बढ़ा देती है। कुछ नेलपॉलिशों के दुष्प्रभाव से आँख, नाक, श्वसनतंत्र में जलन पैदा होती

है। वे हृदय व लीवर पर भी बुरा असर डालते हैं। नेलपॉलिश की हानिकारक प्रकृति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि नेलपॉलिश का थोड़ा सा अंश भी गर्भवती महिला के पेट में पहुँच जावे तो गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

शिशुओं के लिए तो नेलपॉलिश जानलेवा बीमारी भी उत्पन्न करने में समर्थ है। वैज्ञानिकों का कहना है कि नेलपॉलिश रिमूवर से निकली वाष्प श्वास के साथ फेफड़ों में पहुँचकर खून में जा सकती है और उस वाष्प की थोड़ी सी मात्रा से ही सिरदर्द, फेफड़ों व आँखों में जलन, खाँसी, उनींदापन, सिर चकराने जैसी शिकायतें पैदा हो सकती हैं।

लिपिस्टिक

टाईनियम ऑक्साइड एवं बैंजोइन नामक रसायनों से बनी लिपिस्टिक कुछ समय के लिए होठों को खूबसूरत तो अवश्य बनाती है परन्तु धीरे-धीरे उससे होठ काले होने लगते हैं। खुजलाहट और सूजन की शिकायत भी हो जाती है। यह कैंसर तक के लिए भूमिका तैयार कर देती है। लिपिस्टिक में अतिरिक्त चमक के लिए सुअर की चर्बी का उपयोग किया जाता है। वह चर्बी सुअर को मारे बिना प्राप्त नहीं हो सकती है। लिपिस्टिक लगाने से कभी-कभी ओठों पर ऐसे दाग हो जाते हैं जो जिन्दगी भर के लिए लज्जा का अनुभव कराते रहते हैं। किसी-किसी के ओठों की चमक तक समाप्त हो जातीहै। वह लिपिस्टिक कुछ अंशों में शरीर में भी अवश्य पहुँचती है जो अनेक बीमारियों का कारण बनती है।

पतले ओठों वाली स्त्रियाँ भाग्यशाली मानी जाती हैं लेकिन आजकल आउटलाइन लगाकर लिपिस्टिक से ओठों को मोटा करने की फैशन है जो सौभाग्य के लिए अच्छा नहीं है।

आई ब्रो पेंसिल

यह आँखों के लिए इतनी खतरनाक होती है कि अगर निरन्तर लम्बे समय तक इसका उपयोग किया जाये तो आँखों की रोशनी तक जा सकती है।

हेयर डाई

हेयर डाई में हाइड-ोजन पैराक्साइड, अमोनिया एसिड आदि पदार्थ मिले होते हैं। इसके प्रयोग से बाल सिर्फ झड़ते ही नहीं हैं, कभी-कभी खुजली और एग्जिमा की चपेट में भी आ जाते हैं।

हेयर स्प्रे

हेयर स्प्रे में पेरफिनायलिन नामक हानिकर पदार्थ होता है। इससे माइग्रेन जैसा भयंकर रोग हो सकता है, बाल बेजान होने लगते हैं एवं बालों का झड़ना भी शुरू हो जाता है।

बॉडी लोशन

त्वचा को कोमल और सुघढ़ बनाने के लिए बॉडी लोशन लगाया जाता है जिसमें भेड़ की चर्बी का तेल बनाकर मिलाया जाता है जो मांसाहार में ही आता है। यह जीवहत्या से ही प्राप्त होता है।

सुगंधित साबुन-क्रीम

साबुन व क्रीम बनाने के लिए मछलियों को रस्सी से बाँधकर पीड़ित किया जाता है। पीड़ित होने पर उनके शरीर से एक गाढ़ा पदार्थ निकलता है और वे मर जाती हैं, वह गाढ़ा पदार्थ ही साबुन व क्रीम में मिलाया जाता है।

प्रश्न - उपर्युक्त सौन्दर्य प्रसाधनों से होने वाली आर्थिक, धार्मिक एवं शारीरिक हानियों को पढ़कर आपको ऐसा लगेगा कि क्या मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके हम कुछ भी शौक-मौज (फैशन/व्यसन) नहीं करेंगे तो क्या नरक आदि में जाकर करेंगे ?

उत्तर - आपका प्रश्न/विकल्प बिल्कुल सही है। सच में नरक गति में तो नारकियों को पाप के फल में इतना दुःख, मार-काट, वेदना भोगनी पड़ती है कि उनको इन सबको लगाने की बात तो बहुत दूर याद करने का भी समय नहीं मिलता। दूसरी बात, वे यहाँ इन पापात्मक पदार्थों के प्रयोग से जो पाप कमा कर ले गये हैं उसके फल में उनको ऐसा कुरूप शरीर मिलता है कि वे यदि आइने में अपना ही मुख देख लें तो हार्ट अटेक आ जाय। वे सब पापों से विरक्त हो जायें लेकिन उनको कभी आइना देखने को नहीं मिलता क्योंकि नरकों में आइने की बात तो क्या कहना प्रकाश नाम की चीज ही नहीं है। देवगति में देव इतने सुन्दर होते हैं कि आप सजी-सजाई पूरा मेकअप करके भी यदि देव के सामने खड़ी होंगी तो ऐसी लगेंगी, जैसे आपके सामने कारटून लगते हैं। आप यदि तिर्यःगगति में चली गयीं तो वही दशा होगी, जो आपके सौन्दर्य प्रसाधनों को बनाने के लिए उनकी हो रही है। इसलिए आप मनुष्य पर्याय प्राप्तकर ये शौक-मौज पूरा करना चाहती हैं। आप इनका प्रयोग करने के पहले उन लोगों को देखें जिनके सामने (जिन्होंने मेकअप नहीं कर रखा है

फिर भी) आप मेकअप की हुई भी शरमाती हैं। जिनके व्यक्तित्व के आगे बड़े-बड़े ऑफिसर, प्रधानमंत्री और राष्ट-पति, राजा-महाराजा भी अपना सिर झुकाने के लिए मजबूर हो जाते हैं, उसका कारण क्या है? पूर्व में किया गया अहिंसा धर्म का पालन, दया आदि श्रेष्ठ कार्य जिनके फल में सौन्दर्य प्रसाधनों की तो बात ही नहीं है वे कभी कपड़ा आदि फेरकर या हाथ से रगड़ कर भी मैल नहीं उतारते हैं, मुँह नहीं धोते हैं, जो ६० वर्ष की उम्र में प्रवेश कर चुके हैं फिर भी इतने सुन्दर हैं कि उनके सामने आपका मन सौन्दर्य-प्रसाधनों से विरक्त न हो पावे तो आप कम-से-कम धर्म आयतनों में जाते समय तो इनका उपयोग नहीं करें; पर्व, वृत, उपवास आदि के दिनों में तो इनसे बचें। धार्मिक कार्यों को निमित्त बनाकर तो पाप के अर्जन रूप सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग नहीं करें। और आज इतना संकल्प तो कर लें कि जिस दिन मैं सास बन जाऊँगी, घर में बहू रानी आ जायेगी अर्थात् ४५-५० वर्ष की हो जाऊँगी इन सौन्दर्य प्रसाधनों का त्याग कर दूँगी। तथा जब तक इनका प्रयोग करूंगी शाकाहारी कम्पनी (जिस पर हरा चिह्न बना हो) का ही प्रयोग करूँगी। भले ही पैसा ज्यादा लगे, पापों से बचने का प्रयास करूँगी।

प्रश्न-उपर्युक्त उत्तर सुनकर फिर आपको लग सकता है कि आप साधु हैं, आपको शारीरिक सुन्दरता से क्या प्रयोजन और फिर साधु वर्ग तो सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग कर ही नहीं सकता क्योंकि जब वह अपने शरीर से ही विरक्त है, शरीर से ही उसका मोह नहीं रहता तो फिर शरीर की सुन्दरता के लिए सौन्दर्य प्रसाधनों के प्रयोग का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। वह तो अपने व्यक्तित्व से ही पूजा जाता है, वह अपनी त्याग-तपस्या से ही सुन्दर होता है, उसके पास तो ब्रह्मचर्य का ही इतना प्रभाव होता है कि सभी लोग उससे सहज रूप से आकर्षित होते हैं लेकिन हम तो गृहस्थ हैं, घर में रहते हैं, चार व्यक्तियों के बीच में हमें आना-जाना पड़ता है, सौन्दर्य प्रसाधनों से सज्जित लोगों के साथ फंक्सन अटेण्ड करने पड़ते हैं, वहाँ यदि हम ऐसे ही चले जावें तो लोग किस दृष्टि से देखेंगे ? इन सब पहलुओं पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि इस जमाने में तो कोई भी गृहस्थ सौन्दर्य प्रसाधनों के बिना नहीं जी सकता?

उत्तर-आपका तर्क युक्तिपूर्ण है लेकिन आप थोड़ा सा गहराई से विचार करेंगी तो आपको सब बातें अच्छी तरह समझ में आ जायेंगी। आपके लिए कुछ विचारणीय बिन्दु-

(१) यदि आपकी आर्थिक स्थिति सौन्दर्य प्रसाधन खरीदने जैसी नहीं है या नहीं रहेगी तो ?

(२) यदि सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करते ही आपके शरीर में एलर्जी हो जाये। जैसे- पाउडर लगाने से मुँह पर फुन्सियाँ हों, नेलपॉलिश से नाखून खराब हो गये तो ?

(३) यदि किसी घटना से आपका मन खिन्न हो गया तो? अर्थात् अचानक आपके किसी इष्ट का वियोग हो गया या किसी कारण से कलंक लग गया तो? क्या आप सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग करेंगी ? नहीं, ऐसी स्थितियों में मजबूर होकर आप इन सब का उपयोग करना बंद कर देंगी, बन्द करना पड़ेगा; लेकिन इससे आपको कुछ भी पुण्य मिलने वाला नहीं है, आप का भव सुधरने वाला नहीं है और यदि आप अपने मन से धीरे-धीरे यौवन के ढलने के साथ-साथ अपनी इच्छाओं को भी ढालती अर्थात् संयमित करती जायेंगी तो कम-से-कम वृद्धावस्था में इन पापों से बच ही जायेंगी और दुर्गति से भी। और यदि आपका विल पावर अच्छा है तो आप आज से ही पाप से बच सकती हैं।

(४) आप सोचें, आपकी सुन्दरता को, आपके शृंगार को देखने का समय ही किसे है जहाँ आप तैयार होकर जाती हैं वहाँ तो एक-से-एक ज्यादा सुन्दर एवं सजी-धजी युवतियाँ होंगी। उन सबके सामने आप एक सामान्य महिला मानी जायेंगी। और फिर यदि किसी पुरुष ने आपको घूर कर/टकटकी लगाकर देख लिया, किसी पुरुष की दृष्टि आपके ऊपर आकर्षित हो गई तो आपका शील खतरे में पड़ जायेगा। और यदि शील पर ही किसी का आक्रमण हो गया, किसी ने आपका शील ही लूट लिया तो आपके सौन्दर्य प्रसाधनों ने आपको कितना सुख दिया, आपकी कितनी सुन्दरता बढ़ाई? आप स्वयं बतावें, विचार करें।

विवाह सम्बन्धी भाव देखें

लगभग १५-१६ वर्ष की उम्र से ही आप बेटी के सामने विवाह सम्बन्धी बात छेड़ते रहें ताकि आपको बेटी के विचार समझ में आते रहें। यदि बेटी की भावना पढ़ाई पूरी होने के पहले अथवा बीस-बाईस वर्ष की उम्र तक विवाह करने की नहीं है तो आप दबाव नहीं डालें। और यदि वह विवाह के प्रकरण में कुछ न बोले अथवा चिढ़ना, रोना, मुँह बनाना आदि कोई प्रतिक्रिया नहीं करे तो समझना चाहिए कि वह अधिक वर्षों तक अविवाहित नहीं रहना चाहती है। आप अपने ही

अनुमान और मन से ऐसा नहीं मानते रहें कि अभी तो बेटी छोटी है, बच्ची है, अभी कुछ समझती नहीं है। इतनी जल्दी हम इसका विवाह नहीं करेंगे, आदि क्योंकि संकोचवश वह कुछ कहती भी नहीं हो किन्तु मन में तो कुछ भी हो सकता है, वास्तविक वासनाएँ तो मन में ही होती हैं। आप भले ही शादी बहुत जल्दी नहीं करें लेकिन विवाह सम्बन्धी बातें करने और लड़का आदि देखते रहने से भी बेटी आश्वस्त रहेगी। और आप यदि उसकी रुचि के अनुसार १८-२० वर्ष की उम्र में उसकी शादी कर भी देंगे तो वह कोई ऐसी नाबालिग नहीं है और न आपको इसमें शर्म की ही बात है क्योंकि यदि आपने उसकी शादी नहीं की और उसने कुछ गलत कार्य कर लिया तो फिर आपकी इज्जत का क्या होगा?

आप कभी-कभी किसी बहाने अपनी बेटी की पुस्तकें, डायरी, कॉपी आदि देखते रहें क्योंकि यदि उसका किसी लड़के से सम्बन्ध होगा तो कॉपी में कहीं भी कुछ लिखा हुआ, कोई पत्र, किसी का नाम, फोटो, फोन-मोबाइल-फैक्स आदि का नम्बर मिल सकता है। वह भावुकता, अज्ञानता या अपने भोलेपन के कारण किसी भी लड़के के चंगुल में आ सकती है। फँस जाने के बाद वह न किसी से कह सकती है और न उसका कोई समाधान ही कर पाती है, ऐसी स्थिति में घरवालों (भाई-बहिन, मम्मी-पापा आदि) से उसका बोलना कम हो जाता है। ऐसे समय में आप उसे एकान्त में प्रेम से आश्वस्त करते हुए पूछें ताकि वह अपने मन की सही-सही बात बता सके क्योंकि किसी से कोई भी गलती हो जाने पर उसको बताने में बहुत डर लगता है और गलत कार्य को बता देने पर मम्मी-पापा उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे; यह सोच-सोचकर वह बताना चाहते हुए भी नहीं बता पाती है। अत: आप सहेली के समान उसके साथ घुल-मिलकर पूछें और बता देने पर उसका सही ढंग से समाधान करें। यदि वह मन से फँसी है तो उपर्युक्त रुचि के साथ-साथ वह घर से बाहर के, तथा छत आदि पर किये जाने वाले कार्यों में रुचि लेने लगती है क्योंकि वहाँ उसे अपने प्रेमी से मिलने, बात करने के अवसर मिलते रहते हैं। ऐसी स्थिति में आप गुप्त रूप से जानकारी लें कि वह कब, कहाँ, किससे बात करती है क्या बहाना बनाकर किससे मिलती है, लेन-देन, फोन-पत्र-ई-मेल आदि व्यवहार करती है। जानकारी लेकर उससे उसके विषय में पूछें, सच-सच बताने के लिए मजबूर करें। यदि सच बता दे तो समझाकर ऐसे काम नहीं करने की प्रेरणा दें। इससे भविष्य में होने वाली हानियों को समझावें। समझ जावे तो

बहुत अच्छा नहीं तो साम, दाम, दण्ड से इन कार्यों को छुड़ावें। यदि सच नहीं बतावे, बहाने बनाती रहे तो रंगे हाथ पकड़ने की कोशिश करें। किसी भी प्रकार लाइन पर नहीं आवे तो जल्दी शादी कर दें ताकि अपने आप लाइन पर आ जावे।

सावधान रहें/रखें

आप सावधान रहें, इस उम्र में अर्थात् १२-१३ वर्ष की उम्र में लड़कियों के साथ बलात्कार ज्यादा होते हैं और वे बलात्कार करने वाले नजदीकी रिश्तेदार, चचेरे-मौसेरे-ममेरे (मामा के लड़के) भाई, पापा-काका-भाई के मित्र तथा अड़ोस-पड़ोस के लोग ही होते हैं। मासूम बच्चियों के साथ कुकृत्य करने वाले अधिकतर वे ही लोग होते हैं जो बहुत परिचित होते हैं, जिनके पास बच्ची बिना किसी डर के चली जाती है। केरल में सर्वेक्षण से पता चला है कि बहु प्रतिशत लड़कियाँ विवाह से पूर्व ही यौन (पति-पत्नी के) सम्बन्धों से परिचित थीं। डॉ. के.एस. डेविड ने 'सैक्सुअल एब्यूज अमांग चिल्ड-न' में यह निष्कर्ष निकाला है कि इसमें सबसे अधिक हाथ मामा-चाचा आदि के लड़कों का ही था। आप अपनी बेटी को घर में नौकर के भरोसे अकेली छोड़कर नहीं जावें, बहुत दिनों तक अपने पति-पुत्र अर्थात् पापा-भाई आदि के साथ भी अकेली छोड़कर बहिन-भाई आदि के यहाँ नहीं जावें क्योंकि स्त्री और पुरुष चाहे वो किसी भी उम्र के हों उनका संयोग अर्थात् निकटता अग्नि और घी की समीपता के समान है। जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क से घी पिघल ही जाता है उसी प्रकार चाहे भाई, पापा, चाचा आदि भी क्यों न हो, एकान्त में मिलते रहने पर मन खराब हो ही जाता है।

पिता ने पुत्री को छेड़ा

एक दिन एक राजा ने अपनी सभा में एक प्रश्न किया कि ''सबसे बड़ा पाप क्या है ?'' मंत्री आदि ने अनेक उत्तरों से राजा को संतुष्ट करने का प्रयास किया लेकिन कोई भी राजा को संतुष्ट नहीं कर पाया। तब राजा ने मंत्री से कहा- ''यदि तुम छह महीने के अन्दर मुझे इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं दोगे तो तुम्हे फाँसी की सजा दी जायेगी।'' यह सुनकर मंत्री जब चिन्तित दशा में अपने घर पहुँचा तो उसकी बेटी ने उससे अपनी चिन्ता का कारण पूछा। मंत्री ने अपनी चिंता को छुपाने का बहुत प्रयास किया लेकिन बेटी के बार-बार आग्रह करने पर मंत्री ने पूरी बात स्पष्ट बता दी। बेटी ने कहा- ''आप चिन्ता नहीं करें। मैं ४-५ महीनों में राजा को सही-सही उत्तर दे दूंगी।'' मंत्री को बेटी के उत्तर से कुछ राहत मिली। बेटी

ने माँ को मामा के यहाँ भेज दिया और स्वयं पिताजी की सेवा में लग गई। नहाते समय तौलिया, कंघा आदि लेकर तैयार रहती, भोजन करते समय पंखा झलना, प्रेम से भोजन परोसना, राजसभा में जाते समय आवश्यक कागजात पकड़ाना आदि प्रत्येक कार्य को तत्परता पूर्वक कर देती थी। इस प्रकार पिता नहाते-खाते-सोते सभी समय मात्र अपनी बेटी को ही देखते। बार-बार बेटी को देखते-देखते उनका मन खराब होने लगा। उसने अपने मन को समझाया। कुछ ही दिनों में माँ लौट आई। मंत्री का मन पुन: परिवर्तित हो गया। कुछ दिनों के बाद फिर बेटी ने माँ को किसी बहाने से घर के बाहर कहीं भेज दिया। ऐसा करते-करते दो-तीन महीनों में दो-चार बार कुछ-कुछ दिनों तक पिता-पुत्री के अकेले रहने से एक दिन पिता ने पुत्री का हाथ पकड़ कर अपने मन की बात कही। तब बेटी ने कहा- ''पिताजी! बस, यही राजा के प्रश्न का उत्तर है। आप जाकर राजा को पूरी बात बता दें।'' मंत्री ने राजा को छह महीनों की पूरी घटना सुना दी। अर्थात् एकान्त में पुरुष और स्त्री का मिलना ही सबसे बड़ा पाप है। इस उत्तर से राजा संतुष्ट हो गया। यह एक ऐतिहासिक उदाहरण है। आप न्यूज पेपर में, टी.वी. पर और अपने नगर-परिवार आदि में ऐसी घटनाएँ जब कभी सुनते-रहते होंगे। आप यह भी नहीं सोचें कि मात्र पुरुष के मन में ही वासना उत्पन्न होती होगी, नहीं, आपकी बेटी (स्त्रियों) के मन में भी वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। लेकिन वह (स्त्री) अपनी वासना को शमन करने के लिए किसी पुरुष के साथ बलात्कार नहीं कर सकती जबकि पुरुष अपनी वासनाओं को शान्त करने के लिए लड़कियों के साथ बलात्कार कर सकता है इसलिए स्त्री वर्ग को विशेष सावधान रहने की आवश्यकता होती है और फिर इस उम्र में तो सावधानी की अति आवश्यकता होती है क्योंकि भावुकता-नासमझी और वेग तीनों एक साथ चढ़ाव की ओर रहते हैं। इस समय में तो माँ के द्वारा दिये संस्कार ही जीवन को बरबाद होने से बचा सकते हैं।

सफर के समय

सफर करने के पहले ही आप अपनी बेटी को यह समझा दें कि ट-ेन-बस आदि में यदि कोई लड़का या पुरुष अपने पास बिठाने के लिए बिना पूछे कहता है या विशेष आग्रह करता है तो कभी नहीं बैठना, खड़े-खड़े ही चले जाना। क्योंकि ऐसा करने में अधिकतर पुरुष की भावनाएँ गलत रहती हैं। बातचीत, मनोरंजन, समय बिताने आदि के लिए पुरुष वर्ग से सम्पर्क नहीं जोड़ें। बात-बात में विशेष

प्रेम या चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर अपने घर का एड्रेस, फोन, फैक्स, मोहल्ला, मकान आदि का नम्बर नहीं बतावें। फोन आदि के नम्बर बता देने पर वह अनावश्यक आपको बार-बार फोन करके अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास कर सकता है। कभी अचानक आपके घर पहुँचकर कुछ गलत काम भी कर सकता है। किसी के कुचक्र में फँसकर कोरे कागज पर हस्ताक्षर नहीं करें। किसी के बहकावे में आकर फोटो नहीं खिचवावें और पापा-मम्मी सर्विस करते हैं या टूर आदि के निमित्त से कब बाहर रहते हैं, आदि नहीं बतावें। इसमें भी उपर्युक्त हानि हो सकती है।

यदि रात का सफर है तो अकेले नहीं जावें। दो-तीन मिलकर जावें, दो-तीन में से एक अवश्य जागता रहे और यदि मजबूरी में अकेले जाना पड़े तो किसी भी हालत में नहीं सोवें क्योंकि सोने के बाद नींद में कोई भी कुछ भी कर सकता है। यदि लेटना ही है तो ऊपर की बर्थ पर सावधानी से लेटें। ध्यान रखें यदि ठीक सामने की बर्थ पर कोई लड़का/पुरुष सोया है तो विशेष जागरूक रहें।

बस स्टेंड, रेलवे स्टेशन आदि पर अनेक प्रकार के आवारा, निकम्मे, वासनागृस्त लड़के/लोग फिरते रहते हैं जो गाड़ी से उतरते ही आपके सामने कुली के रूप में आकर खड़े हो सकते हैं, आपको विशेष सहयोग एवं सहानुभूति की भावनाएँ व्यक्त कर सकते हैं, आपके साथ छेड़-छाड़ कर सकते हैं अत: इन सबसे बचने के लिए, अपनी सुरक्षा के लिए पुरुष की दृष्टि पहचानने की क्षमता लड़की में होना अति आवश्यक है। आप बेटी को पुरुष की गलत या सही दृष्टि पहचानना सिखावें।

गलत दृष्टि वाले पुरुष को कैसे पहचानें

(१) जो बिना प्रयोजन/बुलावे स्त्रियों के बीच में आकर बैठना, हँसना, खाना, खेलना आदि पसंद करता हो।

(२) स्त्रियों/लड़कियों को घूर-घूर कर टकटकी लगाकर देखता हो और बार-बार गुप्त अंगों पर दृष्टि डालता रहता हो।

(३) घर की छत-दरवाजे पर मात्र पेंटी पहनकर घूमता/खड़ा रहता हो और घूमते हुए बार-बार हाथ से पेंटी छूता रहता हो।

(४) छत पर घूमते हुए अश्लील गाने सुनना/गाना, सीटी बजाना, टार्च मारना, आइने आदि से फोकस मारता हो।

(५) रास्ते में जाती हुई लड़की को देखकर ताली बजाना, कंकड फेंकना, चोटी-चुन्नी, समीज आदि खींच देना, टा-टा/बाय-बाय करता हो या चलते हुए किसी भी अंग को छू लेता हो।

(६) झाड़ी, पेड़-पौधे, दीवार, किवाड़ आदि के पीछे छुपकर देखता हो।

गलत दृष्टि वाले पुरुषों के इसी प्रकार के और भी लक्षणों को अपने अनुभव से समझना चाहिए।

दृष्टि पहचान कर शील बचाया

एक क्षत्राणी हमेशा एक कुए पर पानी भरने जाती थी। रास्ते में एक मनचले नवयुवक की दुकान थी। वह जब कभी लड़कियों/स्त्रियों को छेड़ता रहता था। एक दिन जब क्षत्राणी उसकी दुकान के आगे से निकली तो उसने ताली बजाकर उसको अपनी ओर आकर्षित किया। क्षत्राणी ने उसकी तरफ देखा और सोचा, किसी को कह रहा होगा, वह आगे बढ़ गई। दूसरे दिन भी जैसे ही क्षत्राणी वहाँ से निकली वह ताली बजा-बजाकर इशारेबाजी करने लगा। जब दो-चार दिन तक लगातार वह ऐसी हरकतें करता रहा तो क्षत्राणी समझ गयी कि इस युवक की दृष्टि अच्छी नहीं है। एक दिन उसने इस लड़के से कहा- ''अरे! रोज-रोज देखकर मटकता क्या है, आज रात को मेरे घर आना।'' युवक खुश होकर सोचने लगा, वास्तव में यह मुझे चाहती है, इसने मेरी भावनाओं को समझ लिया है। उसने पूछा- ''तुम्हारे पति कहाँ गये हैं ?'' क्षत्राणी ने कहा- ''किसी काम से बाहर गये हैं, कल तक आ पायेंगे।'' दोनों ने मिलने का समय निश्चित कर लिया। क्षत्राणी ने घर जाकर अपने पति को पूरी बात बताई और दोनों ने सलाह-मशविरा करके युवक को शिक्षा देने के लिए एक योजना बनाई। योजना के अनुसार पति घर से बाहर चला गया। युवक तैयार होकर रात होते ही क्षत्राणी के घर पहुंच गया। क्षत्राणी ने कहा- ''आप मेरे मेहमान हो, थोड़ा आराम कीजिए तब तक मैं भोजन तैयार करती हूँ।'' युवक पलंग पर लेटकर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करने लगा। क्षत्राणी ने भोजन तैयार करते-करते नौ बजा दिये। ठीक नौ बजे क्षत्रिय ने आकर दरवाजा खटखटाया और दरवाजा खोलने का इंतजार करने लगा। युवक क्षत्रिय की आवाज सुनकर घबरा गया। उसने घबराते हुए क्षत्राणी से पूछा ''कौन है ?'' क्षत्राणी ने कहा- ''घर के मालिक।'' युवक ने कहा- ''कैसे आ गये ? तुमने तो कहा था कि

आज नहीं आयेंगे।'' क्षत्राणी ने कहा- ''काम जल्दी पूरा हो गया होगा इसलिए आ गये।'' युवक क्षत्राणी से बोला- ''कृपया मुझे बचा लो, मैंने आज से तुम्हें बहिन बनाया। तुम मुझे किसी भी उपाय से छुपा लो। नहीं तो वह मुझे मार डालेगा। मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ, पैर पड़ता हूँ।'' आदि कहते हुए गिड़गिड़ाने लगा। क्षत्राणी ने कहा- ''तुम्हें बचाने का एक ही उपाय है कि तुम मेरी दासी के वस्त्र पहनकर चने दलने लगो। क्योंकि एक दासी मेरे यहाँ हमेशा घोड़े के लिए चने दलने आती है।'' युवक ने अपनी जान बचाने के लिए दासी के कपड़े पहनकर चने दलना प्रारम्भ किया। जब क्षत्राणी ने दरवाजा खोला तो क्षत्रिय ने यह कहते हुए कि ''यह क्या, तुमने इतनी देर से दरवाजा क्यों खोला?'' क्रोधित होकर क्षत्राणी पर झपटने लगा, तभी क्षत्राणी ने हाथ जोड़कर कहा- ''मैं क्या करूँ यह दासी आज देर से चने दलने आई, मैं चक्की की आवाज में आपकी आवाज नहीं सुन पाई इसलिए जल्दी दरवाजा नहीं खोला।'' क्षत्राणी का उत्तर सुनकर क्षत्रिय अपना गुस्सा उतारने के लिए दासी को पीटने लगा और अच्छी धुनाई कर उसने उसको घर से निकाल दिया। युवक ने उस दिन से संकल्प कर लिया ''अब मैं कभी किसी लड़की को नहीं छेड़ूँगा।'' इस प्रकार क्षत्राणी ने गलत पुरुष की दृष्टि पहचान कर युक्ति से अपने शील की रक्षा की। आप भी अपनी बेटी को पुरुष की दृष्टि पहचानना अवश्य सिखावें।

रिश्तेदारी में भेजते समय

आप अपनी बेटी को मामा, मौसी, बुआ आदि के यहाँ अपने साथ ले जावें या जब सभी पारिवारिक बेटियाँ मामा-बुआ के यहाँ आ रही हों तब भेजें ताकि उसका मन भी लग जावे और वे एक-दूसरे के साथ सुरक्षित भी रहें। यदि वहाँ अड़ोस-पड़ोस या घर का कोई पुरुष/लड़का चरित्रहीन चंचल और बेरोजगार है तो सतर्क करके भेजें, एक-दो दिन के लिए ही भेजें और सावधानी पूर्वक भेजें ताकि उनके साथ व्यवहार भी नहीं बिगड़े और सुरक्षा भी हो। क्योंकि रिश्तेदारी में कभी-कभी संकोचवश कुछ कह भी नहीं पाते हैं और कहे बिना काम भी नहीं चलता है इसलिए आप ऐसा मौका ही नहीं दें कि आपके आपसी सम्बन्धों में दरार पड़े।

अपने गाँव में भी रिश्तेदारों के यहाँ बराबरी के लड़के हैं तो बार-बार नहीं भेजें, अकेली नहीं भेजें। चाहे मौसी, बुआ घर में अकेली है, उसके सहयोग के लिए भी भेजने पर सम्बन्ध जुड़ता है क्योंकि मौसी आदि तो यह सोचकर कि भाई-

बहिन ही तो हैं एक तरफ काम करती रहती हैं और दूसरी तरफ क्या-क्या हो जाता है, कुछ नहीं कह सकते हैं। इसी प्रकार शादी में भेजते समय यह समझाकर भेजें कि चाहे दो-चार (मामा-बुआ आदि की) बहनें साथ भी हों, जीजाजी आदि के बहुत निकट नहीं बैठें, उनके साथ हँसी-मजाक आदि में रुचि-उत्साह नहीं दिखावें। क्योंकि विवाह के समय में विशेष रूप से वासनोत्पादक वातावरण रहता है। फिर व्यक्ति को ''दूसरे की थाली में घी ज्यादा ही नजर आता है'' इस उक्ति के अनुसार व्यक्ति का अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्रियों में विशेष आकर्षण रहता है अत: आप प्रमाद नहीं करें, बेटी के जीवन को बनाने का प्रयास करें।

होस्टल, मामा, मौसी आदि के यहाँ यदि आपकी बेटी पढ़ने के लिए रहती है तो आप दो-चार दिन में फोन लगाते रहें, एस.एम.एस कर दें एवं २०-२५ दिन में एक-आध पत्र लिख दें ताकि आपके पत्र-फोन आदि से लड़की को अपनत्व की अनुभूति हो कि मेरे मम्मी-पापा, भाई आदि मुझे बहुत चाहते हैं। मेरे बिना घर में कितना सूना-सूना लगता है। इस प्रकार के व्यवहार से उसे किसी और के साथ विशेष व्यवहार बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होगी, उसका शील हमेशा सुरक्षित रहेगा।

आप यह सोचकर कि बेटी की ससुराल में तो सास-ननद-बच्चे आदि से भरा परिवार है लेकिन वासना इन सब बातों से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। कुछ दिन पहले एक लड़की ने बताया- ''माताजी! मैं अपनी दीदी के यहाँ गयी थी। दीदी के तीनों बच्चे और मैं दोपहर में ऊपर सो रहे थे, नीचे जीजाजी की दुकान थी। दीदी किसी काम से सास के पास गई थी तभी जीजाजी आये और मेरे सीने पर इतना जोर से हाथ मारा कि मैं नींद में ही बहुत डर गई और आँख खोलकर देखा तो आश्चर्य चकित हो गई कि जो जीजाजी दीदी को एक दिन के लिए भी कहीं नहीं भेजते, जिनके तीन-तीन बच्चे हैं उनके मन में भी कैसा दुर्भाव उत्पन्न हो गया। इसी प्रकार लम्बे सफर आदि के समय भी भाई-चाचा आदि के माध्यम से कोई घटना हो सकती है। इसलिए बहुत सावधानी से काम करें। यदि अचानक बलात्कार का प्रसंग आ जावे तो कैसे रक्षा करें ?

शीलरक्षा के उपाय

(१) भागकर किसी दुकान या घर पर चली जावें।

(२) यदि आप कमरे में हैं तो जल्दी से बाहर आकर महिला वर्ग के पास

चली जावें।

(३) अंधेरे से उजाले की ओर आ जावें।

(४) सुनसान स्थान से भीड़ की तरफ भाग आवें।

(५) तत्काल गुप्त रूप से फोन आदि से किसी को बुला लें।

(६) कोई नहीं भी हो तो जोर-जोर से किसी के नाम से आवाज लगावें।

(७) चाबी और पर्स आदि दूर फेंक दे ताकि उसका उपयोग बदल जावे।

(८) लघु शंका, शौच, पुस्तक उठाना, सांकल लगाकर आती हूँ, आदि बहाना बनाकर भाग जावें।

(९) आश्वस्त करके धोखा दे दें।

(१०) पुरुष के लिङ्ग पर पैर या हाथ में कुछ चीज लेकर जोर से मारें, पुरुष वहीं बैठ जाएगा अर्थात् उसकी शक्ति समाप्त हो जायेगी।

आने-जाने में

एक ही गली से एक ही समय पर कई दिनों तक या दिन में कई बार निकलने से भी शील नष्ट होने की सम्भावना रहती है। सूनी गलियों में से स्कूल आदि जाने की आदत बहुत खतरनाक होती है और अधिकतर लड़कियाँ सूनी गलियों से जाना ज्यादा पसंद करती हैं क्योंकि एक तो गलियों का रास्ता शोर्ट (छोटा) होता है। दूसरी बात वहाँ भीड़भाड़ आदि भी नहीं रहती है सो जल्दी-जल्दी निकलने में सुविधा भी होती है लेकिन कहा भी है- ''दुर्घटना से देर भली'' अर्थात् चाहे लम्बे रास्ते से जाकर थोड़ी देर में पहुँच जावें, कोई विशेष नुकसान नहीं है लेकिन कहीं ये नहीं हो कि - ''चौबेजी छब्बेजी बनने गये तो दुब्बेजी ही रह गये'' अर्थात् जल्दी पहुँच कर ज्यादा एवं अधिक काम करने गये मगर अधिक काम तो नहीं हो पाया बल्कि जीवन के साथ एक ऐसी घटना घट गयी जो मरते दम तक भी चुभती रहे, जो न किसी से बताई जा सकती है और न ही भूली जा सकती है अत: सूनी गलियों से बार-बार नहीं जावें। कभी कहीं कोई लड़का छेड़छाड़ के मूड में दिखे तो रास्ता एवं समय बदल दें और यदि कोई छेड़छाड़कर दे तो अपनी तानाशाही दिखाना प्रारम्भ न कर दे बल्कि घर पर आकर शीघ्र ही बड़े भैया-चाचा आदि बड़े लोगों को स्पष्ट बता दें। आप किसी लड़के को धीरे से समझाने या कुछ भी जबाव देने का प्रयास न करें। अन्यथा लड़के का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा; आप ही बदनाम हो जायेंगी। लोग आपको ही कहेंगे कि जब लड़की को कोई मतलब

नहीं था तो वो क्यों बोली। वो बोली इसका मतलब उसके भी मन में कुछ-न-कुछ बात जरूर थी।

किसी लड़के (पुरुष वर्ग) से अधिक व्यवहार, उनसे मजाक करने की आदत, उनसे बोलने, उनके साथ बैठने, खाने-पीने आदि में रुचि लेना भी शील नष्ट करने की सामग्री जुटाना है और फिर यदि एकान्त की बात हो तो कहना ही क्या!

लड़कों से ज्यादा बोलने का फल

एक लड़की की पुरुष वर्ग से हँसी-मजाक करने की आदत थी। उसकी माँ ने उसे बहुत बार समझाया- बेटी! तुम लड़की हो, तुम्हें पुरुष वर्ग और उसमें भी अपनी बराबरी की उम्र वाले लड़कों से ज्यादा नहीं बोलना चाहिए। बोलना तो फिर भी ठीक है लेकिन हँसी-मजाक तो बिल्कुल नहीं करना चाहिए। लड़की नहीं मानी। एक दिन एक लड़का उसे घर में अकेली देख कर आ धमका। लड़की डर गयी परन्तु अब उसके हाथ में कुछ नहीं था। वह सोचने लगी- ''क्या किया जाय ? यदि शोर मचाया तो बदनामी हो जायेगी क्योंकि इसने दरवाजा अन्दर से बन्द कर रखा है।'' सोचते-सोचते उसके दिमाग में माँ की बातें याद आ गईं और उसको एक युक्ति भी सूझ गई। उसने युक्ति के अनुसार लड़के से कहा- ''तुम बैठो, मैं गरम-गरम भजिया बना कर लाती हूँ, पहले अपन दोनों गरम-गरम भजिया खायेंगे। उसके बाद आगे देखेंगे। लड़का आश्वस्त होकर कल्पनाओं में झूलता हुआ बैठ गया। लड़की ने भजिया बनाये और प्लेट में सजाकर एक हाथ में लिये और दूसरे हाथ में मुट्ठी भरकर लाल मिर्च लेकर लड़के के सामने पहुँची और प्लेट रखकर बोली- ''चलो, अपन दोनों भजिया खाते हैं।'' यह सुन लड़के ने जैसे ही लड़की को देखा, लड़की ने झट से दूसरे हाथ की मिर्ची लड़के की आँखों में फेंक दी। आँखों में मिर्ची गिरते ही लड़का तिलमिला गया। लड़की ने जल्दी अड़ोस-पड़ोस के लोगों को इकट्ठा कर लिया। लड़की ने अपनी बुद्धि से अपने शील की रक्षा कर ली। और उसी दिन से उसने लड़कों से बोलने का एक प्रकार से त्याग ही कर दिया।

कला एवं सफाई सिखावें

इसी उम्र में लड़की को जब थोड़ी-थोड़ी कलाएँ आने लगती हैं तो और

भी नयी-नयी कलाएँ सीखना, स्वेटर में नयी डिजाइनें डालना, कसीदाकारी और भोजन में भी नये-नये आइटम्स बनाने का शौक बढ़ जाता है अत: आप अपनी शक्ति के अनुसार उसे नया काम सिखाने में पूरा सहयोग करें। सप्ताह में एक-आध बार उसे कोई भी नया आइटम बनाना अवश्य सिखावें। हमेशा भी थोड़ा बहुत (परीक्षा के टाइम को छोड़कर) भोजन सम्बन्धी काम करवावें। इसके अतिरिक्त घर की सफाई, कपड़े धोना, घर के सामानों को यथास्थान रखना आदि कार्य भी सिखाते रहें ताकि समय पर आवश्यक वस्तुएँ सहज रूप से मिल जावें। बर्तन साफ करने, सफाई करने, सामानों को जमाने आदि में गलती करने पर यदि अनेक बार समझाने पर भी सही काम नहीं करती है तो फिर-फिर वही-वही काम करवावें। जैसे- बर्तनों में से जो बर्तन अच्छी तरह से साफ नहीं हुए हैं उन्हें छाँटकर उसी से साफ करावें, ऐसा करने से उसकी आदत ही अच्छी तरह बर्तन साफ करने की पड़ जायेगी। इसी प्रकार कपड़े धोने, शयन कक्ष, रसोई घर आदि की सफाई के विषय में करें। आप यह नहीं सोचें कि छोटी है, बड़ी होकर सब करने लग जायेगी, अरे जिन्दगी भर काम ही तो करना है, अभी तो आराम से रह लेने दो। आप लड़की को अवश्य आराम से, लाड़-प्यार से रखें लेकिन काम सिखावें अवश्य। क्योंकि इस उम्र में सीखा हुआ काम कभी भूला नहीं जाता। समय आने पर वह किसी के सहयोग बिना भी कर सकती है, स्वयं भी आपकी अनुपस्थिति में भोजन आदि की व्यवस्था बना लेगी और भविष्य में आपको भी किसी के उलाहने नहीं सुनने पड़ेंगे। इसका अर्थ यह भी नहीं कि आप बेटी की पढ़ाई-लिखाई का ख्याल नहीं रखें, अपितु विवेकपूर्वक कार्य करें।

अच्छी बहुओं की चर्चा करें

जब आपकी लड़की विवाह के योग्य हो जावे अर्थात् इसी उम्र में आप बेटी के सामने समाज, रिश्तेदार और अड़ोस-पड़ोस में आने वाली अच्छी बहुओं की चर्चा अवश्य करें। समाज के अड़ोस-पड़ोस के लोग उसको किस दृष्टि से देखते हैं, किस-किस प्रकार प्रशंसा करते हैं, उसको अपनी समाज का गौरव मानते हुए अच्छे कार्यक्रमों में उसकी उपस्थिति एवं सहयोग की कितनी अपेक्षा रखते हैं, उसे कितने सम्मान की दृष्टि से देखते हैं तथा सामाजिक कार्यों में उसकी सलाह की कितनी आवश्यकता समझते हैं, इन सब बातों को आप बेटी के सामने करते रहें। जैसे – उस घर की लड़की कह रही थी कि जब से हमारी भाभी आई है घर में एक

चमक ही आ गई है, घर साफ-सुथरा एवं व्यवस्थित दिखने लगा है। कोई भैय्या कह रहा था जब से भाभी आई तब से ढंग का और समय पर भोजन आदि मिलने लग गया है, मम्मी भी अच्छा बनाती है लेकिन भाभी तो बहुत अच्छा बनाती है। वो दादी कह रही थी मेरे तो जब से बहू आई है मैं तो बिल्कुल फ्री हो गई हूँ, वह मुझे कुछ काम करने ही नहीं देती है, बहू क्या है मेरे तो बेटी से भी अच्छी है। मेरे भोजन के पहले तो वह कभी खा ही नहीं सकती है फिर भी मैं दो-चार बार कह दूँ तो टालती भी नहीं है। मैंने तो कभी सोचा ही नहीं था कि मैं भी घर का शुद्ध भोजन कर पाऊँगी, हमारे घर में भी कभी धर्म का वातावरण होगा लेकिन बहू के आने के बाद उसे देख-देखकर घर के सभी लोग थोड़ा-थोड़ा धर्म भी करने ही लगे हैं। कपड़े भी धोती है तो बिल्कुल साफ, कहीं गन्दे नहीं और साबुन भी मुझे तो रोज एक बट्टी लगती थी लेकिन वह तो दो बट्टी में ही तीन दिन के कपड़े धो लेती है, सच में वह साबुन लगाती ही इस ढंग से है कि कपड़े जहाँ गन्दे हों जैसे- कालर, घुटने, सिर आदि के स्थान पर साबुन लगाकर ब्रूश कर देती है बाकी तो उसके साथ अपने-आप साफ हो जाते हैं। पहले तो जब भी चाट-पकौड़ी की याद आती थी तो मैं भी होटल तथा ठेला देखती थी लेकिन जब से बहू आई है मैं तो क्या मेरे बच्चे तक होटल/रेस्टोरेंट में जाना पसन्द नहीं करते हैं। क्योंकि किसी भी चीज का नाम लेते ही जल्दी से स्वादिष्ट चीज बनाकर रख देती है। होटल में जाते थे तो एक सदस्य का जितना खर्चा लगता था उतने में वह सबको (दो-तीन को) एक-एक कचौड़ी खिला देती है, बिल्कुल आलसी नहीं है। अरे, मेरे तो इतने अच्छे घर की बहू आई है कि उसके आने के बाद तो हमें पापड़, नमक, मिर्च-मसाला, अचार-मुरब्बा आदि कुछ भी बाजार से नहीं मंगवाना पड़ता है। पैसा भी बच गया, खाना भी नहीं छूटा और शुद्ध खाने को मिलने लगा अर्थात् सस्ता, सुन्दर और टिकाऊ (शुद्ध) वाली कहावत सिद्ध हो गई और पाप से भी बच गये। यह सब तो ठीक है इसके साथ-साथ विवेक पूर्वक कार्य करने से घर की आर्थिक व्यवस्था भी संतुलित हो गयी है। अब पैसों के बारे में बार-बार नहीं सोचना पड़ता है।

दो लड़कियाँ कह रही थीं, ''माताजी! हमें तो वैसी भाभी चाहिए। उसकी भाभी बहुत अच्छी है, अभी शादी हुए दो साल भी पूरे नहीं हुए हैं कि अच्छे-अच्छे (बड़े-बड़े) लोग भी उसकी प्रशंसा करते हैं, करेंगे क्यों नहीं वह है ही इतनी अच्छी। उसका व्यवहार ही इतना अच्छा है कि बूढ़ी महिलाएँ तक उससे बोलना

चाहती हैं, उस पर बहुत विश्वास करती हैं।''

बहू आई, बहार आई

एक परिवार में तीन बहुएँ थीं। तीनों ही बड़े घर की थीं और बहुत आधुनिक थीं। तीनों में रोज काम को लेकर झगड़ा होता रहता था। कोई काम करना नहीं चाहती थी। रोज लड़ाई का माहौल बना रहता था। वे नौ बजे सोकर उठती थीं। भोजन-पानी, चाय-नाश्ते आदि की व्यवस्था होटल से हो जाती थी। जब चौथी बहू आई तो उसने यह नजारा देखा। उसने सोचा, मुझे ऐसा नहीं करना है, मुझे अपने माता-पिता के द्वारा दिये गये संस्कारों को नहीं भूलना है। उसने विवाह के कुछ दिन बाद ही बर्तन, झाडू-पोंछा वाली को आने के लिए मना कर दिया और रसोई घर को व्यवस्थित करना प्रारम्भ किया। भोजन सम्बन्धी सामग्री जो यत्र-तत्र बिखरी पड़ी रहती थी, उसको यथास्थान रखा। कोई बर्तन गन्दे हो रहे थे, किन्हीं में धूल जम रही थी। किसी के तो कोने-किनारों में जूठन ही चिपक रही थी तो कुछ बर्तन जूठे ही रखे थे। उन सबको अच्छी तरह से साफ किया। गैस चूल्हा, टंकी, सिगड़ी आदि को भी साफ करके भोजन सम्बन्धी सामग्री जो कम थी उसको अपने पति से कहकर मंगवाया और दूसरे दिन होटल वाले को भी चाय-भोजन आदि लाने के लिए मना कर दिया। वह प्रात:काल जल्दी उठी और चाय-दूध-नाश्ता तैयार करके रुचि के अनुसार चाय-दूध का कप/ग्लास और नाश्ते की प्लेटें तीनों बहुओं के कमरे में दे आई तथा मम्मी-पापा को दूध-नाश्ते के लिए बुलाकर लाई। उसने सास-ससुर और पति को एक साथ दूध-नाश्ता देकर स्वयं ने भी दूध पीकर नाश्ता किया। नाश्ता करके वह भोजन की तैयारी में लग गई। पहले उसने ऑफिस और स्कूल जाने वालों को टिफिन तैयार करके दिये। फिर शेष भोजन बनाकर सभी बहुओं (जिठानियों) तथा मम्मी-पापा को भोजन के लिए बुलाने गई। मम्मी-पापा तो सहज रूप से भोजन करने आ गये लेकिन जिठानियाँ नाक-मुँह सिकोड़ने लगीं। छोटी बहू के बहुत अनुनय-विनय के कारण उनको भोजन करने आना ही पड़ा। जब भाई लोगों ने भोजन किया तो उन्हें भोजन में कुछ अलग ही स्वाद आने लगा। उन्होंने पूछा- ''क्या आज किसी दूसरी होटल से भोजन आया है? आज भोजन में अलग ही स्वाद क्यों आ रहा है ?'' तब माँ ने कहा- ''बेटा! आज छोटी बहू ने अपने हाथ से भोजन बनाया है।'' सभी भाई यह सुनकर बहुत खुश हुए। वे अपनी पत्नियों के सामने छोटी बहू की प्रशंसा करने लगे। दो-तीन दिन तो पत्नियाँ पति के

मुख से छोटी बहू की प्रशंसा सुनकर कुढ़ती रहीं। लेकिन उसके बाद उन्हें भी घर के भोजन का कुछ विशेष स्वाद आने लगा। तीनों बहुएँ बहुत खुश थीं क्योंकि कुछ काम भी नहीं करना पड़ता था और चाय-नाश्ता, भोजन आदि सभी चीजें समय पर मिल जाती थीं। उसके बाद उसने पूरे घर की अच्छी तरह से सफाई की। इधर-उधर बिखरी वस्तुओं को अच्छी तरह से जमाया। बिस्तरों में जो गंदे हो रहे थे उनको धोया, जिनमें धूल भरी थी उनको फटकार कर साफ किया और जिन पर गिलाफ (खोल/कवर) नहीं थे उनके गिलाफ मंगवाये। इस प्रकार कुछ सप्ताह में ही नौकरों का आना बन्द हो गया। घर, घर जैसा दिखने लगा। नौकरों के बिना घर को और अधिक साफ-सुथरा व्यवस्थित ढंग से जमा हुआ देखकर मोहल्ले में उसकी चर्चा होने लगी। हर व्यक्ति उसकी प्रशंसा करने लगा। महिलाएँ मिलने के बहाने घर देखने आने लगीं। अड़ोस-पड़ोस वालों के मुख से छोटी बहू की प्रशंसा सुनकर बड़ी बहुओं के मुख में पानी आने लगा। वे भी धीरे-धीरे जल्दी उठने लगीं, घर के कार्यों में हाथ बँटाने लगीं तथा समय निकाल कर थोड़ा-थोड़ा धार्मिक कार्यों में भी भाग लेने लगीं। इस प्रकार एक बहू की कार्यकुशलता और माता-पिता के द्वारा दिये गये संस्कारों ने एक परिवार को पतन के गर्त में गिरने से बचा कर समाज में प्रतिष्ठित और अगृणी बना दिया, पूरे परिवार का जीवन उन्नत हो गया।

खराब बहुओं की चर्चा करें

आप बेटी के सामने समाज की खराब बहुओं की बातें भी अवश्य करती रहें। जैसे– उनके तो ऐसी बहू आई है कि घर में तहलका ही मच गया है। पूरे दिन किच-किच होती रहती है। प्रात: सात-आठ बजे तक तो सोती ही रहती है। बेचारी सास अकेली पूरे दिन काम करती रहती है। कितने सपने सँजोये होंगे उस माँ ने, बेटे की शादी के पहले। सब सपनों पर पानी फिर गया। देखो, एक दिन सास उठकर झाडू लगा रही थी, बहू सो रही थी। बेटे ने माँ को झाडू लगाते देख (यह सोचकर कि मैं झाडू लगाने लगूंगा तो शायद पत्नी झाडू लगाने लगेगी) माँ के हाथ से झाडू लेने लगा, माँ ने मना कर दिया। लेकिन लड़का नहीं माना। माँ-बेटे दोनों एक-दूसरे से झाडू छीन रहे थे। छीना-झपटी की आवाज सुनकर बहू की नींद खुल गई। वह उठकर बाहर आई और बोली- क्यों परेशान होते हैं? आधे-आधे स्थान में दोनों ही झाडू लगा लो। बस, ऐसी बहू आ जावे तो हो गया कल्याण। इसकी अपेक्षा तो बहू नहीं आती तो अच्छा था। उनकी बहू तो आकर लिपिस्टिक, नेल

पॉलिस आदि सौन्दर्य प्रसाधनों में ही इतना खर्च करती है कि पैसों के लिए पति को तो घानी का बैल ही बनना पड़ रहा है, बेचारा अभी से कर्जदार बन गया है। कैसे पूरी जिन्दगी निकालेगा? बस, जब देखो, तैयार ही होती रहती है। घर वालों को देखने की तो फुर्सत ही नहीं है। तैयार होकर जहाँ से निकल जावे लोग फबतियाँ (व्यंग्य) कस-कसकर मजाक उड़ाते हैं और कई लड़के तो छेड़े बिना भी नहीं रहते। ऐसे शृंगार से भी क्या? जिससे घर भी लुट गया और शील भी। तथा न परिवार में सम्मान मिला और न समाज में। तैयार तो इतनी होती है और भोजन बनाने बिठा दो तो कोई रोटी जल गयी तो कोई कच्ची ही रह गयी। कोई भारत का नक्शा ही बन गयी तो कोई न हाथ से टूटती, न सब्जी में ही गलती है और मुँह में ले लो तो दाँतों का व्यायाम हो जावे। कभी सब्जी में नमक डालना भूल गई तो कभी इतना डाल दिया आदि.....। इस प्रकार की बातों को सुन-सुनकर लड़की के मन में ऐसे अविवेकपूर्ण कार्य न करके अच्छे काम करने की धारणा बने और भविष्य में एक अच्छी बहू बनने के लिए अपना मानस तैयार कर ले।

ससुराल जाने के पहले लड़की ध्यान दे

ससुराल जाने के पहले आप (लड़की) यह जानकारी अवश्य ले लें कि आप जिसको अपना जीवनसाथी बनाने जा रही हैं उसका एवं जिनके साथ पूरे दिन तुम्हें रहना हो उन भाभी, माँ, बहिन आदि का स्वभाव/व्यवहार कैसा है ताकि आप भी अपने जीवन को उस रूप में ढालना प्रारम्भ कर सकें। अमेरिका की एक लड़की, जिसका विवाह पक्का हो चुका था, वह ८-१५ दिन में एक बार अपनी ससुराल चली आती थी। एक दिन उसकी सास ने उसे लड़के के साथ घूम आने के लिए कहा तो उसने कहा- ''मम्मी जी! मैं उनसे (पति से) मिलने नहीं आती हूँ, मैं आपकी पसंद, नेचर, व्यवहार को देखने आती हूँ ताकि मैं अपना नेचर वैसा बना लूँ क्योंकि उनकी अपेक्षा मुझे आपके साथ ज्यादा समय रहना है और मैं यह नहीं चाहती कि मेरे कारण आपको किसी प्रकार का कष्ट हो।'' यह सुनकर सास गद्‌गद हो गई। उसने भी बहू के साथ बेटी जैसा प्रेम बनाने की धारणा बना ली। सास हमेशा एक-दो फोन तो मात्र अपनी बहू के मुँह से प्यार भरा 'मम्मीजी' शब्द सुनने के लिए करती थी और लड़की ने भी माँ (सास) के माध्यम से पति के स्वभाव एवं पसन्द को जानकर अपने नेचर को परिवर्तित करके अपना जीवन सुखी बना लिया।

पति के नेचर को समझते समय यदि पति के नेचर में अच्छाई है अर्थात् वह धर्मात्मा है, होटल में खाना, पिक्चर हॉल में जाना, अभक्ष्य वस्तुओं का खाना, अधिक सौन्दर्य प्रसाधन, नेल पॉलिस, लिपिस्टिक, पाउडर आदि पसन्द नहीं करता है सत्संगति में उसका बहुत मन लगता है, शास्त्र (धार्मिक गून्थ) पठन, माला, जाप्य, प्रभु भजन आदि में तत्पर रहता है तो आप अपनी शादी निश्चित होते ही उसी रूप में जीने की आदत डालना प्रारम्भ कर दें। आप अपनी यह धारणा बना लें कि मुझे भी इन सब अच्छाइयों में अपने पति की सहधर्मिणी बनकर रहना है, उनकी पसन्द ही मेरी पसन्द होगी तो मैं मनुष्यभव में भी स्वर्ग के सुख भोग सकती हूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि पति अपव्ययी है, कमाता कम है गमाता ज्यादा है, जवानी के नशे में उसे यह भी भान नहीं है कि मुझे किस स्थान पर कितना खर्च करना चाहिए। क्या, कहाँ और कितना खाना चाहिए। किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए आदि खोटी आदतों से गृसित है, अपने माता-पिता को कुछ गिनता ही नहीं है, उद्दण्ड है, धर्म-पुण्य के नाम से ही चिढ़ता है और इस मत वाला है कि जो मिले जैसा मिले, जहाँ मिले, जिसके हाथ का मिले, खा लो क्योंकि स्वर्ग-नरक किसने देखा है। नरकों में ऐसे-ऐसे दुःख हैं, आदि बताना तो मात्र डराने की बातें हैं। स्वर्ग का सुख तो इच्छा अनुसार भोग भोगने में ही है तो आप भी उस रूप में ढलने का अपना नेचर बनाने लगें, नहीं, ऐसा नहीं करें बल्कि आप यह विचार करें कि उनकी ऐसी गन्दी आदतों को किस प्रकार सुधारना है, उनके साथ कैसा व्यवहार करना कि ''साँप भी न मरे और लाठी भी नहीं टूटे'' अर्थात् पति के साथ व्यवहार में कड़वाहट भी न आवे और वे सुधर भी जावें।

पहली बात तो यदि आपकी शादी पक्की होने के पहले यह जानकारी मिल चुकी है तो आप अपने माता-पिता/संरक्षकों से परिस्थिति बताकर उससे शादी करने के लिए मना कर सकती हैं/मना करवा सकती हैं। मना करने के बाद भी यदि आपको उसी लड़के के साथ शादी करनी पड़ रही है या आपको शादी के बाद यह पता चला है कि आपका पति नशीली वस्तुओं का उपयोग करता है तो उन खोटी आदतों को छुड़ाने के लिए कुछ उपाय हैं वे करें। (उनकी चर्चा 'यौवनावस्था के संस्कार' में करेंगे)

देखें- खोटी आदतें कैसे सुधारें।

इसी प्रकार ननद, जेठानी आदि के नेचर को भी जानकर अपना व्यवहार

बनावें ताकि आपको उस घर में कभी परायेपन की अनुभूति न हो।

– माता-पिता ध्यान दें –

विवाह किससे

विवाह-सम्बन्ध आप हमेशा बराबरी वालों के साथ करें क्योंकि आर्थिक दृष्टि से यदि लड़की वाले मजबूत हैं तो लड़की ससुराल में अपने पीहर के गीत गा-गाकर अर्थात् प्रशंसा करके और पीहर से प्राप्त सम्पत्ति को आधार बनाकर पति आदि को दबाती रहेगी। फलत: घर की शांति भंग हो जायेगी। कभी-कभी तो पैसे वालों की लड़की अपने पति को घर-बार, गाँव, माता-पिता आदि से छुड़ाकर अपने पीहर में, पीहर के गाँव में ला कर बसा देती है। लड़के को मजबूरी में अपना गाँव छोड़ना ही पड़ता है और यदि लड़की वाले कमजोर हैं तो लड़की अधिक सम्पत्ति को देखकर रिश्तेदारी, व्यवहार, गरीबों की सहायता आदि दान के समय में कृपणता दिखाने लगेगी क्योंकि उसने अपने पीहर में इतना खर्च करते हुए कभी देखा नहीं था। एक गरीब परिवार की लड़की ने अपने ससुर को बीमारी के कारण अधिक फल खाते देखकर कह दिया क्या पापाजी दो रोटी नहीं खा सकते हैं जो......? ऐसे ही एक धनाढ्य परिवार ने यह सोचकर कि गरीब की लड़की लाने से अच्छा रहता है, बेचारी सुखी रहेगी, गरीब की लड़की से अपने बेटे की शादी करवा दी। शादी होने के कुछ दिन बाद ही बहू कहने लगी, ''वॉसिंग मशीन लाओ, मैं हाथों से कपड़े नहीं धो सकती'' जबकि उसके गाँव में पानी की बहुत कमी थी। कभी-कभी तो पीने के पानी की भी दुर्लभता हो जाती थी। कुछ दिनों के बाद कहने लगी, ''मेरे ब्लाउज शहर में सिलवा कर लाओ।'' जो लड़की पीहर में ब्लाउज सिल-सिलकर घर का काम चलाती थी वह पैसा देखकर इतनी फैल गई। या वह इतना धन देखकर यद्वा-तद्वा खर्च करके नष्ट कर देगी। इसी प्रकार रूप, स्वास्थ्य, कद, आचार-विचार, कुल-जाति आदि भी जहाँ योग्य अनुकूल हों वहीं/उन्हीं से विवाह-सम्बन्ध जोड़ें। ऐसा नहीं होने पर पति-पत्नी का जीवन तो दुखमय बन ही जाता है साथ-साथ पारिवारिक लोगों का जीवन भी दु:खमय बन जाता है। क्योंकि लोक में इन (आयु आदि) की प्रतिकूलता हँसी का कारण होती है। जैसे- यदि आयु में बहुत अन्तर है तो बूढ़े का विवाह बच्ची या बूढ़ी का विवाह बच्चे से हुआ है। यदि हाइट में बहुत अन्तर है तो ''ऊँट-बलद की जोड़ी'' है; यदि रंग में ज्यादा अन्तर है तो ब्लेक एण्ड वाइट है, आदि फबतियाँ (व्यंग्य) कभी-

कभी मरने तक के लिए मजबूर कर देती हैं अथवा अपने कुल आदि का ध्यान नहीं रखने पर सामाजिक व्यवस्थाएँ डगमगाने लगती हैं। धर्मद्रोह उत्पन्न होता है, सामाजिक तिरस्कार सहन करने पड़ते हैं। तत्काल में तो फिर भी अच्छा लगता है लेकिन वृद्धावस्था में जब उसका फल सामने आता है, जब व्यक्ति को धर्म की सुध आती है, अगले भव में भी साथ ले जाने के लिए वह कुछ करना चाहता है लेकिन सामाजिक व्यवस्थाओं के कारण कुछ कर नहीं पाता है तब पश्चाताप के अलावा और कुछ नहीं मिलता है। जाति-कुल का ध्यान नहीं रखने से कभी धर्म को लेकर भी पति-पत्नी में आक्रोश, मनमुटाव पैदा हो सकता है। दोनों मध्यस्थ रहें। एक-दूसरे को मजबूर नहीं करें तो फिर भी ठीक है लेकिन यदि कोई एक भी अड़ गया तो गृहस्थी टूट सकती है। कई समाजों में तो कुल-जाति की व्यवस्था के उल्लंघन का दण्ड पीढ़ियों तक चलता रहता है जो आगे की निर्दोष पीढ़ी के लिए भी तब असह्य दु:ख का कारण बनता है जब वह धार्मिक क्षेत्र में बहुत कुछ करने की इच्छा एवं क्षमता रखते हुए भी सामाजिक व्यवस्थाओं के कारण कुछ नहीं कर पाता है। अत: सामाजिक व्यवस्थाओं का ध्यान रख कर वैवाहिक कार्य करने चाहिए। कुल आदि का ध्यान नहीं रखने से लड़की को ससुराल में अनेक प्रकार के ताने सुनने पड़ते हैं, जैसे-

(१) क्या करें, तेरे पिताजी को लड़का मिल नहीं रहा था जो हमारे.....।

(२) यदि लड़के-लड़की के प्रेम के कारण नीच कुल में विवाह कर दिया है तो अरे, तुम्हारा कितना अच्छा सुखप्रद कुल और धर्म था, उसको छोड़कर यहाँ आई हो, यहाँ क्या सुख मिल सकता है ?

(३) किये हैं अपने हाथों से ये काम (शादी) तो फल भी भोगो। इसमें हम क्या करें ?

(४) अरे, इतने अच्छे भरे-पूरे परिवार को छोड़कर यहाँ आई हो, मम्मी-पापा से मिलने तक के भी लाले पड़ गये।

(५) क्या, तुम्हारी अपनी समाज में कोई लड़का नहीं बचा था जो मेरे बेटे के साथ तुमने लव (प्रेम) किया है।

जब बेटा बड़ा दिखने लगे

लोक में लड़के को घर की एक महत्त्वपूर्ण संतान माना जाता है क्योंकि लड़के के माध्यम से कुलपरम्परा वृद्धि को प्राप्त होती है। यद्यपि संतान के रूप में लड़का एवं लड़की में कोई अंतर नहीं है। लड़का कुलपरम्परा चलाता है तो लड़की

भैया को रक्षाबन्धन, भाईदूज आदि पर रक्षासूत्र बाँधकर संतुष्ट प्रसन्न करने वाली प्रेम-वात्सल्य की परम्परा चलाती है। बेटा धन-सम्पत्ति कमाता है और पिता की धन-सम्पत्ति का अधिकारी होता है तो बेटी घर की लक्ष्मी मंगलमय मानी जाती है। वह माता-पिता के दिल की बात को, दु:ख-दर्द को जितना समझ सकती है उतना शायद बेटा नहीं समझ/सुन सकता है। बेटा हो या बेटी माता-पिता दोनों को समान रूप से अपने-अपने योग्य संस्कारों से संस्कारित करें। एक बेटे को संस्कारित करने से एक परिवार सुखी होता है और एक बेटी को संस्कारित करने से उसका परिवार तथा आगे आने वाली पीढ़ी-दरपीढ़ी संस्कारित होती है। दोनों कुल उज्ज्वल होते हैं इसलिए पूर्व में बेटी को संस्कारित करने की बात कही गई थी, अब लड़के को संस्कारित करने की बात कही जाती है।

बेटे से भी सलाह लें

जब आपका बेटा १२-१३ वर्ष का हो जावे तब ऐसे कार्यों में जिनके बारे में वह समझता है और जिसको करने की इच्छा आपकी भी है, जिनमें उसकी बात मानी भी जा सकती है, सलाह अवश्य लें। ऐसे कार्यों में सलाह लेकर मान लेने से उसके मन में आपके (माता-पिता) प्रति आदर-सत्कार, सम्मान एवं विश्वास उत्पन्न होता है तथा कार्य करने की क्षमता बढ़ती है और किस प्रकार के कार्य को किस समय, किस विधि से करने में क्या-क्या लाभ-हानि होती है, आदि समझने की विचारशक्ति उत्पन्न होने लगती है। जैसे- कपड़े खरीदते समय उसको पसन्द कराना, त्यौहार के समय मिठाई आदि बनाने के बारे में, बाजार से सब्जी-फल आदि खरीदते समय और छोटे भाई-बहिनों के लिए खिलौने आदि लेते समय उसकी इच्छा का ध्यान अवश्य रखें। ''मैं बड़ा कब हो गया'' शीर्षक में काका साहब कालेलकर 'स्मरणयात्रा' में लिखते हैं कि ''जब मैं चौदह वर्ष का था तब किसी को रुपया उधार देने के सम्बन्ध में पिताजी ने मेरा अभिप्राय पूछा। मैं आश्चर्यचकित हो गया। रुपया उधार देने जैसे महत्त्वपूर्ण मामले में पिताजी मेरी सलाह किसी समय लेंगे, मुझे कल्पना भी न थी, मेरे मन में विचार आया कि अब मैं बड़ा हो गया हूँ क्योंकि कौटुम्बिक राज्य में मुझे मत (वोट) देने का अधिकार मिला है।''

१६-१७ वर्ष की उमॄ के बेटे को आप छोटा न समझें। अब आप उससे घर-व्यापार आदि में पूरी-पूरी सलाह लें। क्योंकि कहा भी है- यदि पिताजी का

जूता बेटे के पैर में आने लगे तो बेटे को बच्चा न समझकर बराबरी का या मित्र के समान समझकर व्यवहार करें। इस उमॄ में बेटे के मन में अपने मान-सम्मान की इच्छाएँ जागृत होने लगती हैं। वह मान-सम्मान को समझने लगता है इसलिए आप उसकी भावनाओं का पूरा खयाल रखें। आप अपनी बेटी की शादी के विषय में लड़का, लड़के के परिवार आदि को देखने के लिए पहले बेटे को भेजें /पूछें। क्योंकि आपकी अपेक्षा आपका बेटा लड़के के अन्दर की बात समझने में ज्यादा समर्थ होगा। वह उनके मित्र अड़ोस-पड़ोस आदि से उनके बारे में गुप्त रूप से अच्छी तरह जानकारी ले सकता है। नहीं पूछने पर उसको ऐसा लगेगा कि मम्मी-पापा मुझे अभी बच्चा समझते हैं तो फिर मुझे कोई भी कार्य जिम्मेदारी से करने की क्या आवश्यकता है? इस प्रकार की विचारधारा बन जाने से वह व्यापार-व्यवसाय, लौकिक व्यवहार एवं मानसिक विकास के क्षेत्र में पिछड़ जायेगा। वह अपने आप में हीन भावनाओं से गृसित हो जायेगा और फल यह होगा कि उसके जीवन-विकास का कृम समाप्त हो जायेगा।

आप अपने बेटे को ११वीं कक्षा में विषयों का चुनाव करने में स्वतंत्रता दें। हाँ, वह अच्छा विषय नहीं चुन रहा है तो अच्छे विषय की विशेषता, उसमें होने वाले फल आदि बताकर समझावें, मित्र आदि से विषय की ओर प्रेरित करावें लेकिन मजबूर नहीं करें। मजबूर करने से वह उस विषय को अच्छी तरह पढ़ नहीं पायेगा और यदि पढ़ भी गया तो उसके मन में यही लगता रहेगा कि पापा/मम्मी के कारण आज मैं इंजीनियर ही हूँ, नहीं तो बहुत बड़ा डॉक्टर होता, सी.ए. होता, कलेक्टर होता, आदि....। भले ही उसमें उतना करने की क्षमता नहीं थी फिर भी व्यक्ति के अरमान बहुत बड़े-बड़े होते हैं। यदि उसकी व्यापार में रुचि है तो बहुत दबाव नहीं डालें। फिर भी बी.ए., एम.ए. तो पढ़ावें ही, अन्यथा यदि पत्नी पढ़ी-लिखी आ गई तो फिर वह जीवन भर अपने आप को हीन समझने लगेगा।

यदि बेटा बड़ों की बात के बीच में बिना पूछे भी कोई सलाह दे देता है अर्थात् कुछ कहता है तो उसे एकदम नहीं नकारें अपितु ध्यान दें, हो सकता है उसकी बात भी कुछ काम की हो। बड़ों के बीच में बिना पूछे बोलना अच्छी बात नहीं है, यह उसे पीछे से समझाते रहें, लेकिन यह सोचकर कि बच्चा है, क्या समझता है, बात नकारें नहीं, सबके बीच में डाँटे नहीं, ऐसा करने से उसकी बुद्धि का विकास रुक जाता है, उसका मन खराब हो जाता है, उसके मन में यह खोटी

धारणा बन जाती है कि मेरे में कुछ भी बुद्धि नहीं है इसलिए तो मेरी बात पर कोई ध्यान नहीं देता है।

बेटे को भी भोजन बनाना सिखावें

आप अपने बेटे को दाल-चावल, रोटी-सब्जी, खिचड़ी-बाटी चीजें बनाना, पानी छानना, झाड़ू लगाना आदि रसोईघर के मुख्य कार्य तो अवश्य सिखावें। क्योंकि लड़कों को भी कभी-कभी इन कार्यों को करने की आवश्यकता पड़ ही जाती है। लड़के को सामान्य रूप से भी भोजन बनाना आता है तो उससे होने वाले लाभ-

(१) बेटा कहीं बाहर पढ़ने के लिए गया और वहाँ होस्टल में भोजन अच्छा नहीं मिलता है या होस्टल में व्यवस्था नहीं है तो उसे हमेशा-हमेशा होटल/ढाबे का भोजन करके अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ नहीं करना पड़ेगा। क्योंकि होटल आदि के भोजन की शुद्धि और स्वच्छता के बारे में आप स्वयं जानते ही होंगे।

(२) आपके बेटे को माँ/पत्नी के तीन दिन की अशुद्धि के समय में प्रतिमाह तीन दिन के भोजन की तकलीफ नहीं पड़ेगी अर्थात् उन दिनों में दूसरे का मुँह नहीं देखना पड़ेगा या होटल आदि का खाकर पाप में नहीं डूबना पड़ेगा।

(३) मान लिया कभी पत्नी को रिश्तेदार आदि की सेवा के लिए जाना पड़ा तो पति को 'कब आयेगी, कब आयेगी', आदि और पत्नी को 'उनके लिए भोजन कौन बनायेगा, उन्हें तकलीफ पड़ रही होगी' आदि ज्यादा विकल्प नहीं करने पड़ेंगे।

(४) पत्नी को यदि पीहर या किसी रिश्तेदार के यहाँ शादी आदि कार्यक्रमों में समय देना पड़ा तो आप सहज रूप से अपना भोजन बनाकर खा लेंगे।

(५) यदि कर्म के उदय से आधी उम्र में पत्नी का वियोग हो गया और बहू आदि ने सहयोग नहीं दिया तो भी आपको बार-बार टेन्शन नहीं करना पड़ेगा या होटल का खाकर बुढ़ापे में भी भ्रष्ट नहीं होना पड़ेगा।

खोटी आदत की तरफ ध्यान दें

इस उम्र में आपका बेटा पाउच, गुटखा खाना, बीड़ी-सिगरेट पीना सीखने लगता है। जैसे ही प्रथम दिन बेटा पाउच गुटखा खावे तो आप गौरव का अनुभव नहीं करें कि मेरे बेटे के होठ कितने अच्छे लग रहे हैं, मेरा बेटा भी स्टेंडर्ड में आ गया है, मेरा बेटा हीरो लगने लगा है। यह भी अच्छे सेठ-साहूकार एवं ऊँचे आफिसरों के समान जगह-जगह थूकता है, आदि....। लेकिन ऐसा करना अच्छा नहीं है। आप ऐसी कल्पनाओं में नहीं बहें। आप गुटखा शब्द का अर्थ समझें। **अर्थ-** गु-छी-छी, ट-टट्टी, खा-खाओ अर्थात् गुटखा खाने का अर्थ गु/टट्टी खाना होता है, वह आपका बेटा खाता है तो क्या यह कोई खूब अच्छी बात है ? जो आप उसको अच्छा मान रहे हैं। गुटखा आदि में छिपकली आदि जीवों के कलेवर भी डाले जाते हैं, ये मांसाहार होने से हमारे कुल को भी कलंकित करने वाले हैं। अत: आप पहली बार में ही साम, दाम, दण्ड से; प्रेम से, दुर्गुण समझाकर, डाँट-फटकार कर, डरा-धमका कर इस खोटी आदत को छुड़वा ही दें, नहीं तो भविष्य में हो सकता है आपको अपनी आँखों से ही बेटे की शवयात्रा देखनी पड़े।

इसी उम्र में आपका बेटा शराब पीना सीख सकता है, पीकर आपके घर आ सकता है, आप जान ही नहीं पायेंगे कि आपके बेटे ने शराब पी है। आपको यदि कोई कहेगा तो आप विश्वास भी नहीं करेंगे कि आपका बेटा ऐसा भी हो सकता है। कुछ दिन पहले एक लड़का प्रायश्चित्त लेने आया। उसने कहा- ''माताजी! मुझे शराब पीने, लड़कियों को छेड़ने आदि का प्रायश्चित्त दीजिये।'' मैंने पूछा- ''तुम शराब पीते हो, तुम्हारे मम्मी-पापा ने कुछ नहीं कहा?'' उसने कहा- ''माताजी! उन्हें तो मालूम ही नहीं है कि मैं शराब भी पीता हूँ। मैं रात्रि में लगभग ११-१२ बजे पीकर आता था और आकर सो जाता था। मम्मी-पापा तब तक सो चुके होते थे। सुबह उठकर मैं अच्छे ढंग से ब्रुश करके उनके सामने जाता था इसलिए उन्होंने कभी अनुमान ही नहीं लगाया कि मैं शराब भी पी सकता हूँ।'' ऐसी घटना आपके साथ भी हो सकती है। इसी प्रकार सिगरेट-बीड़ी आदि के बारे में भी हो सकता है लेकिन आप निम्नांकित लक्षणों को देखकर थोड़ा अनुमान लगा सकते हैं -

व्यावहारिक लक्षण

(१) जल्दी-जल्दी दोस्तों का बदलना, अपने से बड़ी उम्र वाले या परिवार

के अपरिचित लोगों के साथ मैत्री बढ़ाना।

(२) पारिवारिक सदस्यों व पारिवारिक कार्यक्रमों में अरुचि पैदा हो जाना।

(३) घर के लोगों (माता-पिता आदि) की बात नहीं मानना, अपने वादों से मुकर जाना/झूठ बोलना।

(४) अपने बेडरूम को अन्दर से बन्द रखना और मौका मिलते ही घर से बाहर भागना।

(५) अक्सर स्कूल या कक्षा में अनुपस्थित रहना।

शारीरिक लक्षण

(१) मुँह से शराब या अन्य मादक पदार्थों की गन्ध आना।

(२) सिरदर्द, मतली, हाथों में फ्लू बीमारी के लक्षण होना।

(३) अचानक शरीर के वजन या खाने के तरीके में परिवर्तन आना।

(४) अक्सर सारे शरीर में दर्द, कमजोरी या यहाँ-वहाँ चोट लगाते रहना।

भावनात्मक लक्षण

(१) याददाश्त कमजोर होना और सही-सटीक निर्णय न ले पाना।

(२) आत्महत्या की बात करना या प्रयास करना।

(३) उल्टी-सीधी बातें करना, हरकतें करना या भटकाव/बदलाव होना।

माता-पिता से पैसे मांगना, खर्चीला होना, दुर्घटना करना या दुर्घटना का शिकार होना, नशीले पदार्थों से संबंधित साहित्य पढ़ना, नशीले पदार्थों के सेवन से होने वाली बीमारियाँ अल्सर, लीवर में सूजन, नपुंसकता, पीलिया, दमा, फेफड़े का कैंसर, दिल का दौरा, उच्चरक्तचाप आदि सामान्य लक्षण हैं।

बेटे को समय अवश्य दें

इस उम्र में बेटे को माता-पिता के प्रति बहुत लगाव रहता है। माता-पिता के प्रति उसके हृदय में अनेक प्रकार की आकांक्षाएँ होती हैं। वह माता-पिता से बहुत कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है और यदि इस उम्र में उसे अपने माता-पिता का प्रेम, सहयोग एवं निकटता नहीं मिलती है तो वह उस प्रेम/अपनत्व की खोज कहीं अन्य स्थान पर करना प्रारम्भ कर देता है। उनमें से कोई गाँव छोड़कर भाग जाता है तो किसी की मित्रता व्यसनी लड़कों के साथ हो जाती है क्योंकि व्यसनी लड़कों को पैसों की आवश्यकता होती है। यह भोला बेटा अपने माता-पिता से दूरी अनुभव करता हुआ चोरी करना सीखकर अपने मित्रों को पैसा देकर

प्रेम प्राप्त करता है और धीरे-धीरे स्वयं खोटी आदतों से ग्रस्त हो जाता है। एक डॉक्टर का बेटा जुआ खेलने लगा था। एक दिन वह जुए में हारकर घर लौटा तो उसके डॉक्टर पिता ने उसे बहुत डाँटा। उसकी माँ भी डॉक्टर थी। उसने भी उसे डाँटते हुए कहा- बेटा! तुझे क्या कमी है, पूरा धन, बंगला, वैभव आदि सब तुम्हारा है। हम दोनों सुबह से शाम तक मात्र तुम्हारे लिए ही तो मेहनत करते हैं। तुम हमारी अकेली संतान हो, फिर तुम यह जुआ क्यों खेलते हो.... ? बेटा चुपचाप बैठा रहा। माँ ने फिर कहा- ''तुम्हारे जीवन में क्या कमी है? तुम्हें सब कुछ मिला है, बोलो और क्या चाहिए?'' यह सब सुन बेटा बोला- ''माँ! मुझे जो कुछ मिला है उन सबसे भी ज्यादा आवश्यकता आपसे थोड़े समय और थोड़े प्रेम की है। इसके बिना ये सब कुछ अच्छे नहीं लगते....।'' यह घटना आपके साथ भी हो सकती है इसलिए आप दिन में कम-से-कम एक बार अपने बच्चों के साथ बैठकर नाश्ता या भोजन अवश्य करें। रात में सोने के पहले पूरा परिवार एक साथ बैठकर अपनी बीती हुई नयी पुरानी बातें करें। मनोरंजन करें। ताकि आपके बच्चे को हमेशा यह अहसास रहे कि मुझे माता-पिता कितना चाहते हैं मुझे अपने माता-पिता से जो प्रेम मिल सकता है वह और कहीं तथा और किसी से नहीं मिल सकता है...।

शील का महत्त्व समझावें

इस उम्र में आप अपने बेटे को केरेक्टर (चारित्र-शील) का महत्त्व अवश्य समझावें। किसी लड़की से विशेष प्रेम, आकर्षण देखकर या नहीं भी देखें तो भी उसे समझावें कि उसे हर लड़की के साथ बहिन के रूप में व्यवहार करना चाहिए। जिस प्रकार अपनी बहिन के प्रति कोई भी भाई गलत दृष्टि नहीं रखता और यदि कोई अन्य अपनी बहिन को गलत दृष्टि से देखता है, छेड़-छाड़ करता है, उसके पीछे पड़ा रहता है तो भाई को बहुत तेजी से गुस्सा आ जाता है चाहे वह गरीब हो, नीच जाति का हो और शक्तिहीन भी क्यों न हो। वह अपनी भरसक शक्ति से बहिन-बेटी की शील-सुरक्षा के लिए मर-मिटने को तैयार हो जाता है। और तुम्हारी भी बहिन, बूआ के साथ यदि कोई ऐसा व्यवहार करेगा तो तुम क्या ऐसा ही नहीं करोगे? इसलिए तुम्हें हर लड़की को अपनी बहिन ही समझना चाहिए और छेड़छाड़ की बात तो दूर यदि कोई दूसरे उससे छेड़छाड़ करें तो उसकी हमें रक्षा अवश्य करनी चाहिए। यही सबसे बड़ा धर्म है।

ऐसा भी नहीं है कि लड़के ही लड़कियों को धोखा देते हैं अपितु कई बार

लड़कियाँ भी लड़के को छेड़ देती हैं, उनके पीछे पड़ जाती हैं। कभी-कभी पैसे के लोभ में लड़के से प्रेम कर लेती हैं और बाद में धोखा दे देती हैं। कई लड़कियाँ दो-चार लड़कों से प्रेम कर लेती हैं, प्रोमिस कर लेती हैं, लेकिन विवाह तो सबसे नहीं कर पातीं या अपने माता-पिता के प्रतिकूल किसी से भी नहीं कर पातीं तब सबको धोखा देना ही पड़ता है। कभी लड़की को जिस लड़के से प्रेम है उससे सुन्दर धनाढ्य लड़का मिल जाने पर वह उस लड़के को इसी प्रकार छोड़ देती है जिस प्रकार षट्रस मिश्रित भोजन मिल जाने पर नीरस भोजन छोड़ दिया जाता है, ठुकरा दिया जाता है। ऐसी स्थिति में कई लड़के लज्जित होकर या हीनता की अनुभूति करते हुए आत्महत्या कर लेते हैं, कोई पागल हो जाते हैं, कोई अन्दर-ही-अन्दर घुट-घुटकर जीते हुए भी मुरदे के समान हो जाते हैं।

कुछ वर्ष पहले कानपुर के एक लड़के को एम.बी.बी.एस. करने वाली लड़की से प्रेम हो गया। कुछ दिन बाद लड़की पढ़ाई के लिए विदेश चली गयी। वहाँ उसने पहले लड़के से भी अच्छी पोस्ट प्राप्त करने वाले लड़के से प्रेम (लव) कर लिया और उसी के साथ शादी भी। जब वे शादी करके कानपुर आये तो उनको देखकर उसको (पूर्व प्रेमी) इतना क्रोध आया कि वह स्वयं मरने और उन दोनों को मारने के लिए तैयार हो गया, लेकिन किसी को मारना कोई सहज और सरल बात नहीं है। वह उनको मारने में सफल नहीं हो पाया और पकड़ा गया। उसको वर्षों तक जेल की सजा भोगनी पड़ी। उसने अपना पूरा जीवन विरह की आग में जलते हुए 'बेवफाई की शायरी' लिखने में व्यतीत किया। मोह के वशीभूत उसने लड़की के जाल में फँसकर धोखा खाया और पूरे जीवन को नयन से रहित शरीर के समान महत्त्वहीन बना दिया।

कभी-कभी तो लड़कियाँ भोले लड़कों को इस प्रकार ठगकर, चूस कर फेंक देती हैं जिस प्रकार अफ्रीका की झाड़ियाँ पास में आये राहगीरों को अपने काँटों में जकड़ लेती हैं और उनका खून चूस कर कंकाल फेंक देती है। उसी प्रकार व्यभिचारिणी लड़कियाँ भी जब तक लड़के के पास धन रहता है उसको बुलाती हैं, उसके पास जाती हैं, हँसती हैं, लेकिन धन समाप्त हो जाने पर तिरस्कृत कर देती हैं, घर से निकाल देती हैं। यहाँ तक कि कोई-कोई तो जहर खिलाकर प्राण लेने में भी नहीं चूकती हैं इसलिए लड़कियों के चक्कर में कभी नहीं पड़ना।

न इधर का रहा न उधर का

एक लड़के ने एक बार एक लड़की से प्रेम कर लिया। वह उसको सब कुछ समझने लगा। वह एक मिनट भी उसके बिना नहीं रह सकता था। एक दिन लड़की ने उसके प्रेम की परीक्षा करने के लिए कहा- ''यदि आप मुझसे सच्चा प्रेम करते हैं तो अपनी माँ का कलेजा निकाल लाओ और यदि नहीं ला सकते हो तो फिर.....।'' लड़के ने कहा- ''यह नहीं कहो। मैं आज ही रात में अपनी माँ का कलेजा लाकर तुम्हें नहीं दे दूँ तो मैं भी तेरा सच्चा प्रेमी नहीं कहलाऊँ।'' इस प्रकार अनेक प्रकार से लड़की को आश्वस्त करता हुआ रात्रि में लगभग दस बजे घर पहुँचा। माँ बेकरारी से बेटे का इंतजार कर रही थी। उसके पहुँचते ही माँ प्रसन्न हो गई। उसने बड़े प्रेम से बेटे को भोजन करवाया और थोड़ी देर अपने सुख-दु:ख की बातें करके बेटे को सोने के लिए कहकर सो गयी। बेटा करवटें बदलता रहा। माँ निश्चिन्तता से निद्रा देवी की गोद में पहुँच गयी। माँ को सोता देख बेटा उठा। माँ को देखा, जेब से कटार निकाली। कटार निकालते ही उसकी अपनी आत्मा से आवाज आयी, ''नहीं, यह अकृत्य नहीं करो, इस माँ ने तुम्हें कितनी मुसीबतों में पाला है, तुम इसका उपकार कभी नहीं चुका सकते हो। फिर ऐसा कुकृत्य कर लिया तो....।'' लेकिन बेटे ने अपने हृदय को कठोर करके कटार माँ के कलेजे में घोंप दी और कलेजा निकाल कर दौड़ता हुआ प्रेमिका के पास पहुँचा। प्रेमिका ने अपने प्रेमी के हाथ में जैसे ही माँ का कलेजा देखा तो वह दूर से ही चिल्लाई, ''रे दुष्ट! भाग जा यहाँ से, मैं तेरे से प्रेम नहीं कर सकती, मैं अब तेरा मुँह भी नहीं देखना चाहती। जो मेरे प्रेम के वश में होकर अपनी माँ को मार सकता है वह भविष्य में और किसी के प्रेम में फँसकर मुझे भी मार सकता है।'' लड़के को वास्तविकता समझ में आ गई, उसकी आँखें खुल गईं। वह अपनी मूर्खता पर पश्चाताप करने लगा। उसके भावुकता में किये गये प्रेम के कारण न माँ मिली और न प्रेमिका। उसकी हालत धोबी के गधे जैसी हो गई, जो न घर का होता है और न घाट का।

कभी-कभी लड़कियाँ धन के लोभ में आकर प्रेम कर लेती हैं, शादी कर लेती हैं और शादी के बाद घर का धन बटोर कर भाग जाती हैं। कोई-कोई तो ऐसी उम्र होने के बाद भागती हैं कि आदमी न शादी कर सकता है और न ही अपना जीवन शादी के बिना बिता सकता है। कोई ऐसी मनचली लड़की शादी करके, बच्चे होने पर भी, घर में हर प्रकार की सुख-सुविधाएँ होने पर भी किसी से प्यार

कर लेती हैं और अपने पति-बच्चों को छोड़कर भाग जाती हैं।

आप बेटे को समझावें- ''देखो बेटा! रावण ने सीता के रूप को देखकर उसका हरण कर लिया और जटायु पक्षी ने सीता की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी। फलत: रावण कलंकित होकर नरक में गया और जटायु यशस्वी होकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ। आज भी लोग रावण की निन्दा करते हैं तथा जटायु की ऋषि, साधु-सन्त, विद्वान-पण्डित आदि भी प्रशंसा करते हैं क्योंकि रावण ने सीता को छेड़ने में तथा जटायु ने सीता की रक्षा करने में अपनी शक्ति और बुद्धि का उपयोग किया था। यदि कोई लड़की तुम्हें छेड़ने का प्रयास भी करे, तुमसे मिलने, होटल में एक साथ खाने, तुम्हारे साथ घूमने आदि के लिए आमंत्रित भी करे तो भी तुम उसे स्वीकार नहीं करो। हमेशा बहिन कहकर ही पुकारो और बहिन जैसा ही व्यवहार करो। यह मानवता है। इसमें ही व्यक्ति लोकप्रिय बनता है। रावण की बहिन सूर्पनखा लक्ष्मण के रूप को देखकर मोहित हो गई। वह लक्ष्मण के पास जाकर कटाक्ष करती हुई बोली- ''हे आर्य, आप मुझे अपनी रानी बनाकर कृतार्थ कीजिए। मैं आपके गुण, रूप और व्यवहार से बहुत प्रभावित हूँ।'' लक्ष्मण ने कहा- ''बहिन! मैं अपने भाई की आज्ञा के बिना एक कदम भी नहीं रख सकता फिर तुम्हारी इच्छा कैसे पूरी कर सकता हूँ। जाओ, तुम मेरे भाई से पूछकर आओ।'' लक्ष्मण का उत्तर सुन सूर्पनखा रामचन्द्र जी के पास गई तो उनको देखकर लक्ष्मण को भूल गई और रामचन्द्रजी पर मोहित हो गई। वह उनसे प्रार्थना करने लगी- ''हे स्वामी! हे कामस्वरूप! हे करुणानिधान! कृपया आप एक बार मेरा स्पर्श कीजिए। मेरे साथ रतिक्री ड़ा करके मुझे सन्तुष्ट कीजिए...।'' रामचन्द्र जी ने कहा- ''नहीं, तुम मेरे छोटे भाई लक्ष्मण की पत्नी हो। अभी-अभी तुम लक्ष्मण से...। इसलिए मेरी बेटी के समान हो, मैं तुम्हारे साथ क्रीड़ा कैसे कर सकता हूँ ?'' वह फिर लक्ष्मण के पास पहुँची और बोली- ''आपके भाई ने कहा है कि मैं आपकी पत्नी हूँ अब आप मेरी इच्छा पूरी करो।'' लक्ष्मणजी अपने आप को बचाने के लिए युक्ति पूर्वक बोले- ''अरे, अभी तुम मेरे भाई से रानी बनाने की प्रार्थना कर रही थी इसलिए तुम मेरी भाभी हुई। तुम्हीं बताओ, क्या मैं भाभी के साथ कुछ गलत काम कर सकता हूँ। नहीं, नहीं......।'' इस प्रकार राम और लक्ष्मण ने अपने शील की रक्षा की। इसी प्रकार एक युवती ने महाराज छत्रशाल शिवाजी के पास जाकर प्रार्थना की, ''हे राजन् ! आप महादानी हैं, प्रजा को सुखी सम्पन्न रखते हैं, कृपा करके मेरी भी एक

इच्छा पूरी कीजिए।'' शिवाजी ने कहा- ''हे युवती! कहो तुम्हारी क्या इच्छा है?'' युवती ने कहा- ''महाराज ! मेरी कोई बहुत बड़ी इच्छा नहीं है। मुझे मात्र आपके समान सर्वगुणसम्पन्न पुत्र चाहिए। तथा वह आपके अलावा और किसी से प्राप्त नहीं हो सकता है, इसलिए मैं पुत्र की आशा लेकर आपके पास आई हूँ। आप.....।'' यह सुनकर शिवाजी दुविधा में पड़ गये। वे सोचने लगे, ''यदि मैं युवती की इच्छा पूरी करता हूँ तो धर्म भ्रष्ट होता है। मेरा आदर्श लेकर अनेक लोग गलत मार्ग पर बढ़ेंगे, पापार्जन करेंगे। और यदि मैं इसकी इच्छा पूरी नहीं करता हूँ तो जिसकी प्रजा दु:खी है ऐसे राजा से क्या प्रयोजन..... आदि विचार करते-करते उनको एक युक्ति सूझी। वे जल्दी से उठे और युवती के चरण स्पर्श करते हुए बोले- ''माँ! आपको मेरे जैसे पुत्र की आवश्यकता है, आज से मैं आपका पुत्र हूँ, आप मेरी माँ हो। मैं जीवन भर आपके साथ पुत्र के योग्य कर्त्तव्यों का निर्वाह करूँगा...'' आदि कहते हुए घंटी बजा दी। घंटी की आवाज सुनते ही द्वारपाल आ गये। शिवाजी ने द्वारपाल से कहा- ''देखो, आज से ये मेरी माँ हैं। इनको राजमाता के समान सम्मानपूर्वक राजमहल में ले जाओ...।'' यह सब सुन युवती हतप्रभ रह गई। ऐसे अनेक महापुरुषों ने अपनी विवाहिता को छोड़कर सम्पूर्ण नारियों के साथ बहिन की दृष्टि बनाकर अपने यश को चिरस्थायी बनाया है अत: बेटा! तुम भी उन महापुरुषों के समान अपनी और विश्व की प्रत्येक नारी के शील की प्राणप्रण से रक्षा करो।

कभी-कभी किसी लड़की से तात्कालिक प्रेम व्यवहार, चर्म की सुन्दरता, शारीरिक सौन्दर्य आदि को देखकर लड़के वचनबद्ध हो जाते हैं और जब विवाह हो जाता है तब यदि लड़की का नेचर अच्छा नहीं होता है, लड़की अति खर्चीली, अविवेकी बड़ों से बराबरी करने वाली निकल जाती है तो जिन्दगी में कभी सुख-शान्ति नहीं मिल पाती है इसलिए बेटा भावुकता में आकर किसी भी लड़की से वासनाप्रद प्रेम नहीं करो, सामान्य रूप से बहिन के समान व्यवहार बनाये रखो।

आप अपने बेटे को यह बात भी समझाते रहें कि होली या शादी आदि में रंग खेलते समय भाभी, मित्र की पत्नी, भाई की साली, बहिन की सहेली आदि के साथ अधिक उत्साह नहीं दिखावें। उनके साथ हँसी-मजाक आदि करते समय उनके अंगों पांगों को छूना, हाथ मारना और इस विधि से रंग लगाना कि अश्लीलता नजर आवे, मन में विकार उत्पन्न हो, ऐसा नहीं करें।

ये तो कुछ दृष्टान्त हैं, ऐसी घटनाएँ आपके नगर, ग्राम, शहर आदि में

हमेशा ही घटती रहती हैं। जिसके साथ घटना घटती है वह सावधान नहीं हो पाता है लेकिन जो इन घटनाओं को देखकर-सुनकर या विचार कर सावधान हो जाता है वह समझदार बुद्धिमान कहलाता है। आप बुद्धिमान बनें एवं मनुष्य भव के सार को गृहण करें।

इस उम्र में आप अपने बेटे को घर में केवल पेंटी पहनकर नहीं घूमने दें। पेंटी के ऊपर टावेल या लुंगी बाँधने की आदत अवश्य डालें। क्योंकि केवल पेंटी पहनकर घर में छोटी-बड़ी, बराबर की बहिनों के सामने भाभी, चाची आदि के सामने घूमना-बैठना अच्छा नहीं लगता है और फिर बाजार की पेंटी तो इतनी कसी हुई रहती है। उसमें से अंगों के आकार दिखाई देते हैं जिनको देखकर सहज रूप से लज्जा की अनुभूति होती है। ऐसे वस्त्र पहनकर रहना निर्लज्जता/असभ्यता मानी गई है। इसलिए आप अपने बेटे को ऐसे वस्त्र पहनावें कि उन्हें देखकर किसी के मन में विकार/वासनाएँ उत्पन्न न हों और देखने वालों को भी अच्छा लगे। हो सके तब तक बनियान भी पहनने की आदत डालें। केवल पेंटी पहनकर फिरने की आदत पड़ जाने पर जवानी/वृद्धावस्था तक में भी लोगों को पेंटी पहनकर फिरते रहने में कोई संकोच नहीं आता है। लोक में यौवनावस्था में ऐसे वस्त्र पहनकर रहने वाले को आवारा/वासनागृस्त माना जाता है। अत: आप अभी से व्यवस्थित कपड़े पहनना सिखावें।

संकेत देकर आवें-जावें

आप अपने बेटे को बाहर से घर में आते समय या अपनी बहिन, भाभी, चाची आदि के रूम में जाते समय संकेत देकर जाने की प्रेरणा दें। जैसे- खाँसकर या कोई भजन गुनगुनाते हुए या किसी को आवाज लगाते हुए आवें-जावें ताकि घर की बहिन, बेटी अव्यवस्थित बैठी है, उनके कपड़े आदि अस्त-व्यस्त हो रहे हैं तो वह आपके संकेत को सुनकर आपको थोड़ा रुककर आने के लिए कह देगी या कपड़े आदि को जल्दी से व्यवस्थित कर लेगी। बिना संकेत दिये जाने से कभी-कभी बहिन आदि तैयार हो रही हो, कपड़े बदल रही हो, गर्मी आदि के कारण अस्त-व्यस्त बैठी हो और आपके अचानक पहुँच जाने पर वे भी शरमा जायेंगी। घबरा जायेंगी और आप भी एकदम झेंप जायेंगे। ऐसा हो जाने पर बहुत दिनों तक एक-दूसरे के साथ आँख से आँख मिलाने का साहस नहीं होता, अन्दर-ही-अन्दर एक शर्म की अनुभूति होती रहती है। कभी अचानक स्त्री के गुप्त अंगोपांगों पर दृष्टि

पड़ जाने पर गलत भावनाएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। इतिहास में एक प्रकरण आता है। एक साधु एक गुफा में ध्यान कर रहा था। उसी जंगल में कुछ साध्वियाँ यात्रा के हेतु गमन (पैदल) कर रही थीं तभी अचानक आँधी चलने लगी, बिजलियाँ कड़कने लगीं, चारों तरफ धूल-ही-धूल हो गई। गड़गड़ाहट के साथ पानी बरसने लगा। सबके वस्त्र भीग गये। सभी साध्वियाँ अपनी रक्षा के लिए स्थान ढूँढ़ती हुई इधर-उधर हो गईं। उनमें से एक साध्वी अपनी रक्षा हेतु उसी गुफा में पहुँच गयी जहाँ साधु ध्यान कर रहा था। उसने गुफा में चारों ओर दृष्टि डाली। उसे कोई/कुछ भी नहीं दिखा क्योंकि गुफा में भयंकर अंधेरा था। वह नि:संकोच अपने वस्त्र खोल कर सुखाने लगी। कुछ आहट सुनकर साधु ने थोड़ी सी आँखें खोलकर देखा तो उनको एक निर्वस्त्र स्त्री दिखाई दी। क्योंकि जहाँ साध्वी वस्त्र सुखा रही थी गुफा के द्वार से कुछ प्रकाश आ रहा था। साधु ने निर्वस्त्र स्त्री को देख झट से अपनी आँखें बन्द कर लीं। लेकिन उसके मन ने परमात्मा के ध्यान को छोड़कर स्त्री (जिसके गुप्त अंग दिख गये थे) का ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया। वह जितना मन को आत्मा की तरफ ले जाने लगा मन उतना ही चंचलता पूर्वक स्त्री के पास पहुँचने लगा। आखिर साधु अपने मन से हार गया। वह ध्यान छोड़कर साध्वी के पास पहुँच गया और अपनी वासना-पूर्ति की प्रार्थना करने लगा। साध्वी अचानक अपने सामने साधु को देखकर भौंचक्की रह गई। फिर भी साहस के साथ उसने साधु को अपने-पद की मर्यादा, त्याग-तपस्या का फल आदि बताते हुए वासना से विमुख करने का प्रयास किया। लेकिन साधु ने साध्वी की एक भी नहीं सुनते हुए उसके साथ बलात्कार कर लिया...। वर्षों से बृह्मचर्य की साधना करने वाले एकान्तवासी तपस्वी साधु भी जब अचानक स्त्री के गुप्तांगों को देखकर विचलित हो सकते हैं तो आपको और हमें अपने शील की रक्षा के लिए कितनी सावधानी आवश्यक है, आप स्वयं सोचें। अत: आप अपने बेटे को अभी से अपने घर में ही नहीं किसी दूसरे के घर में भी जाते समय संकेत देकर जाने की आदत डालें ताकि बेटे का शील सुरक्षित रहे और नारी जाति की भी रक्षा हो।

मित्रों पर ध्यान दें

आप अपने बेटे के मित्रों का ध्यान रखें। धनाढ्य मित्र के साथ मित्रता होने पर जीवन-पतन की पूरी सम्भावना रहती है क्योंकि धनाढ्य के बेटे धन और स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके स्वच्छन्द हो जाते हैं। फल यह होता है कि उनका

जीवन व्यसनों में लिप्त हो जाता है। उनमें शराब पीना, जुआ खेलना, पाऊच-गुटखा खाना और लड़कियों को छेड़ने की प्रवृत्ति सहज रूप से प्रवेश कर जाती है। होटल में चाय, नाश्ता, कचौड़ी, पकौड़ी खाये बिना तो उनका दिन समाप्त हो ही नहीं सकता है। रात्रि में १२-१२/१-१ बजे तक बाजार, क्लब, होटलों, सिनेमा आदि में घूमते रहते हैं। हमेशा रात्रि में बाहर घूमने वाले आवारा कहलाते हैं। उनका जीवन व्यसन रहित कभी नहीं हो सकता है। वास्तव में, धनाढ्य वर्ग में ९९% लोग दुष्प्रवृत्ति वाले होते हैं। यदि कोई धनाढ्य होकर भी सदाचारी, व्यसनमुक्त, दयालु एवं निरभिमानी है तो समझना चाहिए कि वह स्वर्ग का देवता धरती पर उतर आया है और फिर से वह स्वर्ग का देवता ही बनने वाला है। इसलिए यदि ऐसे धनाढ्य का बेटा है तो उससे अपने बेटे की मित्रता बनाने तथा बढ़ाने का प्रयास करें और यदि ऐसा नहीं है तो वैसे मित्रों से दूर ही रखें। आर्थिक-वैचारिक एवं सामाजिक दृष्टि से अपनी समानता वालों के साथ मित्रता हमेशा फलती है।

मित्र बनाने की प्रेरणा दें

आप अपने बेटे को दो-चार ऐसे मित्र बनाने की प्रेरणा अवश्य दें जो नि:स्वार्थ, सज्जन-कुलीन और निर्व्यसन हों। जो दो शरीर और एक आत्मा जैसा प्रेम रखे। क्योंकि मित्र भी एक-दूसरे माता-पिता के रूप में होते हैं। सच्चा मित्र वही है जो अपने मित्र को सुख-दु:ख में साहस-धैर्य दिलाता है, उसकी मानसिक चिन्ताओं का समाधान करता है। वास्तव में, एक मित्र को वे सभी बातें मित्र बता सकता है, बता देता है जिन बातों को वह अपने माता-पिता को भी नहीं बता पाता है; बताने में हिचकता है। इसलिए पौराणिक ग्रन्थों में आता है कि जब कोई (किसी का बेटा/बेटी) मूर्छित हो जाता था, मानसिक आघात को प्राप्त हो जाता था तब माता-पिता उसके मित्रों के माध्यम से ही यह जान पाते थे कि वह इस स्थिति को क्यों प्राप्त हुआ है। वे मित्र, मित्र नहीं हैं जो पैसा समाप्त हो जाने पर या स्वार्थपूर्ति नहीं होने पर छोड़कर उसी प्रकार भाग जाते हैं जिस प्रकार वृक्ष के फूल-फल, पत्ते आदि समाप्त हो जाने पर पक्षीगण वृक्ष को छोड़कर उड़/भाग जाते हैं। कुछ ऐसे तात्कालिक मित्र/क्लासफेलो भी हों लेकिन उनके साथ दो-चार मित्र तो ऐसे होने ही चाहिए जिनको लोक में 'लंगोटिया यार' कहते हैं अर्थात् बचपन के मित्र जिनको प्रत्येक अच्छी-बुरी बात बता दी जाती है। जैसे- पवनंजय का प्रहस्त, अंजना की बसन्तमाला, रामचन्द्र जी का कृतान्तवक्त्र आदि। ऐसे मित्र मृत्यु पर्यन्त एक-दूसरे

का साथ देते हैं और भव-भव में भी एक-दूसरे से मिलते रहते हैं, एक-दूसरे की रक्षा करते हैं। जैसे- कृतान्तवक्त्र ने स्वर्ग से आकर लक्ष्मण की मृत्यु से उत्पन्न रामचन्द्र के शोक को दूर किया था। महानगर कलकत्ता में राजबहादुर और सत्यपाल नामक दो बुद्धिमान मित्र थे। प्रति वर्ष राजबहादुर प्रथम एवं सत्यपाल द्वितीय स्थान से उत्तीर्ण होते थे। एक वर्ष राजबहादुर की माँ स्वर्ग सिधार गई। सत्यपाल ने हर प्रकार से राजबहादुर की सहायता की। राजबहादुर माँ के वियोग में अच्छी तरह परीक्षा की तैयारी नहीं कर पाया। फिर भी उसने प्रथम स्थान प्राप्त किया। अध्यापकों को पूर्ण विश्वास था कि इस बार राजबहादुर परीक्षा की तैयारी नहीं कर पाने के कारण प्रथम स्थान प्राप्त नहीं कर सकता। अबकी बार सत्यपाल प्रथम स्थान प्राप्त करेगा। इसलिए उन्होंने सत्यपाल की कॉपियाँ फिर से देखीं, सभी कॉपियों में सरल-सरल प्रश्नों के उत्तर नहीं लिखे थे। शिक्षकों ने सत्यपाल को बुलाकर सरल प्रश्नों के उत्तर नहीं लिखने का कारण पूछा। सत्यपाल ने बताया, ''गुरुजी ! राजबहादुर मेरा मित्र है, वह दु:खी है, कुछ ही दिन पहले उसकी माँ मर गई है। इसलिए वह पढ़ाई नहीं कर पाया है। मैं उसके आगे आकर अर्थात् उससे ज्यादा नम्बर प्राप्त करके उसको दु:खी नहीं करना चाहता था। यही कारण है कि मैंने सरल प्रश्नों के उत्तर नहीं लिखे हैं ताकि मेरा मित्र पूर्ववत् प्रथम स्थान को प्राप्त हो। ''ऐसे मित्र ही भविष्य में/जीवन भर सुखी रहते हैं और ऐसी मित्रता ही सुख-शांति देने वाली होती है। लेकिन ऐसी घनिष्ठ मित्रता होने पर भी किसी काम में साझेदारी एवं प्रतियोगिता नहीं करें। साझेदारी और प्रतियोगिता में हार-जीत का प्रसंग आता है। मित्रता टूटने की पूरी सम्भावना रहती है अत: मित्र-मित्र कभी ऐसे कार्य नहीं करें जिनसे मित्रता में धब्बा लगे, मित्रता टूटने का खतरा उत्पन्न हो।

धन से मित्रता टूटी

एक नगर में कमल और विमल दो मित्र रहते थे। दोनों में अच्छा प्रेम था। कमल करोड़पति था, विमल मध्यम परिवार का व्यक्ति था। एक दिन विमल अपने पुत्र के विवाह में आमंत्रित करने के लिए कमल के घर पहुँचा।

कमल - मित्र, मैं तुम्हारे पुत्र की शादी में अवश्य आऊँगा। तुम यह हार ले जाओ, अपने बेटे दूल्हे को पहना देना।

विमल - ''नहीं, मैं इतना भारी-मूल्यवान हार नहीं ले जा सकता'', लेकिन कमल ने जब बहुत आग्रह किया तो विमल हार लेकर अपने घर की ओर

चल पड़ा। जाते-जाते रास्ते में उस हार को देखकर उसका मन बिगड़ गया। वह सोचने लगा- इस हार को यदि मैं वापस न दूँ तो मेरी दरिद्रता दूर हो जावेगी। मित्र के पास न कोई साक्षी है और न कोई मेरे हस्ताक्षर हैं। वह कैसे हार माँगेगा....। उसने हार अपने घर में छुपा लिया। दूसरे दिन कमल मण्डप में आया। दूल्हे के गले में हार न देखकर कमल ने कहा- ''मित्र, तुमने दूल्हे को वह हार क्यों नहीं पहनाया।''

विमल - कैसा हार ?

कमल - ऐसे कैसे बोलते हो, मैंने कल तुम्हें हार दिया था।

विमल - ''(गुस्से में) कब दिया था हार, बिल्कुल नमक की रोटी बना रहे हो।'' यह सुन कमल हक्का-बक्का रह गया। उसका मुख निस्तेज हो गया। दोनों में तना-तनी बढ़ गई। आखिर कमल को राजदरबार में जाना पड़ा। राजा ने कमल की बात सुनी और उसके साक्षी, हस्ताक्षर आदि के बारे में पूछा।

कमल - मैंने तो हार मित्रता के नाते दूल्हे को पहिनाने के लिए दिया था, साक्षी और हस्ताक्षर की कोई बात ही नहीं थी। मुझे पता नहीं था कि वह मित्र होकर भी मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर सकता है। राजा ने विमल को बुलाकर पूछा। विमल ने उत्तर दिया- ''राजन्! मेरे जैसे गरीब को नौ लाख रुपये का हार कौन देता है।'' राजा- ''क्या कमल तेरा मित्र है?''

विमल - ''मित्र था, लेकिन अब तो शत्रु से भी बढ़कर है....।''

विमल की बात सुन राजा ने दूसरे दिन सूर्योदय के समय इस बात का निर्णय करने की घोषणा की। सूर्योदय होते ही निश्चित स्थान पर भीड़ इकट्ठी हो गयी। राजा, कमल और विमल भी यथासमय वहाँ पहुँच गये। विमल के साथ में घड़ा देखकर राजा ने पूछा- ''विमल, साथ में घड़ा कैसे लाये हो?'' विमल ने कहा- ''मेरे कण्ठशोष का रोग है, बार-बार प्यास लगती है अत: मैं अपने साथ पानी का घड़ा रखता हूँ'' राजा ने घोषणा की- ''जो इस छोटी सी खिड़की में से निकल जायेगा वह सच्चा है और जो फँस जायेगा वह झूठा।'' विमल ने कमल से कहा- ''कृपया, थोड़ी देर मेरा घड़ा पकड़ कर रखना।'' बस, घड़ा पकड़ाकर जोर से बोला- ''सत्य देवता! यदि मेरे पास कमल का हार हो तो मैं खिड़की में फँस जाऊँ और यदि कमल का हार कमल के पास ही हो तो मैं निकल जाऊँ'', इस प्रकार कहता हुआ खिड़की से निकल गया। सभी कहने लगे विमल सच्चा, कमल झूठा, विमल सच्चा...। राजा के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। कमल के होश

गुम हो गये। इधर विमल ने शीघ्र ही आकर कमल से घड़ा मांगा। कमल जैसे ही विमल को घड़ा देने लगा, उसके हाथ से घड़ा फिसल गया। घड़ा जमीन पर गिरते ही फूट गया, हार बाहर आ गया। हार देखते ही कमल की जयजयकार हो गई। हार मिलता या नहीं मिलता, दोनों की मित्रता तो निश्चित रूप से टूट चुकी थी। अत: सावधान रहें, कभी ऐसी घटना आपके साथ न घटे।

आप मित्र के प्रेम में पागल होकर अपने घर की मूल्यवान वस्तुएँ अर्थात् सोने-चाँदी, हीरे आदि के आभूषण उसे उधार के रूप में, कुछ दिनों के लिए तत्काल किसी समारोह में पहनने के लिए या उसके बदले में पैसे लेकर भी नहीं देवें। क्योंकि कर्म के उदय से कभी भी भाव (मन) बिगड़ सकता है। संसार में धन से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है, धन के लिए मित्र-मित्र की बात तो बहुत दूर, बेटा भी बाप को मार सकता है। पिता-पुत्र को, भाई-भाई को मारते हुए, झूठा कलंक लगाते हुए देखे जाते हैं। संसार में जितने रिश्ते-नाते, प्रेम-मोहब्बत टूटते हैं उनमें अधिकांशत: धन ही मुख्य कारण होता है, वह चाहे स्त्री के रूप में हो या जमीन-जायदाद, रुपये-पैसे के रूप में हो। अत: आप ऐसा काम कभी नहीं करें।

आज ऐसे लड़कों की टोलियाँ बनने लगी हैं जिनमें एक-दो आकर अच्छी पढ़ाई करने में लगे हुए लड़के के मित्र बन जाते हैं, उसके साथ खाना-पीना आदि इतना व्यवहार (अपनत्व) बढ़ा लेते हैं कि लड़का उनको अपना परम मित्र और हितैषी समझने लगता है। साथ-ही-साथ वह कितने धनाढ्य का बेटा है, अपने माता-पिता का कितना चहेता (चाहते) है, अकेला है या और कोई भाई है, या नहीं आदि का भी पता लगाते रहते हैं। यदि वह गरीब या कंजूस का बेटा है अथवा अपनी विशेष रुचि के कारण ही पढ़ रहा है, पढ़ाने में माता-पिता की विशेष रुचि नहीं है तो धीरे-धीरे दूर भागने लगते हैं। और यदि उससे कुछ धन मिलने की आशा होती है तो मित्रता जारी रखते हैं। वे लड़के धीरे-धीरे यह धारणा बनाते हैं कि २०-२५ वर्ष की उम्र तक ५० लाख कमा लो और जीवन भर बैठे-बैठे खाओ। ऐसे सस्ते सुन्दर (जीवन भर श्रम भी नहीं करना पड़ेगा और पचास लाख की सम्पत्ति भी मेरे पास होगी) उपाय को सुनकर लड़के का दिमाग पढ़ाई से हटकर उस बात की ओर लग जाता है। वह बिना सोचे-समझे बहाने बनाकर घर से पैसा मंगवाता रहता है। घर पर आना-जाना कम कर देता है, पूछने पर कह देता है पढ़ाई के कारण घर नहीं आ सकता, आदि-आदि.........। एक-दो वर्ष तो लड़के को लगता है कि ये

मित्र कितने अच्छे हैं, मुझे थोड़े से श्रम में कितना लाभ मिल रहा है। लेकिन बाद में वे मित्र धीरे-धीरे उसका सारा पैसा चौपट कर कंगाल तथा कर्जदार बनाकर भाग जाते हैं। उसकी पढ़ाई भी चौपट हो जाती है और पैसा भी। एक लड़का इंदौर में पढ़ता था। उसको ऐसे ही मित्र मिल गये और बहकाना शुरू कर दिया। उसके दिमाग में यह भूत सवार हो गया कि मुझे पापा जैसे जिन्दगी भर श्रम नहीं करना है। मुझे तो ४-५ वर्ष में पचास लाख कमाकर ऐश की जिन्दगी बितानी है। लड़का बहुत दिनों के बाद घर आया। लड़के की यह अच्छी आदत थी कि वह हर बात अपनी मम्मी को जरूर बताता था। उसने अपनी मम्मी को यह बात भी बताई। मम्मी आश्चर्य में पड़ गई। उसने यह सोचकर कि ऐसे कैसे हो सकता है, घर वालों को यह बात बताई। घर वाले मामा-मौसी, पापा-चाचा आदि ने उसे खूब समझाया लेकिन वह किसी भी हालत में इस विचार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ। वह अपनी मौसी से बहुत डरता था इसलिए जब मौसी ने उसे अच्छा डाँटकर समझाया तब वह समझा, नहीं तो उसका भविष्य क्या होता, भगवान जाने।

आप बेटे को रात्रि में हमेशा साढ़े दस बजे के पहले घर आने की आदत डालें। नहीं आने पर या कोई बहाने बनाने पर गुप्त रूप से जानकारी प्राप्त करें। और येन-केन-प्रकारेण दस बजे के पहले घर आने की आदत अवश्य डाल ही दें। दस बजे के लगभर घर के माता-पिता, भाई-बहिन, चाचा, दादा-दादी आदि मिलकर १०-१५ मिनट मनोरंजन, गप-शप, चुटकले आदि बातें करें ताकि दिनभर की बातों की जानकारी हो जावे, आपसी प्रेम वृद्धि को प्राप्त हो और जीवन अनुशासित बने।

व्यापार की विधि समझावें

यदि आपका बेटा नयी-नयी वेकेन्सियों, ऑफर आदि में फॉर्म भरने, बैंक, रेलवे आदि में इन्टरव्यू, टेस्ट, ट-्रेनिंग आदि कार्यों को करने में रुचि रखता है, करना चाहता है तो आप उसे अवश्य सहयोग दें। यदि आप आर्थिक दृष्टि से सहयोग देने में समर्थ नहीं हैं तो स्वयं कुछ काम करके जैसे- बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर, किसी दुकान या फैक्ट-ी में सर्विस करके, गर्मी की छुट्टियों में या हमेशा भी पढ़ाई के साथ छोटा-धंधा करके इन कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित करें। चाहे आपको सर्विस नहीं भी करवानी हो तो भी डिग्री जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। यदि बेटे में इसकी रुचि नहीं है तो उनसे होने वाले लाभों को बताकर प्रेरित करें।

जब लड़का कमाने के योग्य होने लगता है, धन का महत्त्व एवं आवश्यकता समझने लगता है तो उसके दिल में ऐसे अरमान उत्पन्न होते हैं कि मैं कुछ ही दिनों में जल्दी-से-जल्दी अधिक-से-अधिक धन कमा लूँ। लखपति-करोड़पति बन जाऊँ लेकिन वह व्यापार के आगे-पीछे होने वाली लाभ-हानि पर ध्यान नहीं दे पाता है इसलिए कभी-कभी मूल पूँजी को ही गँवा बैठता है। आप बेटे को व्यापार करते समय उसे धीरे-धीरे बढ़ाने की प्रेरणा दें। क्योंकि यदि किसी को तैरना सीखना है तो वह कम पानी में सीखे। यदि सबसे पहले ही समुद्र में कूद गया तो बचना मुश्किल हो जायेगा। और कदाचित् बच गया तो तैरना सीखने का साहस ही नहीं जुटा पायेगा। उसी प्रकार यदि किसी को लखपति बनना है तो वह धीरे-धीरे क्रम से अपना व्यापार बढ़ावे तो उसे निश्चित सफलता मिलेगी और यदि एक साथ लम्बा-चौड़ा व्यापार फैला दे तो संभव है मूल से नष्ट हो जावे। आगे पुन: कभी व्यापार करने का साहस ही नहीं होगा। व्यापार में पूंजी कम हो या नहीं भी हो तो चिन्ता नहीं करें। अमेरिका के राष्ट-पति लिंकन कहते हैं कि जब व्यक्ति व्यवसाय शुरू करता है तो क्या यह जरूरी है कि लाखों डॉलर उसके पास हों, क्या वह कुछ डालरों में अपना व्यवसाय शुरू नहीं कर सकता है, आपका क्या ख्याल है? जो कुछ डॉलरों में व्यवसाय नहीं कर सकता है वह लाखों-डॉलरों से भी व्यवसाय करके सफल नहीं हो सकता।

वास्तव में, व्यापार-सफलता का राज (रहस्य) अधिक पूंजी लगाना, बहुत देर तक दुकान खोलकर बैठना आदि नहीं है, अपितु उसका मुख्य कारण तो व्यापारी का ग्राहक के साथ व्यवहार है। आप (व्यापारी) किसी गरीब, फटे-पुराने कपड़े पहने ग्राहक को देखकर उसका तिरस्कार नहीं करें। आप यह नहीं सोचें कि यह मेरी दुकान से दो-चार रुपये का सामान ले भी जायेगा तो उससे क्या हो जाना है, इतनी कमाई से कुछ नहीं होगा और ऐसा भी नहीं है कि ऐसे-वैसे ग्राहक नहीं आयेंगे तो आपकी दुकान नहीं चलेगी। हाँ, सही में देखा जाय तो छोटे ग्राहकों से ही दुकान ज्यादा चलती है क्योंकि गरीब होने से वे अधिक माल भी नहीं खरीद पाते हैं और बड़े लोगों से हमेशा दबते भी रहते हैं। एक गरीब लड़की ने एक दुकानदार से थोड़ा सा सामान खरीदा। दुकानदार ने कहा- ''बेटी! धन्यवाद, कभी-कभी आती रहना।'' सौदे में यद्यपि उस गरीब की लड़की से उसे विशेष लाभ नहीं हुआ। लेकिन इस थोड़े से शिष्टाचार के व्यवहार से उस लड़की पर इतना प्रभाव पड़ा कि

उसने सैकड़ों लोगों के सामने दुकानदार की प्रशंसा की। उसकी प्रशंसा सुनकर दुकान पर ग्राहकों की संख्या बढ़ गयी। आप भी ग्राहक के सामने अपने आप को संयमित रखें। क्योंकि आपके क्रोध को देखकर यदि एक ग्राहक चला गया तो उसका अर्थ आपके पाँच-सात ग्राहक और भी टूट गये। आप गरीब, नासमझ, अनपढ़ को देखकर उसका गला घोंटने (बहुत ठगने) का प्रयास नहीं करें। उसमें आपको भारी पाप का बन्ध होगा, बेचारा वो तो पहले से ही दु:खी था उसके घर में खाने की व्यवस्था नहीं थी और उसीको आपने ठग लिया। आप उसको कितना भी ठगें, बहुत नहीं कमा पायेंगे। क्योंकि वह थोड़ी सी ही चीजें ले जाता है। और फिर उसके साथ ऐसा अन्याय करने से उसकी आहें (नि:श्वासें) आपको लगेंगी। आप सुखी नहीं रह पायेंगे। कहा भी है- ''चोरी का धन मोरी (नाली) में'' ऐसे गरीबों को ठगने से प्राप्त धन आपके काम नहीं आ सकता । वह किसी बहाने से घर से निकलेगा। शायद इसीलिए धनाढ्य घरों के लोग बीमार ज्यादा होते हैं। उनके यहाँ गरीबों की ठगाई से आया हुआ पैसा डॉक्टरों की जेब में जाता है या फिर वकीलों की जेब में जाता है क्योंकि उन पर कोई-न-कोई मुकदमा चलता ही रहता है।

जैसा आया वैसा गया

एक बुढ़िया थी जो प्रतिदिन एक सेठ के यहाँ कपास बेचकर तेल, नमक, मिर्च खरीदकर अपना काम चलाती थी। एक दिन वह कपास बेचने गयी तो सेठ की दुकान बन्द थी। उसने यह सोचकर कि आज सेठजी की दुकान खुली नहीं है तो दूसरे सेठ के यहीं कपास बेचकर तेल-मिर्च आदि खरीद लेती हूँ। सेठ जी क्या पता कब आयेंगे। उसने अपना कपास दूसरे सेठ की दुकान पर बेच दिया। सेठ ने तौलकर कहा- ''माँ! दो-सौ ग्राम कपास है।'' बुढ़िया ने कहा-''नहीं बेटा! रोज इतना कपास लाकर सेठ जी के यहाँ बेचती हूँ वहाँ तो ढाई सौ ग्राम निकलता है। आज दो सौ ग्राम कैसे रह गया?'' सेठ ने रोब में उत्तर दिया- ''बेचना हो तो बेचो नहीं तो ले जाओ। कोई तुम्हारे इतने से पैसों से मैं धनवान नहीं हो जाऊँगा....।'' बुढ़िया सहम गई। उसने कहा- ''ठीक है। इसका तेल, मिर्च और नमक दे दो।'' सेठ जी ने सामान देते समय भी भाव अधिक लगा लिये और कम तौल दिया। बुढ़िया कम-कम सामान देखकर कुछ कहती उसके पहले ही सेठ जी ने दो-चार सुना दी। बुढ़िया मन-ही-मन में सेठ जी को कोसती हुई घर पहुँची और घर वालों व अड़ोस-पड़ोस रिश्तेदार आदि के सामने सेठजी की बुराई करके सेठजी के यहाँ से सामान

खरीदने बेचने के लिए मना करने लगी। सेठ जी मन-ही-मन में अपनी चतुराई से खुश होते हुए घर पहुँचे और पत्नी से बोले- ''प्रिये! आज तो सुबह-सुबह बहुत अच्छा ग्राहक फँसा है। आज मौसम भी अच्छा है। तुम तो मालपुए बनाओ।'' पत्नी ने सेठ जी के कहे अनुसार मालपुए बनाए। सेठ-सेठानी आनन्द से खाने बैठ रहे थे कि उनका दामाद अपने मित्र के साथ आ पहुँचा। सेठ जी अभिवादन-सत्कार आदि करते हुए बोले, ''बेटा! थोड़ी देर बैठो, अभी आपकी माँ भोजन तैयार कर देती है, आप भोजन करके ही जाइयेगा।'' दामाद बोला- ''नहीं, नहीं, पिताजी! मुझे जल्दी जाना है, दस-पन्द्रह मिनट में मेरी गाड़ी आने वाली है, मुझे तो जैसा बना है वैसा ही परोस दो।'' सेठ जी बार-बार गरम भोजन का आग्रह करने लगे। लेकिन जँवाई ने अपने हाथ से डिब्बा खोला और अपने मित्र के साथ पूरे मालपुए खाकर चले गये। एक भी मालपुआ नहीं बचा क्योंकि दो व्यक्ति के अनुपात से ही मालपुए बने थे। सेठ जी पछताते हुए सोचने लगे ''अरे! ये क्या हो गया। मालपुए भी खाने को नहीं मिले और ठगने का पाप भी गाँठ में बँध गया।''

यह घटना आपके साथ भी हो सकती है, आपके साथ भी घट सकती है और इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हमेशा घटती ही रहती हैं। इसलिए आप ऐसा अन्याय ही नहीं करें कि दुर्गति का पात्र बनना पड़े।

कैसा व्यापार करें/करावें

आप अपने बेटे को ऐसी दुकान नहीं खुलवाएँ जिसमें पाप का बन्ध ज्यादा हो और जीवन को खतरा भी। उच्च कुलीन व्यक्ति कभी ऐसी वस्तुओं को नहीं बेचते जिनके माध्यम से मात्र हिंसा ही होती है। जैसे- डी.डी.टी. पाउडर, मेडिकर शैम्पू, चमड़े के जूते-चप्पल-बेल्ट-पर्स आदि वस्तुएँ, संजीवनी सुरा, मधुर मनुक्का (ये शराब जैसा ही नशा उत्पन्न करती हैं, मेडिकल स्टोर पर भी मिल जाती हैं), शराब (चाहे देशी हो या अंग्रेजी) भाँग, चरस, हुक्का, तम्बाकू, पाउच, गुटखा, सिगरेट, बीड़ी, स्मेक, अबोर्सन (गर्भपात) की गोली-इंजेक्सन, मांसाहारी सौन्दर्य प्रसाधन (नेल पॉलिस, पाउडर, क्रीम लिपिस्टिक, आदि) सिल्क, रेशम की साड़ी (कपड़े), फर की टोपी आदि, हाथीदाँत के खिलौने-चूड़ी-कंगन आदि, कीटनाशक औषधि, लक्ष्मण रेखा, चूहे-खटमल-चींटी-मच्छर-जूँ आदि मारने की दवाइयाँ, झाडू, कलाई (दीवार पोतने की), पटाखे, बारूद आदि। इन वस्तुओं की दुकान अपने बेटे को नहीं खुलवाएँ। आपके पास पैसा कम है तो पहले किसी की दुकान

आदि पर नौकरी करके थोड़ा पैसा इकट्ठा कर लें। फिर छोटी दुकान से कार्य प्रारम्भ करें लेकिन दुकान में ऐसा माल रखें जिससे अपना और जनता का जीवन सुरक्षित रहे। जैसे- किराना, कपड़ा, जनरल स्टोर, बर्तन, मिर्च मसाला, दूध की डेरी, दूध-घी-गल्ला आदि।

विशेष - होटल, सिनेमाहॉल, अबोर्सन केन्द्र, मुर्गी-मछली पालन उद्योग, अण्डा विक्रय, चमड़ा उत्पादन, चमड़े के ढ़ोलक-बेल्ट-चप्पल आदि बनाने की फैक्ट-ी, कत्लखाना आदि का व्यापार-दुकान तो कभी नहीं खोलें, चाहे भूखे भी मरना पड़े या लाखों का लाभ भी हो रहा हो क्योंकि ऐसे व्यापार करने वाले, करवाने वाले एवं व्यापार से प्राप्त पैसों का उपयोग करने वाले नियम से दुर्गति को ही प्राप्त होते हैं।

आप बेटे को व्यापार, दुकान, सर्विस आदि करने के साथ-साथ औसत रूप से दान देने की बात अवश्य कहें। एक रुपये में से पाँच-दस या दो-चार पैसा तो दान देने का संकल्प ही रखें। प्रत्येक महीने में कमाई का अनुमान लगाकर औसत रूप से दान का पैसा अलग रखते जावें। देते जावें। या साल-छह महीनों का पैसा इकट्ठा करके एक साथ बड़े स्थान पर/बड़ी वस्तु का दान करें। दान की प्रवृत्ति बनी रहने से लोभ की तीव्रता नहीं होती और धनोपार्जन में जो पाप का बन्ध होता है वह भी हल्का होता जाता है।

अपनी आय में से कुछ पैसा अपने माता-पिता को देते जावें। यदि वर्तमान में वे लेने से मना करते हैं तो उनके लिए अलग रखते जावें ताकि आप (उन्होंने आपको कैसी परिस्थितियाँ झेलकर आज धन कमाने लायक बनाया है) उनका थोड़ासा उपकार चुका पावें। आप कमाना प्रारम्भ करने के साथ-साथ ही यह आदत डालें, जिससे भविष्य में आपको माता-पिता की सेवा में कुछ भी विचार करने की आवश्यकता न पड़े, आप यह नहीं सोचें कि दान भी देना है, माता-पिता को भी देना है, और घर का खर्च भी चलाना है; इतना निकल जायेगा; तो बचेगा ही क्या? आप यदि अपनी आय का सही-सही अनुपात बनायेंगे तो आपके घर खर्च का १०-१५ प्रतिशत भी इन दो (दान और माता-पिता के लिए) कामों में नहीं लगेगा। घर में खर्च किया हुआ कुछ भी फल नहीं देगा जबकि दान दिया हुआ और माता-पिता की सेवा में लगाया गया पैसा आपको इतना फल देगा जिसको गिना नहीं जा सकता है। कहा भी है- ''धन की जड़ धर्म होती है।'' जो हमेशा वृक्ष की जड़ों में खाद-पानी डालता रहता है, उसका वृक्ष कभी नहीं सूखता है। आपके

जीवन में ये दो अति आवश्यक धर्मकार्य हैं, आप इनको करते रहें, आपका धन रूपी वृक्ष कभी नहीं सूखेगा, सदा हरा-भरा रहेगा।

दान के साथ-साथ आप प्रतिदिन धार्मिक कार्यों के लिए समय अवश्य निकालें। आप यह नहीं सोचें कि मैं इतनी दूर मंदिर जाऊँगा। भगवान की भक्ति करूँगा। माला-जाप्य-पाठ, ग्रन्थ का पठन, साधु के प्रवचन (व्याख्यान-उपदेश) सुनना आदि अनुष्ठान करूँगा तब तक तो दुकान पर दो-चार ग्राहक आयेंगे, कुछ कमाई होगी। भगवान की पूजा आदि से भगवान पैसा थोड़े ही दे देगा। पैसा तो आखिर दुकान पर बैठने से ही मिलेगा। इसलिए दुकान पर बैठना ज्यादा लाभप्रद है। यह बात सही है कि भगवान पैसा नहीं देगा। क्योंकि पूर्ण रूप से सम्पत्ति और सम्पत्ति के प्रति ममत्व का त्याग किये बिना कोई भगवान नहीं बन सकता। इसलिए भगवान पैसा कहाँ से/कैसे दे देंगे। फिर भी लोक में देखा जाता है कि भगवान की भक्ति से जो मिलता है वह हजारों अफसरों की चापलूसी करने से नहीं मिल पाता। जो धर्म को साथ में रखकर धन का अर्जन करता है, धर्म को साथ-साथ रखकर भोग करता है, उसको धनार्जन और भोग भी कभी दुर्गति के कारण नहीं बनते। शायद इसीलिए चार पुरुषार्थों का क्रम (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) रखा गया है। मोक्ष पुरुषार्थ हमेशा धर्म पुरुषार्थ पूर्वक ही होता है और अन्त में होता है इसलिए उसे अन्त में कहा गया है। आप भी हमेशा धर्म पूर्वक ही धन का अर्जन एवं भोग करें। कहा भी है- जिस प्रकार कृषक खेती (धान्य) पकने पर उपलब्ध धान्य में से सुन्दर, योग्य, पुष्ट धान्य को आगामी फसल के लिए बीज रूप में निकाल कर पृथक् रख देता है, शेष धान्य का उपभोग करता है उसी प्रकार समझदार, ज्ञानी व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह धर्म (दान, भगवान की पूजा, दर्शन आदि) का संरक्षण करते हुए धन/भोग का अनुभव करे।

दान का पैसा तत्काल दें

आप दान देने के बाद एक बात का ध्यान रखें। जहाँ अर्थात् धार्मिक क्षेत्र मंदिर-धर्मशाला बनवाने, मंदिर में चौकी-पाटा-चटाई, घण्टा, झालर, दरी आदि उपकरण देने के लिए या चंदे आदि के रूप में जो दान बोला है, देने के लिए कहा है, उसे उसी समय दे दें। या जेब में पैसा देखकर ही बोलें। इसी प्रकार स्कूल, कॉलेज, सामाजिक संस्था में भी देना हो, तत्काल दे दें। ताकि आपको निर्माल्य (दान दिया हुआ धन) द्रव्य के उपयोग का पाप नहीं लगे। कई लोग दान देकर/बोलकर वर्षों तक उसे नहीं चुकाते हैं। इसका अर्थ है कि वे दान दिये हुए पैसे से भी ज्यादा तो खा

ही जाते हैं। क्योंकि यदि किसी ने बैंक में ५००० रुपये फिक्स करवा दिये तो लगभग दस वर्षों में वे दूने हो जाते हैं। आप सोचें यदि आपने दस वर्षों के बाद दान का पैसा चुकाया तो जितना दिया था उतना तो आप खा ही गये। फिर दान क्या दिया ? दूसरी बात, आप किसीको पैसा उधार देते हैं तो एक या दो दिन का भी ब्याज लेते हैं या महीना पूरा होने के बाद एक-दो दिन भी ज्यादा होने पर अगले महीने का ब्याज ले ही लेते हैं। तो फिर दान के क्षेत्र में भी यदि आपने एक दिन भी पैसा रखा है तो नीतिपूर्वक उसका ब्याज देना ही चाहिए। फिर वर्तमान में तो आपको इसका कुछ भी फल समझ में नहीं भी आयेगा लेकिन भविष्य में जब इसका फल मिलेगा तब आप सोचते ही रह जायेंगे कि आपने पूर्व में ऐसा क्या पाप किया जिसके फल में आपको इतना कष्ट/दु:ख भोगना पड़ रहा है।

एक बड़ा दातार सेठ था। वह मंदिर आदि स्थानों पर भरपूर दान देता था। दान देने के फल में ही मानों उसके घर में लक्ष्मी बरस रही थी। एक दिन वह दुकान से घर आ रहा था। रास्ते में मंदिर पड़ता था। मंदिर में काम चल रहा था, ईंटों के ढेर लगे थे। सेठ कौतुकवश एक ईंट उठाकर घर ले आया। जिस दिन वह ईंट घर में लाया उसी दिन से उसके घर से लक्ष्मी धीरे-धीरे रवाना होने लगी। इस प्रकार कुछ ही महीनों में उसके घर की लगभग ८०-९०% लक्ष्मी चली गयी। एक दिन वह दु:खी होता हुआ एक संत के पास पहुँचा। उसने संत से प्रार्थना पूर्वक धन नष्ट होने का कारण पूछा। संत ने कहा- ''तुमने कहीं-न-कहीं से निर्माल्य द्रव्य खाया है। निर्माल्य द्रव्य खाने में आया है, उसीका यह दुष्फल है।'' सेठ ने संत की बात सुन विचार किया। उसे अचानक वह घटना याद आई जब वह कौतुकवश मंदिर की एक ईंट उठाकर घर लाया था। उसने बच्चे के समान निश्छल होकर संत को पूरी बात बताते हुए प्रायश्चित्त माँगा। संत ने कहा, ''तुमने जो ईंट उठायी थी, उसी ईंट के बराबर वजन वाली सोने की ईंट मंदिर में दान करो। तब तुम्हारा पाप धुलेगा।'' सेठ ने वैसा ही किया। प्रायश्चित्त करने से उसकी दरिद्रता मिट गई। यह उसी भव में फल देने वाली कथा है। अब अगले भव में जो फल मिला उसे कहते हैं-

अयोध्या नगर में सुरेन्द्रदत्त नाम का एक सेठ रहता था। वह प्रतिदिन दस दीनारों से, अष्टमी को सोलह से, अमावस पूर्णिमा को चालीस से तथा चतुर्दशी को अस्सी दीनारों से पूजा करता था। एक बार वह १२ वर्ष के लिए धन कमाने परदेश जा रहा था। वह अपने मित्र रुद्रदत्त को बहुत सारा धन देकर विधिवत् भगवान की पूजा करने के लिए कहकर चला गया। रुद्रदत्त ने धन पाकर लोभ में जुआ, परस्त्रीसेवन

आदि में सारा पैसा नष्ट कर दिया। धन नष्ट होने पर वह चोरी करने लगा। एक दिन चोरी करते हुए पकड़ा गया, मृत्यु की सजा से मरकर नरक में गया। नरक से आकर मच्छ हुआ फिर नरक गया। इस प्रकार वह बार-बार नरक में जाकर दु:ख भोगता रहा.....। अत: आप दान का थोड़ा सा पैसा खाकर असंख्य वर्षों तक दु:ख का रास्ता नहीं खोलें।

इसी प्रकार आप किसी धार्मिक संस्था में मैनेजर हैं तो बिल्डिंग आदि बनाते समय या रसीद आदि काटते समय भी दान का पैसा नहीं खावें। क्योंकि वह भी निर्माल्य है। उसका उपयोग करने से भी इतना ही दुष्फल मिलता है।

मूल सींचे चूल नहीं

एक बुढ़िया थी जो प्रतिदिन अपने बगीचे का सिंचन करती थी। उसका बगीचा अच्छा फला-फूला था। एक बार उसको कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर जाना था। वह अपनी पड़ोसन से मिलने जा रही थी कि बेटे ने पूछा- माँ! आप किस काम के लिए पड़ोस में जा रही हो? माँ ने बताया- ''बेटा! मैं पड़ोसी को यह कहने जा रही हूँ कि जब तक मैं लौटकर नहीं आ जाऊँ तब तक तुम मेरे बगीचे में पानी देते रहना।'' बेटे ने कहा- ''माँ ! आप यह सब पड़ोसी से मत कहो, मैं ही बगीचे की सिंचाई कर दूँगा।'' माँ ने बेटे को बहुत समझाया क्योंकि उसे मालूम था कि बेटा कभी बगीचे में नहीं गया है, उसने कभी पेड़-पौधों को पानी नहीं पिलाया है इसलिए वह सुचारु रूप से यह काम नहीं कर पायेगा। लेकिन बेटा नहीं माना। उसने माँ को पड़ोसी से यह काम करवाने के लिए मना कर दिया। माँ ने बेटे पर विश्वास कर लिया और बार-बार सिंचाई की विधि समझाकर बाहर (दूसरे गाँव) चली गई। दूसरे दिन बेटा बगीचे में गया। उसने देखा पेड़-पौधों पर पानी का नाम निशान नहीं है। बगीचे की जमीन गीली है। पेड़-पौधों के आस-पास की जमीन में पानी डाला गया है। लेकिन पत्ते फल आदि के ऊपर पानी की एक बूँद नहीं डली है। उसने सोचा माँ वृद्ध हो गई है, भूलने लगी, उसकी बुद्धि क्षीण हो गई है इसलिए वह फल-फूलों में पानी न पिलाकर क्यारियों (पेड़-पौधों के आस-पास की भूमि) में पानी डालती है जिसको फूल, पत्ते छू तक नहीं रहे हैं, भला क्यारियों में पानी डालने से फल-फूलों की उत्पत्ति-वृद्धि कैसे हो सकती है? अत: मैं अब फल-फूल-पत्तों को पानी पिलाऊँगा। माँ भी आठ दिन के बाद आकर देखेगी तो देखती ही रह जायेगी कि बगीचे में पहले की अपेक्षा कितनी वृद्धि हुई है। उसमें कितने फूल महक

रहे हैं। वह प्रतिदिन फूल-फल पत्तों पर पानी छिड़कने (सींचने) लगा। आठ दिन में फल-फूल मुरझा गये। पत्ते सूख गये। बगीचे की रौनक ही चली गई। माँ आठ दिन के बाद बाहर से आते ही बगीचे में गई और बगीचे की यह हालत देख क्रोधित होकर बेटे से बोली- ''मूर्ख ! ये क्या किया, बगीचा सूख कैसे गया?'' बेटे ने पूरी बात बता दी। माँ समझ गई। यह मूल को नहीं जानता है, इन फूल-फलों में रस कहाँ से आ रहा है, इस बात (रहस्य) को नहीं समझता है इसीलिए फल-फूलों को सींच रहा था।

ठीक इसी तरह दुकान पर बहुत बैठने से, बहुत दौड़-धूप करने से पैसा कमाया जाता है, नहीं, लक्ष्मी तो पुण्य की दासी है और पुण्य धार्मिक कार्यों को करने से प्राप्त होता है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि आप दुकान खोलें ही नहीं, इधर-उधर घूमते रहें। यह सोचते रहें कि पुण्य का उदय होगा तो लक्ष्मी अपने आप आयेगी। भाग्य के साथ पुरुषार्थ अति आवश्यक है पुरुषार्थ के माध्यम से भाग्य को प्रगट किया जाता है, इसलिए आप नियमित रूप से कम-से-कम १५-२० मिनट धर्म-ध्यान करने का संकल्प रखें।

आस्तिक बनें

आप यह कभी नहीं सोचें कि ''पाषाण की इन प्रतिमाओं में क्या रखा है, आत्मा तो स्वयं धर्ममय है। अपने भाव अच्छे हैं तो घर-दुकान कहीं पर धर्म हो सकता है। धर्म कर सकते हैं। इसलिए मंदिरों में जाने से क्या लाभ? अरे, जो पाप करता है वह मंदिर जावे, धर्म करे। अपन तो पाप करते ही नहीं हैं, क्यों मंदिर जावें। भगवान की भक्ति, पूजा, स्तुति आदि में क्या है यह तो ढोंग है, दिखावा है।'' आपकी ये सब धारणाएँ बिल्कुल कोरी हैं। पाषाण और भगवान में उतना ही अन्तर है जितना एक कागज और फोटो में, एक लोहे की सांकल और सोने की चेन में होता है। एक कागज देखकर कोई विशेष आकर्षण नहीं होता है जबकि एक फोटो देखकर उस फोटो वाले के गुणों का स्मरण होता है, उस व्यक्ति की याद आ जाती है उसी प्रकार भगवान की मूर्त्ति को देखकर मूर्त्तिमान के प्रति हमारा आदर उत्पन्न होता है, उसे देखकर हममें भी विषय-कषायों से विरक्त होने की भावनाएँ जागृत होती हैं, उसके समान ही सुख-शांति से हम भी जी सकते हैं। हम भी इनके समान निर्विकल्प बन सकते हैं, आदि-आदि विचारों से उत्साहित/आत्मशक्ति की ओर हमारा ध्यान जाता है, आत्म-कल्याण की प्रेरणाएँ मिलती हैं या फिर यूँ कहा जा

सकता है कि भगवान और पाषाण का अर्थ है फल-फूल, पत्र-मूल, जड़ आदि और उनसे (संस्कारित करने के बाद) तैयार की गयी औषधि। अर्थात् भगवान एक औषधि हैं। इनके माध्यम से हम संसार के दुःख, जन्म-मरण आदि रोगों को नष्ट कर सकते हैं। इसी प्रकार शास्त्र यद्यपि जड़ है, शब्द में ऐसी कोई शक्तियाँ आँखों से नहीं दिखतीं लेकिन उनकी शक्तियों का अनुमान सामान्य रूप से भी लगाया जा सकता है। जैसे- बादल की गड़गड़ाहट, ढोल-बाँसुरी आदि की ध्वनि। इसी प्रकार आपसी वाद-विवाद, उपदेश-गाली आदि के रूप में शब्दों की शक्तियों का अनुभव होता है फिर शास्त्र के शब्द तो हमें उस पौराणिक, आधुनिक, ऐतिहासिक वस्तु को इंगित करने का एक साधन हैं, श्री राम-सीता कैसे थे, भगवान महावीर ने किस प्रकार की तपस्या की थी, आदि सभी जानकारियाँ हमें शब्दों के माध्यम से ही होती हैं, यदि शब्द नहीं होते, शब्द में ऐसी शक्तियाँ नहीं होतीं तो हम कैसे जान पाते कि सीता जी इतनी महान् थी कि जिनके पातिव्रत से अग्नि पानी बन गई। द्रौपदी की भगवान के प्रति इतनी भक्ति थी कि घंटों तक खींचने के बाद भी उसके वस्त्र समाप्त नहीं हुए, दुष्ट दुःशासन भी उसको नग्न नहीं कर पाया, आदि......।

एक दिन एक नवयुवक स्वामी दयानन्द सरस्वती का उपदेश सुनते-सुनते बीच में ही बोल पड़ा, ''यह भक्ति क्या है? भगवान क्या होते हैं? उनका नाम लेने से क्या होता है? आप लोगों ने यह सब शब्दों की दुनिया बना रखी है, उसमें कुछ भी तथ्य नजर नहीं आता है।'' युवक के प्रश्न सुनकर स्वामी जी थोड़ा तुनक कर बोले- ''अरे पागल! क्या बकता है, तेरा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है, उल्लू कहीं का, तुझे कुछ समझ ही नहीं है, जानता कुछ है नहीं और अहंकार करता है जैसे- कोई बड़ा पण्डित आया हो....।'' स्वामी जी का उत्तर सुनकर युवक अपमान से तिलमिला गया। वह गुस्से में एक-दम बोला- ''आप संन्यासी हैं, कैसा कठोर बोल रहे हैं, आपको बोलने का ढंग तक नहीं है....।'' स्वामी जी शांत स्वर में बोले- ''भैया, क्या हो गया? मैंने जो कहा वे तो शब्द मात्र थे और तो कुछ नहीं था। शब्दों से क्या हो गया, क्या कुछ चोट पहुँची। अरे, कोरे शब्द कोई पत्थर तो नहीं थे जिनसे चोट लगती।'' युवक बोला- ''अरे, आपने तो मेरे सीने में चाकू ही घोंप दिया, कितने गहरे घाव हो गये हैं और कहते हैं कि क्या हो गया, क्या लग गया?'' स्वामी जी- ''हाँ भाई, कहाँ क्या लग गया? तुम स्वयं कह रहे थे कि शब्दों में कुछ नहीं है, ये भक्ति, भगवान आदि सब शब्दावली है और कुछ नहीं।

शब्दों में कुछ नहीं है और दो-चार शब्दों को सुनकर आग बबूला हो गये। जरा सोचो, जैसे बुरे शब्दों ने तुम्हें प्रताड़ित किया, घायल कर लिया वैसे ही भगवान के पवित्र नाम से, उनके दर्शन से दु:ख-दर्द के घाव भर जाते हैं, संतप्त मन को शीतलता एवं शांति मिलती है।'' नवयुवक को सब बात समझ में आ गई, वह उसी दिन से भगवान की भक्ति करने लगा।

आप भी यौवन के जोश में नास्तिक नहीं बनें, भगवान पर श्रद्धा रखें, जितना समय मिले भगवान की भक्ति अवश्य करें। आप सुखी रहेंगे। आपको दु:खों में भी मानसिक शांति की अनुभूति होगी।

धन कमाते समय प्रतिदिन आय व्यय का हिसाब अवश्य रखें। क्योंकि इसके बिना व्यापार में सफलता मिल ही नहीं सकती है। कभी-कभी व्यापार प्रगति पर लगता है लेकिन जब हिसाब लगाने बैठते हैं तो आय कम और व्यय ज्यादा निकल आता है। जब तक आपका व्यापार सही ढंग से नहीं जमा है, आप खर्च कम-से-कम करें, व्यापार के माध्यम से ही दुकान में पूंजी बढ़ावें। कई लड़के व्यापार शुरू करते ही यह सोचकर कि अब मैं भी कमाने लगा हूँ, बिना विवेक के खर्चा करना शुरू कर देते हैं। होटलों में यार-दोस्तों के बीच अनर्गल पैसा उड़ाना प्रारम्भ कर देते हैं, पत्नी हो तो उसको घुमाने, उसके लिए खरीदी, उसके साथ फोटो खिंचवाने आदि में अतिव्यय कर देते हैं। फल यह निकलता है कि पैसा बढ़ने की बात तो बहुत दूर, दुकान में लगाई गई पूंजी भी समाप्त होने लगती है अत: विवेक पूर्वक कार्य करें। आवश्यकता के अनुसार खर्च भी करें, दान भी करें और बचावें भी।

व्यापार करते समय आप अधिक नौकरों के चक्कर में नहीं पड़ें। आप यह नहीं सोचें कि जिनकी दुकान पर बहुत नौकर होते हैं वह बड़ा पुण्यात्मा और धनाढ्य व्यक्ति है। आप स्वयं अपनी भुजाओं पर विश्वास रखें। आपको इतना आत्मविश्वास होना चाहिए कि मैं एक नहीं दो दुकानें भी एक साथ अकेला सम्हाल सकता हूँ। मैं स्वयं अपने बल पर अपनी दुकान को सुचारु ढंग से चला सकता हूँ और जितना काम मैं अकेला कर सकता हूँ उतना काम चार नौकर मिलकर भी नहीं कर सकते हैं। वास्तव में, दुकान शुरू करते ही नौकर रखने का अर्थ दुकान चलने की सम्भावना कम है। दुकान चलेगी, विचारणीय है। क्योंकि नौकर की, नौकरी करते रहने पर भी वह कब आँख में धूल झोंक देगा, कब आपकी दुकान से क्या/कितना उठाकर

चलता बनेगा, नहीं कहा जा सकता है। किसी कारणवश एक दिन दुकान बन्द रह जाए तो इतनी हानि नहीं होती जितनी की एक घण्टा भी मात्र नौकर के भरोसे दुकान छोड़ने से होती है। यह बात अलग है कि लम्बा-चौड़ा व्यापार हो, अकेले से सम्हल ही नहीं सकता हो, पिताजी का जमा-जमाया धन्धा हो उसमें नौकर का होना आवश्यक है।

बेटे का विवाह कब करें

जब तक आपका बेटा अपने पैरों पर खड़ा नहीं हुआ है अर्थात् कम-से-कम चार सदस्यों का पालन-पोषण करने योग्य धन नहीं कमाने लगे, आप उसके विवाह का विचार नहीं करें। हाँ, लड़के के सामने विवाह की चर्चा अवश्य करते हुए उसे यह जताते रहें कि जब तक तुम अच्छी तरह से कमाने नहीं लगोगे तब तक हम तुम्हारा विवाह नहीं करेंगे। यदि पाउच आदि खाता है, रात्रि में १० बजे के बाद भी बाजार में आवारा लड़कों जैसे घूमता रहता है, शराब पीता है, शराब पीने वालों के साथ रहता है, घुमक्कड़ हो तो कहते रहें कि तुम्हारा विवाह करके क्या करेंगे। आने वाली बेचारी अकेली पड़ी रहेगी। और आप क्या पता कहाँ घूमते रहेंगे। कभी प्रेम से, कभी डाँटकर, तो कभी हँसी-हँसी में सावधान करते रहें। भले ही आपका धन्धा कितना ही फैला हुआ हो, दुकान पर किसी एक की आवश्यकता भी हो तो भी यदि बेटा उद्दण्ड है, पैसे फेंकता है, पैसों का कुछ महत्त्व ही नहीं समझता है तो आप उसे अलग धंधा करवावें ताकि वह अपनी जिम्मेदारी समझे; दुकान में होने वाले हानि-लाभ को समझता हुआ आगे का कार्य कर सके; पैसों का सदुपयोग कर सके और आपको भी समझ में आये कि आपके बेटे के भाग्य में कितना धन लिखा है, आपका बेटा कितना पुरुषार्थी है। पुरुषार्थ से धन कमाने की क्षमता रखता है। इसके अलावा अलग से उसके पास जिम्मेदारी के काम होने से इधर-उधर घूमने, मित्रों के साथ होटल-सिनेमा आदि में अनावश्यक समय और पैसा बर्बाद करने की उसे फुर्सत नहीं मिलेगी। यदि उद्दण्ड नहीं है, आपका आज्ञाकारी है, आपसे विशेष प्रेम भी है तो भी दुकान/फैक्ट-ी/एजेन्सी आदि किसी एक विशेष कार्य की जिम्मेदारी उसको सौंप दें। ताकि उसको भी सन्तुष्टि रहे कि मेरा भी एक धन्धा है, मेरी भी एक दुकान है। अन्यथा उसको ऐसा ही लगता रहेगा कि मैं तो पापा की दुकान पर बैठता हूँ। मुझे किसी बात की चिन्ता ही नहीं है....। कुछ वर्षों तक बेटे की दुकान के आय-व्यय का ब्यौरा भी अवश्य लेते रहें। कहने का आशय

यह है कि अच्छी तरह जिम्मेदारी से धन कमाने पर ही विवाह करें। ताकि विवाह के बाद आपको भी चिन्ता नहीं करनी पड़े और बेटे-बहू को भी दु:खी नहीं होना पड़े। कोई-कोई माता-पिता लापरवाह बच्चों/बेटे की भी शादी कर देते हैं। फल यह होता है कि घर में बहू आ जाती है, बच्चे हो जाते हैं लेकिन उनके पालन-पोषण का भार माता-पिता के ऊपर ही रहता है, बहू को बच्चों के लिए छोटी-छोटी वस्तु लाने के लिए भी हाथ फैलाना पड़ता है। हमेशा अपने आपको दबा हुआ महसूस करना पड़ता है.....। इस प्रकार वह भी दुखी हो जाती है और आपको भी हमेशा उसकी चिन्ता करनी पड़ती है। अत: पैरों पर खड़ा हो जाने पर ही बेटे की शादी करवावें। यदि बेटा कम बुद्धि का है विशेष कमाना जानता ही नहीं है, कमा ही नहीं सकता है तो भी कुछ व्यवस्था बनाने के लिए उसकी शादी करनी ही है तो पहले उसके नाम से इतना पैसा बैंक आदि में फिक्स करवा दें जिसके ब्याज से उसके परिवार का भरण-पोषण हो सके।

रुचि पर ध्यान दें

आप अपने बेटे/बेटी की शादी के पहले यह ध्यान अवश्य रखें कि आपका बेटा/बेटी किसके साथ शादी करना चाहते हैं अर्थात् कैसी लड़की/लड़के से शादी करना चाहते हैं। क्योंकि संसार में किसी को पढ़ी-लिखी, किसी को गाँव की, किसी को शहर की, किसी को कम पढ़ी हुई, किसी को गौरी, किसी को साँवली, किसी को फैशनेबल, किसी को सादा-जीवन उच्चविचार वाली, किसी को सर्विस वाली, किसी को घर के कार्यों में विशेष रुचि रखने वाली, किसी को दुकान चलाने वाली, किसी को धनाढ्य घर की तो किसी को गरीब घर की लड़की पसन्द होती है। आप अपने बेटे की अनुकूलताएँ देखकर विवाह करें ताकि आपके बेटे के मन में यह धारणा न बने कि मैं तो इस लड़की से शादी करना ही नहीं चाहता था....।

विशेष – देखें - दहेज के चक्कर में न पड़ें।

नोट – बेटे के यदि किसी भी व्यापार में हाथ डालने पर हानि-ही-हानि होती है, भाग्य नहीं चलता है तो किसी और के नाम से अर्थात् पत्नी, बच्चे आदि के नाम से या फर्म के नाम बदलने से भी धन्धा चल सकता है। इतने पर भी यदि भाग्य साथ नहीं देता है तो आप बेटे को सर्विस करावें। किसी दुकान-फैक्ट-ी आदि में काम करने की प्रेरणा दें। ताकि हानि होने का अवसर ही नहीं आवे। शान्ति से दाल-रोटी सब्जी तो खा ही लें।

उपसंहार

इस प्रकार किशोरावस्था के संस्कारों में विद्यार्थी जीवन में सावधानियाँ एवं विद्या का महत्त्व बताते हुए, स्त्रीवर्ग में होने वाली एम.सी. के विषय में तर्क-समाधान तथा आधुनिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है। बेटी और बेटी के शील की रक्षा के लिए माँ को क्या सावधानी रखनी चाहिए तथा बच्चों को किस प्रकार सावधान करना चाहिए यह भी स्पष्ट कहा गया है। जब बेटी विवाह के योग्य हो जावे तो घर का माहौल, बातचीत आदि किस प्रकार की होनी चाहिए जिससे बेटी एक अच्छी बहू बन सके, अच्छी बहू बनकर धर्म, देश तथा कुल के लिए आदर्श बने, इस पर प्रकाश डाला गया है। इसीके साथ बेटा जब विवाह के योग्य हो जाय/किशोरावस्था में प्रवेश कर जावे तो उसके साथ माता-पिता का व्यवहार कैसा हो, उसे किस प्रकार का व्यापार करावें जिससे धन और धर्म दोनों की वृद्धि/सुरक्षा हो। एक व्यापारी अर्थात् धन कमाने वाले को किस प्रकार दान देकर धर्म की वृद्धि करना चाहिए ; दान देते समय क्या सावधानी रखनी चाहिए, दान के साथ पाप का आस्रव और अपकीर्ति न फैले आदि बातों को बताते हुए किशोरावस्था के संस्कारों को अन्तिम रूप दिया गया है। आप इसके आधार से अपने किशोर बच्चों को संस्कारित करके अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करें ताकि बच्चे भी संस्कारित होकर अच्छा जीवन बितावें।

नीतिकारों ने कहा है कि कन्या वर के सौन्दर्य को देखती है, कन्या की माँ वैभव को, पिता वर की योग्यता को, बन्धुजन अपने हित को तथा सामान्य लोग प्रीतिभोज के मिष्टान्न पर ध्यान रखते हैं।

(५) यौवन अवस्था के संस्कार

पूर्व भूमिका

यौवन अवस्था मनुष्य-जीवन में एक चौराहे के समान है। जिस प्रकार चौराहे से व्यक्ति जिस दिशा में जाना चाहता है सहज रूप से जा सकता है और यदि सही मार्ग नहीं पकड़े तो इतना भटक सकता है कि पुन: सही मार्ग पकड़ना कठिन हो जाता है; उसी प्रकार यौवन अवस्था में यदि मनुष्य का जीवन सत्संस्कारों से संस्कारित नहीं होता, उसे सत्संगति और सत्साहित्य का संयोग नहीं मिलता तो जीवन का भी इतना पतन हो जाता है कि वह पुन:, इस भव में तो संभव है कि किसी निमित्त से जीवन का उत्थान हो जावे, लेकिन इस भव में यदि जीवन का उत्थान नहीं हुआ तो फिर वापिस मनुष्य पर्याय और उसमें भी यौवन अवस्था की प्राप्ति अतिदुर्लभ हो जाती है। वास्तव में, यौवन अवस्था जीवन की दुपहरी है जिसमें वासना की प्रचण्डता आती है/रहती है; संसार कुछ और ही दिखने लगता है। इसमें चिन्ता रूपी धूप एवं अधिकार रूपी तृष्णा का प्रताप रहता है। इस समय प्रखर सौन्दर्य में भी भीषण वासना का ज्वार भाटा आता रहता है, उसे सीमित रखा जावे तो सर्वश्रेष्ठ है अन्यथा जीवन में पतन, यह सबसे सरल मार्ग है। लेकिन उनके जीवन में सत्संगति आदि के निमित्त से उत्थान-पतन नहीं होता है। क्योंकि वहाँ मांस-मदिरा-परस्त्री- सेवन आदि व्यसन तथा लड़ाई-झगड़ा आदि विशेष पाप होते ही नहीं हैं। नरकों में यौवन हो या बचपन किसी भी अवस्था में जीवन को संस्कारित करने का कोई साधन नहीं है और अतिक्रूर परिणामों के कारण उनमें न कभी जीवन संस्कारित करने का अर्थात् पापों से बचकर धर्म-पुण्य करने का भाव ही उत्पन्न होता है। तिर्यञ्चों में भी यौवन मिलता है लेकिन विवेक का अभाव और पराधीन होने के कारण जीवन को सुखी बनाने का विचार ही उत्पन्न नहीं हो पाता है; मात्र एक मनुष्य पर्याय ही ऐसी है जिसमें लम्बे समय तक यौवन मिलता है। यहाँ भोगों की साधन-सुविधाओं के साथ-साथ इहलोक-परलोक को सुखी बनाने के भी अवसर मिलते हैं। संतो का समागम और सत्साहित्य पढ़ने का अवसर मिलता है। भगवान के दर्शन, दान, परोपकार आदि का समय, शक्ति और बुद्धि मिलती है। उसका सदुपयोग या दुरुपयोग करना व्यक्ति की अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है। यौवन अवस्था में संयम (स्वच्छन्द वृत्ति का न होना) की लगाम के द्वारा यदि मन और इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में कर लिया जाय तो जीवन में सुख के सुगन्धित

पुष्प खिल सकते हैं। यौवन अवस्था में अपने मन को वश में रखने की शिक्षा देने वाली एक ऐतिहासिक घटना इस प्रकार है-

बीच वाली को मार जूते की

एक दिन तीन महिलाएँ पानी भरने जा रही थीं। उनमें से एक बनिये की, दूसरी क्षत्रिय की तथा तीसरी ब्राह्मण की पत्नी थी। कुए पर जाने के लिए एक पगडंडी थी। वे तीनों ही अपनी कुलपरम्परा, संस्कारों के अनुसार पगडंडी पर क्रम से चल रही थी। अर्थात् सबसे आगे बनियाइन, बीच में क्षत्राणी और सबसे पीछे ब्राह्मणी चल रही थी। कुए के पास ही एक साधु बैठा था। वह रुद्राक्ष की माला हाथ में लिये एक मंत्र का उच्चारणपूर्वक जाप कर रहा था। वह मंत्र था- ''आगे वाली भी अच्छी, पीछे वाली भी अच्छी, बीच वाली को मार जूते की'' वह इस मंत्र को एक-एक बार पढ़कर माला का एक-एक मणिया खिसका रहा था। पगडंडी पर चलते हुए उन तीनों ने भी वह मंत्र सुना। मंत्र सुनते ही आगे वाली बनियाइन ने पीछे वाली ब्राह्मणी की तरफ देखा और मुँह पर पल्ला लगाकर हँसने लगी। और इशारे से कहने लगी कि देखो- ये साधु क्या कह रहा है, मैं (आगे वाली) भी अच्छी हूँ, पीछे वाली तुम भी अच्छी हो और इस बीच वाली अर्थात् क्षत्राणी को जूते की मार लगाओ। उसकी हँसी और साधु की बात सुन क्षत्राणी को गुस्सा आ गया। उसने गुस्से में पानी भरने के बर्तन वहीं फेंक दिये और घर जाकर 'कोप भवन' में पहुँच गई अर्थात् बहुत रुष्ट हो गई। मध्याह्न में जब क्षत्रिय भोजन करने आया तो घर में क्षत्राणी को न देख उसने भण्डारगृह, शयनकक्ष, स्नानगृह, अड़ोस-पड़ोस में देखा लेकिन उसे कहीं पर क्षत्राणी नहीं मिली। उसने परेशान होते हुए बनियाइन से क्षत्राणी के बारे में पूछा तो बनियाइन ने प्रात:काल की पूरी घटना सुना दी। घटना सुनकर क्षत्रिय ने अनुमान लगाया कि शायद वह गुस्से के कारण कोपभवन में चली गई हो इसलिए वह कोपभवन में गया। उसके अनुमान के अनुसार ही क्षत्राणी काला चादर ओढ़कर पलंग पर पड़ी हुई थी। उसने दो-चार बार आवाज लगाई लेकिन क्षत्राणी इस प्रकार पड़ी रही मानों बहुत गहरी नींद में सो रही हो। उसने पास जाकर उसकी चादर खींची और बोला-''तुम आज इतना गुस्सा क्यों हो गई हो? मेरे रहते किसने तुम्हारा तिरस्कार किया है? या किसी ने कुछ कड़वे वचन कहे हैं? तुम उसका नाम बताओ मैं अभी उसका सिर धड़ से अलग कर दूंगा, उसका सिर लाकर तुम्हारे चरणों में चढ़ा दूंगा।'' आदि अनेक प्रकार से आश्वस्त करने पर

क्षत्राणी ने धीरे-धीरे सब बात बता दी। उसकी बात सुन क्षत्रिय को भी गुस्सा आ गया। साधु के प्रति अनेक प्रकार की दुर्भावनाओं/कल्पनाओं को करते हुए वह जल्दी-जल्दी साधु के पास जा रहा था तभी उसे दूर से ही साधु के पास बहुत क्षत्रिय बैठे हुए दिखाई दिये। उसने इतने क्षत्रियों को साधु के पास बैठे देखकर सोचा, ''मैं इतने लोगों के बीच में साधु का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। इसलिए मैं जब तक ये लोग साधु के पास से नहीं चले जाते हैं तब तक इसी वृक्ष के पीछे छुपकर बैठ जाता हूँ।'' वह छुपकर बैठ गया। थोड़ी देर में सभी क्षत्रिय अपने-अपने स्थान पर चले गये। साधु ने अपनी माला उठाई और जाप करने लगा, ''आगे वाली भी अच्छी, पीछे वाली भी अच्छी, बीच वाली को मार जूते की.....।'' क्षत्रिय ने छुपकर ही साधु की बात (आवाज) एकागृता से सुनी और चारों तरफ देखा कहीं से कोई नहीं आ रहा था। क्षत्रिय ने सोचा साधु बिना प्रयोजन कुछ नहीं बोलते। इधर-उधर कोई आ भी नहीं रहा है फिर भी साधु ''अगली वाली..... मार जूते की'' बोल रहे हैं। इसमें कोई रहस्य अवश्य होना चाहिए। लगता है क्षत्राणी को साधु की यह बात सुनकर गलतफहमी हो गयी है। वह साधु के पास गया। उसने अभिवादन किया। कुशल-क्षेम आदि पूछकर थोड़ी देर के बाद साधु की प्रशंसा करते हुए मंत्र का अर्थ एवं प्रयोजन पूछा। साधु ने क्षत्रिय की बात टालते हुए और मंत्र के विषय में जानने की रुचि देखने के लिए कहा- ''बेटा! ये तुम्हारे काम की बात नहीं है। यह तो हम साधुओं के ही प्रयोजन की बात है। तुम्हें तो अपने कल्याण की बात पूछना चाहिए।'' लेकिन जब क्षत्रिय ने बार-बार मंत्र का अर्थ जानने के लिए निवेदन किया तो साधु ने मंत्र को समझाते हुए कहा- ''बेटा ! अगली वाली अवस्था अर्थात् बचपना अच्छा है और पिछली वाली अवस्था अर्थात् अन्तिम दिनों में आने वाली वृद्धावस्था भी अच्छी है क्योंकि इन अवस्थाओं में व्यक्ति अधिक पाप, व्यसन आदि खोटे काम नहीं करता है, न ही कर सकता है और न उसमें करने की क्षमता ही रहती है। बीच की जो यौवन अवस्था है उसको जूते मारकर रखना चाहिए। अर्थात् अपने वश में रखना चाहिए। संयमित रहना चाहिए। क्योंकि यौवन अवस्था में ही व्यक्ति अच्छे-से-अच्छे और बुरे-से-बुरे सभी कार्य कर सकता है। यदि यौवन अवस्था में सावधानी नहीं रही तो जीवन में सुख की गन्ध भी नहीं आ सकती है। आप स्वयं इस बात का अनुभव करते होंगे। मांस खाने, शराब पीने का प्रारम्भ, परस्त्री का सेवन, गुण्डा-गर्दी, माता-पिता, सास-ससुर का तिरस्कार,

उनसे लड़ाई-झगड़ा, अलग रहना, दादागिरी दिखाते रहना आदि बुरे कार्य कब होते हैं, यौवन अवस्था में ही। और यौवन में सावधानी रखने पर तीर्थ-क्षेत्रों की वन्दना, दान-दया, परोपकार, धनोपार्जन आदि अच्छे कार्यों की सिद्धि भी होती है अत: यौवन अवस्था को संयम की लगाम लगाकर संतुलित-अनुशासित रखना चाहिए। मंत्र के अर्थ को सुनकर क्षत्रिय को बहुत प्रसन्नता हुई। वह मन-ही-मन अपने दुर्भावों (साधु को मारने, उनसे लड़ने आदि) का पश्चाताप करता हुआ घर पहुँचा। और क्षत्राणी को पूरी बात बताते हुए बोला- ''मूर्खे! तुम्हारी बातों में आकर यदि मैं साधु की हत्या कर देता, साधु को उल्टा-सीधा कुछ भी कह देता तो लोग मुझे क्या कहते? मुझे साधु के तिरस्कार का जो फल मिलता उसे मैं कैसे भोगता....।'' क्षत्राणी को भी सब बात समझ में आ गई....। इस कथानक से हम अनेक शिक्षाएँ ले सकते हैं। जैसे-

(१) गलतफहमी में आकर बिना सोचे कुछ भी कार्य नहीं करना चाहिए।

(२) यौवन के मद में अन्धे होकर कुमार्ग पर नहीं जाना चाहिए।

(३) यौवन में संयमित रहते हुए जीवन उत्थान करना चाहिए।

(४) पत्नी के इतने लट्टू भी नहीं बनना चाहिए कि होश ही नहीं रहें।

शादी होते ही लड़की

शादी होते ही लड़के को ऐसा लगता है कि वह कोई बहुत बड़ी विजय करके लौटा है। इसलिए वह हर समय आपको (पत्नी को) साथ में रखना चाहता है। वह बड़े बुजुर्गों के सामने भी आपसे हँसी-मजाक, पास में आकर बैठ जाना, आँखों से बातें करने लगना आदि निर्लज्जता के काम कर सकता है। लेकिन आप सावधान रहें। नयी बहू में थोड़ा संकोच, शर्मीलापन और लज्जाभरी मुस्कान ही शोभा देती है, उद्दण्डता नहीं। वह पार्टी, घूमने, पिकनिक आदि में आपको ले जाकर अपने दोस्तों को यह बताना चाहता है कि उसकी पत्नी कितनी सुन्दर, सुडौल और सभ्य है। लेकिन आप सतर्क रहें, कितने भी घनिष्ठ मित्र हों, आँखों में आँख गड़ाकर बातें नहीं करें। नवजवानों के साथ आवश्यकता से अधिक बातचीत हँसी-मजाक शील को नष्ट करने का मुख्य कारण है। पुरुष वर्ग इस बात को जल्दी नहीं समझ पाता है इसलिए वह सहज रूप से सबको सीधा-सादा मानता हुआ पत्नी को यद्वा-तद्वा सब कुछ कराने के लिए तैयार करना चाहता है, कर लेता है। एक राजा की रानी बहुत सुन्दर थी। उसकी प्रशंसा सुनकर किसी दूसरे राजा के

मन में उसे देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने उसको देखने के लिए बसन्तोत्सव के बहाने अनेक राजाओं के साथ उस राजा के यहाँ भी निमंत्रण भेजा। उस राजा की शादी हुए कुछ ही दिन हुए थे। वह रानी के रूप पर पूर्ण रूप से न्योछावर था। निमंत्रण आते ही उसने अपनी रानी से कहा- ''हमें उस राजा के यहाँ बसन्तोत्सव में अवश्य चलना है, सब तैयारी कर लो अर्थात् अच्छी शृंगार की सामग्री ओर साड़ियाँ जमा लो।'' रानी ने कहा- ''मैं बसन्तोत्सव में नहीं जाऊँगी। आप चले जाइये।'' राजा ने उसे अपने साथ चलने के लिए बहुत मनाया। लेकिन रानी ने कहा- ''नहीं, इतने राजाओं के बीच में नयी बहुओं को नहीं जाना चाहिए क्योंकि नवजवान स्त्री को देखकर किसके मुँह में पानी नहीं आता है। कहा भी है- ''धन और नारी को हमेशा गुप्त रखना चाहिए। गोपनीयता के अभाव में ये कभी भी हाथ से निकल सकते हैं।'' इस प्रकार रानी के बहुत समझाने पर भी राजा अपनी बात पर अड़ा रहा। रानी को मजबूर होकर राजा के साथ जाना पड़ा। आखिर वहाँ पहुँचने पर वही हुआ जो रानी ने सोचा था। राजा (जिसने बुलाया था) उसको देखते ही मुग्ध हो गया और अभी इसके वस्त्राभूषण तैयार नहीं हुए है। इस प्रकार बहाना बनाकर रानी को वहीं रोककर कुछ ही दिनों में बलात् अपनी रानी बना लिया। अत: आप विचारपूर्वक काम करें। वृद्ध मम्मी-पापा, गुरुजन-संत आदि के सामने वह असभ्य चेष्टाएँ करे तो भी आप उसमें रुचि नहीं लें। वह उनके सामने आपको कुछ खिलाने लगे, पानी का गिलास भरकर देने लगे, आपके हाथ से वस्त्र लेकर धोने-सुखाने लगे। आप किसी भी हालत में उसे स्वीकार नहीं करें। इसमें आप यह भी नहीं सोचें कि मैं अपने पति का तिरस्कार कर रही हूँ या उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर रही हूँ। यहाँ तो उसको स्वीकार कर लेना ही एक प्रकार से माता-पिता का अपमान है। आप स्वीकार नहीं करेंगी तो थोड़े दिन में वह अपने आप इस प्रकार की चेष्टाएँ करना बन्द कर देगा। इसके बारे में आप अकेले में उसे समझा सकती हैं। उसके ऊपर दबाव भी डाल सकती हैं। वास्तव में पति-पत्नी का प्रेम अपने शयनकक्ष में ही शोभा देता है, बाहर नहीं।

दोष नहीं देखें

आप ससुराल जाते ही पहले दिन से पति में दोष देखना, दोष को लेकर लड़ाई-झगड़ा करना प्रारम्भ न कर दें। पहले आप पति को प्रेमपूर्वक अपना बनाने का प्रयास करें। आप पति के मन में अपने प्रति इतना आत्मविश्वास और प्रेम

उत्पन्न कर दें कि वह आपकी हर अच्छी बात को मानने के लिए सहज रूप से तैयार हो जावे। आप अपने पति को इतना खुश रखें कि वह आपके प्रति इतना विश्वस्त हो जावे कि आप एकान्त से उसका हित करने वाली हैं। उसके दु:ख में दु:खी एवं सुख में सुखी होने वाली, उसके दु:ख में सुख की एक श्वास तक नहीं लेने वाली एक सती नारी हैं। और आवश्यकता पड़ने पर अपनी हर सुख-सुविधा उसके लिए न्यौछावर कर सकती हैं/कर देंगी। कुछ महीनों तक तो आप, चाहे आपके मन की न हो, उचित बात को मानने में आनाकानी नहीं करें। एक-दो बार मना करने पर भी वह आपको इसलिए अपनी बात मनवाना चाहता है कि ''मैं तुम्हारा स्वामी हूँ'' आप मान लें। उसके बाद जब वह प्रसन्न हो, प्रेम से ओत-प्रोत हो, अच्छे मूड में हो, दोष की याद दिलाएँ। दोष छोड़ने के लिए प्रेरित करें। दोष छोड़ने का प्रोमिस (वादा) करवावें। धर्म क्रिया करवावें। धार्मिक स्थानों, संतों के पास ले जाने का प्रयास करें। बुरी आदतों से होने वाली हानियों को बतावें। (यदि घर में विशेष धन नहीं है तो) आर्थिक स्थिति की ओर ध्यान आकृष्ट करें। बुरी आदतें छोड़ने से होने वाले लाभ बतावें। विशेष रूप से उस समय इन सब युक्तियों का उपयोग करें, जिस समय आपके बिना वह नहीं रह सकता है अर्थात् जिस कार्य (खाने, घूमने, सोने, बोलने आदि) में आपकी अति आवश्यकता समझता है । आप थोड़ा कृत्रिम क्रोध दिखाकर, रूठ कर, खोटी आदतें छोड़ने के लिए मजबूर अवश्य करें। तानाशाही कभी नहीं दिखावें। क्योंकि तानाशाही दिखाने से सम्भव है कि पति सुधरने के स्थान पर और बिगड़ जावे। खोटी आदतों को छुड़ाने के लिए नीचे कुछ और भी युक्तियाँ दी जाती हैं -

खोटी आदतें कैसे सुधारें

(१) एक महिला ने अपने पति की शराब पीने की आदत छुड़ाने के लिए एक दिन जब उसके पति के आने का समय हुआ शराब की एक खाली बॉटल अपने कमरे में रख ली और शराबी जैसी चेष्टाएँ करना प्रारम्भ कर दिया। पति के आते ही वह उस पर झपट पड़ी। उसको यद्वा-तद्वा बोलने लगी....। पति ने सोचा, यह क्या हो गया है, यह ऐसा क्यों कर रही है। तभी उसको वहीं पास में पड़ी शराब की खाली बॉटल दिखाई दी। उसने बॉटल देखकर विचार किया- ओहो! यह भी शराब पीने लगी है। इस बात से उसको बहुत फीलिंग हुई। पत्नी दो-ढाई घण्टे तक नाटक दिखाती रही और सो गई। जब वह उठी तो पति ने उससे रात की

बात पूछी। पत्नी ने कहा- ''जब आप पीते हैं तो मुझे भी शराब अवश्य पीनी चाहिए। क्योंकि आप और मैं पति-पत्नी हैं, एक हैं, आपका और मेरा नेचर, खान-पान आदि भी एक जैसा होना चाहिए तभी तो पति-पत्नी का रिश्ता अच्छा चलता रहेगा.....। पति ने उसी दिन से संकल्प पूर्वक शराब छोड़ दी।

(२) एक पत्नी अपने घर में शराब से मत्त पति के पास एक कुत्ते को लाई और उसके गाल पर दो-तीन बिस्किट रखकर कुत्ते को खिलाने लगी। जब कुत्ता बिस्किट खाते-खाते पति के गाल को भी चाट रहा था उसने उसकी फोटो खींच ली। और एक दिन अपने पति को दिखाई। फोटो देखकर पति को सही-सही बात समझ में आ गई। उसने उसी दिन से शराब का त्याग कर दिया।

(३) एक स्त्री ने अपने पति की सिगरेट छुड़ाने के लिए अपने दो-ढाई वर्ष के बच्चे को सिगरेट पिलाना शुरू कर दिया। पति ने बच्चे को सिगरेट पिलाते देखकर पूछा- ''मूर्खे! यह क्या करती हो? क्या पागल हो गई हो?'' पत्नी ने कहा- ''जब आप सिगरेट पीते हैं तो वह कोई खराब काम नहीं हो सकता।'' मैंने सोचा, ''मैं अभी से बच्चे को सिगरेट पिलाना सिखा दूँ ताकि भविष्य में बच्चा आपको यह नहीं कह पावे कि पापा! आप सिगरेट क्यों पीते हैं?'' उसको समझ में आ गया। उसने सिगरेट पीना छोड़ दिया।

(४) एक बादशाह शराब पीते थे। एक दिन उन्होंने अपने मंत्री से शराब की बोतल मंगवाई। मंत्री ने बादशाह की शराब छुड़ाने के लिए शराब की बोटल के साथ मांस, वेश्या, हकीम (वैद्य) और कफन भी लाकर दे दिया। जब बादशाह ने मंत्री से चारों चीजें साथ लाने का कारण पूछा तो मंत्री कारण बताते हुए बोला- ''महाराज! शराब पीने वालों को नियम से इन चारों चीजों की आवश्यकता पड़ती है।'' बादशाह ने मंत्री का उत्तर सुनकर उसी दिन से शराब छोड़ दी।

इसी प्रकार अनेक विधियों से आप अपने पति की गलत आदतें सुधार सकती हैं लेकिन मीठी दण्ड व्यवस्था के साथ।

खोटी आदतों को छुड़ाने के लिए सबसे पहले आप यह उपाय करें कि पति रात्रि में दस बजे तक तो घर पर आ ही जावे। इससे काफी मात्रा में खोटी आदतें छूट ही जाती हैं।

विशेष- यदि पति का घर के बाहर परस्त्री की तरफ आकर्षण हो अर्थात् परस्त्री सेवन का व्यसनी हो तो शयनकक्ष में पलंग की दक्षिण दिशा में लाल रंग का

प्रयोग अधिक करें। दक्षिण की दीवारों का रंग भी लाल करें, पलंग पर लाल चादर बिछावें, लाल रंग का बल्ब लगावें तथा लाल रंग की ही ड-ेस पहनें।

कोई-कोई शराब आदि छोड़ना भी चाहते हैं लेकिन छोड़ने में तकलीफ होती है। बार-बार खाने-पीने की याद आती हो, नहीं चाहते हुए भी खाना-पीना पड़ता हो तो निम्नलिखित उपायों में से किसी का प्रयोग करें -

(१) सफेद मूसली (२) बहेड़ा की छाल (३) माजूफल (४) पठानी लोध (५)छोटी इलायची (६) कमरकस (पलास की गोंद) (७) काली सुपारी के फूल। इन सातों को समभाग मिलाकर चूर्ण बनाकर दूध के योग से हथेली पर मल-मल कर बड़े मटर के आकार की गोलियाँ बना लें। अफीम, चरस, गाँजा, स्मैक, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू की आदत छोड़ने के लिए गोली मुँह में रख लें। गोली को चबावे नहीं। कुछ खाना हो तो निकाल कर फेंक सकते हैं। और खाने के बाद दूसरी गोली ले लें। इस गोली को मुँह में रख लेने से बीड़ी आदि की याद ही नहीं आती है।

शराब की लत छुड़ाने के लिए

(१) सेव का रस बार-बार पीने से या भोजन के साथ सेवफल खाने से शराब की आदत छूट जाती है।

(२) उबले हुए सेवफल का दिन में तीन-चार बार सेवन किया जाय तो शराब की आदत छूट जाती है।

(३) २५० ग्राम अजवायन को जौ कूट (जौ के समान छोटे-छोटे टुकड़े) करके सोलह गुने अर्थात् ४ किलो पानी में ४८ घंटे तक काच या कलई के बर्तन में भिगो दें। तत्पश्चात् धीमी आँच पर इतनी देर तक उबालें कि पानी चौथाई शेष बचे। अगले दिन मसल कर छान लें और बोतल में भर लें। शराब की इच्छा हो तब लगभग ४ चम्मच की मात्रा में पी लें। तीन-चार सप्ताह निरन्तर सेवन से शराब की आदत छूट जाती है।

गुटखा पाउच आदि छोड़ने के लिए

१०० ग्राम अजवाइन और १०० ग्राम बड़ी सौंफ को साफ करके ६० ग्राम काला नमक मिलाकर पीस लें। इस चूर्ण में दो नीबू का रस मिलाकर रात भर (हो सके तो चन्द्रमा की चाँदनी में) रख दें। दूसरे दिन प्रात: इस मिश्रण को तवे पर धीमी आँच पर सुखाकर साफ शीशी में भर लें या गर्म पानी के छींटे देकर गोलियाँ बना

लें। जब भी गुटखा आदि की इच्छा हो मुँह में रखकर धीरे-धीरे चबा लें। गुटखा आदि की आदत छूट जायेगी। ४० दिन में तम्बाकू आदि के दाग भी मिट जाते हैं।

उपर्युक्त विधियाँ उन लोगों के लिए है जिनके पास धारणा शक्ति/इच्छा शक्ति अर्थात् विल-पावर अच्छा नहीं है। अन्यथा एक क्षण में जीवन भर के लिए इन सब पदार्थों को छोड़ा जा सकता है और छोड़ने के बाद उनकी तरफ भूलकर भी देखने से रोका जा सकता है क्योंकि **दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदल जाती है।** हमारी भावनाएँ यदि उनको छोड़ने की बन गईं, उनसे होने वाली हानियाँ समझ में आ गईं तो फिर कोई भी उसे अपने पथ से नहीं डिगा सकता है।

इसके अलावा एक विधि और है। यदि आप २० सिगरेट या २० पाउच रोज खाते हैं तो एक दिन में एक या प्रत्येक सप्ताह में एक-एक कम करके भी छोड़ सकते हैं। इस विधि से छोड़ने में कोई साइड इफेक्ट भी नहीं होगा। इन चीजों के छूट जाने पर गैस की तकलीफ मिट जायेगी। पाचन शक्ति में वृद्धि होगी, भूख अच्छी लगेगी।

छानबीन नहीं करें

आप ससुराल जाते ही घर की गुप्त जानकारी लेने की कोशिश नहीं करें। जैसे- घर की विशेष चाबियाँ कहाँ रखी जाती हैं/रखी रहती हैं। घर में कितना सोना-चांदी व मूल्यवान वस्तुएँ हैं; कहाँ रखी जाती हैं, कौन-कौन जानता है; आदि के बारे में पति, ननद, देवर आदि से जानने का प्रयास नहीं करें। छुपकर किसी की आपसी बातों/चर्चाओं को नहीं सुनें। क्योंकि ऐसा करने पर ससुराल वालों को ऐसा लगने लगता है कि यह हमारे घर में सी.आई.डी. बनकर आई है। हमारे घर की खोजबीन में लगी रहती है। इसलिए हमें भी इसके साथ बहुत सावधानी से वर्तना चाहिए। ताकि यह घर की गुप्त सम्पत्ति को नहीं जान पावे, आदि.....। और ऐसा करने से आपके आपसी व्यवहार अर्थात् घर वालों के साथ अपनत्व नहीं रहेगा। आप घर में इतना अधिकार प्राप्त नहीं कर पायेंगी जितना घर के स्थायी सदस्य को मिलता है/ मिलना चाहिए। और आप स्वयं को भी यह अनुभव नहीं होगा कि आप इस घर की ही सदस्या हैं। इसके अलावा आप अपने पूर्वज अर्थात् दादा-परदादा आदि कैसे थे। उन्होंने क्या समाज-विरुद्ध काम किये थे। उनको कितनी बार कोर्ट या जेल में जाना पड़ा था। उनके विचार किससे नहीं मिलते थे। आपके आने के पहले आपके पति के साथ सास-ससुर कैसा व्यवहार करते थे,

आदि। अनेक प्रकार की इन बातों को आप जान भी लेंगी तो आपको क्या लाभ होगा? उलटा आपको ही पश्चाताप एवं हीनता की अनुभूति होने लगेगी कि मैं कैसे घर में रहती हूँ, मेरा विवाह कैसे घर में हो गया है, आदि....। हो सकता है इन सब बातों को जानने के बाद ऐसा लगने लगे कि जब हमारी कुल परम्परा ही ऐसी है तो मैं भी यदि ऐसा करती हूँ तो कोई विशेष बात नहीं है, ऐसा सोचकर आप भी उच्छृंखल बनकर कुल को कलंकित कर सकती हैं। इस भव के साथ पापार्जन कर परभव भी बिगाड़ सकती हैं।

ससुराल का बखान पीहर में नहीं करें

यदि ससुराल वाले आपके माँ पिताजी आदि मायके वालों केलिए किन्हीं विशेष शब्दों का व्यवहार करते हों, यद्वा-तद्वा बोलते हों, शादी के समय हुए तिरस्कार के बारे में या सम्मान में कमी रह जाने के कारण कुछ कहते हों तो आप मायके में इन बातों को कभी नहीं छेड़ें और यदि मायके में भी ससुराल वालों के लिए ऐसा होता हो तो ससुराल में इन बातों को नहीं छेड़ें। क्योंकि आपको तो दोनों का रिश्ता प्रेमपूर्वक हमेशा के लिए निभाना है। भावुकता में आकर हर बात हर व्यक्ति के सामने कहने की नहीं होती। इस बात का ध्यान रखें, ऐसा करने से आप कभी भी फँस सकती हैं और आपकी जिन्दगी के साथ कुछ भी खिलवाड़ हो सकता है।

आप पीहर में सास-ननद-देवर आदि की बुराई कभी नहीं करें। ससुराल के रीति-रिवाजों की हँसी नहीं उड़ावें। ससुराल पक्ष की प्रशंसा करें। अथवा विशेष चर्चा नहीं करें। ताकि आपके माता-पिता को यह संतोष रहे कि उनकी बेटी अपनी ससुराल में अच्छी है। उनको बेटी की तरफ से कोई टेंशन करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप मायके वालों के सामने ससुराल वालों की बुराई कर भी देंगी तो क्या पीहर वाले आपके ससुराल वालों को सुधार सकते हैं या आपके ससुराल में जो कमियाँ हैं उनकी पूर्ति कर सकते हैं और पूर्ति करेंगे तो भी कब तक? मेरे विचार से तो यदि ससुराल वाले तुम्हें कहें भी कि अपने पीहर वालों से इस चीज की पूर्ति करवाना या ये चीजें तू पीहर से लेती आना तो भी आप पीहर वालों के सामने ये बातें नहीं रखें; चाहे ससुराल वाले आपको पीहर नहीं भेजें। आपके पीहर वालों के लिए अनेक प्रकार के उलाहने दें। क्योंकि पीहर वालों को प्रसन्नता से जो देना था वह दे दिया और आगे भी जो देना होगा दे देंगे। कभी-कभी एक बार पूर्ति करवा

देने पर ससुराल वालों की मांगें बढ़ जाती हैं वे फिर-फिर दूसरी चीजों की पूर्ति करवाने के लिए मजबूर करने लगते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप मायके में ससुराल वालों की झूठी प्रशंसा या अति प्रशंसा करती रहें। अति प्रशंसा हमेशा गर्व को प्रदर्शित और परिवर्द्धित करने वाली होती है और झूठी प्रशंसा तो नियम से मजाक (हँसी) का ही कारण होती है। एक महिला पीहर में हमेशा कहती रहती थी कि हमारे वहाँ तो चार सब्जी के बिना कोई भोजन ही नहीं करता है। एक-दो मिठाई तो बनती ही है.......। एक दिन उसके भाई ने सोचा, एक बार दीदी के घर जाकर देखना चाहिए कि उसकी बातें कितनी सच हैं, वह अचानक दीदी के घर पहुँच गया। दीदी-जीजाजी, बच्चे आदि कढ़ी (अमचूर, नींबू आदि किसी भी खटाई और बेसन से बनने वाली) रोटी खा रहे थे। दीदी अचानक भाई को आया देख भौंचक्की रह गई। उसकी सब पोल खुल गयी। वह अपने आप में बहुत लज्जित हुई। झूठी प्रशंसा करने वाले की समय पाकर ऐसी ही हालत होती है। इसी प्रकार ससुराल में पीहर वालों की प्रशंसा करने पर भी ऐसा हो सकता है।

ससुराल को अपना समझें

आप ससुराल को अपना घर एवं ससुराल वालों को अपना परिवार समझें। सास-ससुर को अपने माता-पिता के समान समझें। जब तक आपको ससुराल पराया दिखता रहेगा, ससुराल वाले पराये दिखते रहेंगे, तब तक आप ससुराल में घुलमिलकर नहीं रह सकतीं। आपका ससुराल वालों के साथ अपनत्व नहीं बन सकता, अपनत्व के बिना एक-दूसरे के सुख-दुःख में सुखी नहीं हुआ जा सकता। एक दूसरे में प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता और प्रेम के बिना घर स्वर्ग नहीं बन सकता। अत: आप ससुराल को अपना स्थायी (जीवन भर के लिए) घर समझें और ससुराल वालों को सर्व संकटों में तन, मन, धन से सहयोग देने वाले साथी समझें। कई कम दिमाग की लड़कियाँ-ससुराल में कोई काम करने वाला नहीं है, सास की तबियत ठीक नहीं है, जेठानी को काम नहीं करना है उस समय में भी पीहर चली जाती हैं, यदि पीहर में है और ससुराल से आने (बुलाने) के समाचार मिले तो बहानेबनाकर पीहर में ही बैठी रहती हैं। कोई-कोई लड़कियाँ ऐसे समय में भी सहेलियाँ-रिश्तेदारों के यहाँ घण्टों बैठी रहती हैं, ऐसा करने से ही समझ में आता है कि वह ससुराल को अपना घर एवं ससुराल वालों को अपना परिवार नहीं मानती है। जो लड़की परिस्थिति के समय ससुराल वाले पीहर भेज भी रहे हों तो भी मना कर देती है, लेने के लिए

आये हुए भैया को भी कुछ दिन के बाद आने का आश्वासन देकर वापिस भेज देती है, वह बहू सच में ससुराल वालों की लाड़ली और छोटी होकर भी समझदारों में गिनी जाती है। ऐसी परिस्थिति में तो मजबूरी से सहेली के यहाँ जाना भी पड़ रहा हो तो यह सोचकर आपको जल्दी आ जाना चाहिए कि मम्मीजी/भाभीजी/दीदी अकेली पूरे घर का काम कैसे कर पायेगी। ऐसा करने से वह भी आपके साथ सामान्य परिस्थिति में भी आपको सहयोग देने के लिए तैयार रहेगी। आपस में एक-दूसरे को सहयोग देना ही तो अपनत्व और प्रेम है, ऐसा जीना ही जीवन है अन्यथा वह तो जिन्दगी काटने जैसा है अर्थात् भार ही है।

आप अपने ससुराल वालों के प्रति कभी नेगेटिव (निषेधात्मक) नहीं सोचें। नकारात्मक धारणा नहीं बनावें। नकारात्मक धारणा बनाने से कार्य भी नकारात्मक ही उत्पन्न होते हैं। कोई-कोई लड़कियाँ हर समय यही सोचती रहती हैं कि ''हमारी सास तो किसी भी हालत में खुश रह ही नहीं सकती है। वह तो अपनी बेटी का ही पक्ष लेगी/लेती है। कोई भी चीज आयेगी वह अपनी बेटी को ही पहले पसन्द करवाएगी। पहले बेटी को ही देगी बाद में बची-खुची हमें/मुझे देगी।'' मैं सोचती हूँ कि आप अपनी सास से कुछ लेने की इच्छा/आशा ही क्यों रखती हैं? आपकी सास ने आपको एक नौजवान लाखों कमाने के योग्य अपना बेटा सौंप दिया। क्या वह कम है? क्या इससे भी ज्यादा वह अपनी बेटी को दे रही है। और बेटी को भी कब तक पहले देगी। जब तक उसकी शादी नहीं होती। शादी हो जाने के बाद आपको ही मिलना है। आप स्वयं आगे होकर सास को दें, सास को खिलाएँ। सास-ससुर ने आपको इतनी बड़ी अमानत (पति के रूप में) दी है कि जिसके बदले में आप जीवन भर सास-ससुर की सेवा करें। उनको हाथों पर रखें तो भी ऋणमुक्त नहीं हो सकती हैं। दूसरी बात, आप भी मायके जाती हो, यदि आपके माता-पिता आपके साथ रूखा व्यवहार करेंगे, बहू को ही सब कुछ समझते हुए कोई भी चीज लाकर पहले बहू (आपकी भाभी) को देंगे। उसको पसन्द करायेंगे तो आपको कैसा लगेगा ? आप स्वयं सोचें। और जहाँ तक ननद की बात है वह आपके घर कितने दिन रहने वाली है। दो-चार साल में आखिर ससुराल चली ही जायेगी। वह आपके घर की एक तरह से मेहमान ही है।

पीहर का बखान ससुराल में नहीं करें

आप अपने मायके की हैसियत और स्तर की बात ससुराल में कभी नहीं

करें। क्योंकि पीहर वाले कितने भी अच्छे हों, पीहर कितना भी सुविधाजनक हो तो भी आपको जिन्दगी भर तो ससुराल में ही रहना है। आपके मुख से पीहर वालों की बार-बार प्रशंसा सुन-सुनकर वे (ससुराल वाले) यह भी कह सकते हैं कि तुम्हारा पीहर और पीहर वाले इतने अच्छे हैं तो वहीं जाकर रहो। जब वहाँ की सुख-सम्पन्नता से तृप्त हो जाओ तब आ जाना या जिन्दगीभर वहीं रहना। वहीं इतना सुख था तो शादी ही क्यों की? अत: बिना प्रयोजन पीहर वालों की प्रशंसा नहीं करें। यदि पीहर वाले प्रशंसनीय हैं तो वे स्वयं उनकी प्रशंसा करेंगे। यदि नहीं भी होंगे और आप अच्छी होंगी, आप ससुराल में अपने आपको विनम्र बनाये रखेंगी, सबकी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते हुए सबका हित करती रहेंगी तो ससुराल वाले समय पाकर निश्चित रूप से आपके पीहर वालों की ही प्रशंसा करेंगे।

इसी प्रकार आप अपने पति के सामने भी बचपन में घटी हुई ऐसी घटनाएँ जिनको सुनकर पति का मन उद्वेलित हो जावे, नहीं बतावें। जैसे- यदि आपके साथ कभी बलात्कार हो गया हो, आपका किसी से प्रेम हो, आपने प्रेम के वश हो किसी से विवाह का प्रोमिस किया हो। आपके हाथ से किसी बड़े जीव की हत्या हो गयी हो या और भी ऐसे कोई काम जो लोक में अच्छे नहीं माने जाते हैं, इस प्रकार की अज्ञानता के कारण हुई हरकतें पति को बता देने पर वह यह सोचकर कि यह तो उच्छिष्ट (जूठन) अर्थात् किसी के द्वारा भोगी जा चुकी है, मैं जूठन को कैसे भोगूँ; विरक्त हो सकता है। आपको त्रास दे सकता है। हीनदृष्टि से देखता हुआ आपसे प्रेम तोड़ सकता है। आपके पीहर में आपकी बहिन, भैया, मम्मी-पापा आदि भी यदि ऐसे काम करते हैं उनसे ऐसे काम हो गये हों तो वे बातें भी आप पति को नहीं बतावें। क्योंकि ससुराल वालों के बारे में ऐसी बातें सुनकर या उसके मन में कई प्रकार के विकल्प उठ सकते हैं। जैसे- ये (पत्नी) ऐसे लूज केरेक्टर वालों की बेटी है। इसके भैया-बहिन, मम्मी-पापा ऐसे हैं तो यह अच्छी कैसे हो सकती है....। एक लड़की की १६-१७ वर्ष की उम्र में ही शादी हो गई। उसने शादी होने के कुछ दिनों बाद ही अपने प्रेम की बात पति से कह दी। ५-६ महीने के बाद ही वह आत्महत्या करके मर गया। वह जीवनभर के लिए दु:खी हो गयी। अत: आप ऐसी गलती कभी नहीं करें।

पैसे बचावें

शादी के पहले-दूसरे वर्ष में पति, सास-ससुर, भाई, रिश्तेदार आदि नयी

बहू को उदार दिल से रुपये-पैसे देते रहते हैं। उस राशि को बहुत अनर्गल/व्यर्थ में खर्च न कर दें। आपके भोगोपभोग की सामग्रियाँ पति, सास-ससुर आदि जब आवश्यकता होगी, लाएँगे ही और प्रथम वर्ष में कुछ खर्चा भी नहीं रहता है। क्योंकि दूसरे वर्ष से तो बच्चे का खर्चा भी बढ़ जाता है। इसलिए जब तक बच्चा न हो आप राशि इकट्ठा करें। आप अपने नाम से बैंक में भी डाल सकती हैं। घर में भी रख सकती हैं, आवश्यकता हो तो कभी पति को उधार भी दे सकती हैं तो कभी ब्याज से भी दे सकती हैं। इससे पति को दूसरे के यहाँ से ब्याज देकर पैसा नहीं लाना पड़ेगा। और आपको ब्याज देगा तो भी वह पैसा घर का घर में ही रहेगा। कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति एक बार ब्याज से पैसा लेता है तो कभी-कभी तो मूल रकम से भी ज्यादा ब्याज चुकाने के बाद भी मूल रकम वैसी-की-वैसी चुकाने के लिए बाकी ही बची रहती है इसलिए आपका कर्त्तव्य है कि आप उसकी सहायता करें। और सहायता करने के लिए पैसा जोड़ें/इकट्ठा करें। व्यर्थ में इधर-उधर खर्च न करें। धनाढ्य घरों की बहुएँ प्रथम वर्ष में ७०-८० हजार तक संग्रह कर लेती हैं और किसी-किसी की अटेची में तो लाख-डेढ़ लाख तक की सम्पत्ति रहती है। आप जिस घर में हैं उस घर के अनुसार जोड़ें। कुछ-न-कुछ जोड़ती रहें। लेकिन यह भूल कभी नहीं करें कि जोड़कर पीहर वालों के पास रखें। पीहर वालों को न दें। ऐसा करने से ससुराल वालों एवं पति के मन में कभी-कभी संदेह की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं/हो सकती हैं।

यदि घर में आवश्यकता है, पैसे की कमी है तो आप छोटी-मोटी नौकरी (यदि घर वालों को पसन्द है तो) सिलाई, बुनाई, कसीदाकारी, मेहंदी, आर्ट, फाल-पीकू आदि सिखाने का काम करने में या स्वयं ऐसे काम करने में संकोच नहीं करें। कोई भी छोटा-मोटा उद्योग करके पति के व्यवसाय में और घर की व्यवस्थाओं में सहयोग अवश्य दें। आप यह नहीं सोचें कि धन कमाने का काम तो आदमी का ही है। पति-पत्नी एक गाड़ी के दो पहिये होते हैं। उन दोनों को एक-दूसरे को निभाते हुए चलने में ही गृहस्थी रूपी गाड़ी अपने सही गन्तव्य पर पहुँच सकती है अन्यथा गाड़ी रास्ते में ही चूँ-चूँ कर सकती है, टूट भी सकती है। अत: आप एक-दूसरे के लिए समर्पित होकर जियें।

आलसी नहीं बनें

आप ससुराल में किसी काम के लिए मना नहीं करें, नहीं आता हो तो पूछ

लें। क्योंकि ससुराल वाले नयी बहू को काम सिखाने में विशेष उत्साह रखते हैं। सास-ननद आदि के कुछ कह देने पर उसको मजाक समझें। उसका उल्टा अर्थ नहीं लें, उल्टा अर्थ लेने से मनमुटाव बढ़ जाता है। गलतफहमियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। एक-दूसरे के प्रति ग्लानि भाव उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार आप काम करने में कभी आलस नहीं करें। आप यह नहीं सोचें कि दीदी, मम्मीजी तो कुछ काम करती ही नहीं हैं। बैठी रहती हैं। इन सबका काम मैं ही कब तक करती रहूँगी। आप काम करती रहेंगी तो धीरे-धीरे सास और दीदी भी आपको सहयोग देने लगेंगी और आप यह सोचें कि दीदी आपके घर पर कितने दिन की है वह तो कुछ ही महीने/वर्षों में निश्चित ससुराल चली जायेगी। आपके बहुत बार बुलाने पर भी उसे आपके घर आने का समय नहीं मिलेगा/नहीं आयेगी। इसलिए उसे तो आप काम करने ही न दें। दीदी (ननद) को खुश रखना भी पति और सास से सुखप्राप्ति का एक साधन है क्योंकि अधिकतर सास-बहू में लड़ाई का कारण ननद ही होती है। वह सी.आई.डी. का काम करती है। वह आपकी छोटी सी गलती को भी नमक-मिर्च लगाकर माँ-भैया को बताती रहती है। आप उसके साथ अपनी बहिन के समान अपनत्व एवं प्रेम का व्यवहार करें। आप उसके साथ इतना घुल-मिलकर रहें कि आप २-४ दिन पीहर भी चली जावें तो दीदी को आपकी याद आने लगे। थोड़ा सोचें, आप पीहर जाती हैं तो कितना काम करती हैं/करना चाहती हैं। आप वहाँ सोचती होंगी- अरे! काम तो हमेशा ही करती रहती हूँ, पीहर आई हूँ तो थोड़ा फ़्री रह लूँ।

घर की बात बाहर नहीं करें

आप घर के नौकर-चाकर, कामवाली आदि की गलतियों को बाहर वालों के सामने नहीं कहें। क्योंकि नौकर आदि की गलतियों को बाहर वालों के सामने कहने से वे आपके विरोधी बन सकते हैं। बहू-बेटी की इज्जत लूट सकते हैं। आपके घर की रहस्यमयी बातें जानकर आपको नुकसान पहुँचा सकते हैं। घर के लड़ाई-झगड़े आदि से क्रोधित होकर आप सास-ननद, ससुर आदि की बुराई भी अड़ोस-पड़ोस, रिश्तेदारों के सामने नहीं करें। क्योंकि वे आपके कितने ही विश्वासपात्र क्यों न हों, आपकी बात वापिस उन तक नहीं पहुँचाएंगे, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। दुनिया प्रशंसा प्राप्त करने के लिए क्या नहीं कर लेती है। कई बार बात कहते समय कहा जाता है कि ''मैंने आपको अपना समझ कर कह दिया

है। आप किसी से मत कहना।'' इस प्रकार बात हजारों लोगों तक पहुँच सकती है/जाती है। जब आप स्वयं बात को मन में नहीं रख पा रहे हैं तो दूसरा कैसे मन में रख पायेगा। वह तो नमक-मिर्च लगाकर बात को आगे पहुँचाएगा। और जब बात सास-ननद तक पहुँच जायेगी तो घर में आपसी मन-मुटाव, एक-दूसरे के प्रति अविश्वास-द्वेष उत्पन्न होने लगेगा। घर के टुकड़े होने लगेंगे। अन्तत: घर की शांति भंग हो जायेगी। घर और बड़े-बूढ़ों की प्रतिष्ठा पर कलंक लग जायेगा।

आप कोई भी काम करें, कुछ भी खरीदने जावें, कोई नयी साज-शृंगार की वस्तु लेने जावें तो दीदी, सास से अवश्य पूछें। दीदी को साथ ले जावें। उनकी पसन्द का ध्यान रखें। यदि ले आई हैं तो उनको दिखावें। उनको भी पहनने (उपयोग करने) के लिए दें। यदि आप छुपाकर रखेंगी तो भी वे सब चीजें छुपाकर नहीं रख पायेंगी। क्योंकि जब भी आप उनका उपयोग करेंगी, तब सबके सामने आ ही जायेंगी। अत: अच्छा तो यही है कि आप पहले ही उनको दिखा दें। ताकि आपके द्वारा उन चीजों का उपयोग करने के बाद उनको छानबीन नहीं करनी पड़े। और उनके दिल में यह विश्वास जम जावे कि आप जो कोई भी छोटी-बड़ी चीजें लाती हैं मम्मी-दीदी को अवश्य दिखाती हैं। आप बड़ों का सम्मान करने वाली विनयवती निश्छल बहू हैं। इसलिए उन्हें घर में कुछ छुपाकर और ताला लगाकर रखने की आवश्यकता नहीं है। आप यह भी नहीं सोचें कि मैं दीदी-मम्मी को नयी साड़ी पहनने के लिए दे दूंगी तो साड़ी खराब हो जायेगी। साड़ी तो आप पहनेंगी तो भी खराब हो सकती है, होगी ही। लेकिन आप दीदी-मम्मी को पहनने के लिए देंगी तो खुश रहेंगी और उनके पास भी जो आपके योग्य वस्त्राभूषण हैं वे आपको पहनने के लिए अवश्य देंगी।

कम धन में सुखी रहें

आपके पास साड़ियाँ बहुत नहीं हैं तो घर में, घर का काम करते समय पुरानी साफ-साड़ी भी पहन सकती हैं और घर से बाहर जाते समय अच्छी नयी साड़ी पहन सकती हैं। यदि आप नयी साड़ी को एक बार पूरे दिन पहन लेंगी, एक दिन पहनने के बाद दो-चार दिन तक ऐसे ही टाँगे रखेंगी। पहनकर सो जायेंगी तो आपकी साड़ी एक बार में खराब हो जायेगी, पूरे दिन पहने रहने से, पहनकर सो जाने से सल पड़ जायेंगे। साड़ी गन्दी हो जायेगी तो उसे धोनी ही पड़ेगी और एक बार धोने पर उसकी वो चमक नहीं रह सकती, जो नयी में रहती है। यदि आप घर

से बाहर, किसी फंक्सन को अटेंड करके आते ही सबसे पहले साड़ी को थोड़ी देर सुखाकर अच्छी तरह समेटकर रख देती हैं तो उस साड़ी को दस-पन्द्रह बार नई की नई पहन सकती हैं। यदि आपके पास मात्र पाँच ही नयी साड़ियाँ हैं तो भी साल में दो-तीन बार ही फंक्सन के समय एक साड़ी को पहन पायेंगी। क्योंकि साल में १०-१५ विशेष कार्यक्रमों से ज्यादा नहीं होते हैं। इस प्रकार विवेकपूर्वक साड़ियों का उपयोग करके २-३ वर्ष तक उन पाँच साड़ियों को नई पहन सकती हैं। फिर उसके बाद उनको ५-७ महीना बाजार आदि में जाते समय पहनें और उसके बाद घर में पहनना प्रारम्भ कर दें। यह कम धन में भी सुखी रहने की एक विधि है। आप खूब ज्यादा साड़ियाँ इकट्ठा नहीं करें, खरीदें और जल्दी पहन ही लें। पेटी में नहीं रखे रहें। क्योंकि कभी-कभी साड़ी ले आते हैं और किसी विशेष फंक्सन/त्यौहार आदि का इंतजार करते रहते हैं तब तक तो फैशन समाप्त हो जाती है अर्थात् जब हम पहनते हैं तब वैसी साड़ियाँ पहनने वाली बहुत महिलाएँ हो चुकी होती हैं। और वह साड़ी ओल्ड फैशन में आ जाती है। दूसरी बात आपने साड़ी लाकर पेटी में रख ली। पहनने के लिए आप योग्य दिन का इंतजार कर रही हैं। उसके पहले ही मान लिया आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया और आप स्वर्गलोक पहुँच गई तो आपका मन उस साड़ी में अटक जायेगा। आप भूत बन जायेंगी। आपकी दुर्गति हो जायेगी अथवा कभी चूहे ने काट ली। पेटी-अलमारी का जंग लग गया, रखी-रखी खराब हो जायेगी। इससे तो अच्छा है कि आप साड़ी लाकर कम-से-कम एक बार तो जल्दी से जल्दी पहन लें। चाहे कोई बड़ा फंक्सन/त्यौहार न हो। यदि आपको शौक पूरा करना है तो घर में ही दो-चार घण्टे पहनकर घूम लें। बैठ जायें और दिखाना है तो अड़ोस-पड़ोस सहेली के यहाँ घूम आवें अथवा बाजार में सब्जी आदि कुछ भी खरीदी के बहाने घूम आवें। एक महिला ने अपनी एक घटना सुनाई। उसने कहा- ''माताजी! मेरी शादी में ससुराल से चांदी से की गई कलाकृति की एक सुन्दर साड़ी आयी थी। मैंने उसे एक बार भी नहीं पहना था। मेरी तबीयत खराब हो गयी। मुझे हास्पिटल में भर्ती होना पड़ा। जैसे ही मैं हास्पिटल में भर्ती हुई मुझे बार-बार साड़ी याद आने लगी। मुझे यह विकल्प सताने लगा कि अब वो साड़ी कौन पहनेगा ? मैंने तो वह साड़ी एक बार भी नहीं पहनी है। मुझे बीमारी से इतनी वेदना नहीं हो रही थी जितनी मानसिक (वह साड़ी न पहनने की) वेदना हो रही थी। मैंने अपनी बहिन/मम्मी को अपने मन की बात बताई। पुण्य योग से

बताते ही मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया। मैंने घर पर आते ही साड़ी निकालकर पहन ली और रोज-रोज पहनने लगी....। यदि मैं ठीक नहीं होती तो हॉस्पिटल में ही वह साड़ी मंगवा कर पहननी पड़ती और यदि नहीं पहन पाती तो मरकर भूत बनती या फिर साँप बनकर साड़ी पर बैठती। यह एक सामान्य महिला की घटना है, आपके साथ भी घट सकती है, सावधान रहें। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप अपनी सब साड़ियाँ हमेशा-हमेशा पहनकर खराब करलें। जिससे विशेष कार्यक्रमों के समय वे ही खराब साड़ियाँ पहनकर जाना पड़े। हाँ, एक बार पहन लें ताकि आपकी दुर्गति न हो। इसी प्रकार आप अपने आभूषण खाने-पीने आदि सामग्रियों में तथा अपने बच्चों के वस्त्र, पढ़ने-लिखने की चीजों के बारे में भी विवेकपूर्वक कार्य करें। जैसे- बच्चों के लिए पेन-पेन्सिल आदि लाये हैं उन सबको एक साथ पूरी की पूरी बच्चे को न दें। एक दो नये रखे रहें जो परीक्षा के समय काम आ सकें। क्योंकि नये पैन से राइटिंग अच्छी आती है। लिखने में मन अच्छा लगता है। और उत्साह भी बढ़ता है। ऐसे ही वार-त्यौहार आदि के लिए भी आये-गये मेहमान आदि के आतिथ्य आदि के समय भी व्यवस्थाओं के बारे में भी ध्यान रखें। ताकि त्यौहार के दिन बच्चों को रूखेपन की अनुभूति नहीं हो।

धन का सही उपयोग करें

आप अपने पति को कभी यह उलाहना नहीं दें कि मैं/बच्चों सहित हम तो आपके राज्य में कभी सुखी रह ही नहीं सकते। आपके जैसे हमें क्या सुखी रख पायेंगे। आपके साथ शादी करके तो मेरा जीवन ही बरबाद हो गया। पापा ने पता नहीं क्या देखकर आप जैसे के साथ मेरी शादी करवा दी, आदि....। आपके इन उलाहनों से पति का मन उद्विग्न हो सकता है। पति आपको दु:ख देना चाहता हो, धनार्जन नहीं करना चाहता हो। ऐसी कोई बात नहीं है, वह भी स्वयं आपको बहुत वस्त्राभूषण पहनाना चाहता है। आपको खूब खिलाना-पिलाना, घुमाना और ऐश में रखना चाहता है लेकिन यदि आपके भाग्य में यह सब लिखा ही नहीं है तो वह अधिक कैसे कमा सकता है। आपके लिए अधिक भोग-सामग्री कहाँ से ला सकता है इसलिए घर में जितनी भोग-सामग्रियाँ हैं उन्हीं का अच्छी तरह उपयोग करना सीखें। बिना ढंग की चार सब्जी की लालसा की अपेक्षा एक सब्जी ढंग से बनायें। जिसको खाकर चार सब्जियों का आनन्द भी पीछे रह जावे। आप यह भी नहीं सोचें कि बहुत तेल-मिर्च मसाला डालने से सब्जी अच्छी बनती है, नहीं, बिना

मसाले की भी यदि विधि पूर्वक सब्जी बनाई है तो बहुत अच्छी बनती है। जैसे- लौकी, गिलकी, टिंडसी, तरोई, परवल आदि को आप कोई मसाला भी नहीं डालें। उसे थोड़े से घी/तेल में छोंक दें। मामूली सा पानी डालें और थोड़ा सा खुला रखकर ढक दें। ताकि भापका पूरा पानी उसमें नहीं मिले। सामान्य आँच में भाप से सीजने दें। स्वादिष्ट सब्जी बनेगी। यदि आप उसमें ज्यादा पानी डाल देंगी तो लौकी आदि का स्वाद ही बिगड़ जायेगा। क्योंकि लौकी आदि में पहले से ही पानी रहता है और अन्य सब्जियाँ भी अनुपात से पानी-तेल आदि डालकर बनायें। इसी प्रकार दाल को भी अच्छा छोंक दे। दाल में इतना पानी भी नहीं डालें कि प्यास लगे तो दाल में से पानी निकालकर ही पी लिया जावे। और इतनी गाढ़ी भी नहीं बनावें कि वह दाल के स्थान पर खिचड़ी ही दिखने लगे। यह भी ध्यान रखें कि दाल के दाने कच्चे न रहें, कच्ची दाल स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। कई महिलाएँ दाल को थोड़ी सी सीजने पर ही उतार कर मिक्सी में फेंट लेती हैं, ऐसा करने पर भी उसके कच्चेपन का प्रभाव समाप्त नहीं हो सकता। आप साफ-सफाई से ऐसी दाल-सब्जी बनावें कि देखते ही खाने का मन हो जावे। कभी-कभी विवेक के अभाव में दाल-सब्जी का रंग ही ऐसा हो जाता है कि स्वादिष्ट हो या नहीं, आँखों से देखकर सब्जी खाने का मन ही नहीं होता है। जैसे- सब्जियों को सुधारकर बहुत देर तक रखे रहने से, बनाते समय केले आदि का पानी या पीस आदि मिल जाने से, लोहे के बर्तन में बना लेने से, कुकर को अच्छी तरह साफ नहीं करने से, चाकू को ठीक तरह से साफ नहीं करने से या एक सब्जी सुधारकर चाकू बिना साफ किये दूसरी सब्जी सुधार लेने से सब्जियाँ काली हो जाती हैं।

नोट- यदि सब्जियाँ सुधारकर रखना अति आवश्यक है तो सुधरी सब्जी को जो पानी में डालकर रखने के योग्य है, उसे पानी में डालकर रखें।

यदि आप अच्छी सब्जी बनायेंगी तो आपका पति/बेटा कभी कहेगा ही नहीं कि आज मुझे वो सब्जी खाना है या यह सब्जी मुझे नहीं भाती है। फिर भी आप पति, बच्चे, सास-ससुर आदि की पसन्द का ध्यान अवश्य रखें। क्योंकि किसी को सूखी सब्जी अच्छी लगती है तो किसी को रसदार सब्जी और किसी को न अधिक सूखी और न अधिक रस वाली सब्जी अच्छी लगती है।

आप रोज एक ही सब्जी नहीं बनावें क्योंकि एक ही सब्जी चाहे कितनी भी स्वादिष्ट हो खाते-खाते व्यक्ति को ऊब आ ही जाती है। इसलिए सब्जी बदलती

रहें। पन्द्रह दिन में पाँच-सात हरी सब्जियों के साथ बेसन आदि की भी सब्जी बनावें। दो वक्त में एक बार उड़द, तूअर, मसूर आदि की दाल भी अवश्य बनावें। क्योंकि शरीर में सभी प्रकार के तत्त्वों की आवश्यकता होती है।

सब्जियाँ बनाते समय मौसम का भी ध्यान रखें। जैसे- बारिश के दिनों मे सब्जियाँ कम पचती हैं। इसलिए आचार, पापड़, लौंजी बनावें। बेसन का लपटा, भजिया, पुआ, हरी सब्जियाँ आदि बनाते/खाते समय मात्रा का ध्यान अवश्य रखें। गर्मी में दही, आम का रस, छाछ, केरी का पानी, रायता, केरी की मीठी-खट्टी लौंजी, आदि। सर्दी में ठोस (घी आदि से युक्त) भारी लड्डू आदि भोजन खाना/बनाना उचित है।

हैसियत देखें-तुलना नहीं करें

आप अपने वस्त्राभूषण, खरीदी, लेन-देन आदि में कभी दीदी, ननद, मामा-मौसी आदि के साथ तुलना नहीं करें। क्योंकि तुलना होश भुला देती है। अपने घर की आर्थिक स्थिति का ध्यान रखें। आप यदि देखादेखी घर के सामर्थ्य से बाहर खर्चा करने लगेंगी तो घर में दरिद्रता प्रवेश कर जायेगी। क्लेश मचने लगेगा और हो सकता है सास-ननद यह कहने लगे कि बहू अच्छे भाग्य वाली नहीं है। आते ही घर में धन की कमी होने लगी है। आप अपने भविष्य का भी ध्यान रखें। आपने शादी की है तो आगे बच्चों का पालन-पोषण, उनकी पढ़ाई, सामाजिक रीति-रिवाज, उनकी शादी, उनकी आजीविका आदि के लिए धन खर्च करना है, बहुत चिन्ता नहीं करें। लेकिन इन सब बातों को ध्यान में तो अवश्य रखें। घर की स्थिति देखकर खर्च करना श्रेष्ठ 'गृहिणी' का लक्षण है। कहते हैं- ''पति कम भी कमावे लेकिन यदि पत्नी उसका सही-सही उपयोग करना जानती हो/करती हो तो उसके घर में कभी धन की कमी नहीं आती है।'' पति बहुत भी कमाता है और पत्नी घर की वस्तुएँ सही ढंग से सम्हाल कर नहीं रखती, कब किस चीज की कितनी आवश्यकता है और आवश्यकता पड़ सकती है, इस बात का ध्यान नहीं रखती है तो उसका घर कभी नहीं पनपता है। जैसे- साबुन पानी में गल रही है, फल केरीबैग (जेलेटिन की थैली) में से नहीं निकालने के कारण सड़ रहे हैं। कोई चीज लाये हैं तो जहाँ रखी है वहीं कई दिनों तक रखी है आदि....। आप हर चीज का ध्यान रखें। किस चीज को किस प्रकार सम्हालने से वह बहुत दिनों तक चल सकती है/सुरक्षित रह सकती है। उसका अधिक उपयोग किया जा सकता है और

समय पर मेहमानों के सामने घर की इज्जत बचाई जा सकती है। इसी प्रकार फ्रिज में भी आवश्यकता से अधिक सामान नहीं रखें। इससे फ्रिज पर भार पड़ता है और ताजा चीजें भी खाने को नहीं मिलती हैं। मनुक्का आदि अधिक समय तक रहने वाली चीजें भी समय-समय पर सम्हालते रहें, अन्यथा फ्रिज में रखी चीजें भी खराब हो सकती हैं।

आपके घर में यदि भोजन की सामग्री, मसाले, अनाज आदि कम हैं अथवा नहीं भी हैं तो भी आप अड़ोस-पड़ोस रिश्तेदार आदि के सामने नहीं कहें। क्योंकि आपकी बातें सुनकर कोई आपकी सहायता तो नहीं करेगा बल्कि आपकी हँसी करेंगे। आपको हीन दृष्टि से देखेंगे। लोगों के बीच में व्यंग्य करेंगे। इसलिए किसीके सामने घर की बात करने से कोई लाभ नहीं होगा, अपितु हानि ही होगी। और आप यदि इन सब बातों को नहीं कहेंगी तो लोग आपकी प्रशंसा ही करेंगे कि देखो, घर में दाल-रोटी-ईंधन की भी पूरी व्यवस्था नहीं होने पर भी किसी के सामने इस विषय की बात तक नहीं करती....। कहा भी है- घर हर तरह से जीर्ण-शीर्ण हो, छत टूटी हुई हो, वर्षा का पानी भीतर आ रहा हो, तब भी अपने धैर्य और संयम से गृहस्थी चलावे, ऐसी नारी से ही घर स्वर्ग बनता है। कष्ट के समय में ही हमारे गुणों की परीक्षा होती है।

सुख से सोवें

आप सास-ससुर एवं पति के सोने के बाद ही सोवें। उनके सोने के पहले सोने से आपको यह विकल्प बना रहेगा कि वे ससुर पति आदि कब आ जायेंगे। उनको किस चीज की आवश्यकता पड़ जायेगी और मैं सोती रहूँगी तो अच्छा नहीं रहेगा। दूसरी बात, आप उस स्थान पर भी न बैठें/सोएँ जो अपने से बड़ों के बैठने/सोने का है क्योंकि यदि उनके बैठने-सोने के स्थान, आसन, कुर्सी, बिस्तर आदि पर आप बैठी, सोई हैं और अचानक वे आ गये; उन्होंने देख लिया तो वे नाराज हो सकते हैं। आपका तिरस्कार कर सकते हैं। आपके घर में ससुर-देवर आदि दुकान से आते-जाते रहते हैं तो आप सोते समय अपने कमरे में अन्दर की सांकल, चिटकनी बन्द करके सोएँ। चाहे दिन में ही क्यों न सोना हो। अन्दर से बन्द करके सोने में निश्चिंतता रहती है। एक दिन एक व्यक्ति रात्रि में लगभग बारह बजे अपने शयन कक्ष में पहुँचा। उसके पलंग पर पत्नी एवं एक पुरुष सो रहा था। उसने उन दोनों को देखकर सोचा यह मेरी पत्नी व्यभिचारिणी है। पर-पुरुष के साथ निश्चिंत

सो रही है। उसने उन दोनों को मारने के लिए तलवार निकाली तभी उसको गुरु से लिया हुआ एक नियम याद आया कि ''किसी की हत्या करने से पहले सात कदम पीछे हटना।'' वह अपने नियम के अनुसार सात कदम पीछे हटा। पीछे हटने से उसकी तलवार छप्पर से टकरा गयी। टकराने की ध्वनि से पलंग पर सोई हुई बहिन की नींद खुल गई। वह उठी और भैय्या से क्षमा याचना (पलंग पर सोने की) करने लगी। भैया ने कहा- ''अरे बहिन! तू पुरुष वेष में, क्यों?'' उसने कहा- ''मैं भाभी के साथ नाटक देखने गई थी तो सुरक्षा के लिए मैंने पुरुष का वेष (वस्त्र) पहन लिया था। नाटक देखकर आने मे देर हो जाने से मैं बिना वेष बदले ही भाभी के साथ सो गई.....।'' यह दूसरे के स्थान पर सोने का फल अर्थात् बहिन अपने भाई के पलंग पर सोई थी उसका फल क्या होता, आप सोचें। यदि भाई का नियम नहीं होता तो थोड़े से प्रमाद के कारण बहिन को भाई के हाथ से मौत के मुँह में जाना पड़ता।

इसी प्रकार आप अपनी देवरानी या जेठानी के कमरे में भी नहीं सोवें। चाहे वह आपके साथ हो। आप उसके साथ भी उसके पलंग पर नहीं सोवें। क्योंकि ऐसा करने में कभी भी धोखा हो सकता है। एक दिन एक देवरानी अपनी जेठानी के कमरे में बैठी-बैठी कुछ काम कर रही थी। काम पूरा होने के बाद दोनों पलंग पर लेटकर बातें करने लगीं। बातें करते-करते दोनों की नींद लग गई। थोड़ी देर के बाद जेठानी की नींद खुली। वह उठकर यह सोचकर कि देवरानी की नींद लगी है तो थोड़ी देर सो लेने दो, चली गई। तभी अचानक जेठजी (बड़े भाई) आ गये। वे आते ही अपने कमरे में पहुँचे और देखा कि छोटी बहू पलंग पर सो रही है। उन्होंने झट से दरवाजा बन्द कर लिया और कहने लगे मैं कई दिनों से इस दिन का इंतजार कर रहा था अर्थात् मैं कई दिनों से तुम्हारे रूप पर मोहित था, तुम्हें प्राप्त करने का विचार कर रहा था। आज मेरा ही भाग्य है कि तुम स्वयं मेरे यहाँ आ गई हो....। जैसे ही उसकी नींद खुली वह भौंचक्की रह गई। फिर भी उसने साहस करके जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर अपने शील की रक्षा कर ली। नहीं तो क्या होता.....।

यदि घर में पुरुष वर्ग का आना-जाना नहीं रहता है और घर में सास-ननद देवरानी आदि नहीं हैं तो मेनगेट को अन्दर से बन्द करके रखें। घंटी बजने पर भी जल्दी से दरवाजा नहीं खोलें। पहले खिड़की आदि से देखकर यदि परिचित और विश्वासपात्र हो तो दरवाजा खोलें। लेकिन अपरिचित हो तो पहले फोन आदि से वह जिसका नाम या रिश्ता बता रहा है उसके बारे में जानकारी कर लें। जैसे- किसी

अपरिचित व्यक्ति ने आकर कहा कि मैं तुम्हारे मिस्टर या पापा का फ्रेन्ड हूँ। तो आप पहले मिस्टर या पापा से पूछें कि वह व्यक्ति कौन है, क्या आपने उसको भेजा है, आदि जानकारी लेकर दरवाजा खोलें। रात्रि में भी यदि आपके पति सुबह चार बजे उठकर बाहर चले जाएँ तो भी तत्काल उठकर दरवाजा बन्द करके ही सोएँ।

पागल को भी लिफ्ट न दें

आपके ससुराल में यदि किसी पुरुष का दिमाग ठीक नहीं है, वह पागल जैसा अर्थात् मन्दबुद्धि है अथवा पागल ही है, तो भी आप उसके साथ स्वच्छन्दता पूर्वक या अतिदया का व्यवहार नहीं जोड़ें। क्योंकि पागल के मन में वासना नहीं होती हो, ऐसी कोई बात नहीं है। वैसे सही में देखा जाय तो वासना का भूत सवार होते ही व्यक्ति पागल हो ही जाता है। इसलिए पागल व्यक्ति को यदि प्रोत्साहन मिले तो वह भी बलात्कार कर सकता है। फिर पागल में तो पहले ही विवेक का अभाव है, वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य, पुण्य-पाप आदि को समझता ही नहीं है और ऊपर से यदि उसको किसी नवयुवती की तरफ से लिफ्ट मिले तो उसमें वासना उत्पन्न क्यों नहीं होगी? अवश्य ही होगी। एक घर में जब दूसरी बहू आई तो उसने यह देखकर कि भाभी जी भैया (देवर) का पागल होने के कारण ध्यान नहीं रखती हैं, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं आवश्यक कार्यों को भी मजबूरी से करती हैं, मुझे इसको अच्छे प्रेम से रखना चाहिए। बेचारे ये तो पहले ही पागल होने के कारण दु:खी हैं....। वह उसके हर काम को ध्यान से करने लगी। भोजन में भी अपने से पहले या अपने पास बैठाकर भोजन कराने लगी। इस प्रकार करने से धीरे-धीरे देवर (जो कि पागल था) के मन में विकार/वासना उत्पन्न होने लगी। एक दिन घर में देवर और भाभी दो ही व्यक्ति थे। भाभी निश्चिन्त थी क्योंकि उसे विश्वास था कि देवर तो पागल है कुछ नहीं करेंगे। वह अपने शयनकक्ष में कुछ काम कर रही थी कि अचानक देवर उसके कमरे में पहुँच गया। और पलंग पर बैठते हुए उसका (भाभी का) हाथ खींचकर अपने पास बैठा लिया। भाभी चिल्लाई लेकिन घर में कोई था ही नहीं। उसने जल्दी से दुकान पर फोन किया...। तब बहू को समझ में आया कि बड़ी भाभी जी देवर को प्रोत्साहन क्यों नहीं देती हैं/देती थीं। उस दिन के बाद उसने पुरुष वर्ग को प्रोत्साहन देना बन्द कर दिया। और जब भी वह अकेली रहती तब डंडा पास में रखती थी। आप भी इस बात का ध्यान रखें। पुरुष तो पुरुष होता है चाहे वह पागल हो या समझदार, कुरूप हो या सुरूप, धनाढ्य हो या

गरीब, वृद्ध हो या युवक/किशोर, सबके मन में विकारी भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं इसलिए आप किसी भी व्यक्ति को सीधा या पागल समझकर निश्चिन्त नहीं रहें। लोक में सीधे दिखने वाले ही विशेष रूप से गलत काम करते हुए देखे जाते हैं। इसी प्रकार देवर, बड़े भाईसाहब, ससुर, जीजाजी (ननद के पति) आदि के साथ बोलते, भोजन परोसते, सम्मान आदि करते समय व्यवहार कुशलता के साथ-साथ थोड़ी गम्भीरता भी रखें। अति चंचलता नहीं दिखावें। बहुत देर तक आँख से आँख मिलाकर बात नहीं करें। उनके साथ अकेले में नहीं रहें। नारी की चंचलता शील को नष्ट करने एवं पुरुष को आकर्षित करने में सहायक होती है। अत: आप सावधानी पूर्वक शील की रक्षा करें।

बड़ों के पहले नहीं खावें

आप ससुराल में बड़ों के भोजन करने के बाद ही भोजन करें। क्योंकि भोजन में जो आगे-पीछे का अच्छा-बुरा है वह पीछे से बचता है। यदि आप पहले भोजन कर लेंगी और जब बड़े भोजन करने बैठेंगे तब उनको आगे-पीछे की परोसनी पड़ी या चीज खतम हो गई अर्थात् कम पड़ गई तो आपकी इन्सल्ट होगी। उनको ऐसा लगेगा कि आपको भोजन बनाना तक अच्छी तरह से नहीं आता है, आपको इतना भी अनुमान लगाना नहीं आता कि कितने व्यक्तियों के लिए कितने भोजन की आवश्यकता होती है आदि.....। आप बड़ों के भोजन करने के बाद भोजन करेंगी तो थोड़ा कम-ज्यादा हो गया। आगे-पीछे का रह गया तो भी चल जायेगा। विकल्प भी नहीं होगा। क्योंकि बनाने वाली आप स्वयं ही हैं। दूसरे, बड़ों के भोजन करने के बाद भोजन करने का नियम होने से बड़ों को हमेशा आपकी चिंता रहेगी कि जब तक हम भोजन नहीं करेंगे तब तक बहू/पत्नी भी भोजन नहीं करेगी। अत: हमें समय से भोजन कर लेना चाहिए। घर में सब सदस्यों का समय पर भोजन हो जाने से काम भी जल्दी निपट जायेगा। अन्यथा पूरे दिन रसोई घर में ही बैठे-बैठे इंतजार करते रहना पड़ता है कि अभी पापा (ससुर), पति आदि भोजन करने नहीं आये हैं, कब आयेंगे? वे जब तक भोजन नहीं कर लेंगे तब तक मैं कहीं (धार्मिक कक्षा, सहेली के घर, बर्थ डे आदि के कार्यक्रम में) भी नहीं जा सकती। समय पर भोजन करने से सबका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। नरक का द्वार माना गया रात्रिभोजन भी आपके घर में नहीं होगा। और भी अनेक लाभ सहज रूप से आपको हो जायेंगे, मात्र आपके द्वारा बड़ों के बाद भोजन करने से।

बड़ों के बाद खाने से लाभ

एक बहू का नियम था कि मैं घर के सभी बड़ों के भोजन करने के बाद ही भोजन करूँगी। कुछ ही वर्षों में उसकी सास परलोक सिधार गयी। ससुर को पत्नी के वियोग का बहुत दु:ख हुआ। पत्नी के वियोग का दु:ख अभी समाप्त नहीं हुआ था कि उनको अपने इकलौते प्यारे बेटे की मृत्यु देखनी पड़ी। ससुर को बहुत पीड़ा हुई। संसार की वास्तविकता-क्षणभंगुरता को प्रत्यक्ष देखकर वे घर में उदास होकर रहने लगे। वे अपना अधिक से अधिक समय धर्मकार्यों में व्यतीत करने लगे। घर में आज ससुर और बहू दो ही सदस्य रह गये। बहू भी अकेली सहमी-सहमी दु:खी रहने लगी। बहू की इस दशा को देखकर एक दिन सेठ (ससुर) ने सोचा-बहू अपने पति के वियोग में कहीं ऐसा अनुभव नहीं करे कि मेरा संसार में कोई नहीं है। मेरी सुख-सुविधाओं का ध्यान अब कौन रख सकता है....। इसलिए मुझे....। सेठ भोग-उपभोग की सभी आवश्यक सामग्रियों की समय के पहले ही व्यवस्था करने लगा। बहू हमेशा अच्छा-अच्छा अर्थात् गरिष्ठ (घर में वृद्ध सास नहीं होने के कारण) भोजन बनाकर खाने, पूरे दिन तैयार होते रहने आदि बृह्मचर्य के घातक कार्यों में लग गई। प्रतिदिन गरिष्ठ, तले-चटपटे और मिष्ट पदार्थों के खाने से उसके मन में वासना जागृत हो गई। एक दिन उसने साहस जुटाकर ससुर से कह ही दिया- ''पिताजी! अब मैं अकेली नहीं रह सकती''। यह सुनते ही सेठ के ऊपर तो मानों घड़ों पानी पड़ गया। उसे बहुत चिन्ता लगी कि अब उसकी भावनाओं को कैसे सुधारा जावे अर्थात् उसकी वासनाओं पर कैसे रोक लगाई जावे। बहुत चिन्ता करने के बाद उन्हें गुरुओं से सुना हुआ यह सदुपदेश याद आया कि गरिष्ठ भोजन का अधिक (स्वच्छन्दता पूर्वक) सेवन करने से व्यक्ति के मन में वासनाएँ जागृत हो जाती हैं। व्यक्ति का मन चंचल होकर कुमार्गगामी बनने लगता है अत: अब इसके (बहू के) भोजन को अनुशासित करके ही इसको वासना से बचाया जा सकता है। उनको बहू का नियम पहले से ही मालूम था कि वह मेरे भोजन किये बिना भोजन नहीं कर सकती/नहीं करेगी। उन्होंने एक दिन बहू से कहा- ''बेटी! आज मेरा उपवास है।'' ससुर के उपवास के साथ बहू का उपवास भी निश्चित हो गया। क्योंकि घर में ससुर के अलावा कोई था ही नहीं। उपवास के कारण बहू की हालत बिगड़ने लगी। उसने जैसे-तैसे करके दिन निकाला। लेकिन जब सेठजी ने दूसरे और तीसरे दिन भी उपवास कर लिये तो बहू को भी दो उपवास और करने पड़े। पूरे

दिन खाने-पीने वाली बहू के मुँह पर जब पूरा ताला लग गया अर्थात् तीन दिन तक एक कण भी नहीं खाया तो उसमें बैठने की बात तो दूर लेटने तक की शक्ति नहीं बची। चौथे दिन उसने ससुर जी से कहा- ''पिताजी! आज आप पारणा अवश्य कर लीजिये, नहीं तो मेरे प्राण निकल जायेंगे।'' अब उसका ध्यान न शरीर के सौन्दर्य पर था न ही तैयार (शृंगार) होने की तरफ। उसे न दर्पण देखना अच्छा लग रहा था और नही साड़ी आदि बदलना। ससुर को विश्वास हो गया कि अब उसकी भावनाएँ परिवर्तित हो सकती हैं। उन्होंने बहू से कहा- ''बेटी! पहले मैं तेरे लिए कोई साथी (लड़का) ढूँढ़ लूँ। उसके बाद पारणा करूँगा।'' यह सुन बहू की आँखों से अश्रुधारा निकल पड़ी। वह पश्चाताप करते हुए बोली- ''पिताजी! मैंने अज्ञानता से इस प्रकार के दुष्परिणाम कर लिये अर्थात् फिर से शादी करने के भाव कर लिये....।'' मात्र एक छोटी ही प्रतिज्ञा का निर्वाह करने से उसके शील की रक्षा हो गई।

पुराने जमाने में अधिकतर महिलाओं का नियम रहता था। वे पति के पहले भोजन नहीं करती थीं। इसे 'पतिवृत' धर्म कहा जाता था। उस धर्म का पालन करने वाली सती-स्त्री मानी जाती थी। इसीलिए पुरुष अधिकतर घर पर ही भोजन करता था। इसी कारण होटल, ढ़ाबा आदि पर बहुत कम लोग भोजन करते थे। और हॉस्पिटल में भी बहुत कम लोग दिखते थे। इसी प्रकार स्त्री पति के सोने के पहले नहीं सोचती थी जिससे पुरुष दस-साढ़े दस बजे तक घर आ ही जाता था और अधिक रात तक घर के बाहर नहीं रहने से जुआ, शराब, परस्त्रीगमन आदि व्यसनों से भी सहज रूप से बच जाता था। समय पर भोजन और समय पर घर आ जाने से बच्चों के साथ बैठना, बोलना, खाना आदि होता रहता था और बच्चों के साथ वात्सल्य-प्रेम-अपनत्व का भाव बना रहता था। अत: आप भी पातिवृत धर्म का पालन अवश्य करें।

पातिवृत धर्म को समझें

वैसे भारत की बहु प्रतिशत नारियाँ पतिवृता होती हैं लेकिन शायद पातिवृत धर्म को पूरा नहीं समझने के कारण ही उनसे कुछ ऐसे काम हो जाते हैं जिनको वे पतिवृता धर्म समझते हुए करती रहती हैं। उसे कभी यह अनुभव भी नहीं हो पाता है कि वह पतिवृत धर्म के विरुद्ध भी कुछ कर रही है। उनमें से एक काम है भोजन के समय का। वह अपने पतिदेव को भोजन परोसते समय भोजन के साथ-साथ ऐसी

अनेक अनावश्यक बातों को भी परोस देती है जो उसके किये हुए भोजन को अच्छी तरह पचने नहीं देती हैं। जैसे- आपकी माँ ने आज मुझे ऐसा कह दिया था। आज भाभी जी ऐसा कह रही थीं। आज घर में शक्कर खतम हो गई है। मैं कितने दिन से पीहर नहीं गयी हूँ। आपसे कहे कितने दिन हो गये अभी तक आपने वह चीज लाकर नहीं दी। आपके पास तो मेरी बात सुनने का समय ही कहाँ है, देखो वे (पड़ोसी रिश्तेदार) बिना कहे सब चीज लाकर दे देते हैं और यहाँ तो कह-कहकर जीभ ही सूखने लगती है तो भी समय पर चीज नहीं मिल पाती है, आदि.....। इन सब बातों को सुनने से भोजन करने में एकागृता नहीं आती है। डॉक्टरों का कहना है कि भोजन करते समय, करने के बाद और करने के पहले कुछ देर (१५-२० मिनट) शांति से बैठना चाहिए। किसी भी प्रकार से मानसिक या शारीरिक श्रम वाला काम नहीं करना चाहिए। जो भोजन के समय या भोजन के तुरन्त बाद मानसिक श्रम करता है उसकी पाचनशक्ति खराब हो जाती है। उस समय मानसिक श्रम करने से भोजन पचाने के लिए पर्याप्त मात्रा में रक्त नहीं मिल पाता है क्योंकि मानसिक श्रम के लिए दिमाग को खून की आवश्यकता पड़ती है। खून दो स्थानों में बँट जाने से न भोजन ढंग से पचता है और न ही मानसिक कार्य अच्छा होता है इसलिए आप भोजन के समय और भोजन के तत्काल बाद कोई मानसिक श्रम वाली बातें पति के सामने नहीं करें। ऐसी बातें करते हुए आप कितना भी पौष्टिक और स्वादिष्ट भोजन करावें, आपके पतिदेव हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकते। क्योंकि आप उन्हें भोजन के साथ-साथ टेन्शन भी करवाती हैं। अत: आप उन महिलाओं की श्रेणी में अपना नाम नहीं लिखावें जो पतिवृता नारी होकर भी ऐसे काम करती हैं। आपके घर में रूखा-सूखा जैसा भी भोजन है आप प्रेम और सम्मान पूर्वक अपने पति को परोसें। आप उनको भोजन कराना भार नहीं समझें। समय खराब होना नहीं मानें। लोक में कहते हैं- पति परमेश्वर के समान होता है। आप जितने प्रेम और सम्मानपूर्वक उनको भोजन करायेंगी, उतने ही वे सन्तुष्ट रहेंगे। उनका मन आपको छोड़कर और कहीं नहीं जावेगा। अत: आप अपने पति को इस ढंग से भोजन करावें कि दो-चार दिन भी यदि आप उनको भोजन न करवा पावें तो उन्हें आपकी याद आने लगे। पति के सन्तुष्ट रहने/रखने में ही आपको सुख मिलेगा।

भोजन रूखा पर सम्मान से पुष्ट

दो पण्डित अपने घर की दरिद्रता से परेशान होकर एक राजा के दरबार में

पहुँचे। राजा ने सम्मान पूर्वक उनके योग्य भोजनादि की व्यवस्था करके अनुगृहीत किया। छह महीने व्यतीत होने पर राजा ने एक दिन उन दोनों को देखा। दोनों में से एक बहुत मोटा हो गया था तो दूसरा बहुत दुबला। राजा ने पहले दुबले पण्डित से पूछा- ''पण्डित जी! आप इतने दुबले क्यों हो गये हैं, क्या आपको यहाँ कोई कष्ट है?'' पण्डित ने कहा- ''राजन्! आपके यहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं है लेकिन मेरी धर्मपत्नी बहुत सुशील-मधुर भाषिणी पतिवृता नारी है। उसके द्वारा सम्मानप्रिय वचन आदि से जो सुख मिलता है वह यहाँ नहीं है इसलिए मैं दुबला हो गया हूँ।'' उसका उत्तर सुन राजा ने दूसरे पण्डित से मोटे होने का कारण पूछा। दूसरे पण्डित ने कहा- ''राजन्! मेरी पत्नी कर्कशा, झगड़ालू एवं असभ्य है। मुझे एक दिन भी शांति से नहीं रहने देती है। हर बात में गालियाँ देती रहती है। आपके यहाँ मुझे वह दु:ख नहीं है। इसलिए मैं मोटा/हृष्ट-पुष्ट हो गया हूँ।'' अत: आप भोजन के समय अत्यन्त प्रेम से उनके अनुकूल वर्तन करें। कुछ कहना भी हो तो अन्य समय में कहें।

आवश्यकताओं का ध्यान रखें

आप अपने पति की पसन्द एवं आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखें। आवश्यकताओं का ध्यान रखने में आप यह नहीं सोचें कि आप पति की नौकरानी है। इसे तो आप अपना परम सौभाग्य समझें। पति के घर में आते ही आप प्रसन्नता से उनका सम्मान करें। आदरपूर्वक समयानुसार उनके नाश्ता-चाय, दूध, भोजन आदि की व्यवस्था करें। भोजन आदि के समय इधर-उधर की घर में हुए झगड़े-टन्टे आदि। कोई टेंशन पैदा करने वाली बात नहीं करें। क्योंकि ऐसी बातों से आदमी को बहुत जल्दी गुस्सा आ जाता है। वह थका-मांदा घर पर शांति से भोजन करने एवं आपके प्रेम के सैकड़ों अरमान लेकर आता है और पत्नी यदि आते ही गुस्सा दिलाने लगे व चिढ़चिढ़ाने लगे, अपनी फरमाइशें रखने लगे, माँ के प्रति शिकायतें करने लगे तो पति को क्रोध आना कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है।

घर पर आते ही आप पति का मूड देखकर बात करें। यदि पति का मूड़ ठीक नहीं है, उसका मुँह बना है। वह किसी से बोलना नहीं चाह रहा है अर्थात् बोलने पर कोई उत्तर नहीं दे रहा है या उल्टे-सीधे उत्तर दे रहा है तो आप संयमित रहें। ऐसी स्थिति में आपका अच्छा काम भी बुरा लग सकता है। क्योंकि पुरुष का ऑफिस, दुकान, ग्राहक, नौकर आदि के निमित्त से आया हुआ गुस्सा भी अधिकतर

पत्नी या बच्चों पर उतरता है। इसलिए ऐसे समय में आप उसे छेड़छाड़ करने का, कुछ अपनी-अपनी बताने का प्रयास नहीं करें। उस समय आप उसके जितनी अनुकूल बन सकती हैं बनें, इसी में सार है।

पति की बुराई नहीं करें

आपका पति कैसा भी हो, आप कभी किसी के सामने उसकी बुराई नहीं करें। चाहे वह आपकी अपनी माँ ही क्यों न हो। यदि आपके सामने कोई (सास-ससुर आदि बड़े लोगों को छोड़कर) चाहे वे पीहर वाले माता-पिता ही क्यों न हों, बुराई करते हैं तो आप उस बुराई को नहीं सुनें। आप उसका प्रतिकार अवश्य करें। जहाँ बोलकर प्रतिकार करने की सम्भावना हो, बोलकर करें। जहाँ बोलना उचित नहीं लगता हो वहाँ अपनी उदासीनता जता कर या वहाँ से उठकर चले जाने रूप प्रतिकार अवश्य करें। यदि आप किसी के सामने पति की बुराई नहीं करेंगी, किसी से बुराई नहीं सुनेंगी तो सम्भव है आपका पति सुधर जावे। क्योंकि स्वयं में अवगुण होते हुए भी वह आपके मुख से यदि प्रशंसा सुनेगा तो उसे अपनी गलती का सहज अहसास हो सकता है। हनुमान की माँ सती अंजना विवाह के पहले अपनी सखियों से बातें कर रही थी। एक सखी ने कहा- पवनंजय की अपेक्षा 'विद्युत्कैशी' ज्यादा शक्तिशाली है। वह पवनंजय की अपेक्षा अंजना के लिए योग्य वर है।' अंजना को यद्यपि यह बात अच्छी नहीं लगी थी फिर भी उसने संकोचवश उसका प्रतिकार नहीं किया। पवनंजय इस बात को बाहर खड़े सुन रहे थे और जब उन्होंने अंजना के मुख से कोई प्रतिकार नहीं सुना तो वे रुष्ट हो गये। उन्होंने रुष्ट होकर विवाह के पहले दिन से ही बाईस वर्ष तक अंजना का मुँह भी नहीं देखा। तिरस्कार करते रहे। यह बात अलग है कि आप स्वयं उनको अपनी गलती का अहसास कराती रहें।

यदि उनकी गलती गुरु, संत अथवा गलत आदत छुड़ाने में सक्षम किसी व्यक्ति के सामने कहना हो तो ध्यान रखें। पति के सामने रहते हुए नहीं कहें। बहुत लोगों के बीच में भी नहीं कहें। पीछे अकेले में कहें। क्योंकि पति के सामने कहने से उसे बुरा लग सकता है। उसके मन में यह भाव भी उत्पन्न हो सकता है कि जब मैं बुरा हूँ ही और यह सबके सामने मेरी इन्सल्ट करती है। गुरु के सामने मेरी शिकायतें करती है तो गलत आदत छोड़ने से भी क्या मतलब? एक दिन एक दम्पती आये। पत्नी ने कहा- ''माताजी! ये रात में भोजन करते हैं।'' मैंने उससे पूछा- ''क्यों, क्या ये सही कह रही हैं?'' उसने कहा- ''नहीं, माता जी ! कभी-कभी दुकान से

लेट हो जाता हूँ तो थोड़ी देर हो जाती है।'' पत्नी ने कहा, ''नहीं, माताजी! ये रोज सात बजे तक भोजन करते हैं।'' (सर्दी में सात बजे रात हो जाती है) यह सुन लड़के को गुस्सा आ गया। वह गुस्से में यह कहकर चला गया कि ''माताजी! अब मैं रोज घड़ी देखकर सात बजे ही भोजन करूँगा।'' पत्नी देखती रह गई। सामने शिकायत करने से ऐसा ही होता है अत: आप कभी उनके सामने शिकायत नहीं करें। लेकिन गुरु से शिकायत अवश्य करें ताकि गुरु परोक्ष रूप से गलत आदत को छुड़वा सके।

अतिथि का सम्मान करें

आपके घर पर यदि कोई अतिथि-मेहमान आये, चाहे वह रिश्तेदार हो, जान-पहचान का हो या न हो लेकिन आप उसका सम्मान अवश्य करें। सम्मान करने के पहले इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि यदि अतिथि अनजान हो या पुरुष वर्ग है तो अपने पति, सास आदि किसीके साथ ही उनसे विशेष बातचीत करें। सामान्य उत्तर देने में संकोच नहीं करें। कोई सन्त साधुभेष में भी पुरुष हैं तो अपने घर अकेले में अर्थात् आप अकेली हैं तो निमंत्रण नहीं दें। भोजन के लिए नहीं बुलावें। क्योंकि इस जमाने में भेषधारी भी अनेक साधु, पण्डित, विद्वान प्रवचनकार मिलते हैं। कोई वेषधारी नहीं भी हो तो भी भाव बिगड़ सकते हैं। अत: निमंत्रण देते समय यह अवश्य सोच लें कि जब वह भोजन के लिए आयेगा तब घर में मेरे अलावा और कोई होगा या नहीं। एक दिन एक महिला ने एक साधु को निमंत्रण दिया। साधु भिक्षा लेने आया। उसने (साधु ने) उसकी बहू को दो-चार बार देखा था। उसके भाव बिगड़ गये थे। उसने पूछ-ताछ करके यह भी अनुमान लगा लिया कि घर में वह कब अकेली रहती है। उसने सोचकर कि जब बहू अकेली होगी तब जाऊंगा। और जब वह भोजन देने आयेगी तब.....। वह अपनी योजना के अनुसार ठीक उसी समय उसके घर पहुँचा जब बहू घर में अकेली थी। वह भिक्षा माँगकर दरवाजे के पीछे छिप गया। बहू भोजन लेकर आई। उसे साधु तो नहीं दिखा। लेकिन उसकी परछाईं दिख गई। बहू चतुर थी। वह समझ गई कि साधु के मन में पाप आ गया है। वह छत के रास्ते से पड़ोसी के घर गई और अड़ोस-पड़ोस की महिलाओं को लेकर आई। तब तक साधु भी समझ गया कि यह मेरे मन की बात समझ गई है। वह भिक्षा लेने के लिए जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गया। आपने सीता-हरण का प्रकरण सुना होगा, देखा होगा। सीता का हरण करने के लिए रावण जैसा

त्रिखण्डाधिपति भी एक भेषी साधु बनकर गया था तो आज के इस निकृष्ट काल में कोई भेषी साधु हो जावे तो कोई आश्चर्य नहीं है अत: आप पुरुष वर्ग के साथ सावधानी से काम करें। फिर भी आपके घर पर यदि कोई भिखारी भी आया है तो अपनी शक्ति के अनुसार कुछ दें, नहीं दे सकती हैं तो मौन रहें या मीठे शब्दों में मना करें। क्योंकि ''भिखारी भीख मांगने के साथ-साथ एक सीख भी देता है कि मैंने पूर्व भव में किसी को दान नहीं दिया था। उसी का फल है कि मुझे खाने के लिए रूखी-सूखी रोटी भी नहीं मिलती। अत: तुम कुछ-न-कुछ दान अवश्य देना''। आप यह नहीं सोचें कि देने से घट जायेगा। या हम गरीब हो जायेंगे। देने से कभी घटता नहीं है, अपनी शक्ति के बाहर देने से, बिना सोचे-समझे देने से और पापात्मक (जिन वस्तुओं से हिंसा आदि पाप हो) वस्तुएँ देने से अवश्य लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। आप यह भी नहीं सोचें कि रिश्ते निभाने में धन खर्च होता है। सामाजिक कार्यक्रमों, दीन-दुखियों, साधु-संतों, शास्त्रों आदि में हम कब तक पैसा देते रहेंगे। और ऐसे देते रहेंगे तो हमारा खजाना कुछ ही दिनों में खाली हो जायेगा।

एक सेठ के घर में अपार सम्पत्ति थी तो वह खुले हाथों से दान भी देता था। वह माँगने पर तो देता ही था लेकिन बिना माँगे भी गरीबों को बुला-बुलाकर इस ढंग से देता था कि गरीब को यह अहसास भी नहीं हो पाता था कि सेठजी ने हमारी सहायता की है। उनके बेटे ने सोचा यदि पिताजी इतना दान देते रहेंगे तो कुछ ही दिनों में सारा धन समाप्त हो जायेगा। पिताजी से अधिक दान देने के लिए मना किया। लेकिन पिताजी ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया तो धन के लोभ में आकर बेटा गवर्नमेंट से पिताजी को पागल घोषित करवा करके पूरी सम्पत्ति का मालिक बन गया। फल यह हुआ कि कुछ ही दिनों में उसकी पूरी सम्पत्ति नष्ट हो गई। उसके घर में भोजन की दुर्लभता दिखने लगी। मेरे विचार से तो आपका घर ऐसा होना चाहिए कि यदि कोई अतिथि साधु-सन्त या सामाजिक धर्मात्मा व्यक्ति आया है तो समाज का कोई भी व्यक्ति बिना विचारे इस विश्वास के साथ आपके घर भेज दे कि आप तो उसे भोजन अवश्य करवा ही देंगे।

आतिथ्य के समय ध्यान दें

एक बार एक व्यक्ति एक गाँव में तांत्रिक संत का वेश धारण करके आया। उसकी उपदेश शैली बहुत अच्छी थी। लोग उपदेश से बहुत जल्दी प्रभावित हो जाते थे। उस गाँव की एक वृद्ध महिला भी अपनी बहू को साथ लेकर उपदेश सुनने

आती थी। वृद्ध सास संत से कुछ ज्यादा ही प्रभावित हो गई थी इसलिए वह उपदेश के निर्धारित समय के पहले ही संत के पास पहुँच जाती थी। उसने धीरे-धीरे संत से अपना परिचय बढ़ा लिया। एक दिन बहू को देखकर संत के मन में वासना जागृत हो गई। उसने सोचा, इस बहू के साथ यदि मैं एक बार भी भोग नहीं कर पाया तो जीवन से क्या प्रयोजन....। बहू संत की दृष्टि को कुछ-कुछ समझने लगी थी। धीरे-धीरे उसको संत की दृष्टि पूरी तरह समझ में आ गई। एक दिन उसने सिर दर्द का बहाना बनाकर उपदेश में जाने के लिए मना कर दिया। जब संत ने सास को अकेली देखा तो पूछ ही लिया- ''माँ जी, आज बहू क्यों नहीं आई?'' क्योंकि संत हमेशा १०-१५ मिनट तक आँखों से बहू के सौन्दर्य का पान कर ही लेता था। सास ने कहा- ''संत जी, आज बहू के सिर में बहुत दर्द है इसलिए वह आज प्रवचन सुनने नहीं आई।'' संत ने कहा- ''चिंता नहीं करो, मैं अभी एक मंत्रित धागा देता हूँ। बहू के गले में बाँध देना। उसका सिर बहुत जल्दी ठीक हो जायेगा।'' सास संत से धागा लेकर खुश हो गई। वह घर आकर बहू से बोली- ''बेटी! ये लो, ये धागा अपने गले में पहन लो। संत ने मंत्रित करके दिया है। तुम्हारा सिर ठीक हो जायेगा।'' बहू सब बात समझ गई। उसका अनुमान सही निकला। फिर भी उसने धागा लेकर संत को शिक्षा देने के लिए ही (धागे को) चक्की (हाथ से पीसने की) में बाँध दिया। आधी रात में मंत्र के प्रभाव से चक्की संत के डेरे पर पहुँच गई। और दरवाजे से भिड़ने लगी। संत ने जल्दी से दरवाजा खोला तो चक्की संत-मांत्रिक से ही भिड़ने लगी। संत के पूरे शरीर में बहुत मार लगी। घंटे-दो घंटे में चक्की वापिस अपने स्थान पर पहुँच गई। संत का शरीर मार के कारण बहुत दु:ख रहा था फिर भी उसकी वासनाएँ शांत नहीं हुई थीं। दूसरे दिन बहु फिर पेटदर्द का बहाना बनाकर उपदेश सुनने नहीं गयी। संत ने दूसरे दिन भी सास को अकेली देखकर पूछा- ''अम्माजी! क्या बहूरानी का सिर ठीक नहीं हुआ। वह आज भी नहीं आई।'' सास ने कहा- ''आपके मंत्र से सिर तो बिल्कुल ठीक हो गया है लेकिन आज पेटदर्द होने लगा है।'' संत ने कहा- ''कोई बात नहीं, आज मैं ऐसे मंत्र से मंत्रित धागा देता हूँ कि बहू के सारे रोग ठीक हो जायेंगे। बहू आगे कभी बीमार ही नहीं होगी।'' संत जल्दी से एक धागा मंत्रित करके देते हुए बोला- ''लो, इसको बहू के हाथ में अपने हाथ से बाँध देना और बहू को कह देना कि इसको तीन दिन तक नहीं खोले।'' संत के कहे अनुसार सास ने बहू के हाथ में धागा बांध दिया। बहू ने सास

का सम्मान करते हुए धागा बँधवा लिया। लेकिन रात को सोने के पहले उसने वह धागा ले जाकर भैंस के सींग में बाँध दिया। रात की बारह बजे भैंस संत के स्थान पर पहुँच गई। और चक्की के समान ही संत को दो-तीन घंटे तक मार-मारकर घायल कर दिया। संत को बहुत तकलीफ हो रही थी इसलिए तीसरे दिन से बहू के उपदेश में नहीं आने पर भी वह कुछ दिन तक शांत ही रहा। लेकिन उसके अन्दर उठने वाला वासना का ज्वारभाटा अभी तक शांत नहीं हुआ था। वह मन-ही-मन बहू को वश में करने की युक्ति सोच रहा था। एक दिन सास ने संत से अपने घर भिक्षा लेने हेतु आने के लिए आगृह किया। संत समय पर भिक्षा लेने पहुँचा। सास ने बहू से संत को भिक्षा देने के लिए कहा। बहू ने यद्यपि बड़ी सावधानी से संत की झोली में भिक्षा दी थी फिर भी संत ने उसके गले में एक मंत्रित धागा डाल दिया। धागा डालते ही बहू एक कमल का फूल बन गई। संत ने जल्दी से फूल को झोली में रखा और आगे चल दिया। संत का काम बन गया। उसने सोचा यदि यहीं रहकर मैं गलत काम करूँगा तो हो सकता है पोल खुल जावे। इसलिए मुझे अपने मठ में जाकर कार्य सिद्धि (वासना की पूर्ति) करनी चाहिए। उसने उसी दिन गाँव छोड़ दिया। वह मन में सैकड़ों अरमान संजोता हुआ रास्तें में भिक्षा से भोजन करता हुआ आगे बढ़ रहा था। चलते-चलते वह एक बड़े नगर में पहुँचा। वहाँ उसने एक धार्मिक परिवार के यहाँ अपना डेरा डाला। उसे स्नान करने के लिए नदी पर जाना था। वह अपने हाथ में वस्त्र लेकर गृहस्वामिनी से बोला- ''देखो, ध्यान रखना इस झोली को कोई छुए नहीं। यद्यपि इसमें कुछ नहीं है फिर भी दूसरे की चीज छूने से चोरी का पाप लगता है....।'' गृहस्वामिनी ने कहा- ''संत जी, आप निश्चिंत रहें। हम आपकी झोली क्यों छुएँगे? आप तो संत हैं। धर्मात्मा हैं। हमें आपकी झोली छू करके क्या करना....।'' संत नदी की तरफ जाते-जाते रास्ते से फिर लौट आया और बोला- ''अरे सेठानी! देखो, ध्यान रखना कहीं बच्चे झोली को न छू लें। यदि बच्चों ने झोली छू ली और उन्हें कुछ हो गया तो मैं कुछ नहीं जानता। बच्चों को सम्हाल कर रखना।'' सेठानी ने कहा- ''जी, मैं बच्चों को सम्हाल कर रखूँगी।'' इसी प्रकार संत ने दो-तीन बार रास्ते से लौटकर सेठानी को सावधान किया। संत की इन चेष्टाओं (बार-बार लौटने) से सेठ के मन में संदेह उत्पन्न हो गया। सेठानी के बार-बार मना करने पर भी सेठ ने संत की झोली में झाँककर देख ही लिया। उसमें एक सुन्दर कमल का फूल था। फूल को देख कर सेठ ने सेठानी से

कहा- ''देखो, संत की झोली में एक कमल है लेकिन पानी के बिना कमल कैसे खिल सकता है। इसमें कोई-न-कोई रहस्य अवश्य होना चाहिए।'' ऐसा कहते हुए सेठ ने झोली से कमल निकालकर देखा तो उसमें एक धागा बँधा हुआ था। सेठ ने जल्दी से धागे को खोल डाला। धागा खुलते ही कमल युवती के रूप में परिवर्तित हो गया। वह युवती सेठ की साली अर्थात् सेठानी की बहिन थी। वे आपस में एक-दूसरे को पहचान गये। उन्होंने जल्दी से युवती को घर में छुपाया और उस धागे को बन्दर के गले में डाल दिया। बन्दर कमल का फूल बन गया। उन्होंने फूल को यथास्थान झोली में रख दिया। और अपने काम में लग गये। संत स्नान करके आया और झोली को यथावत् देख नि:संदेह मठ के लिए रवाना हो गया। दो-तीन दिन में वह अपने मठ में पहुँच गया। मठ में पहुँचकर उसने शाम के समय अपने सब भक्तों (शिष्यों) को बुलाकर कहा- हे शिष्यो! आज रात्रि में मैं विशेष मंत्र की सिद्धि करूंगा। रात्रि में रोने, चिल्लाने, दरवाजे खोलने आदि की कितनी भी आवाजें आवें तुम लोग कुछ भी ध्यान मत देना....।'' इस प्रकार समझाकर उसने अन्दर से कमरा बन्द कर लिया। और झोली में से फूल निकाल कर उसका धागा खोला। धागा खोलते ही उसमें से बन्दर निकला। दो-तीन दिन का भूखा बन्दर संत को नोचने लगा। संत ने दरवाजा खोलने के लिए मना कर दिया था। बहुत देर तक बन्दर के नोचने से संत बेहोश हो गया। फिर भी बन्दर संत को नोंचता ही रहा। अन्तत: संत मरण को प्राप्त हो गया। जब संत/गुरुजी ने सुबह भी बहुत देर तक दरवाजा नहीं खोला तो शिष्यों ने दरवाजा तोड़कर देखा तो...।

इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी संत ऐसे ही होते हैं। सभी संत नहीं हजारो-लाखों संतों में से एक-दो संत ऐसे हो सकते हैं जिनके मन में वासना उत्पन्न हो जावे। बाकि ९९.९९% संत तो अच्छे ही होते हैं फिर भी आप संत से एकान्त में नहीं मिलें। सामूहिक आयोजनों में चाहे स्त्री संत हो या पुरुष पूरा लाभ लें। उनकी सेवा करें। संगति करें। लेकिन यदि पुरुष संत से मिलना है या कोई विशेष बात पूछना है, निमंत्रण देना है, वृत संयम गृहण करना है तो आप अपने पति के साथ या १०-१५ महिलाओं के साथ जावें। ताकि संगति का लाभ भी प्राप्त हो और शील भी सुरक्षित रहे।

कम बोलें

आप ससुराल में किसी से भी अनावश्यक और अधिक नहीं बोलें। यद्यपि

आपकी ननद, सास, जिठानी आदि आपसे बहुत बातें करने की कोशिश करेंगे। आपसे खूब हँसी-मजाक आदि करेंगे। लेकिन आपको इस चक्कर में पड़कर कि मुझे भी बहुत बातें आती हैं, मैं भी चतुर हूँ, ज्यादा नहीं बोलें। क्योंकि ज्यादा बोलने के कारण यदि आपके मुँह से कभी कुछ निकल गया, आपने अच्छी शिक्षाप्रद भी कुछ बात कह दी तो उनको जल्दी बुरा लग जायेगी। वे रूठ जायेंगे। डाँट-फटकार करने लगेंगे। उनको यह लगेगा कि कल आयी है और हमें ही शिक्षा देने लगी है। यदि ऐसा ही रहा तो यह हमारे सिर पर बैठकर क्या नहीं करेगी। ज्यादा बोलने में नहीं चाहते हुए भी कुछ ऐसा निकल ही जाता है जो सामने वालों को बुरा लग जावे। अत: वे आपको कितना ही लाड़ से रखें, वे कितना ही बोलें, आपको तो कम ही बोलना है ताकि आपका और आपकी बात का कुछ महत्त्व बना रहे।

इसी प्रकार आप सास-ननद, जेठानी आदि को अच्छा काम सिखाना चाहती हैं, उन्हें भी सत्संगति आदि के लिए प्रेरित करना चाहती हैं, तो वचन से नहीं अपने आचरण से शिक्षा दें। जैसे- यदि आपकी सास विशेष सफाई वाली नहीं है, काम करने में विवेक कम रखती है तो आप अपने मुख से कभी नहीं टोकें और न अच्छा काम करने के लिए कहें। अपितु आप विवेक पूर्वक सफाई का काम करें। आप घर का काम जल्दी निपटा कर सत्संगति, जाप आदि धार्मिक कार्य करें। आपके बड़े, संभव है, धीरे-धीरे सुधर जावें। लेकिन आपने यदि मुँह से कह दिया तो वे नाराज हो जायेंगे। वास्तव में, बड़ों को कभी शिक्षा दी नहीं जाती। बड़ों से तो शिक्षा ली जाती है। मान लिया आपको गाली पसन्द नहीं है, आप गाली देना बन्द करें। आपके मुँह से गाली निकल जावे तो उसका पश्चाताप करें। आप अपने बच्चों को शुरू से ही गाली नहीं दें। आपके घर में गाली की परम्परा बन्द हो जावे। बड़े-बूढ़े गाली देना बन्द नहीं भी करेंगे तो आपकी आगे की पीढ़ी में तो गाली देने की परम्परा समाप्त हो जायेगी।

कम बोलते हुए भी यदि कभी प्रमाद से मम्मी जी से कुछ बातचीत हो जावे, कुछ मनमुटाव हो जावे तो आप तत्काल तो सामने जवाब दें ही नहीं। लेकिन बाद में भी मौन लेकर अपने में ही नहीं रहने लगें। उस दिन तो जब तक मम्मीजी भोजन नहीं कर लें, आप भोजन नहीं करें। मम्मीजी के साथ ही भोजन करें। मम्मी जी टाल-मटोल भी करें तो भी अपने आपको दोषी महसूस करते हुए उन्हें मनावें। अपनी गलती को स्वीकार करें। आवश्यकता हो तो थोड़ा रोकर भी मना सकती हैं। अपनी माँ के समान ही मम्मीजी से भी बच्चे जैसे भोलेपन का व्यवहार करें।

निश्चित आपकी सास आपकी गलती को माफ कर देगी। आपके घर में कभी बैर (आपस में नहीं बोलने) की परम्परा नहीं पनपेगी।

घर में सफाई रखें

आप अपने घर में सफाई का पूरा ध्यान रखें। घर के कोने-किनारों की धूल को हमेशा झाड़ू लगाते समय ही साफ करती रहें। जहाँ-जहाँ हाथ पहुँचे दीवारों को साफ करती रहें। सप्ताह में एक बार सीलिंग, पानी के बर्तन रखने के स्थान (परेंडा) के ऊपर भी झाड़ू फेरती रहें। ताकि जाले नहीं जमने पावें। सफाई के अभाव में किन्हीं-किन्हीं आलसी-अविवेकी महिलाओं के घर में तो जालों की बन्दनवारें सी ही बनने लगती हैं। दूसरी बात रोज-सफाई नहीं करने से जाले लग ही जाते हैं, उन्हें साफ करने में भारी पाप का बन्ध होता है इसलिए आप दैनिक, साप्ताहिक एवं पाक्षिक सफाई करती रहें ताकि घर में सफाई भी नजर आवे और पाप भी नहीं करना पड़े। कभी-कभी भोजन आदि सब अच्छे हों लेकिन बैठने का स्थान गन्दा हो, मक्खियाँ भिन-भिना रही हों तो भोजन करने का ही मन नहीं होता है। आप लेटि-न-बाथरूम, परेंडा, नाला-नाली, वाशबेसिन आदि को दिन में दो-चार घंटे अवश्य सुखा दें अर्थात् वहाँ के पानी को पूरा सुखा दें। यदि दिन में सुखाने की गुंजाइश नहीं हो तो रात्रि में सोने से पहले अवश्य सुखाकर सोवें ताकि इन स्थानों पर काई नहीं लगने पावे। काई लगने पर वहाँ का स्थान चिकना हो जाने से फिसल कर गिरने की सम्भावना रहती है। काई के स्थान में हमेशा जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। और आने-जाने वालों को भी वह स्थान भद्दा दिखता है। लेटि-न-बाथरूम की अच्छी तरह सफाई नहीं करने पर उनमें गीलापन बना रहने से बदबू आने लगती है। बदबू आने का अर्थ ही यह है कि उन स्थानों पर बेक्टीरिया उत्पन्न हो चुके हैं। आप नाले/नाली में जूठे बर्तनों में से निकला पानी कभी नहीं डालें। नाले में अन्न का पानी जाने से उसका अन्न सड़ने लगता है। वहाँ जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। इसलिए कई घरों में नालों में से कीड़े निकलते हुए देखे जाते हैं। आप गरम-गरम चावल का मांड, सब्जी का उबला पानी आदि भी नाली में नही डालें। क्योंकि गरम-गरम मांड आदि नाले में डालने से नाले में स्थित जीव मर जाते हैं। एक बार एक महिला को चावल का मांड निकालना था। उसने सोचा कि मांड निकालने में बर्तन खराब न करके नाले में ही निकाल देती हूँ। नाले में मांड निकाल दिया। नाले में एक छोटा सा साँप बैठा हुआ था। गरम-गरम मांड से वह भुनकर मर

गया। एक-दो दिन में वह फूल गया। उसके फूल जाने से नाला बन्द हो गया। जब नाले में से पानी निकलना बन्द हो गया तब नाला खोलकर देखा तो नाले में से मरा हुआ साँप निकला। थोड़े से प्रमाद में हमारे हाथ से इतना बड़ा पाप हो गया, साँप बड़ा था इसलिए दिख गया। छोटे जीव तो कितने मरते होंगे, कहा नहीं जा सकता है। उन सबका पाप हमें बिना प्रयोजन लग जाता है। अत: गरम-गरम पानी-मांड आदि पहले किसी बर्तन में निकालकर ठंडा होने के बाद फेंके। ताकि अनर्थक पाप से बच सकें। इसी प्रकार आप झाडू लगाकर कचरा, सब्जी सुधारने के बाद निकले हुए छिलके आदि को जिलेटिन की थैली में भरकर नहीं फेंके या पूरे दिन किसी जिलेटिन में इकट्ठा नहीं करते रहें। क्योंकि जिलेटिन की थैली में हवा नहीं पहुँचती है जिससे अन्दर की चीज सड़ने लगती है। सड़ने पर बास आने लगती है। थैली में भरकर फेंकने से पशु-पक्षी सब्जी के छिलके आदि खाने के लोभ में थैली ही खा जाते हैं। जो उनके पेट में जाकर आँतों में लिपट जाती है फलत: उससे पशु की मृत्यु भी संभव हैं। सब्जी में कीड़े आदि निकल आने पर उन्हें सड़क पर नहीं फेंके। क्योंकि सड़क पर फेंकने से गाय-भैंस-सूअर आकर खा जायेंगे। या स्कूटर आदि के पहियों से उनकी मृत्यु हो जायेगी। सड़ी सब्जी को किसी छाया वाले स्थान पर रखें ताकि उन जीवों की रक्षा हो सके।

आप बिस्तरों के गिलाफ (खोल) को ज्यादा गंदे होने के पहले ही धोते रहें। कभी-कभी तकिये आदि का रंग ही बदल जाता है और तकिया सफेद से काला दिखने लगता है। उसमें से नमी का मौसम होते ही बदबू आने लगती है वह चिपचिपाने लगता है। ऐसे बिस्तरों पर सोने पर तो नींद आ रही हो तो भाग जाये। कोई आकर देखे तो यह सोचने के लिए मजबूर हो जाये कि इनकी बहू/आप किसकी बेटी हैं, आपका जन्म कहाँ हुआ है कि इतने गन्दे बिस्तर रखती हैं? बिस्तर का मात्र चादर उठाकर ही नहीं फटकें, सोने के पहले थोड़ा बिस्तर भी उलट-पलट कर लें। उसमें कोई जीव भी बैठा हो सकता है जो सोने के बाद आपको काट खावे। इसी प्रकार आप घर के सामानों को इस ढंग से जमावें, व्यवस्थित रखें कि कोई आकर देखे तो सोचने लगे कि अरे! इनके घर में तो कुछ सामान ही नहीं है। फिर भी घर में कभी कोई कमी भी नजर नहीं आती है। इसे ही तो चतुराई कहते हैं। यह भी सामान जमाने की एक कला है कि सामान दिखे भी नहीं और समय पर सब चीज उपलब्ध भी हो जावे।

आवश्यकता के समय किसको बुलावें

आप डिलीवरी, बीमारी आदि के समय किसी सहयोगी की आवश्यकता पड़ने पर अपनी बहिन, मम्मी, भाभी को नहीं बुलावें। क्योंकि पीहर वालों का सहयोग लेने पर ससुराल वाले निश्चिंत हो जायेंगे। वे भविष्य में कभी आपको सहयोग नहीं देंगे। और उनके मन में यह धारणा भी बन जायेगी कि हमें बहू के बारे में चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इनके पीहर वाले कर देंगे। ये तो पीहर वालों को बुलाकर करवा लेगी। ऐसे विचारों से ससुराल वाले ननद, देवर, सास आदि आपसे विरक्त हो जायेंगे/रहेंगे। संभव है आपको धन का बँटवारा भी नहीं मिले। यदि आप पीहर के स्थान पर सुख-दु:ख में ससुराल वालों का सहयोग लेंगी तो ससुराल वाले भी आपके प्रत्येक कार्य की चिंता करेंगे तथा पीहर वाले तो करेंगे ही। क्योंकि उनको तो आपसे प्रेम है ही। आपके समय पर ससुराल वालों को बुलाने से वे नाराज भी नहीं होंगे। क्योंकि उन्हें पता है कि बेटी का अपना घर तो ससुराल ही है। वे ही उसके परिवार वाले हैं। अत: आप अपनी तरफ से पीहर वालों को नहीं बुलाएँ, ससुराल वालों का सहयोग लें ताकि वे प्रसन्न रहें ।

इसी प्रकार घर में भी यदि कोई चीज (खाने-बनाने की) नहीं है तो पीहर से नहीं मंगवायें, ऐसा करने से भी उपर्युक्त बातें बन सकती हैं।

धर्म/पुण्य करावें

आप पति की इच्छा न होने पर भी उन्हें थोड़े-थोड़े धर्म के कार्य में अवश्य लगाए रखें। आज के युग में महिलाओं में तो धर्म के प्रति थोड़ा रुझान है लेकिन पुरुष धर्म से बहुत दूर रहना चाहता है। वह सोचता है कि ये दान, पूजा आदि धार्मिक कार्य करना तो महिलाओं का काम है क्योंकि महिलाएँ अकसर फ़्री रहती हैं, हम तो उनका पल्ला पकड़ लेंगे तो भी पार हो जायेंगे। कोई सोचता है पत्नी धर्म करेगी तो उसका कुछ हिस्सा तो हमें भी मिल ही जायेगा। क्योंकि हम दोनों तो एक ही हैं, कोई सोचते हैं मैं नरक में चला भी गया तो मेरी पत्नी मुझे निकाल लेगी। क्योंकि वह तो धर्म/पुण्य करती है, आदि-आदि....। ऐसे पुरुषों को धर्म में लगाना, परोपकार, संत-सेवा आदि पुण्य के कार्य करवाना धन कमाने-संग्रह करने आदि में जो पाप हुआ है उसका नाश करने के लिए (दान आदि में) पत्नी ही प्रवृत्त कर सकती है। यदि पत्नी इन कार्यों को करवाने में पति पर दबाव नहीं डालती है, पति को प्रेरित नहीं करती है तो पुरुष धर्म के क्षेत्र में कुछ नहीं करता है। ऐसे बिरले ही

होते हैं जो पत्नी की बिना प्रेरणा के धर्म करते हैं, उनको पूर्वभव का संस्कारित मानना चाहिए। **'मूकमाटी'** गून्थ में स्त्री शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों से
गृहस्थ जीवन शोभा पाता है।
इन पुरुषार्थों के समय
प्राय: पुरुष ही
पाप का पात्र होता है,
वह पाप पुण्य में परिवर्तित हो
इसी हेतु स्त्रियाँ
प्रयत्न-शीला रहती हैं सदा।
पुरुष की वासना संयत हो
और
पुरुष की उपासना संगत हो,
बस, इसी प्रयोजनवश
वह गर्भ धारण करती है
संग्रह वृत्ति और अपव्यय रोग से
पुरुष को बचाती है सदा,
अर्जित अर्थ का समुचित वितरण करके।
दान-पूजा-सेवा आदिक
सत्कर्मों को, गृहस्थ धर्मों को
सहयोग दे, पुरुष से कराकर
धर्म परम्परा की रक्षा करती है।
यूँ स्त्री शब्द ही
स्वयं गुनगुना रहा है
कि
स् यानी सम-शील-संयम
त्री यानी तीन अर्थ है
धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों में
पुरुष को कुशल संयत बनाती है

सो......... स्त्री कहलाती है। (पृ. २०४)

स्त्री गर्भ धारण करके पति को परस्त्रीगामी एवं अति आसक्ति से बचाकर तथा धन का सही स्थान पर उपयोग करवा कर पति को अर्थ और काम इन दोनों में जो पाप का संचय हुआ है उसे नष्ट प्राय: कर देती है। वास्तव में, वही धर्मपत्नी कहलाती है अन्यथा वह मात्र भोग का साधन बनकर दोनों के जीवन को निरर्थक कर देती है। इसलिए आप भी साम-दाम-दण्ड अर्थात् समझाकर पापों तथा परगति के दु:खों से भयभीत कर और रूठकर, रो-रोकर, येन-केन प्रकारेण पति को धर्म करवावें/धर्म की प्रेरणा देवें। यदि बहुत बार कहने पर भी पति धर्मकार्य के लिए तैयार नहीं हो तो भी आप निराश नहीं हों, प्रयत्न करती रहें। आशा लगाये रहें। भगवान से प्रार्थना करती रहें। आप यह भी नहीं सोचें कि इनको समझाने से कोई फायदा नहीं है। ये मानते तो हैं नहीं, मैं तो इनको कह-कहकर थक गई हूँ। मैं इनसे धर्म करने के लिए कभी नहीं कहूँगी आदि.....। मुझे तो यही खुशी है कि मुझे धर्म करने के लिए मना नहीं करते हैं। मैं आपसे पूछती हूँ कि जब आपका बच्चा स्कूल नहीं जाता है, स्कूल में छोड़कर आ जाने पर भी लौटकर आ जाता है। स्कूल जाने का नाम सुनकर ही रोता है तो क्या आप बच्चे को स्कूल जाने के लिए कहना छोड़ देती हैं, नहीं ना; जैसे-तैसे करके अर्थात् लोभ देकर के, साथ में जाकर के, पढ़ाई के फल को बता करके स्कूल बदल करके बच्चे को पढ़ा ही लेती हैं। जब तक बच्चा पढ़ने नहीं लगता तब तक आप प्रयत्न करना नहीं छोड़ती हैं। उसी प्रकार यदि आपके पति धर्म नहीं करते हैं तो आप तब तक पुरुषार्थ करती रहें, जब तक वे धर्म में नहीं लगते। आप यह भी नहीं सोचें कि क्या पतिदेव बच्चे के समान नासमझ हैं, आपके पति भले ही उम्र से बच्चे न भी हों लेकिन धर्म के क्षेत्र में तो बच्चे ही हैं। इसलिए आप पुरुषार्थ नहीं छोड़ें। आज नहीं तो कल आखिर वो दिन अवश्य आयेगा जिस दिन आपकी मेहनत सफल हो जायेगी। आपके पति धर्म/पुण्य करने लगेंगे। आप प्रसन्न हो जायेंगी। कहा भी है, पुरुषार्थ कार्य सिद्धि का उपाय है, यदि आप पुरुषार्थ करना ही छोड़ देंगी तो आपके कार्य की सिद्धि कभी नहीं हो सकती है।

यदि दूसरे के बच्चे आपके पास रहते हैं तो

अपने गाँव में स्कूल आदि नहीं होने के कारण या आर्थिक परिस्थिति के कारण या और किसी विशेष कारण (माता-पिता के अविवेकी/व्यसनी होने) से

ननद-भैया आदि के बच्चे पढ़ाई आदि के लिए आपके यहाँ रहते हैं तो आप उनको एकदम पराया नहीं समझें। पढ़ाई का ध्यान रखते हुए, यदि लड़की है तो समय-समय पर घर सम्बन्धी काम भी करवावें। धार्मिक संस्कारों का भी ध्यान रखें। घरेलू कार्य, साफ-सफाई करना, सिलाई-बुनाई आदि कार्य भी उसकी बुद्धि और आपके घर की क्षमता केअनुसार अवश्य सिखावें। जब तक वह आपके यहाँ रहती है तब तक आप ही उसकी माँ के समान हैं इसलिए आपका कर्त्तव्य है कि आप उसको संस्कारित करें। आपके घर में जैसा है वैसा प्रेम-अपनत्व से खिलावें। जैसा है वैसा पहनावें लेकिन उसके साथ परायेपन का व्यवहार नहीं करें। यदि लड़का है तो उसका पूरा ध्यान रखें कि कहीं किसी व्यसन में तो नहीं फँस रहा है। उसको अपनी दुकान पर भी काम करावें। फ्री समय में छोटे बच्चों को पढ़ाना, मामा, फूफा को दुकान से भोजन के लिए घर भेजना, बच्चों को स्कूल छोड़ना, स्कूल से लाना आदि कार्य करावें। दुकान पर बैठते समय उसके ऊपर अविश्वास-संदेह नहीं करें। अविश्वास से वह चोरी नहीं करता हो तो भी करना सीख सकता है। समय-समय पर (लड़का हो या लड़की) उनकी फ्रेन्डशिप, बर्थ डे आदि में यदि अपने मित्रों को खिलाने, गिफ्ट देने आदि के लिए पैसों की आवश्यकता हो तो दें। ताकि बच्चे में चोरी करने की आदत नहीं पड़े। अधिक पैसे भी नहीं दें। यदि अधिक पैसा माँगे तो समझावें। बार-बार समझाने पर भी नहीं समझे तो उसके माता-पिता को संकेत दें। और यदि आपकी शादी किसी ऐसे लड़के/पुरुष के साथ में हुई है जिसके पहले से बच्चे हैं, बच्चों की माँ मर जाने के कारण ही उसको (आपके पति को) आपके साथ शादी करनी पड़ी है तो आप बच्चों को अपना ही समझें। आप स्वयं माँ बनी हैं। मातृत्व को समझती हैं, यदि आप बच्चों को थोड़ा प्यार से रखेंगी तो बच्चों के पापा भी उनको अच्छा रखेंगे। उनकी तरफ ध्यान देंगे। अन्यथा वे तो दूसरी पत्नी के (आपके) मोह में पागल हो ही जाते हैं। बेचारे बच्चे तो पहले ही दु:खी हैं, उनको माँ का प्यार नहीं मिला है, आप उनको इतना प्यार दें कि उनको कभी माँ की याद ही नहीं आवे। उनको कभी यह अनुभव में ही नहीं आवे कि उनकी माँ नहीं है, आप भले ही उन्हें कैसा ही रखेंगी। उनकी पूरी आवश्यकताओं/व्यवस्थाओं की पूर्ति आपको करनी पड़ेगी। उनकी पढ़ाई भी आपको ही करवाना है। आप एक बार उसको व्यवस्थित ढंग से पाल लेंगी/पैरों पर खड़ा होने योग्य बना देंगी तो आप भी जिन्दगी भर के लिए निर्विकल्प हो जायेंगी और बच्चे की भी जिन्दगी बन जायेगी।

आप कुन्ती को देखें जिसने इतनी विपत्तियों में भी अपनी सौत के बेटे नकुल-सहदेव के साथ ऐसा व्यवहार किया कि आज भी यदि किसी ने पूरा महाभारत नहीं पढ़ा है, नकुल-सहदेव की माँ के बारे में नहीं जानता है तो वह यह नहीं सोच सकता है कि नकुल-सहदेव युधिष्ठिर के सगे भाई नहीं थे, सौतेले भाई थे। इसी प्रकार यशोदा ने श्रीकृष्ण का जितने प्रेम से पालन किया था उस प्रेम की तुलना सगी माँ के प्रेम से भी नहीं की जा सकती है। यदि आप उसी व्यवस्था को प्रेमपूर्वक देंगी तो बच्चे में भी आपके प्रति प्रेम-आदर-बहुमान का भाव उत्पन्न होगा। सम्भव है वह आपकी वृद्धावस्था में सेवा कर दे। तथा आपको सौतेले बच्चे के साथ भी इतना अच्छा व्यवहार करते देखकर समाज, नगर, रिश्तेदारी आदि में आपकी प्रतिष्ठा होगी। और यदि आप मजबूरी से डाँट-फटकार करके उससे ज्यादा काम आदि करवा करके, उसको मार-पीट करके रखेंगी तो बच्चों में भी आपके प्रति ग्लानि का भाव उत्पन्न होगा। उसमें भी आपको दु:ख देने के भाव उत्पन्न होंगे। वह भी आपसे दूर रहने लगेगा। उसमें भी आपके प्रति परत्व का भाव पैदा होगा। अत: अच्छा तो यही है कि प्रेमपूर्वक ही बच्चे का पालन-पोषण करें।

शादी के पहले लड़का ध्यान दे

विवाह का उद्देश्य समझे

आप शादी के बारे में यह धारणा नहीं बनावें कि मुझे शारीरिक भोग के लिए या दैहिक (रति) सुख के लिए शादी करना है, नहीं; शादी मात्र शारीरिक सुख के लिए नहीं की जाती है। शादी का उद्देश्य –

(१) मन में उत्पन्न वासना को धीरे-धीरे शान्त करने के लिए।

(२) व्यभिचार जैसे महापाप से बचकर स्वदार-संतोष व्रत का पालन करने के लिए।

(३) जीवन में अकेलेपन को मिटाने के लिए क्योंकि सामाजिक प्राणी अकेला नहीं रह सकता।

(४) सुचारु ढंग से भोजन-पानी आदि की व्यवस्था को प्राप्त करने के लिए।

(५) जीवनभर सुख-दु:ख में सहयोग करने वाला स्थायी साथी प्राप्त करने के लिए।

(६) अपनी कुल-परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए और

(७) सामाजिकता को अक्षुण्ण बनाये रखने और दुराचार से दूर रहकर भी

वैषयिक सुख की मिठास चखते रहने के लिए।

यद्यपि उपर्युक्त उद्देश्य व्यक्त रूप से किसी के मन में नहीं रहते लेकिन अव्यक्त रूप से सबके मन में ऐसे ही विचार रहते हैं। फिर भी मन की चंचलता आधुनिक वातावरण एवं हानि-लाभ की जानकारी नहीं होने के कारण शादी करके पत्नी को मात्र दैहिक सुख का साधन मानता हुआ भोगों की अति करके शरीर को खोखला कर लेता है और यौवन में ही वृद्ध होकर अकाल में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अत: आप मात्र रतिसुख के लिए ही शादी नहीं करें। मात्र रतिसुख के लिए शादी करने वाला तो एक प्रकार से व्यभिचारी जैसा होता है। क्योंकि जिस प्रकार व्यभिचारी अति मैथुन सेवन से अपने शरीर की शक्ति को बहुत कम दिनों में ही नष्ट करके एड्स, क्षय, दमा आदि रोगों से गृसित होता हुआ मृत्यु की गोद में सो जाता है, उसी प्रकार यह भी आसक्ति के कारण निर्लज्ज होता है। जिस प्रकार व्यभिचारी नरकगामी होता है उसी प्रकार यह भी मैथुनसेवन से उत्पन्न पाप के कारण तथा मरते दम तक वासनागृसित रहने के कारण नरकगामी होता है। इस प्रकार अनेक दृष्टियों से व्यभिचारी और मात्र रतिसुख के लिए शादी करने वाला एक जैसा ही होता है। अत: आप पहले से ही यह उद्देश्य बनावें कि बुढ़ापा और बचपना एक जैसा होता है। मुझे भी वृद्धावस्था में बचपने के समान निर्विकार बनना है। जिस प्रकार शादी के पहले हम दोनों (पति-पत्नी) का भाई-बहिन का रिश्ता था, एक दूसरे के प्रति कोई विकार नहीं था, उसी प्रकार वृद्धावस्था में भी हम भाई बहन के समान ही हो जावें। इसलिए मुझे शादी होते ही प्रथम वर्ष के प्रत्येक महीने में एक दिन का बृह्मचर्य तो संकल्प पूर्वक पालना ही है। इसके लिए वार (सोमवार आदि) निश्चित कर लें। द्वितीय वर्ष प्रत्येक माह में दो दिन इस प्रकार एक-एक दिन बढ़ाते हुए ३०-३१ वर्ष में तो हम बृह्मचारी (पति/पत्नी सम्बन्ध से रहित) बन ही जायेंगे। और यदि आप पापभीरु हैं, अपने शरीर और मन को स्वस्थ-प्रसन्न रखना चाहते हैं तो अधिक बृह्मचर्य का पालन करने की धारणा बनावें, ऐसा करने से आपका शादी करना भी एक धर्म पुरुषार्थ होगा।

नोट- बृह्मचर्य पालन के लिए देखें- इसीके पूर्वार्ध में 'जब तक संतान की आवश्यकता न हो।' **अथवा** 'शील मंजूषा' पुस्तक पढ़ें।

विवाह क्या है

किसी योग्य लड़के-लड़की का एक-दूसरे के प्रति जीवन समर्पित करना

विवाह है। विवाह होने के बाद दो प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पहली, विवाह के बाद जीवन में विशिष्ट रूप से वाह जीवन में वाह-वाह अर्थात् सुख-शान्ति प्राप्त करते हुए लोक में भी वाह-वाह प्रशंसा को प्राप्त करता हुआ आदर्श जीवन व्यतीत करता है। और दूसरी स्थिति, विवाह के बाद जीवन में पति-पत्नी दोनों की आहें निकलने लगती हैं अर्थात् दोनों एक-दूसरे के क्लेश प्रतिद्वन्द्वी बनते हुए संक्लेश पूर्वक हमेशा दु:खी होते हैं। उनके दिल में जब कभी तलाक या एक दूसरे से अलग होने के विचार उत्पन्न होते रहते हैं। ये दोनों स्थितियाँ पति-पत्नी के अपने विचार, व्यक्तित्व एवं व्यवहार पर आधारित हैं। विवाह का अर्थ यह नहीं होता कि लड़के को जीवन भर के लिए रोटी बनाना, कपड़े धोना, सफाई करना आदि घर का प्रत्येक काम करने वाली बिना पैसे की एक नौकरानी मिल गयी है और लड़की को जीवन भर के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, भोग-उपभोग आदि की सामग्री देने वाला एक व्यक्ति मिल गया। अपितु इसमें/विवाह में एक-दूसरे में मोह का ऐसा बन्धन बँध जाता है कि भव-भव तक भी पति-पत्नी फिर-फिर मिलते हैं, फिर-फिर उनमें एक-दूसरे के प्रति अप्रत्याशित प्रेम राग उत्पन्न होता है। ऐसे विवाह को सामान्य बात समझते हुए यौवन के मद में आकर हमेशा लड़ते रहना, घर में संक्लेश मचाये रखना, पत्नी को मारना-पीटना, गाली-गलौच करते रहना। इस चैलेंज से पत्नी की एक बात भी नहीं सुनना कि मैं पत्नी का लट्टू/गुलाम नहीं हूँ। कई मूर्ख लोग तो यह सोचकर शादी करते हैं कि घर में बच्चे हों, चहल-पहल रहे और काम करने वाला एक सदस्य भी हो जावे। ऐसा सोचने वाले एवं नपुंसक में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार नपुंसक को स्त्री सम्बन्धी सुख नहीं मिलता है उसी प्रकार यह भी स्त्रीसुख प्राप्त करते हुए भी अर्थात् स्त्री के साथ भोग करते हुए भी सुखी नहीं हो पाता है क्योंकि सुख का मूल कारण तो आपसी प्रेम है। एक-दूसरे के प्रति संतुष्टि-अपनत्व का भाव है। वह तो वास्तव में स्त्री के साथ भोग नहीं अपितु एक प्रकार से बलात्कार करता है फिर उसे सुख कैसे मिल सकता है। एक प्रसिद्ध मुस्लिम नेता ने एक बार भारतीय और भारतीयेतर (पाश्चात्य) संस्कृति की तुलना

> एक पाश्चात्य दार्शनिक ने कहा है - एक सद्गुणी नारी से विवाह जिन्दगी के तूफान में बन्दरगाह के समान है जबकि बुरी अयोग्य नारी से विवाह बन्दरगाह में तूफान के समान होता है।

करते हुए कहा था- भारतीय संस्कृति अर्थात् जैन और हिन्दुओं में स्त्री-पुरुष का विवाह उनके शरीरों से नहीं होता, उनकी आत्माओं से होता है। शरीर तो नष्ट हो जाते हैं किन्तु उनके मत में आत्मा अमर है। इसलिए उनका प्रेम भी नहीं मरता है। वह दूसरे जन्म में भी रहता है। मुसलमानों में विवाह दो शरीरों के होते हैं वे स्थायी नहीं होते हैं। हमारे यहाँ तलाक की प्रथा है। इसी कारण पति-पत्नी के सम्बन्धों में स्थायित्व नहीं आ पाता है। यूरोप में विवाह एक बारगेन (समझौता) है वहाँ पहले प्रेम होता है फिर विवाह; जबकि भारतीय संस्कृति में पहले विवाह होता है फिर प्रेम। अत: आप विवाह का सही उद्देश्य समझें और विवाह के बाद प्राप्त होने वाले सुख/निर्विकल्पता को प्राप्त करें।

नोट- यहाँ निर्विकल्पता का अर्थ मन में अपनी पत्नी को छोड़कर किसी भी स्त्री-लड़की के प्रति गलत भाव उत्पन्न नहीं होना तथा एक दूसरे के प्रति अपनत्व का भाव होने से भोजन आदि की व्यवस्था भी सहज हो जाती है। उस सम्बन्धी विकल्प भी समाप्त हो जाता है।

दहेज के चक्कर में न पड़ें

आप दहेज के लोभ में आकर अपने योग्य लड़के का अयोग्य लड़की के साथ विवाह नहीं करें। जैसे- लड़का अच्छा पढ़ा-लिखा है, पढ़ी-लिखी लड़की को ही पसन्द करता है और आपने किसी अनपढ़ लड़की से उसका विवाह कर दिया तो वह अपने मित्रों के बीच में घूमने, पार्टी आदि के समय उसको (पत्नी को) अपने साथ ले जाने में हिचकेगा। क्योंकि वहाँ यदि किसी ने कुछ सामान्य बात भी पूछी और पत्नी अनपढ़ होने के कारण उसका सही ढंग से उत्तर न दे पाई तो आपके बेटे को बहुत फीलिंग होगी। दो-चार बार ऐसा होने पर आपका बेटा सुसाइड भी कर सकता है। बिना पसन्द की होने से छोड़ सकता है। दु:ख दे सकता है, कभी यह कहकर कि मम्मी-पापा को लड़की पसन्द थी तो वे रखें, मुझे ऐसी पत्नी नहीं चाहिए। आपके पास छोड़कर चला गया तो जिन्दगी भर आप उसको कैसे रखेंगे? हाँ, यदि आप कुछ कम पढ़ी-लिखी या कुछ कमी वाली अर्थात् सुन्दर कम हो, आँख में कुछ मिस्टेक हो या पैर से लंगड़ाती हो, लड़की से बिना किसी दहेज की माँग किये शादी कर लेते हैं/ली है तो आप एक ऐसे महान् दयालु और परोपकारी व्यक्ति हैं आपने एक अपंग लड़की को अपनाकर सुखी बनाया है। ऐसा करने पर फिर आपको न कोई व्यंग्य कर सकता है और न आपको अपने आपमें ऐसी अनुभूति

हो सकती है कि मैंने किसी अयोग्य लड़की से शादी की है। आप लोक में सम्मान की दृष्टि से ही देखे जायेंगे और दहेज लेकर योग्य लड़की से शादी करके भी आप कभी सम्मानित नहीं हो सकते।

आप सोचें कि मान लिया लड़की के माता-पिता ने १०-१५ लाख भी दे दिये तो क्या इस सम्पत्ति से आपके/आपके बेटे के पूरे जीवन भर चल सकता है। कहा भी है- ''**पूत-सपूत तो क्यों धन संचै, पूत-कपूत तो क्यों धन संचै।**'' आपका बेटा यदि सुपुत्र है, भुजाओं में शक्ति रखता है पुरुषार्थी है तो वह स्वयं इतना धन कमा सकता है कि १०-१५ लाख दान में दे दे। दीन-दरिद्रों की सहायता में लगा सकता है और यदि आपका बेटा पुरुषार्थहीन है, व्यसनी है, पैसा फेंकने वाला है। पैसों का उपयोग करना नहीं जानता है, कपूत है तो आपने १५ नहीं ५० लाख भी दहेज में ले लिये तो भी वह उन्हें कुछ ही दिनों में समाप्त कर देगा। जिस प्रकार पानी का समुद्र भी भरा हो परन्तु उसमें पानी का आना बन्द हो और उसमें से यदि हमेशा निकालते रहें तो वह भी एक दिन खाली हो ही जाता है। लड़की के पिताजी ने २०-२२ वर्ष तक अपनी बेटी का पालन-पोषण करके वह आपको सौंप दी, क्या यह कम है! यदि लड़की के जन्म के बाद भी उसकी पढ़ाई, कपड़े, भोजन-पानी-औषधि आदि का खर्चा जोड़ा जाय तो कितना होगा, थोड़ा अनुमान लगावें। उसने आपको कितना दे दिया और वह भी आपका हमेशा-हमेशा के लिए अहसान मानते हुए। दूसरी बात यदि आपने दहेज लिया है तो आपकी बहू/पत्नी आपको नचाएगी और आपको नहीं चाहते हुए भी नाचना पड़ेगा। कभी वो यह भी कहेगी कि मेरे पिताजी ने इतने लाख दिये हैं, मैं काम क्यों करूँगी। कभी कहेगी मेरे पापा ने इतने लाख में लड़का खरीदा है, खरीदा आदि आदि.....। तू-तू-मैं-मैं होकर आपसी प्रेम भी टूट सकता है। तलाक की नौबत भी आ सकती है। दहेज लेने से या लेने का विचार करने मात्र से भी आज दहेज के कारण जितनी लड़कियाँ सुसाइड कर रही हैं या किसी (सास-ससुर आदि) के द्वारा मारी जा रही हैं। उस पाप का छठा अंश आपको भी मिलेगा। आप दहेज मांगने के पहले विचार करें कि आपकी बहिन/बेटी के लिए यदि कोई दहेज मांगेगा और आपके पास देने के लिए उतना पैसा नहीं होगा तो आपकी क्या हालत होगी। इन सब बातों का विचार करते हुए दहेज लेकर नहीं **'देहज'** अर्थात् माता-पिता के शरीर से उत्पन्न बेटी को लेकर संतुष्ट रहें। अपनी भुजाओं पर विश्वास रखें। पुरुषार्थी और स्वावलम्बी बनकर

शान्ति से जीवें।

एक व्यक्ति ने बताया, ''माताजी! कई लोग दहेज तो नहीं माँगते। लेकिन शादी के बाद सबसे पहले आने वाले रक्षाबन्धन तथा डिलेवरी के समय इतना खर्च करवा देते हैं जो दहेज से भी ज्यादा महंगा पड़ जाता है। उस समय भी ससुराल पक्ष के सभी (सास-ससुर) जेठ-जेठानी, बच्चों आदि के लिए सोना, कपड़े आदि की रस्म अदा करनी पड़ती है। यह भी एक प्रकार से दहेज ही है। इन समयों में भी आप माँग नहीं करें और यदि वे अपनी शक्ति से बाहर कर्जा लेकर देते हैं तो उसे स्वीकार नहीं करें। यह भी एक धर्म है। कई लोग दहेज माँगते तो नहीं हैं लेकिन अपने मन का नहीं मिलने पर पत्नी/बहू को त्रास/दुःख देते हैं। ताने कसते हैं। दूसरों से तुलना करके हीन दृष्टि से देखते हैं। बहू को दुःख देने से भी आखिर सास-ससुर को क्या मिल जायेगा। कई निर्दय लोग तो दहेज नहीं मिलने पर बहू को मार ही देते हैं। बहू को मारने से उन्हें धन-सम्पत्ति तो मिलती ही नहीं है, उसके स्थान पर आजीवन कारावास मिल जाता है। दहेज के स्थान पर बिना दहेज की पत्नी भी दुर्लभ हो जाती है और संसार में बदनामी भी फैल जाती है। इसलिए आप दहेज के चक्कर में कभी नहीं पड़ें।

इस विषय में **सेठ गुलाबचन्द जी तामोट** का आदर्श नहीं भुलाया जा सकता है- मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के समीपवर्ती ग्राम **तामोट** के निवासी मध्यप्रदेश के पूर्व मंत्री गुलाबचन्द के तीसरे बेटे की शादी का प्रसंग आया। अपने पहले दो बेटों की शादियों में कुछ भी न लेने के लिए विख्यात तामोट जी ने तीसरे बेटे की शादी के समय कन्या पक्ष वालों से जो कहा वह समाज के लिए अनुकरणीय एवं दहेज दानवों के मुँह पर करारे तमाचे की भाँति है। आपने कन्या पक्ष वालों से कहा- ''आप मुझे अपनी बेटी देकर एक ऐसा कर्जा दे रहे हैं जिसकी अदायगी (पूर्ति) जब मैं अगले भव/जन्म में बेटी का पिता बनकर अपनी बेटी आपके घर में दूँ तभी हो सकेगी। अतएव अब आप बेटी के साथ और सामग्री मत देना अन्यथा मैं यह भार नहीं उठा पाऊँगा।'' आगे आपने कहा- ''जो सामान मेरे बेटे की आवश्यकता के हैं, वह अपनी कमाई से पूरा करे और जब वह पूरा न कर सके तो मैं बैठा हूँ, मैं पूरा करूँगा। उसकी पूर्ति का दायित्व कन्या के पिता का नहीं है।''

इसी प्रकार आप अपनी बेटी को भी ऐसे घर में देने की कोशिश करें जो दहेज के लोभी नहीं हैं अन्यथा यह विश्वास नहीं रखें कि आपकी बेटी जीवन भर

सुखी रह पायेगी, लम्बी जिन्दगी जी पायेगी। इसके साथ ही आप अपनी शक्ति के अनुसार अपनी इच्छा से बेटी को दहेज अवश्य दें।

दहेज देते समय ध्यान दें

कई लोग अपनी प्रतिष्ठा के लिए घर में पैसा नहीं होने पर भी कर्जा लेकर दहेज देने के लिए तैयार हो जाते हैं/देते हैं। रिश्तेदार आदि के द्वारा अनेक प्रकार से समझाये जाने पर भी 'लोग क्या कहेंगे' यह सोच-सोचकर वे उनकी बात को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। सन्त कहते हैं कि पुराने जमाने में चार कषायें होती थीं। क्रोध, मान, माया और लोभ। लेकिन इस जमाने में एक कषाय और बढ़ गयी है वह है ''लोग क्या कहेंगे।'' यह भी मान कषाय में ही गर्भित है। आप प्रतिष्ठा के चक्कर में न पड़े। भले ही आपकी बेटी किसी बड़े (धनाढ्य) घर में जा रही है। आप चन्द क्षणों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए कर्जा लेकर या घर की मूल्यवान सोना, चाँदी, जमीन-जायदाद बेचकर दहेज दे देंगे तो उस कर्ज को उतारने के लिए आपको जीवन भर कितना चिन्तित रहना पड़ेगा। कितना श्रम करना पड़ेगा, आप स्वयं सोचें। लोक में देखा भी जाता है कि जिस पर एक बार कर्ज चढ़ गया तो उसके मूल समाप्त होना बहुत कठिन होता है कोई विरले ही लोग होते हैं जो कर्जदार बनकर भी कर्जमुक्त होकर शान्ति से जी पाते हैं। कहते हैं- कर्जदार तो ब्याज देने में डूब जाता है अर्थात् कर्ज से ज्यादा रकम ब्याज में दे देने के बाद भी मूल रकम उतनी ही बनी रहती है अथवा कोई-कोई अपने जामाता एवं सम्बन्धियों को प्रसन्न रखने के लिए कर्जा लेकर दहेज देते हैं। आप सोचें क्या आपके रिश्तेदार दहेज लेकर खुश हो सकते हैं ? यदि वे दहेज के लोभी हैं तो आप जिन्दगी भर भी दहेज के रूप में कुछ-न-कुछ देते ही रहेंगे तो भी वे खुश नहीं होंगे अपितु और लेने की इच्छा रखेंगे। आप जितना-जितना देते जायेंगे वे अन्य चीजों के लिए रूठते रहेंगे। और यदि वे दहेज के लोभी नहीं हैं, दहेज नहीं लेना चाहते हैं तो आप दहेज नहीं देंगे तो भी प्रसन्न रहेंगे। अतः आप अपनी शक्ति के अनुसार ही दहेज दें, शक्ति का उल्लंघन नहीं करें।

दहेज देने योग्य आवश्यक सामग्री

आप बेटी को दहेज में भोग की सामग्रियाँ जितनी शक्ति और मन हो उतनी दें लेकिन उनके साथ भोगों से हटकर धार्मिक सामग्रियाँ भी दें जो जीवन-निर्माण के लिए प्रेरणा देने वाली हैं, समय-समय पर भगवान की याद दिलाने वाली हैं, साधु-

समागम, सत्संगति करने में सहयोग देने वाली हैं। जैसे–

(१) भगवान या गुरु की तस्वीर - भगवान हमारे आदर्श पुरुष हैं। उनका जीवन हमेशा पाप से रहित होता है। वे राग-द्वेष से रहित होते हैं। उनकी तस्वीर देखकर उनका जीवन एवं व्यक्तित्व हमारे सामने आता है। हमारे परिणाम निर्मल होते हैं। हमारे मन में भी उनके समान बनने की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। गुरु की तस्वीर देखकर उनके गुणों में अनुराग उत्पन्न हो और समय-समय पर उनके पास जाकर उनसे जीवन विकास के सूत्र प्राप्त करने की याद आती रहे।

(२) धार्मिक या प्रेरणास्पद ग्रन्थ- जिनको पढ़कर पाँच पापों (हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म, परिगृह) से बचने के भाव उत्पन्न हों/पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्ति कम हो। महापुरुषों के समान संतोषी जीवन जीने की शिक्षा मिले। जिसको देखकर आज नहीं तो कल कभी भी धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने के भाव उत्पन्न हो सकते हैं। घर में यदि साहित्य है तो कभी कौतुकवश ही उसे पढ़कर धार्मिक भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। आने वाली पीढ़ी भी उनसे संस्कारित हो सकती है। आप यह **संस्कार मंजूषा** भी दे सकती हैं। इसको पढ़कर यदि आपकी बेटी एक बच्चे को संस्कारित कर देगी तो उस बच्चे के माध्यम से हमारा देश व धर्म सुरक्षित रहेगा। इसी प्रकार आगे......।

(३) एक वेष्टन और स्टेण्ड- जिस पर धार्मिक पुस्तकें विराजमान कर विनय किया जा सके। उसको पढ़ा जा सके। और उसकी सुरक्षा के लिए एक वेष्टन, ऐसा वस्त्र जिसमें रखकर धार्मिक ग्रन्थ को धूल, पानी आदि से बचाया जा सके और फटकर नष्ट भी न हो पावे।

(४) पूजा के बर्तन एवं सामग्री- जिनको देखकर भगवान के प्रति भक्ति, पूजा के भाव उत्पन्न हों। जो भोजन के उपयोग में नहीं आए हों। क्योंकि जिन बर्तनों में भोजन कर लिया, जिनसे पानी पी लिया है, वे जुठे कहलातें हैं। इसलिए उनसे पूजा करने में पाप का बन्ध भी होता है। अत: आप छोटे-छोटे दो कलश, छोटी-छोटी दो चम्मच, छोटी प्लेट, छोटी-छोटी कटोरियाँ आदि दें। जिन्हें देखकर ही लगे कि ये भगवान की पूजा के बर्तन हैं कुछ पूजा की सामग्री भी दें। जैसे- नारियल, केशर, चन्दन, बादाम, सुपारी आदि।

(५) एक जपमाला- चन्दन, स्फटिक, धागे या चाँदी-सोना आदि में से जैसी आपकी शक्ति हो, जाप करने के लिए माला अवश्य दें। जिनमें १०८

मणियें तथा उनके ऊपर तीन मेरु के मणिये हों। धार्मिक ग्रन्थों में कहा है कि यह जीव दिन में १०८ प्रकार से पाप करता है उन पापों को नष्ट करने के लिए महामंत्र की एक माला सुबह एवं एक माला शाम को अवश्य जपना चाहिए। माला देखकर जप करने के भाव उत्पन्न होते हैं/हो सकते हैं।

(६) एक डिब्बी- जिसमें जप माला को सुरक्षित रखा जा सके एवं यथासमय सहज रूप से मिल जावे। अथवा उस डिब्बी में भगवान को समर्पित करने योग्य सामग्री लेकर हमेशा भगवान के दर्शन के लिए जाया जा सके। क्योंकि बड़ों के सामने खाली हाथ नहीं जाया जाता। दूसरी बात हाथ में सामग्री होने से "मैं कहाँ जा रहा हूँ" इस बात का ख्याल रहता है।

(७) पूजा के वस्त्र- भगवान की पूजा-भक्ति, सन्तों की सेवा के लिए जाते समय, माला-जाप करते समय, साधु-सन्तों को भोजन कराने आदि कार्यों में ये विशेष वस्त्र घर में होने से भोगों में (भोजन-पानी, दुकानदारी, रात को सोते समय) पहने हुए वस्त्रों को पहनकर धार्मिक कार्यों को नहीं करना पड़े। क्योंकि भोगों के वस्त्रों से ऐसे पवित्र कार्य करना अच्छा नहीं है इसमें पाप का बन्ध होता है। आप ये वस्त्र आज बेटी को ही नहीं दे। जँवाई को भी धोती, दुपट्टा, बनियान और एक अधोवस्त्र अवश्य दें। जिन्हें देखकर जंवाई यदि धार्मिक कार्य में रुचि नहीं लेता हो तो उन वस्त्रों को देखकर उसका भी मन धार्मिक कार्यों को करने का हो जावे।

(८) पानी छानने का छन्ना- पानी छानकर पीने से मलेरिया आदि बीमारियाँ नहीं होतीं। पानी की एक बूँद में छत्तीस हजार चार सौ पचास जीव चलते-फिरते (माइक्रोस्कोप से) देखे गये हैं/हम देख सकते हैं। उनकी रक्षा पानी छान कर, छने हुए पानी से धोकर जहाँ से पानी आया है वहाँ पहुँचा देने से हो जाती है। अत: यह भी जीवरक्षा का कारण होने से धार्मिक कार्य है।

जिवानी/बिलछानी की विधि

पानी छानकर छन्ने (कपड़े) को छने हुए पानी से धोकर अर्थात् पानी छानने के बाद जो छन्ने के ऊपर जीव आये हैं उन्हें छना पानी डालकर धो लें। फिर उस पानी को जहाँ से पानी लाये हैं वहीं पहुँचाना जिवानी है। एक बार सही विधि से जिवानी करके यथास्थान पहुँचाने से असंख्यात जीवों को अभय/जीवनदान देने का फल मिलता है।

शंका- हम नल/बोरिंग/हैण्डपम्प का पानी पीते हैं उसकी जिवानी यथास्थान कैसे पहुँचाई जा सकती है?

समाधान- पुराने जमाने में नल आदि की व्यवस्था नहीं होने से लोग कुए के पानी का ही उपयोग करते थे जिससे सहज ही जीवों की रक्षा करके पापों से बच जाते थे। लेकिन इस यांत्रिक युग में कोई कुए का पानी पीते भी नहीं हैं और मिलता भी नहीं है। लगभग सभी लोग नल आदि का पानी ही पीते हैं फिर भी अपवाद मार्ग में उसकी भी जिवानी की जा सकती है। विधि पूर्वक छन्ने को धोकर जिवानी के पानी को घर में जो बड़ी टंकी, हौद या जिसमें पानी इकट्ठा भरा रहता है उसमें पहुँचाकर जीवों की रक्षा की जा सकती है। क्योंकि उस टंकी आदि में भी नलादि का पानी भरा है इसलिए उसमें डालने से उनकी रक्षा हो जाती है। नाली में डालने से तो सब जीव नियम से मर ही जाते हैं क्योंकि नाली में साबुन, सर्फ, मल-मूत्र आदि तिक्त पदार्थों से मिश्रित पानी रहता है, उन क्षार पदार्थों से उनके प्राणों की रक्षा किसी हालत में नहीं हो सकती है। टंकी में डालने से जब तक टंकी खाली नहीं होती तब तक तो जीवों की रक्षा हो ही जाती है और टंकी महीनों तक खाली नहीं होती है।

नोट- जाली, प्लास्टिक की चलनी, फिल्टर आदि से पानी नहीं छनता है। इनसे तो मात्र पानी का कूड़ा-कचरा निकलता है, पानी के जीव नहीं निकलते हैं इसलिए मलेरिया आदि की रोकथाम के लिए उबले पानी का उपयोग किया जाता है, फिल्टर का नहीं।

गुण देखें कोरी सुन्दरता नहीं

कई लड़के/पेरेन्ट्स लड़की के रूप को देखकर मोहित हो जाते हैं। लड़की की सुन्दरता से आकर्षित होकर वे यह भी भूल जाते हैं कि लड़की में कुछ गुण भी हैं या नहीं। कोई-कोई ''पत्नी सुन्दर होगी तो बच्चे भी गोल-मटोल सुन्दर होंगे, जिनको देखकर सब लोग आकर्षित होंगे'' आदि-आदि भविष्य की कल्पनाओं में बेहोश होकर भी मात्र रूप में उलझ कर रह जाते हैं, गुण नहीं देख पाते हैं। ऐसे लोग (माता-पिता, लड़का) शादी के बाद मात्र पश्चाताप करते हैं। क्योंकि शादी के पहले लड़की के गुणों की तरफ तो उन्होंने कभी ध्यान ही नहीं दिया था। कोई-कोई जब लड़की को देखने जाते हैं तो ऐसे उल्टे-सीधे प्रश्न करते हैं कि लड़की न उत्तर दे पाती है और न उत्तर दिये बिना रह ही सकती है। जैसे- क्या तुम कभी फेल हुई

हो? पापड़ में कितनी हल्दी डाली जाती है? क्या तुमने कभी किसी से प्रोमिज़ या लव किया है आदि....। मुझे समझ में नहीं आता कि ऐसे प्रश्न पूछकर लड़का/पारिवारिकजन लड़की की किस योग्यता को देखना चाहते हैं। देख सकते हैं? हाँ, कोई सार्थक प्रश्न पूछे जो आपके भविष्य में आवश्यक है तो अच्छी बात है। जैसे- आप संयुक्त परिवार पसन्द करती हो या एकल ? यदि आपके यहाँ दस मेहमान एक साथ आ जायेंगे तो आप क्या करेंगी ? इन प्रश्नों के उत्तर सुनकर सम्भव है आप उसके विचारों के अनुसार अपने विचारों की अनुकूलता देखकर लड़की का चुनाव कर सकें। कई लड़के अपने मित्रों के विचारों से पत्नी चुनते हैं जबकि जिन्दगी भर पत्नी के साथ रहना स्वयं आपको है। दूसरे के विचारों वाली लड़की आपको कैसे सुख दे सकती है। यह ठीक है कि आप अपने मित्रों से सलाह लें। लेकिन इससे ज्यादा अपने माता-पिता के विचारों को प्रधानता दें। कोई-कोई लड़के शादी हो जाने के बाद भी मित्रों के टोक (पत्नी को कुरूप आदि कह) देने पर मित्रों के द्वारा हँसी उड़ाने पर या किसी दूसरी लड़की को देखकर पत्नी को छोड़ देते हैं/छोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं। ऐसे लड़के प्रेम का कोई अर्थ/महत्त्व नहीं समझते हैं। प्रेम के लिए रंग-रूप मुख्य नहीं होते हैं। प्रेम तो एक मानसिक परिणाम है। प्रेम हो जाने पर रंग-रूप आदि पर दृष्टि जाती ही नहीं है तभी तो अच्छे सुन्दर लड़के-लड़कियाँ भी काली-कुबड़ी, लूली-लंगडी, गूंगे-बहरे अच्छे लड़के-लड़कियों से लव करते हुए देखे जाते हैं। यह सब प्रेम का ही प्रभाव है। अत: आप रंग-रूप की अपेक्षा उसके गुण देखकर पत्नी का चुनाव करें।

कुरूप में भी सुन्दर गुण

एक राजा एक दिन एक लड़की को देखकर मोहित हो गया। उसके महल में पहले से ही अनेक रानियाँ थीं। उनमें से एक रानी से वह विशेष प्रेम करता था। वास्तव में वह शीलवती सर्व गुण सम्पन्न नारी थी। लेकिन उसका रंग साँवला था। राजा ने सोचा, मैं आज तक मूर्ख बनकर काली-कलूटी रानी से प्रेम करता रहा। अब यदि इस सुन्दरी से विवाह नहीं करूँ तो मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है। उसने अपने मित्रों के बीच विवाह की बात रखी। मित्रों ने हाँ में हाँ मिला दी। लेकिन मंत्री-पुरोहित तथा वृद्धजनों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने राजा को अनेक प्रकार से युक्तिपूर्वक समझाया। परन्तु उन बातों का राजा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। राजा ने सबकी बात टालकर सुन्दरी से विवाह कर लिया। और धीरे-धीरे वह बड़ी

रानी से पूर्ण रूप से विरक्त हो गया। एक दिन छोटी रानी के बहकावे में आकर राजा ने सबके मना करने पर भी बड़ी रानी को महल से निकाल दिया। रानी अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का विचार करती हुई महल से बहुत दूर एक महल में रहने लगी। बहुत वर्ष बीत गये। राजा ने बड़ी रानी के महल की तरफ तक नहीं देखा। मंत्रियों ने कई बार राजा के सामने बड़ी रानी के श्रेष्ठ कार्यों का विवरण भी बताया। कई बार बड़ी रानी के प्रति प्रजा के रुझान को भी बताया। लेकिन इन सब बातों को सुन-सुनकर भी राजा बहरा ही बना रहता था। एक दिन पुन: मंत्रियों ने राजा से कहा- ''राजन्! हमारी प्रार्थना है कि आप एक बार दोनों रानियों की परीक्षा करने की स्वीकृति दें।'' राजा ने स्वीकृति दे दी। मंत्रियों ने योजनानुसार दोनों रानियों के यहाँ गन्ने से भरी एक-एक गाड़ी भिजवा दी और दोनों को यह समाचार भी दिलवा दिये कि ''आज से तीसरे दिन राजा आपके यहाँ भोजन करने आयेंगे। आपको गन्ने रूपी ईंधन पर भोजन तैयार करना है। यदि आप लोगों ने ईंधन में गन्नों के स्थान पर किसी दूसरे ईंधन का प्रयोग कर लिया तो राजा आपका भोजन स्वीकार नहीं करेगा। और सम्भव है कुछ दण्ड भी दे। आप अधिक से अधिक ईंधन जलाने के लिए थोड़ा मिट्टी का तेल ले सकती हैं।'' बड़ी रानी समाचार सुनकर खुश हो गई। उसने सोचा, वर्षों के बाद मुझे अपने स्वामी के दर्शन होंगे। मुझे अपने हाथ का भोजन अपने हाथों से पतिदेव को कराने का सौभाग्य मिलेगा। उसने जल्दी से पूरे नगर के मनुष्यों को गन्ने खाने का निमंत्रण दिलवा दिया। निमंत्रण पाते ही नगर के लोगों ने दो-चार घंटों में पूरे गन्ने चूस लिए। रानी ने गन्ने के छिलकों को सुखवा दिया। और तीसरे दिन उसने गन्ने के सूखे छिलकों को जलाकर अनेक प्रकार के मिष्टान्न तैयार कर लिये। छोटी रानी के पास जैसे ही ये समाचार पहुँचे उसका सिरदर्द शुरू हो गया। क्योंकि पहले तो उसे अच्छी तरह से भोजन बनाना ही नहीं आता था फिर गन्नों पर भोजन बनाना तो बहुत कठिन था। उसने सोचा राजा अब वृद्ध हो गया है। उसकी बुद्धि कम होती जा रही है। शायद वह सठिया गये हैं इसलिए ऐसा आदेश दिया है। उन्हें स्वयं सोचना चाहिए कि कहीं गन्ने भी कभी जलते हैं, क्या गन्नों को जलाकर आज तक किसी ने भोजन बनाया है, कोई बना सकता है। फिर भी राजा के आदेश अनुल्लङ्घनीय होते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए उसने दो दिन व्यतीत कर दिये। तीसरे दिन वह गन्नों पर मिट्टी का तेल डाल-डालकर जलाने लगी। लेकिन गन्नों ने जलने के स्थान पर गीले होने के कारण धुँआ करना प्रारम्भ

कर दिया। धूँए से रानी की आँखों से पानी आने लगा। उसकी आँखे लाल हो गयीं। बार-बार गन्ने जलाने से उसके बाल बिखर गये। उसके कपड़ों में जगह-जगह धब्बे लग गये। उसके गोरे सुन्दर मुँह पर काले-काले निशान हो गये। भोजन बनाते-बनाते शाम हो गई। वह चूल्हा फूँक-फूँक कर थक गयी। लेकिन एक भी आइटम तैयार नहीं हुआ। समय पर राजा मंत्री-मित्रों के साथ पहले छोटी अपनी प्यारी रानी के महल में पहुँचा। क्योंकि उसे विश्वास था कि उसकी छोटी रानी जितनी सुन्दर है, उतनी ही चतुर भी है। वह महल में पहुँचकर रानी को (भोजन बनाने से हालत बिगड़ जाने के कारण) दासी समझकर बोला- ''दासी! रानी कहाँ है? क्या अभी तक भोजन तैयार नहीं हुआ?'' रानी बोली- ''महाराज! क्या भोजन बनाने का आदेश देकर आप मुझे भूल ही गये हैं। आश्चर्य है कि मैं स्वयं रानी हूँ और आप मुझे दासी समझकर रानी के लिए पूछ रहे हैं....।'' राजा ने कहा- ''अहो, तो तुम रानी हो। तुम अभी भोजन बनाना तक नहीं जानती। मैंने तो तुम्हें बहुत ही चतुर समझा था अब मैं बड़ी रानी के यहाँ जाकर देखता हूँ उसने कैसे और कैसा भोजन तैयार किया है।'' राजा को अपने महल की ओर आते देख बड़ी रानी ने बड़े प्रसन्न मन से राजा-मंत्री आदि का यथायोग्य सम्मान किया और रसोईघर में ले गई। रसोईघर अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन से सज्जित था। मिष्टान्न को देखकर राजा के मन में संदेह उत्पन्न हो गया। उसने रानी से कहा- ''मैं इतने वर्षों के बाद तुम्हारे यहाँ आया हूँ। फिर भी तुमने मेरे साथ छल किया है। सच-सच बताओ तुमने किससे ईंधन मंगवा कर भोजन तैयार किया है। बिना ईंधन के इतना भोजन कैसे तैयार हो सकता है?'' रानी ने कहा- ''महाराज! मैं आपके साथ छल क्यों करूँगी। मैंने आपके द्वारा भेजे गये गन्नों पर ही भोजन बनाया है। इसका साक्षी पूरा नगर है। मैंने नगर के लोगों को बुलवाकर गन्ने खिला दिये और उनको सुखाकर उन्हीं से भोजन तैयार किया है।'' यह सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर बड़ी रानी को पटरानी के पद पर आसीन कर दिया।

आप उस राजा जैसी मूर्खता नहीं करें। मात्र रूप को ही न निहारें, गुणों की ओर भी ध्यान दें। प्रमाद नहीं करें। सच में शादी भी एक जुआ है। शादी करते समय यदि योग्य अच्छी संस्कारित लड़की मिल गई तो जीवन निहाल हो गया, मनुष्य पर्याय में व्यक्ति धन और धर्म दोनों में सफल हो गया और अयोग्य लड़की मिल गई तो जीवन पशु के समान ही कष्टप्रद बीता। अत: आप योग्य संस्कारित लड़की से

विवाह करें।

योग्य कन्या के साथ विवाह करने से लाभ

योग्य कन्या के साथ विवाह करने से अनेक लाभ होते हैं, उनमें से कुछ लाभ यहाँ दिये जाते हैं-

(१) स्वदार-संतोष का पालन होता है। (२) कुल परम्पराएँ सुरक्षित रहती हैं। (३) आर्थिक संतुलन बना रहता है। (४) सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (५) अमूल्य अवसर मिलते हैं। (६) मरण सुधरता है।

(१) स्वदार-संतोष का पालन होता है

योग्य कन्या के साथ विवाह करने से किसी बहू-बेटी की चतुराई आदि की प्रशंसा सुनकर भी मन में उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि उसके घर में पहले से ही वैसी चतुर पत्नी है। योग्य पत्नी के होने से अति आसक्ति भी उत्पन्न नहीं होती है। उसके साथ अल्प भोगों में ही तृप्ति-संतुष्टि हो जाती है। इस प्रकार स्वदार-संतोष रूप धर्म का सहज रूप से पालन हो जाता है।

(२) कुल परम्परा की सुरक्षा

योग्य कन्या के साथ विवाह करने से हमारे कुल की जो दान, दया, परोपकार, व्यसन रहितता आदि श्रेष्ठ परम्पराएँ हैं वे अविरल रूप से आगे बढ़ती जाती हैं। योग्य पत्नी होने से वह दानादि में खर्च होने वाले धन को नष्ट होना नहीं मानती है। इसीलिए दान आदि में कृपणता नहीं दिखाती है। आलसी बनकर, बहाने बनाकर इन कार्यों से बचने का प्रयास नहीं करती है और व्यसनों में भी जाने से बचाती है। अयोग्य पत्नी मिल जाने पर कुल-परम्परा का निर्वाह अच्छी तरह से नहीं होता है। एक दिन एक दम्पती आए। पत्नी ने कहा- ''माताजी! इनको रात्रि भोजन की स्वीकृति दीजिए।'' मैंने कहा, ''क्यों? रात्रि भोजन त्याग से क्या तकलीफ है?'' उसने कहा- ''जब हम पार्टी आदि में जाते हैं तो वहाँ रात्रि में सभी लोग खाते हैं और ये खड़े-खड़े मुँह देखते हैं। तो मुझे शरम आती है....।'' मैंने लड़के से पूछा- ''क्यों भैय्या! तुम्हें रात्रि में भोजन करना है?'' लड़के ने कहा- ''नहीं, माताजी! मुझे रात्रिभोजनतयाग में कोई तकलीफ नहीं है।'' अत: अनुभव में आता है कि योग्य कन्या से विवाह करने पर कुल की परम्पराएँ बिना प्रयत्न के चलती रहती हैं।

(३) आर्थिक संतुलन बना रहता है

योग्य पत्नी घर में जितना धन होगा उसी के आधार से खर्च करेगी। यद्वा-तद्वा खर्च करके पति को कर्जदार नहीं बनाएगी एवं धन का भी समय पर उपयोग करके हमेशा घर की इज्जत बनाये रखेगी। और आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी श्रम (मेहंदी, पापड़, कुकिंग क्लास, सिलाई आदि) करके आपको आर्थिक सहयोग देगी। योग्य पत्नी बच्चों की पढ़ाई, भोजन-कपड़े की व्यवस्था इस ढंग से कर देती है कि बहुत धन भी व्यय नहीं होता और किसी प्रकार की कमी भी नहीं दिखती। इस प्रकार योग्य कन्या के साथ विवाह करने से घर की आर्थिक व्यवस्थाएँ नहीं चरमराती हैं, संतुलन भी बना रहता है।

(४) सामाजिक प्रतिष्ठा

योग्य पत्नी रिश्तेदार, अड़ोस-पड़ोस एवं समाज के लोगों का सम्मान-सत्कार अच्छी तरह से करती है। सामाजिक कार्यों में भी समय देकर लोकहित करती है और घर के वृद्धजनों की भी सेवा करके लोगों को आश्चर्य उत्पन्न कर देती है। किसी के घर में एक ऐसी बहू आती है जो सास-ससुर को व्यंग्य और तिरस्कार करती हुई दो रोटी को जहर बनाकर देती है। तथा एक बहू ऐसी होती है जो सम्मानपूर्वक सास-ससुर को रूखे-सूखे दलिया, खिचड़ी में लड्डू-गुलाब-जामुन, जलेबी का स्वाद कर देती है। बस, योग्य और अयोग्य बहू में यही अन्तर है। योग्य पत्नी स्वयं भी समाज में सम्मान प्राप्त करती है और घर, पति आदि को भी समाज में प्रतिष्ठित कर देती है।

(५) अमूल्य अवसर

योग्य पत्नी पति के जीवन में अमूल्य अवसरों को भी ला देती है जो संसार में बहुत कम लोगों को प्राप्त होते हैं। जो अवसर/कार्य मरण के समय तक भी आत्मशांति-संतोष उत्पन्न करते रहते हैं। जैसे- तीर्थयात्रा, संत समागम, भगवान के दर्शन, व्यसनमुक्ति आदि।

(६) मरण सुधारती है

योग्य पत्नी के सामने यदि ऐसा अवसर भी आ जावे कि पति मृत्युशय्या पर है तो वह उसे भगवान का नाम सुनाकर मरण के समय वैर-विरोध, कषाय रूप भावों से बचाकर अगला भव भी सुधार सकती है। एक योग्य पत्नी में इतना साहस होता है कि वह अपनी होने वाली भविष्य की सब स्थितियों का विचार करना भूलकर पति के भाव को सुधारने में लग जाती है। एक युवराज की रानी जिसके

ऊपर राजा मोहित हो गया था, राजा ने उसे अपने वश में करने का बहुत प्रयास किया था। लेकिन वह शीलवती नारी किसी भी प्रकार के प्रलोभन में नहीं आई। एक बार उसने उसके साथ छुपकर भोग करने की भी कोशिश की। परन्तु उस चतुर नारी ने उसके छल को पहले ही समझकर अपने शीलरत्न को बचा लिया। एक दिन राजा 'युवराज आज ही युद्ध से लौटकर आया है मैं उससे मिलना चाहता हूँ। मैं उसकी सेवा करना चाहता हूँ' आदि कहते हुए युवराज के शयन कक्ष में पहुँच जाता है। निश्छल युवराज उसका सम्मान करता है, आसन देता है। थोड़ी इधर-उधर की बातों के पश्चात् राजा कहता है- ''मुझे प्यास लगी है।'' युवरानी गर्भवती थी। प्रसव के दिन निकट थे। युवराज ने सोचा ये (रानी) पानी लायेगी तो इसको और गर्भस्थ शिशु को तकलीफ होगी। मैं ही राजा को पानी का गिलास भरकर दे देता हूँ। वह जैसे ही पानी भरने के लिए झुकता है राजा तलवार से उस (युवराज) का सिर धड़ से अलग कर देता है अर्थात् मारकर भाग जाता है। गर्भवती युवरानी युवराज की आँखों में उभरते हुए क्रोध को देखती है और साहस जुटाकर सिर को गर्दन से जोड़कर संबोधन करती है। संसार की विचित्रता बताती है। भगवान का नाम सुनाती है और भगवान का नाम स्मरण करने की प्रेरणा देती है। पत्नी के सम्बोधन से युवराज के भाव सुधर जाते हैं। उसका वैर परिणाम धुल जाता है वह मरकर स्वर्ग में जाता है। कहने का भाव यह है कि योग्य पत्नी इहलोक और परलोक में सुख देने वाली होती है। योग्य कन्या के साथ विवाह करने से और भी अनेक लाभ होते हैं, उन्हें अपने अनुभव से जानना चाहिए।

शादी के बाद

पत्नी के लट्टू न बनें

जिसके साथ आपका विवाह हुआ है, वह यद्यपि आपकी प्राणप्यारी है, अर्धांगिनी है लेकिन आप इतने लट्टू भी नहीं बन जावें कि आपका रिमोट ही उसके पास हो। वह जैसा आपको नचावे वैसा ही आप नाचते रहें। क्योंकि पत्नी प्रथम वर्ष में चन्द्रमुखी होती है अर्थात् चन्द्रमा के समान सुख-शान्ति देने वाली और आकर्षक होती है। दूसरे वर्ष में सूर्यमुखी हो जाती है अर्थात् अपना तेज/प्रताप दिखाना प्रारम्भ कर देती है और तीसरे वर्ष में तो वह ज्वालामुखी के समान जलाकर भस्मीभूत कर सकती है। इसलिए वह कब 'प्राणप्यासी' बन जाये, इसका कोई भरोसा नहीं है। जैसे- गरम भात को दबा करके रखो तो वह दब जाता है लेकिन

ठंडा हो जाने के बाद बहुत प्रयास करने के बाद भी नहीं दबाया जा सकता है। उसी प्रकार नयी-नवेली पत्नी के आप स्वामी बनकर रहें, नौकर जैसे नहीं। क्योंकि नये-नये में यदि आपने उसे बहुत घुमाया, शौक-मौज कराये, बहुत खरीदी आदि करवाई और बाद में यदि नहीं करवा पाये तो वह हमेशा संक्लेश करेगी और आपको वह सब (घुमाना आदि) पुनः पुनः करवाने के लिए मजबूर करेगी। आप धन या समय की कमी के कारण यदि नहीं करवा पाये तो वह रो-रोकर, रूठकर आपका दिमाग खराब करेगी/करती रहेगी।

संकेत से समझाया

एक सेठ के एक लड़की थी। उसका स्वभाव बहुत कर्कश था। वह हमेशा कठोर ही बोलती थी। वह बिना गाली-गलौच के बोलती ही नहीं थी। इस कारण उसका विवाह नहीं हो पा रहा था। सेठ ने किसी अनजान (जो लड़की की बुरी आदतों से अपरिचित था) लड़के के साथ उसका विवाह निश्चित कर दिया। थोड़े ही दिनों में लड़के को लड़की के स्वभाव की जानकारी मिल गयी। लड़के ने लड़की (पत्नी) को पहले दिन से ही सुधारने का माइंड बना लिया। यथासमय दोनों की शादी हो गयी। विवाह के बाद दूल्हा-दूल्हन बैलगाड़ी में दहेज की सामग्री लेकर अपने गाँव की तरफ जा रहे थे। रास्ते में गड्ढ़े होने के कारण बर्तन खड़खड़ाने लगे। दूल्हे ने गाड़ी वाले से कहा- ये बर्तन क्यों बज रहे हैं ? ''मुझे यह खड़खड़ाहट पसन्द नहीं है।'' गाड़ीवाले ने बर्तन अच्छी तरह जमा दिये। बर्तनों का बजना बन्द हो गया। लेकिन थोड़ी ही देर में बर्तन फिर बजने लगे। दूल्हे ने लाठी लेकर बर्तनों को फोड़ना प्रारम्भ कर दिया। बर्तन फोड़ते देख गाड़ीवाले ने कहा- ''सेठजी क्या करते हो?'' दूल्हे ने कहा- ''मुझे यह खड़खड़ाहट (ज्यादा और कठोर शब्द/आवाज) पसन्द नहीं है। अच्छी नहीं लगती है। मैं बर्तन तो क्या मेरा बेटा हो, पत्नी हो या चाहे कोई हो। ऐसा करने वाले का सिर फोड़ ही देता हूँ। यह मेरा अटल सिद्धान्त है।''

यह सब सुन लड़की को पति का स्वभाव समझ में आ गया। उसने मन में सोचा, ''मैं यहाँ (ससुराल में) मायके जैसी तीन-पाँच करूँगी अर्थात् बिना सोचे-समझे बड़बड़ाती रहूँगी, कठोर-कर्कश बोलती रहूँगी तो मेरी भी मरम्मत हो जायेगी। इसलिए यदि मैं इनके (पति के) आदेशों का पालन करती रहूँगी, इनकी इच्छा के अनुसार मीठा और नम्रता पूर्वक बोलूँगी तो इनके घर में सुख से रह सकूँगी। अन्यथा

जीवन भर इनके हाथों की मार खाऊँगी.....।'' वह ससुराल में पति की हर बात मानने लगी। फलत: पति-पत्नी दोनों का जीवन सुखी बन गया। एक समझदार लड़का (पति) जिसका विवाह ऐसी लड़की के साथ हो गया था जिसके साथ रहकर उसको सुखी रहने की सम्भावना ही नहीं थी लेकिन उसने अपनी बुद्धि से विवेकपूर्वक पत्नी के नेचर को संकेतों से ही इस प्रकार ढाल दिया कि दोनों के जीवन में सुख का स्रोत बहने लगा। अत: आप भी समझदारी से काम करके जीवन का आनन्द लें।

सास बहू के झगड़े में न पड़ें

आप सास-बहू के झगड़े में कभी नहीं बोलें। क्योंकि आपको तो माँ और पत्नी दोनों की आवश्यकता है। यदि आप पत्नी का पक्ष लेंगे तो माँ और माँ का पक्ष लेंगे तो पत्नी नाराज हो जायेगी। यह भी निश्चित है कि जब आप माँ के पास बैठेंगे तो माँ आपके सामने पत्नी की अनेक शिकायतें करेगी तथा जब आप पत्नी के पास होंगे तो वह माँ की शिकायतें करेगी। आपको सुनना दोनों की है लेकिन बोलना किसी के पक्ष में नहीं है। आप उनकी शिकायतें गौर से सुनें, सहानुभूति भी दिखावें। मगर सोकर उठें तो आगे पाट और पीछे सपाट की नीति अपनावें। माँ-बेटे में लड़ाई, मन-मुटाव का मूल कारण अधिकांशत: पत्नी का पक्ष लेना ही होता है और पत्नी को निराशा एवं एकाकीपन रूप दु:ख की अनुभूति तभी होती है जब पति माँ का पक्ष लेने लगता है। आप ऐसा प्रयास करें कि पत्नी भी माँ के पक्ष में रहे और माँ पत्नी के पक्ष में। तो वे दोनों भी प्रसन्न रहेंगी और आप भी टेन्सन फ्री रहेंगे। माँ बहू से प्रसन्न रहे। आपके डाँटने पर माँ बहू का पक्ष ले। घर की खाने-पीने आदि की वस्तुओं में से माँ पहले बहू को दे। उसके बाद आपकी चिन्ता करे। इसके लिए आप कोई भी वस्तु लाएँ माँ के हाथ से पत्नी को दिलवाएँ। कभी-कभी पत्नी को बिना बताए साड़ी-आभूषण आदि लाकर माँ को दे दें। और माँ अपनी बेटी के साथ-साथ बहू को भी आभूषण दे दे। ऐसा करने से बहू के मन में यह धारणा बनेगी कि मम्मी जी जितना दीदी को चाहती हैं उतना ही मेरे को भी चाहती हैं अन्यथा अधिकतर बहुओं की यह धारणा रहती है कि मम्मी जी दीदी को ही सब कुछ देना चाहती हैं, या छुप करके दे देती हैं। एक स्थान पर एक लड़की (बहू) अपने पति को माँ के प्रति जब कभी जो कुछ भी कहती रहती थी। एक बार उसकी बेटी की शादी होनी थी। पत्नी ने पति से कहा- आप अपनी माँ को इतनी सारी चीजें लाकर

देते रहते हैं। मैं भी देखती हूँ आपकी माँ मेरी बेटी को दहेज (गिफ्ट) में क्या, कितना देती है? पति ने कहा- ''उस (माँ) के पास जितना होगा उतना तो वह अवश्य देगी....।'' एक दिन उसने माँ को १० हजार रुपये देते हुए कहा- ''माँ, आज हम बेटी को दहेज में देने के लिए बर्तन खरीदने जायेंगे। तुम बहू को ये रुपये अपनी तरफ से बर्तन खरीदने के लिए दे देना।'' माँ ने पैसे ले लिये और जब बहू यह कहने के लिए आई कि हम दहेज के लिए बर्तन खरीदने जा रहे हैं तो सास ने कहा- ''बेटा! दहेज के बर्तन तो मेरी तरफ से देने हैं तुम ये पैसे ले जाओ। अच्छे बर्तन खरीद कर लाना।'' पैसे का नाम सुनते ही बहू खुश हो गई। लेकिन ऐसा करते हुए आप कभी भूलकर भी इस बात को पत्नी के सामने न कहें। आपके व्यवहार से पत्नी को ऐसी शंका भी नहीं होनी चाहिए कि आप कभी ऐसा भी कर सकते हैं। प्रत्यक्ष में तो (पत्नी के सामने) आपका व्यवहार ऐसा ही होना चाहिए कि आप माँ से ज्यादा पत्नी को चाहते हैं। क्योंकि माँ के प्रति पत्नी की दुर्भावना उत्पन्न हो जाने पर माँ कभी सुखी नहीं हो सकती है और यदि आप माँ को सुखी नहीं कर पाये तो सबसे बड़े कृतघ्नी कहलायेंगे अत: विचारपूर्वक काम करें।

माँ का पक्ष लेने से

एक सेठ कभी माँ और पत्नी के झगड़े में नहीं पड़ता था। माँ और पत्नी महीने में लगभग २०-२५ बार लड़ती रहती थीं। दोनों एक-दूसरे से ज्यादा क्रोधी-अशिष्ट बोलने वाली थीं। पत्नी हमेशा भोजन के समय पति को सास के बारे में बहुत कुछ सुनाती रहती थी लेकिन सेठ ने नियम ले रखा था कि मैं मौन पूर्वक भोजन करूंगा। इसलिए कभी कुछ नहीं हुआ। एक दिन सास-बहू में बहुत जोर की लड़ाई हुई; मोहल्ले, पड़ोस के लोगों ने मिलकर बड़ी कठिनाई से लड़ाई को शांत किया। हमेशा की तरह आज भी सेठजी की क्षमा रानी ने भोजन के साथ-साथ पूरी बातें नमक-मिर्च लगाकर सेठजी को परोस दीं। सेठजी सुनते रहे। वे बाजार में भी लड़ाई के बारे में काफी सुनकर आये थे। वे भोजन के बाद बड़े प्रेम से बोले- ''क्षमा! क्या हो गया? माँ वृद्ध है, थोड़े दिन की मेहमान है, वो दो बातें कह भी दे तो सहन कर लिया करो। तुम्हारा नाम भी क्षमा है उसको तो सार्थक करो।'' बस, यह सुन क्षमा को बहुत गुस्सा आ गया। उसने सोचा, अब तो मुझे मर जाना चाहिए। मैंने तो सोचा था सेठजी मेरे हैं......। लेकिन आज तो पतिदेव भी मेरे नहीं रहे। इन्होंने भी माँ का पक्ष ले लिया है। मैं मरूंगी, लेकिन मरने के पहले कम-से-

कम सेठ जी से बदला तो ले लूं। यही विचार कर जैसे ही सेठजी घर से निकले उसने तीसरी मंजिल से ही खड़े-खड़े पूरे दिन का इकट्ठा किया हुआ जूठन का पानी सेठजी पर उंडेल दिया। पानी ठीक सेठजी के सिर पर जाकर गिरा। सेठजी समझ गये कि यह क्षमा के गुस्से का दुष्परिणाम है, वे ऊपर आये और बाथरूम में नहाकर कपड़े पहन रहे थे। बाथरूम के बाहर ही क्षमा इंतजार कर रही थी कि अब सेठ जी कुछ कहेंगे, इनके एक-दो बात कहते ही मैं कुए में गिरकर मर जाऊँगी ? लेकिन सेठजी ने कुछ कहा ही नहीं, क्षमा यह सब देख हैरान रह गयी। फिर सेठ ने कहा- ''क्षमा, अब तुम असली क्षमा बन जाओ। तुमने प्रकृति का भी उल्लंघन कर दिया कि गरजते हैं सो बरसते नहीं हैं किन्तु आज तो तुम गरज भी गई और बरस भी गई। अब तो शांत हो जाओ।'' सेठजी के इन वचनों ने क्षमा पर मानों जादू की छड़ी ही फेर दी। उसका गुस्सा शांत हो गया। उस दिन के बाद सास-बहू में कभी लड़ाई नहीं हुई। यह तो सेठजी का भाग्य ही था या उनकी क्षमा का प्रभाव कि सब अच्छा हो गया। नहीं तो क्या-क्या होता, कहा नहीं जा सकता। अत: आप कभी सास-बहू के बीच में बोलें ही नहीं।

मेरी सलाह से तो यदि कभी आप अचानक उस समय घर पर पहुँच गये हैं जब सास-बहू में लड़ाई (वाक्युद्ध) चल रही हो तो लड़ाई की आवाज सुनते ही आप उलटे पैर लौट जावें। वहाँ पहुँचने पर हो सकता है आप उनको समझाने लगें। लेकिन उस समय में आप समझाने में सफल नहीं हो सकते। क्योंकि उस समय वे दोनों ही गुस्से-गुस्से में आपको ही कुछ उल्टा-सुल्टा कहने लगें। अथवा- वहाँ का माहौल देखकर आप ही गुस्से में आकर बीच में बोल पड़ें तो बात और ज्यादा बढ़ जायेगी। अत: उस समय तो आपका लौट जाना ही अत्युत्तम है। यदि आपके रहते हुए लड़ाई छिड़ रही है तो पत्नी को डाँटकर मौन कर दें। और यदि ऐसा करना उचित नहीं लगे तो जल्दी (किसी बहाने) से घर के बाहर चले जावें। ताकि आपके बोलने का मौका ही नहीं आवे। तथा यदि कभी बोलने की अति आवश्यकता दिखे तो सेठजी (उपर्युक्त उदाहरण में जैसे सेठजी बोले थे) के समान शांत भाव से बोलें तो सम्भव है कुछ प्रभाव पड़े।

इसी प्रकार देवरानी-जेठानी, भाभी-ननद, देवर-भाभी आदि की लड़ाई में भी नहीं बोलें। कभी-कभी वे देवरानी-जेठानी या सास-बहू आदि तो लड़-झगड़कर एक हो जाते हैं और बीच में बोलने वाले की बात चुभ जाती है, जिन्दगी

भर के लिए वह सम्बन्ध खराब हो जाता है। उनकी आपस में बोल-चाल बन्द हो जाती है अत: आप कभी किसी के आपसी झगड़े के बीच में नहीं पड़ें।

माँ के इतने भक्त नहीं बनें कि

कोई-कोई लड़के अपनी माँ के इतने भक्त होते हैं कि जब तक माँ नहीं कह देती, बच्चे को हॉस्पिटल तक नहीं ले जाते हैं। डॉक्टर को नहीं दिखाते हैं। पत्नी यदि चूडियाँ या बक्कल जैसी छोटी सी चीज के लिए कहती है तो कह देते हैं ''मम्मी से पैसे लेकर ले आना या मम्मी को कहना खरीद देगी।'' ऐसे पति, पत्नी को क्या सुख दे सकते हैं, वे तो अपने कमरे में भी मम्मी के कहने पर या पूछकर ही जाते हैं। मेरे विचार से ऐसे लड़कों को तो शादी ही नहीं करनी चाहिए ताकि एक लड़की का जीवन....। माँ अपने स्थान पर बहुत आवश्यक है, तो पत्नी भी अपने स्थान पर उतनी ही आवश्यक है। आप माँ की आज्ञा मानें। माँ के भक्त रहें। माँ की सुख-सुविधाओं का पूरा ध्यान रखें। लेकिन इतना भी नहीं करें कि पत्नी, मम्मी (सास) को दु:ख देने के लिए, उनके सामने जवाब देने के लिए, उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए मजबूर हो जावे। आपकी अनुपस्थिति में माँ के साथ खोटा व्यवहार करे। ऐसा हो जाने पर तो आपका माँ को सुख देने का सपना कभी पूरा नहीं हो सकता। इससे तो आपकी माँ ज्यादा दु:खी हो जायेगी। अत: आपके पास बुद्धि है आप भी समाज, घर, मित्र, भाई-बन्धुओं के साथ रहते हैं, उनको देखते हैं तो सोच-समझकर ऐसा व्यवहार करें कि माँ भी सुखी रहे और पत्नी भी सुखी रहे। दोनों ही समय पर आपके लिए प्राण देने के लिए तैयार रहें। इसमें आपका कर्त्तव्य भी पूरा होगा और आपके घर में कभी कष्ट की गंध भी नहीं आयेगी।

पत्नी की हर बात सच न मानें

आप पत्नी की हर बात सच मानकर माँ के प्रति धारणाएँ नहीं बनायें। यदि आपकी पत्नी माँ को नहीं चाहती है तो उनके बारे में क्या नहीं कह सकती है। सफेद झूठ भी कह सकती है। वह जहाँ पानी बतावे हो सकता है खोदने पर कीचड़ भी नहीं मिले अर्थात् बिल्कुल बात नहीं होने पर भी बना-बनाकर कह सकती है। स्त्रियों की बुद्धि इन बातों में बहुत चलती है। अत: जब पत्नी कुछ सुनावे तो आप माँ के पास भी जाकर बैठें, यदि कुछ बात होगी तो माँ भी कुछ-न-कुछ अवश्य सुनाएगी। आप दोनों पक्षों की सुनें। सुनकर भी तत्काल निर्णय नहीं करें, धारणा भी नहीं बनावें। समय-समय पर जानकारी लेते रहें और माँ की गलती हो तो भी

उसे कुछ नहीं कहें। क्योंकि वृद्ध लोग हमेशा विनय और आज्ञापालन से खुश रहते हैं अत: आप बड़ों का विनय करते रहें। एक दिन एक युवक ने बताया- ''माताजी! मेरी माँ का स्वभाव बहुत तेज है। वो यह चाहती है कि हम पति-पत्नी रोज लड़ते रहें। मैं उसको पीटता रहूँ, गाली-गलौज करता रहूँ और हम दोनों में कभी मनमुटाव तक नहीं होता है। मैं पत्नी को मारना भी नहीं चाहता, माँ को नाराज भी नहीं करना चाहता और माँ से अलग भी नहीं रहना चाहता हूँ।'' मैंने पूछा- ''फिर तुम किस प्रकार एडजस्ट करते हो।'' उसने कहा- ''मैं दो-चार दिन में एक बार माँ के सामने पत्नी पर चिल्लाते हुए कोई चीज इस ढंग से फेंकता हूँ कि उसको लगती भी नहीं है और लगने जैसा दिखता भी है। पत्नी को भी थोड़े एक्शन करने के लिए कह देता हूँ। महीने में एक बार कमरा बन्द करके तकिये पर दो-चार लकड़ी-हाथ आदि से मारता हूँ। पत्नी रोने-चिल्लाने के अच्छे एक्शन करती है। फिर दो-चार दिन हम दोनों माँ के सामने बिल्कुल नहीं बोलते हैं, उसे विश्वास है कि मैं माँ की इच्छा अनुसार पत्नी को नहीं चाहता हूँ। लेकिन हम दोनों बहुत खुश/सुखी हैं।'' यह भी एक विधि है। आपके घर में भी यदि ऐसी स्थिति है तो आप भी कुछ विधि अपनावें या अन्यत्र सर्विस करें, बाहर जाकर अपना धंधा जमा सकते हैं तो जमावें ताकि सास-बहू को बहुत ज्यादा दिन साथ रहने का मौका ही नहीं पड़े। जब साथ रहें तो आप दोनों गम खावें। माँ-पिताजी के विरोध में कभी पलट कर जवाब नहीं दें.....। आपके गम खाने से धीरे-धीरे सब कुछ अच्छा हो जायेगा। वैसे आपके एक बच्चा हो जाने पर माँ अपने आप बच्चे में व्यस्त हो जायेगी। झगड़ा कम हो जायेगा। कभी यदि स्पष्ट माँ की गलती भी है तो भी आप यह सोचकर कि मैं अन्याय-अनीति नहीं देख सकता। मैं सत्य का पक्ष लेता हूँ, आदि कहकर पत्नी का पक्ष नहीं लें। पत्नी का पक्ष लेने पर आपको हमेशा व्यंग्य सुनने पड़ेंगे। दु:खी होना पड़ेगा....। यदि पत्नी की गलती है तो गुप्त रूप से अर्थात् आपके अलावा और किसी को मालूम न पड़ पावे, दण्ड अवश्य दें।

पत्नी का पक्ष लेने से

एक लड़का अपनी पत्नी पर बहुत लट्टू था। वह उसके इशारों पर ही नाचता था। पत्नी और माँ के विचार कुछ कम ही मिलते थे। जब भी पत्नी माँ की कुछ शिकायत करती थी तो वह माँ को डाँटे बिना नहीं रहता था। पति को अपने वश में देख एक दिन पत्नी ने यह सोचा कि जिस किसी तरह से सास को नीचा

दिखाना चाहिए। उसने एक षड़यंत्र रचा। वह पेट दुखने का बहाना करके लेट गई। जैसे ही पति आया, उसने स्वास्थ्य के बारे में पूछा तो वह तड़पने लगी। अपनी वेदना का बखान करने लगी। पति ने डॉक्टर, वैद्य आदि की बहुत औषधि करवाई। लेकिन उसका पेट दर्द ठीक होने की बात तो दूर कुछ कम भी नहीं हुआ। इस प्रकार तीन दिन निकल गये। चौथे दिन वह पति से बोली- ''प्राणनाथ! आज रात्रि में मेरी थोड़ी देर के लिए नींद लगी। मुझे सपने में कुलदेवी ने प्रगट होकर कहा कि अपनी शादी में कुलदेवता की पूजा करना भूल गये। इसलिए कुलदेवी मुझे परेशान कर रही है। मैंने डरते-डरते इसका इलाज पूछा तो देवी बोली- जो तेरे से प्रेम करता है उसकी माँ यदि काले वस्त्र पहनकर सिर के बाल कटवा कर काला मुँह करके तेरे और मेरे चरणों में नमस्कार करे तो तुम ठीक हो सकती हो अन्यथा कुछ ही दिनों में तुम्हारी मृत्यु निश्चित है।'' लड़का सब समझ गया। उसने सोचा कि आज तक मैंने पेटदर्द का ऐसा इलाज कहीं नहीं सुना। इसमें कोई-न-कोई रहस्य (षड्यंत्र) अवश्य होना चाहिए। उसने उसको (पत्नी को) छकाने के लिए अपनी ससुराल (पत्नी के पीहर) में समाचार भेज दिये कि मम्मीजी यदि आप अपनी लड़की को जीवित और स्वस्थ देखना चाहते हैं तो सिर मुंडवाकर काले वस्त्र पहनकर काला मुँह करके शीघ्र ही आकर अपनी लड़की के पैर पड़ें अर्थात् चरणस्पर्श करें।'' माँ ने जैसे ही ये समाचार सुने, व्याकुल होकर बिना किसीसे पूछे (सलाह लिये) बाल कटवाकर वह जल्दी-जल्दी बेटी के ससुराल पहुँची और बेटी के पैर में गिरकर स्वास्थ्य की कामना करने लगी। बेटी उसे देखकर खुश होती हुई बोली-

देखो बिरवानों की ये चालें।
सिर मुँडे और मुँह भी काले॥

यह सुनकर लड़का भी तपाक से बोला-

देखो वीरों की ये फेरी।
अम्मा तेरी है या मेरी॥

पति की बात सुनकर पत्नी ने माँ (पैर पड़ने वाली) को ध्यान से देखा तो सच में वह उसकी माँ थी। वह अपने कृत्य पर पश्चाताप करने लगी। यह तो भगवान की कृपा ही समझना चाहिए कि लड़के की बुद्धि थोड़ी सुधर गयी थी, नहीं तो वह अपनी माँ की कैसी हालत कर देता और भविष्य में भी पत्नी के चक्कर में पड़कर माँ का कितना अपमान करता। उसको कितने दु:ख देता कुछ कहा नहीं जा

सकता। अत: पत्नी आपकी है आपकी ही रहेगी। लेकिन उसके चक्कर में विवेक को नहीं भूलें। यदि विवेक समाप्त हो गया तो उम्र ढलने के बाद आपकी हालत ''अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत'' वाली कहावत सिद्ध करेगी अर्थात् जैसा आप अपने माता-पिता के साथ करेंगे, उससे कुछ ज्यादा ही खराब हालत आपके बच्चे आपकी वृद्धावस्था में आपकी करेंगे या आपकी भी ऐसी ही हालत हो जायेगी।

इसका अर्थ यह भी नहीं है कि आप पत्नी को पैर की जूती बनाकर रखें। कहा भी है- जिस घर में नारी का अपमान होता है उस घर पर लक्ष्मी कभी प्रसन्न नहीं होती, उस घर की व्यवस्थाएँ कभी अच्छी नहीं हो सकतीं, वह घर एक प्रकार से मध्यलोक का नरक है।

मूड देखकर बात करें

जब आपकी पत्नी का मूड ठीक नहीं हो, वह गुस्से में आपसे उल्टी-सीधी कोई भी बात कह दे तो आप उसे सीरियसली नहीं लें। उसका बुरा नहीं मानें। गुस्से में आकर उल्टा जवाब नहीं दें। ऐसा करने से बड़े-बड़े अनर्थ हो सकते हैं। एक बार एक पत्नी ने गुस्से में आकर पति से अनेक बातों के साथ यह भी कह दिया- ''मैं तो मर जाऊँगी।'' यह सुन पति ने भी गुस्से में कह दिया कि- ''जा, मर जा। तेरे मरने से मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा।'' यह सुनते ही पत्नी कमरे में गई। उसने अपने ऊपर मिट्टी का तेल डाला और आग लगाकर मर गई। इसलिए आप उसकी बात सुनकर यह विचार करें कि यह पत्नी नहीं बोल रही है, यह तो उसका गुस्सा बोल रहा है। कहा भी है-

जिसके अन्दर क्रोध की, जलती रहती आग।
वह मानव नर देह में, भूत भयंकर नाग।।

एक बार एक पत्नी ने गुस्से-गुस्से में पति को कह दिया- ''आप तो बस बिल्कुल जानवर हैं।'' पति को पता था यह गुस्से में कह रही है। बिना गुस्से के वह ऐसा कह नहीं सकती। पति ने कहा- ''बिल्कुल ठीक कहा, मैं आज से थोड़े ही जानवर हूँ। मैंने तो जब से तुम्हारे साथ शादी की है तब से ही जानवर हो गया हूँ। क्योंकि तू मेरी जान है और मैं तेरा वर (पति) हूँ। इसलिए शादी हुई तभी से मैं जानवर हो गया हूँ।'' यह सुन पत्नी को हँसी आ गई। झगड़ा खतम हो गया।

एक पति हमेशा-हमेशा भोजन के लिए समय पर नहीं आ पाता था। एक

दिन पत्नी को कहीं जाना था और पति देर से भोजन करने आया। पत्नी पति के आते ही बरस पड़ी। उसने गुस्से में बड़बड़ाते हुए भोजन की थाली लगाई। पति ने भोजन की थाली लेकर पत्नी के सिर पर रख दी। पत्नी बोली- ''अभी भी आपको मजाक सूझ रही है। मुझे वहाँ जाना था, आप पहले तो देर से आये और फिर ऊपर से मजाक भी।'' पति धीरे से बोला- ''मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। मैं तो भोजन ठंडा हो गया है उसको तेरे सिर पर रखकर गरम कर रहा हूँ क्योंकि इस समय गुस्से से तेरा सिर बहुत गरम है।'' पत्नी को हँसी आ गई। उसका गुस्सा उतर गया। दो व्यक्तियों का झगड़ा तभी बढ़ता है जब लड़ने वाले दोनों को गुस्सा आ रहा हो। यदि दोनों में से एक भी गुस्सा नहीं करे, बराबरी से जवाब नहीं दे तो कभी झगड़ा बढ़ ही नहीं सकता है। इसलिए पत्नी को जब भी गुस्सा आ रहा हो वह लड़ने के मूड़ में हो, आप मौन रखें। क्योंकि आप उस समय बहुत मीठा भी बोलेंगे तो वह उल्टे-सीधे जवाब ही देगी या फिर ऐसी मजाक या ऐसा काम करें कि वह प्रसन्न हो जावे। उसका गुस्सा उतर जावे या फिर उसको हँसी आ जावे। इतने पर भी गुस्सा नहीं उतरे तो मौन ही सबसे अच्छी दवाई है और यदि दो-चार दिन तक भी गुस्सा नहीं उतरे तो कमरे में ले जाकर सभ्यतापूर्वक २-४ मिनट थोड़ा जोर से डाँट दें। निश्चित रूप से उसका गुस्सा उतर जायेगा।

सबके सामने नहीं डाँटें

आपकी पत्नी छोटी-बड़ी कुछ भी गलती कर दे, आप सबके (मम्मी, भाभी, दीदी आदि के) बीच में नहीं डांटें। सबके बीच में डाँटने से व्यक्ति को अपने आप हीनता/तिरस्कार की अनुभूति होती है। सब लोग भी उसको डाँटना/तिरस्कार करना प्रारम्भ कर देते हैं। बार-बार तिरस्कृत होने से स्वच्छन्द वृत्ति उत्पन्न होने लगती है और धीरे-धीरे वह आपके प्रति विरक्त होती हुई और कोई गलत कार्य करना भी प्रारम्भ कर सकती है। सुसाइड भी कर सकती है, आपकी सम्पत्ति को बटोर कर भाग सकती है। सब लोगों के बीच में डाँटना सभ्यता भी नहीं है, देखने-सुनने वाले भी क्या सोचते होंगे कि ये इतने कुलीन हैं, प्रतिष्ठित हैं और पत्नी को सबके बीच में डाँटते इनको शरम तक नहीं आती है....। कहा भी है- सुख चाहने वाले सद्गृहस्थ को कभी अपनी पत्नी को उपेक्षा और अनादर की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। हमेशा उसका सम्मान करना चाहिए। क्योंकि पत्नियाँ पति के उपेक्षा भाव से जितनी पीड़ित, असन्तुष्ट और अहित चाहने वाली हो जाती हैं उतनी

पति की क्रूरता एवं निर्धनता आदि से नहीं। पति यदि गृहस्वामिनी का सम्मान करता है तो संस्कारित घर की पत्नियाँ भी अपने पति के अनुकूल आचरण करती हैं और उनके प्रति वफादार होती हैं। वास्तव में पतिव्रता और पतिसेवा में रत रहने वाली गृहिणी को धर्म, लक्ष्मी, सुख और यश का मूलाधार कहा है। इसी प्रकार कभी-कभी मेहमानों-मित्रों आदि के सामने भी सम्भव है आपकी पत्नी से कोई गलती हो जाय। आप उस समय उन सबके सामने कुछ नहीं कहें। एकान्त में गलती सुधारने के लिए कभी समझावें तो कभी डाँट दें। लेकिन हाथ कभी नहीं चलावें अर्थात् पिटाई कभी नहीं करें। मार-पीट, हो हल्ला मचाते रहना शूद्रों (नीच कुल के लोगों) का काम है। उनके यहाँ पत्नी को मारा जाता है, गाली-गलौज किया जाता है शायद इसीलिए उनके घरों में लक्ष्मी की कमी रहती है। वे दरिद्र रहते हैं। अत: आप ऐसे काम कभी नहीं करें। थोड़ा गम खावें, सोचें गलती किससे नहीं होती है। प्राय: प्रत्येक इंसान से गलती होती है। जिससे गलती नहीं होती वही तो संसार में भगवान माना गया है। यदि आपको कोई सबके बीच में थोड़ा सा भी कुछ कह देता है तो आपको कैसा लगता है। यदि आपको बुरा लगता है तो क्या आपके कहने का सामने वाले को बुरा नहीं लगता होगा, लगता ही होगा। कहा भी है- **''आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्''** जो अपने को अच्छा नहीं लगे वैसा व्यवहार दूसरे के साथ कभी नहीं करें। मान लिया आपने पत्नी को सबके बीच में डाँटा और उसने पलटकर आपको जवाब दे दिया तो फिर आप पर क्या बीतेगी? आप ऐसा काम ही नहीं करें कि पत्नी को कभी सबके सामने आपकी इन्सल्ट करनी पड़े।

कारण ढूँढ़ें

आप घर में घुसते ही चिल्लाना प्रारम्भ न कर दें। कई लोगों की आदत होती है कि वे बिना चिल्लाए, बिना गाली दिये कभी बोलते ही नहीं हैं। वे माँ, पत्नी, बहिन सबको गालियाँ देते रहते हैं। गाली के बिना उनकी बात प्रारम्भ ही नहीं होती है। कभी कोई कहे तो कहते हैं मैं गाली थोड़े देता हूँ यह तो मेरी भाषा ही है, यह तो मेरे बात करने का तरीका है लेकिन यह अच्छी बात नहीं होती है। गाली मात्र गाली ही नहीं होती है उस गाली का अर्थ/भाव व्यभिचार भी हो सकता है। कोई-कोई माँ-बहिन की गाली देने में भी नहीं शरमाते हैं। वे यह नहीं सोचते हैं कि जिन शब्दों को मैं बोल रहा हूँ उनका अर्थ क्या है और कोई ऐसा करने के लिए कह दे तो क्या मैं ऐसा करने के लिए तैयार हो जाऊँगा या कोई ऐसा करेगा तो मैं सहन

कर लूंगा? आप स्वयं यदि एक गाली का विश्लेषण कर लेंगे तो सहम जायेंगे। आपके मन में ग्लानि उत्पन्न हो जायेगी। आप गाली देना छोड़ देंगे। आप यह भी नहीं सोचें कि मेरी तो गाली देने की आदत पड़ गयी है, अब वह छूट नहीं सकती। ऐसा कुछ नहीं है। आपकी कितनी भी आदत हो, यदि आप चाहें तो आप गाली देना छोड़ सकते हैं। आप जिस घर में रहते हैं आपकी आदत हमेशा उसी गली/रास्ते से घर आने की है और आपने मकान बदल लिया है दूसरे मोहल्ले/गली में बना लिया है तो क्या आप अपनी आने-जाने की आदत नहीं बदलते? क्या मकान बदलने के बाद भी आप पुराने मकान में ही जाते हैं, नहीं धीरे-धीरे आपकी आदत बदल जाती है और कुछ दिनों के बाद तो आप उस ओर मुड़ते ही नहीं हैं जहाँ आपका पुराना मकान है। जब आप यह आदत बदल सकते हैं तो गाली देने की आदत भी बदल सकते हैं; यदि आप अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लें कि मुझे अब गाली नहीं देना है तो। सभ्य, समझदार व्यक्ति कभी गाली नहीं देते हैं, आप भी सभ्य-समझदार बनें।

सभ्य-समझदार बनें

आपकी पत्नी यदि आपके कहे अनुसार काम नहीं कर पाये तो आप घर में घुसते ही गुस्से में उसके ऊपर बरस न पड़ें। गुस्से में भूखे ही नहीं चले जावें....। समय पर काम नहीं होने का कारण जानने का प्रयास करें। जैसे- आप पत्नी से कहकर गये कि मुझे दस बजे की गाड़ी से जाना है, मैं साढ़े नौ बजे आऊँगा। तुम भोजन तैयार रखना। आप साढ़े नौ बजे घर पहुँचे। पत्नी सब्जी ही बना रही थी। भोजन तैयार नहीं देख आप जल्दी में गुस्से से चिल्लाने लगे। आपने सोचा ही नहीं कि पत्नी मुझे अभी दस मिनट में भोजन करवा देगी। मैं दस बजे की गाड़ी पकड़ सकता हूँ। मेरी गाड़ी नहीं चूकेगी। फिर भी आप चिल्ला रहे हैं? यद्वा-तद्वा बोल रहे हैं। आपके चिल्लाने से पत्नी डर के कारण भोजन बनाना ही भूल जायेगी। आपकी गाड़ी निश्चित रूप से चूक जायेगी या आपको भूखे ही जाना पड़ेगा। यदि आप नहीं चिल्लाते, धीरे से पूछ लेते कि अभी तक भोजन तैयार क्यों नहीं हुआ, थोड़ा जल्दी तैयार कर दो। मेरी गाड़ी चूक जायेगी तो आप बहुत जल्दी गाड़ी पकड़ सकते थे लेकिन आप गुस्सा करके स्वयं गाड़ी चूक गये या आपको भूखा ही जाना पड़ा। आप थोड़ा सा विचार करते, भोजन नहीं बनने के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे (१) बच्चा रोने लगा हो (२) बार-बार (दस्त) जाने लगा हो (३) अचानक

कोई मेहमान/रिश्तेदार आ गये हों (४) गैस टंकी खाली हो गई। आदि में से कोई भी कारण आ जाने से चाहते हुए भी वह समय पर भोजन तैयार नहीं कर पाई हो। क्या आपको अपनी पत्नी पर इतना भी विश्वास नहीं है कि वह आपको भूखा नहीं रख सकती है। वह प्राण-प्रण से आपको सुख देती है/देना चाहती है। यदि आपको यह विश्वास नहीं है तो आप सच्चे दम्पती ही नहीं हैं आप दोनों में पति-पत्नी का सही रिश्ता नहीं है, यदि आप सच में पति-पत्नी हैं तो आपको एक-दूसरे के प्रति इतना विश्वास होना चाहिए/करना चाहिए। क्या आपके गुस्सा करने से भोजन जल्दी तैयार हो जायेगा ? नहीं, आपके रोज-रोज छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा करने/चिल्लाने से पत्नी के मन में यह धारणा बन जायेगी कि अरे, इनकी तो आदत ही गुस्सा करने की है। ये तो जबरदस्ती गुस्से के लिए कोई-न-कोई कारण ढूँढ़ ही लेंगे। मैं कितना भी अच्छा और जल्दी इनकी इच्छा के अनुकूल करूँ तो भी ये गुस्सा किये बिना नहीं रह सकते। इसलिए मुझे बहुत परेशान होने की आवश्यकता ही नहीं है। इस प्रकार आपके आपसी प्रेम में दरार पड़ने लगेगी। आप थोड़ा संतोष/शांति पूर्वक कारण जानने की कोशिश करें ताकि आपको गुस्सा नहीं आवे और आजीवन आपका आपसी प्रेम बना रहें।

आप अपनी पत्नी के साथ ऐसा व्यवहार भी नहीं करें कि पत्नी आपसे इतनी डरे कि वह बैठी-बैठी सोचती ही रहे कि अभी वे आयेंगे। आते ही क्या पता, क्या-क्या तहलका मचायेंगे, गुस्सा करेंगे। थाली फेंक देंगे। भूखे ही चले जायेंगे आदि.....। आपके आने का समय होने के साथ-साथ ही उसकी धड़कन बढ़ने लगे। डर के मारे वह काँपती रहे। आपका नाम सुनकर सुधरते काम भी बिगड़ जावें। उसे ऐसा लगने लगे कि इनसे मेरा पिण्ड कब छूटेगा। ये दो-चार दिन के लिए भी कहीं चले जावें तो मैं शान्ति से रहूँ। आप चार दिन के लिए भी बाहर जावें तो वह खुश हो जावे कि चलो चार दिन अब आराम से रहेंगे। घर में शांति रहेगी। चैन की नींद सोएँगे। आपको यदि उसका काम पसंद नहीं आता है तो आप स्वयं करें। उसको सिखावें। आपको उसके हाथ का भोजन, सब्जी, मिठाई, नाश्ता आदि पसन्द नहीं आता तो पत्नी को कुकिंग कोर्स करवा दें या आप किसी सन्त के भोजन का विचार कर लें। संत क्या खाते हैं, कैसा खाते हैं, कितना खाते हैं, आपने देखा होगा संत कभी किसी वस्तु की याचना नहीं करते हैं। उनको जैसा गृहस्थ लोग दे देते हैं वह नमक का हो, बिना नमक का हो या कम-ज्यादा नमक का हो या रूखा-सूखा हो या घी-तैल से तर हो, मौन पूर्वक खाकर संतुष्ट रहते हैं। आपको भोजन

पसन्द आने लगेगा।

एक नगर में एक लड़का घर वालों के साथ उपर्युक्त ढंग का ही व्यवहार करता था। घर वाले उससे हमेशा डरते रहते थे। उसने एक दिन दिगम्बर सन्त को जो न घी लेते थे, न दूध, न तेल लेते थे और न दही, जो ६७-७० वर्ष की उम्र में रूखी-सूखी जौ की रोटी, मूंग की दाल के साथ खड़े-खड़े अपने करपात्र (हाथों को ही पात्र बनाकर) अर्थात् दोनों हाथ मिलाकर भोजन कर रहे थे देखा। उन्हें देखकर उसने सोचा- अहो, ये रूखा-सूखा भोजन भी कितनी प्रसन्नता से कर रहे हैं और मैं इतना अच्छा सुस्वादु भोजन भी प्रसन्नता से नहीं करता हूँ। ये ऐसा भोजन भी दिन में केवल एक बार खाकर संतुष्ट हैं, मैं तो पूरे दिन कुछ-न-कुछ खाता ही रहता हूँ.....। इस प्रकार विचार करते-करते उसने संकल्प कर लिया कि मैं अब कभी भोजन के समय न गुस्सा करूँगा और न ही कुछ माँगूंगा। जैसा थाली में आयेगा, मौन पूर्वक खा लूंगा। उसी दिन से उसके घर में इतनी शान्ति हो गई कि घर मानों अचानक नरक से स्वर्ग ही बन गया हो। वास्तव में, व्यक्ति को सबसे ज्यादा गुस्सा भोजन के समय ही आता है, आप अपनी पत्नी/घर वालों के साथ ऐसा व्यवहार कभी नहीं करें। आप उनके साथ ऐसा व्यवहार करें कि पत्नी आपका हमेशा इंतजार करती रहे। आप बाहर चले जावें तो उसका भोजन करने में ही मन न लगे.....।

पत्नी को सहयोग दें

यदि आपकी पत्नी का स्वास्थ्य खराब है, वह विशेष काम आदि के कारण थक गयी है, घर पर विशेष मेहमान आ गये हैं तो समय देखकर पत्नी को सहयोग दें अर्थात् घर के कामों में थोड़ा हाथ जरूर बँटावें। पत्नी के काम में हाथ बँटावें। आप यह नहीं सोचें कि मैं ऐसा करके जोरू का गुलाम बन रहा हूँ या घर के काम मैं क्यों करूँ। घर के काम करना तो पत्नी का काम है मेरा काम तो मात्र कमाना है। हाँ, यह सच है कि घर के काम करना पत्नी के ही हिस्से में है, आप रोज या जब पत्नी स्वस्थ है काम कर रही है कर सकती है, उस समय आप घर का काम बिल्कुल नहीं करें। उस समय तो आप पानी का गिलास भी उठाकर इधर से उधर नहीं रखें। यही अच्छी बात है और परिस्थिति में पूरा सहयोग करना भी अच्छी बात है। परिस्थिति के समय घर के कार्यों में सहयोग देना आपका काम नहीं कर्त्तव्य है। आपको समय पर कर्त्तव्य का निर्वाह अवश्य करना चाहिए। लोक में तो कोई दुःखी

हो, बीमार हो, परिस्थिति में फँसा हुआ हो उसकी सहायता करना भी धर्म माना है तो फिर अपने घर में ही यदि आप परिस्थिति के समय पत्नी का सहयोग नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा। पत्नी के काम में हाथ बँटाने के कारण हो सकता है आपकी भाभी, मम्मी आदि आप पर व्यंग्य करें। आपकी हँसी करें। इसमें आपको बुरा मानने की कोई बात नहीं है। क्योंकि आपकी पत्नी आपके लिए इतनी समर्पित है तो आपका भी इतना कर्त्तव्य तो अवश्य बनता है कि आप भी समय पर उसका सहयोग करें। एक घर में तीसरी बहू आयी जो सर्विस करती थी। तीनों बहुओं के काम बँटे हुए थे। एक दिन तीसरी बहू शाम के समय भोजन बना रही थी, उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, वह काम करते हुए लड़खड़ा रही थी। दूसरी बहुएँ देख रही थीं तभी उसका पति रसोई में जाता है, पत्नी के साथ काम करवाना शुरू कर देता है। पत्नी के साथ काम करते देख भाभी बोली- ''अहो, लाला जी (देवर जी) आप पत्नी के बड़े भक्त/गुलाम हैं, देखो तो पत्नी के साथ भोजन ही बनवाने में जुट गये...।'' लड़का बोला- ''मैं जोरू का गुलाम नहीं हूँ। मैं जानता हूँ कि पूरे दिन ऑफिस में काम करके घर आने पर कितनी थकान की अनुभूति होती है और फिर यदि स्वास्थ्य खराब हो तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं ऐसे समय में इसकी सहायता करूँ।'' उत्तर सुनकर भाभी को भी वास्तविकता समझ में आ गयी।

आप यह भी नहीं सोचें कि मैं इतना बड़ा आदमी (ऑफिसर/सेठ आदि) हूँ। मेरे यहाँ इतने नौकर-चाकर काम करते हैं, फिर मैं क्यों यह रोटी आदि बनाने का काम करूँ। मैं आपसे पूछती हूँ क्या आप अपनी पत्नी के भी ऑफिसर/सेठ हैं। नहीं, आप पत्नी के ऑफिसर नहीं हैं, आप उसके जीवनसाथी हैं। आप अपने बच्चों के पापा हैं, आप अपने इष्ट भगवान के भक्त-पुजारी हैं। गुरु के शिष्य हैं और यदि गहराई से सोचें तो सरकार के नौकर हैं, सेठ हैं तो इन्कमटैक्स ऑफिसर आदि के सामने आप क्या हैं? क्या आप सबके ऑफिसर/सेठ हैं, नहीं, आप मात्र अपने ऑफिस में ऑफिसर हैं और अपने ग्राहकों के लिए सेठ हैं। आप अपनी पत्नी के जीवनसाथी होने के नाते आवश्यकता पड़ने पर उसको थोड़ा सहयोग नहीं देते हैं तो आप मानव भी नहीं हैं, आपके अन्दर तो अहंकार का, अपने पद के अभिमान का, अपनी सम्पत्ति और योग्यता का भूत चढ़ा हुआ है वह आपको सहयोग नहीं करने दे रहा है। इसीलिए यदि कभी कोई उच्च कुलीन महिला रोटी बनाने वाली नहीं मिल रही है तो आप मान रूपी हाथी से नीचे उतर कर थोड़ा सहयोग अवश्य करें,

नहीं तो अभिमान के कारण मर कर हाथी बनना पड़ेगा जिसकी नाक-सूंड इतनी बड़ी होती है कि जमीन तक लटकती रहती है। अमेरिका में **हेनरी फोर्ड**नामक एक बहुत बड़ा उद्योगपति-मोटर निर्माता रहता था। एक बार एक भारतीय उद्योगपति (जो उससे छोटा उद्योगपति था) फोर्ड से मिलने उसके निवासस्थान पर गया। उस समय फोर्ड अपने खाने के जूठे बर्तन मांज रहा था। भारतीय उद्योगपति ने जब यह देखा तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने फोर्ड से पूछा- ''सेठ! आप यह क्या कर रहे हैं? यह काम तो आपके नौकर ही कर देंगे।'' फोर्ड ने कहा- ''प्रात:काल जब प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना भंगी बनता है अर्थात् स्वयं का मल साफ करता है तो स्वयं के जूठे बर्तन साफ करने में क्या बुराई है ! हमें छोटे काम करके अपने आप का निरीक्षण करना चाहिए कि हमें कितना अहंकार आया है। हम कितने योग्य व्यक्ति हैं। एक भौतिक देश में रहने वाला व्यक्ति भी इतने अच्छे विचार रख सकता है फिर आप तो भारतीय हैं, आपके देश में निरभिमानी संत रहते हैं। आपके देश में स्वावलम्बी नागरिक रहते हैं। आप स्वयं संस्कारित माता-पिता के पुत्र हैं। इतने से काम में शरमाने की, भार मानने की और अपने आप को छोटा मानने की कोई बात नहीं हैं।

इसी प्रकार माहवारी के समय में भी आप यह नहीं सोचें कि होटल से थाली (टिफिन) मँगवाकर खा लेंगे। और होटल का नहीं खाना है तो भूखे रहो या जिनके साथ बैठकर पंचायतें (बातें) करते हों उन्हीं को बुलाकर भोजन बनवा लो आदि......। हाँ, आपकी पत्नी संभवत: किसी न किसी के घर (भोजन) की व्यवस्था करने की कोशिश करती ही है। लेकिन जब वह बहुत मेहनत करने के बाद भी सफल नहीं हो पाती है तब आप तक भोजन बनाने की बात पहुँचती है। आप सोचें यह भी उसके साथ एक मजबूरी है। महीने में २६-२७ दिन तो वह आपको भोजन बनाकर खिलाती ही है। मात्र तीन दिन आपको भोजन बनाना पड़ता है। आपको तो सोचना चाहिए कि मुझे भी अपने हाथ का भोजन पत्नी को खिलाने का यह मौका मिला है। आप आड़ी-टेढ़ी, कच्ची-पक्की, चावल-खिचड़ी, दाल-बाटी आदि कुछ भी बनाकर खिला दें। भले ही दोनों वक्त का एक वक्त में बना लें, लेकिन घर में बनाकर खिलावें।

घर के काम में डिस्टर्ब न करें

आप घर के कामों में पत्नी को डिस्टर्ब नहीं करें। ''तुमने इतना खर्च कर

दिया। आज इतनी सारी रोटी क्यों बनाई? आज मिठाई बनाने की क्या आवश्यकता थी? इतनी सारी चीजें इतने से दिन में कैसे खतम हो गयीं? इतने दाल-चावल, शक्कर आदि को एक साथ इकट्ठा करके क्या करोगी ? ये चीजें यहाँ क्यों रख दीं? अभी तक तुमने यह क्यों नहीं किया? ऐसा क्यों किया? आदि-आदि'' कहकर पत्नी के काम में हस्तक्षेप नहीं करें। जिस प्रकार आप अपने व्यापार-व्यवसाय-ऑफिस-लेन-देन आदि में पत्नी का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते हैं, दो-चार बार भी यदि पत्नी आपको व्यापारिक लेन-देन के बारे में पूछ ले तो आपको गुस्सा आ जाता है, उसी प्रकार पत्नी भी अपने घर की स्वामिनी है। उसको कब कितना कहाँ खर्च करना है, कौनसा सामान वर्ष भर के लिए एक साथ खरीदा जा सकता है और कौनसा सामान महीने-दो महीनों में खरीदना आवश्यक रहता है, मालूम है; इसलिए घर की व्यवस्था के अनुसार काम कर रही है। आपके बार-बार टोकने से उसको भी गुस्सा आता ही होगा। और यदि बार-बार कोई टोकता है तो अच्छे काम भी बिगड़ जाते हैं। व्यक्ति को काम करना आता हो तो भी बिगड़ जाता है, व्यक्ति को काम करना आता हो तो भी वह भूल जाता है, आपसी मनमुटाव बढ़ने लगता है। कोई-कोई मूर्ख पति तो मित्रों-रिश्तेदारों के बीच में भी पत्नी से यह कह देते हैं कि अभी थोड़े ही दिन पहले तो इतनी चीज लाये थे। सब कैसे खतम हो गई? कहाँ चली गयी?...। ऐसा कहते हुए क्या वे यह सोचते हैं कि उनकी पत्नी छुपकर माल-मिष्टान बना कर खा जाती है। बिना प्रयोजन किसी को दे देती है या फेंक देती है ? यदि ऐसा सोचते हैं तो उनकी गृहस्थी कभी अच्छी तरह नहीं चल सकती है। उनका आपसी प्रेम मात्र एक घर में रहने के कारण रहता है, वह वास्तविक प्रेम नहीं है।

घर की व्यवस्थाएँ चलाने में कितना सोचना पड़ता है, अचानक मेहमान, मित्र, रिश्तेदार आदि के आ जाने पर उनका यथायोग्य सम्मान करके घर की इज्जत बनाये रखना कितना कठिन है, उसको गृहस्वामिनी ही समझ सकती है। लोक में वह स्त्री चतुर मानी जाती है जो डेढ़-दो किलो शक्कर, आधा-पाव किलो घी और १५-२० दिन तक चलने के प्रमाण अन्य सामग्री रहते हुए भी आगे की सामग्री मंगवा लेती है, खतम होना मान लेती है। जो स्त्री ऐसा नहीं करती है वह समय पर हँसी का पात्र बनती है। वह मेहमानों के सामने घर की इज्जत नहीं बचा सकती है। यदि २-४ महीनों के लिए भी घर का काम-काज, व्यवस्थाएँ पुरुष को सौंप दी

जाय तो घर की क्या दशा होगी आप स्वयं सोचें। मेरे अनुमान से तो घर एक कबाड़खाना दिखने लगेगा। घर आये को भोजन-नाश्ता करवाना तो बहुत दूर की बात है, पानी भी सही ढंग का मिल जावे तो आश्चर्य समझना चाहिए। इसके अलावा एक बच्चे को पूरे दिन में क्या-क्या कितनी-कितनी आवश्यकताएँ पड़ती हैं, उन सबको यदि आदमी को बता दिया जाये तो वह विश्वास ही नहीं कर सकता है, वह तो माँ ही जान सकती है। जानती है और उसकी पूर्ति करने में माँ ही समर्थ होती है। इसलिए यदि पिता की मृत्यु हो जावे तो माँ बच्चे का अच्छी तरह से पालन-पोषण करके एक योग्य नागरिक बना सकती है/बना देती है। लेकिन यदि बच्चे की माँ चली (मर) जावे तो पिता बच्चे का सही ढंग से पालन नहीं कर पाता है। बच्चे की जिन्दगी नहीं बन पाती है। हाँ, बच्चा बड़ा होकर अपने पुरुषार्थ से जिन्दगी बना लेता है तो वो एक अलग बात है। अत: आप घर की वस्तुओं का विशेष ब्योरा न लें। अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार समय पर आवश्यक वस्तुएँ लाकर दे दें। आपका घर घर जैसा रहेगा अन्यथा घर कारागृह के समान अनुभव में आने लगेगा।

व्यवहार समझें

आप अपने ससुराल वालों के साथ इतना व्यवहार भी नहीं रखें कि आपके भाई, मम्मी-पापा को ऐसा लगने लगे कि यह तो ससुराल वालों का ही हो गया है। आप ससुराल में बहुत दिनों तक भी नहीं रुकें। क्योंकि ससुराल में तो जँवाई का कम रहना ही सम्मान का कारण होता है। जँवाई के बहुत दिन तक ससुराल में रहने से साले-साली, सास-ससुर आदि जँवाई को पूरा सम्मान नहीं दे पाते हैं और संसार में यदि जँवाई को सबसे ज्यादा सम्मान मिलने का स्थान है तो ससुराल ही है। अत: आप २-३ दिन से ज्यादा ससुराल में नहीं रहें। हाँ, यदि उनकी बीमारी में कोई सेवा करने वाला नहीं है या होकर भी सेवा नहीं कर पा रहा है, नहीं कर रहा है तो आपका कर्त्तव्य है कि आप तन-मन-धन और समय सभी लगाकर उनकी सेवा करें। उस समय तो आपका... ससुराल में रुकना ही अच्छा माना जायेगा। लेकिन सामान्य समय में अधिक रूकना अच्छा नहीं है। आप ऐसा भी नहीं करें कि ससुराल से फोन आ गया। आपने पत्नी को भेज दिया और आपने फोन करके बुला लिया। आप पत्नी को सम्मान पूर्वक भेजें और जाकर सम्मान पूर्वक लावें। इससे वर्ष में दो-तीन बार आपस में सब का मिलना भी हो जाता हैं और आपसी व्यवहार/प्रेम भी दृढ़

होता है। कई नादान लड़के एक दिन के लिए भी पत्नी को नहीं भेजते हैं। कभी पीहर भेजते हैं तो साथ जाते हैं या पीछे-ही-पीछे बिना प्रयोजन ससुराल पहुँच जाते हैं। वे भाई-बन्धु, ससुराल एवं गाँव वालों की दृष्टि में अति आसक्त, निर्लज्ज और सभ्यताहीन माने जाते हैं। उनकी इन चेष्टाओं से लोग यह सोचकर कि 'यह पत्नी के बिना एक दिन भी नहीं रह सकता है,' आदि-आदि कहकर फब्तियाँ कसते हैं/ मजाक बनाते हैं/व्यंग्य करते हैं। पत्नी को भी बार-बार हँसी का पात्र बनना पड़ता है। आपका भले ही पत्नी से कितना ही प्रेम हो, आप ऐसे काम नहीं करें। प्रेम कोई दिखाने की चीज नहीं होती उसे तो अन्दर ही रखना चाहिए। कई लड़के ससुराल वालों से छोटी सी गलती हो जाने से रूठ जाते हैं। पत्नी को भेजना बन्द कर देते हैं या गलतफहमी में पड़कर वर्षों तक बेचारे ससुराल वाले हाथ जोड़ते रहते हैं और आप (जँवाई) फैलते रहते हैं। तथा जब ससुराल वाले हार मानकर मौन हो जाते हैं तब वे इधर-उधर अपने मित्र रिश्तेदार आदि को ससुराल में सम्मान/प्रेम प्राप्त करते देखते हैं या उम्र ढलने पर अकल ठिकाने आने लगती है, ससुराल की याद आने लगती है तो वे परोक्ष संकेत करते हैं/कहलवाते हैं। यह कोई बुद्धिपरक कार्य नहीं है। इसी प्रकार ससुराल वाले प्रेम पूर्वक अपनी शक्ति अनुसार वस्त्रादि देते हैं। उन्हें भी सबके बीच में क्रोधित होकर फेंककर चले आते हैं, उनकी भी भविष्य में ऐसी ही हालत होती है। इसलिए ससुराल वालों से कभी छोटी-मोटी गलती हो भी जावे तो आप उसे इतनी गहराई से नहीं लेवें। यह सोचकर माफ कर दें कि गलती तो सबसे होती है/हो जाती है। अथवा जहाँ अपनत्व और प्रेम होता है वहाँ कुछ भी हो गलत दृष्टि से न लिया जाता है और न किया जाता है और अपने वालों के साथ ही गलती होती है.....।

आप अपने घर पर साला-साली आदि के आने पर उनका इतना सम्मान भी नहीं करें कि आपके भाई-बहिनों को ऐसा लगे कि भैया तो कभी इतना बोलते ही नहीं थे और इनसे (ससुराल वालों से) तो इतना बोलने लगे हैं। मैं (बहिन) आती हूँ तो भैया को ५-१० मिनट भी बैठकर बात करने का समय नहीं मिलता है और साला-साली के आने पर उनके आगे-पीछे नाचते ही रहते हैं, आदि...। आप साला-साली आदि ससुराल वालों के आने पर सम्मान करें, यथायोग्य व्यवस्था करें। लेकिन उससे ज्यादा अपनी बहिन के आने पर और भाई की करें। ताकि आपको ससुराल वालों से भी सम्मान मिले तथा अपने माता-पिता, भाई-बहिन,

बन्धुजनों से भी अपनत्व मिले। इसका अर्थ यह नहीं है कि आपके घर पर यदि साले-साली, साले के बच्चे आदि ससुराल पक्ष के रिश्तेदार आवें तो आप बोलें ही नहीं, उनकी उपेक्षा करते रहें। कई लड़कों को पत्नी कम पसन्द आती है या पत्नी कोई गलती कर देती है, कुछ उल्टा-सीधा कह देती है तो उसका गुस्सा उतारने के लिए ही मानों साला-साली आदि से नहीं बोलते हैं। पत्नी ने कुछ गलती कर भी दी तो उसमें साला-साली का क्या दोष जो आप उनसे नहीं बोलते हैं। घर पर आये हुए अतिथि का तो वैसे ही आदर-सम्मान करना चाहिए। फिर कोई रिश्तेदार, मित्र आदि हो तो विशेष सम्मान करना ही चाहिए। आप यदि अपने साला-साली आदि से नहीं बोलेंगे, उनके प्रति कुछ भी स्नेह/प्रेम प्रगट नहीं करेंगे तो आपकी पत्नी को कैसा लगेगा। इस प्रवृत्ति को देखकर आपकी पत्नी भी यदि आपके भाई-बहिनों के साथ ऐसा ही व्यवहार करने लगी तो आपको कैसा लगेगा? वह रुष्ट होकर आपके साथ दुर्व्यवहार भी कर सकती है। इतनी छोटी सी बात से आपके प्रेम में भी कमी आ सकती है, आपसी झगड़ा हो सकता है अत: आप साले आदि के आने पर भी यथायोग्य सम्मान अवश्य करें।

ससुराल में ज्यादा रहने से

एक सेठ के लड़के की शादी में लगभग सभी रिश्तेदार आये थे। उनमें उनके चारों जँवाई भी सम्मिलित थे। विवाह का कार्यक्रम समाप्त होने के बाद जँवाई ''हमें यहाँ सब कुछ (भोजन-पानी, सोना-बैठना आदि) अच्छी तरह से मिल रहा है तो फिर हम क्यों अपने घर जाकर परिश्रम पूर्वक धन कमावें। क्यों न यहीं रहकर थोड़े दिन और आनन्द-मौज मनायें''..... सोचकर वहीं (ससुराल में) रुक गये। कहा भी है-

ससुराल सुख की सार
पड़े रहे कई त्यौहार;
सास-ससुर का खाकर माल
बदल गई उनकी भी चाल
फूल गए हैं दोनों गाल,
अब कहना क्या है उनका हाल।
ऐसा है भैय्या ससुराल।

जब बहुत दिन हो गये और चारों जँवाइयों में से किसी एक ने भी जाने का

नाम नहीं लिया, किसी एक ने जाने के लिए नहीं कहा तो एक दिन सेठ ने सेठानी से कहा- अब जँवाइयों को माल-मिष्टान्न देना बन्द करो। माल-मिष्टान्न के स्थान पर मोटी रोटियाँ घी लगाकर दो। सेठानी ने सेठजी के आदेशानुसार जँवाइयों को मोटी रोटियों पर घी चुपड़ कर परोस दिया। थाली में माल-मिष्टान्न के स्थान पर मोटी-मोटी रोटियाँ देख सबसे बड़े जँवाई ने सोचा 'यह तो मेरा एक प्रकार से अपमान ही है। अब मुझे यहाँ से चले जाना चाहिए।' बड़े जँवाई ने ससुर से अपने घर जाने का निवेदन किया । ससुर ने विदाई देते हुए कहा- ''बहुत अच्छा, जाओ, कभी-कभी आते रहना।'' बड़ा जँवाई विदाई लेकर प्रसन्नता से अपने घर चला गया। लेकिन तीन जँवाइयों पर मोटी रोटियों का प्रभाव नहीं पड़ा। वे सोचते रहे, क्या हो गया? प्रेम और सम्मान पूर्वक घी लगी रोटी तो मिल रही है। फिर क्यों हम यहाँ से जाने की सोचें? बहुत दिनों तक जब शेष जँवाइयों ने जाने के लिए नहीं कहा तो एक दिन सेठजी ने एक युक्ति सोचकर सेठानी को आदेश दिया कि जँवाइयों को घी लगी रोटी देना बंद करके तेल की पूड़ी बनाकर रखो/खिलाओ। सेठानी ने सेठजी के कहे अनुसार तेल की पूड़ी बनाकर जँवाइयों को परोस दी। थाली में तेल की पूड़ी देखकर दूसरे जँवाई ने सोचा- 'अब यहाँ से चले जाना ही उचित है।' दूसरे जँवाई ने ससुर से जाने की आज्ञा माँगी। ससुर ने विदाई देते हुए कहा- ''वर्ष में एक-आध बार आ जाया करो।'' लेकिन दो जँवाइयों पर तेल की पूड़ी का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे तेल की पूड़ी खाकर भी वहीं रहने लगे। सेठ ने सोचा इन जँवाइयों को कैसे भेजा जाये? एक दिन दोनों जँवाइयों को सिनेमा देखने गये देख सेठ ने सेठानी से कहा- 'रात्रि में जब वे लोग सिनेमा देखकर आवें तो दरवाजा मत खोलना।' सेठ की आज्ञानुसार रात्रि में जब जँवाइयों ने आवाज लगाई तो सेठानी ने दरवाजा नहीं खोला। दोनों रातभर घुड़साल (घोड़े बाँधने के स्थान) में सोए रहे। दरवाजा नहीं खोलने के कारण तीसरे जँवाई को बहुत बुरा लगा। उसने प्रातःकाल आवश्यकों से निवृत्त होकर ससुर से जाने की अनुमति माँगी। ससुर ने विदाई देते हुए कहा- ''जाओ, बेटा! और कभी आना।'' लेकिन चौथे जँवाई पर इन सब बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो एक दिन सेठ ने अपने बेटे से कहा- ''बेटा! आज तब तुम जीजाजी के साथ भोजन करोगे तब मैं आकर तुम्हें डाँटने लगूँ तो तुम यद्वा-तद्वा बोलना और उठकर मारपीट प्रारम्भ कर देना।'' बेटे ने वैसा ही किया। जँवाई उनकी उस कसमकस को देखकर अपने घर को रवाना हो गया। अधिक दिन तक

जँवाई का ससुराल में रहने का ऐसा ही फल होता है। इसलिए आप समय देखकर ससुराल में रहें। अपने पद का गौरव रखते हुए ससुराल वालों के साथ व्यवहार रखें।

हाथ खर्च दें

आप पत्नी को मासिक हाथ खर्च अवश्य दें। पीहर या किसी समारोह आदि में जाते समय तथा बच्चों आदि के लिए भी अलग से खर्च दें। पत्नी को बार-बार माँगने के लिए, आपकी जेब से चोरी करने के लिए मजबूर नहीं करें। यदि संयुक्त परिवार है तो भी आप यह सोचकर पत्नी को एकदम रूखा नहीं रखें कि सबको पैसा पापा/बड़े भाई साहब देते हैं, दे देंगे। वे देंगे लेकिन आप भी कुछ श्रम करते हैं, आप भी अपनी जिम्मेदारी का धंधा सम्हालते हैं, आपको भी थोड़े फुटकर पैसों पर तो अधिकार होगा ही। मुख्य आय-व्यय का ब्योरा भले ही भाई साहब या पापा का हो उसमें से भी आप थोड़ा पैसा पत्नी और पापा के द्वारा हाथखर्च देने के अलावा भी देते रहें। इससे पत्नी प्रसन्न रहेगी। समय पर पैसे से भी आपका पूरा सहयोग करेगी। पत्नी के मन में यह भाव नहीं आयेगा कि इनके तो सब कुछ पापा ही हैं मेरा तो इनकी दृष्टि में कोई महत्त्व ही नहीं है। मैं तो इनके कुछ लगती ही नहीं हूँ। जब मुझे दो-चार सौ रुपये भी नहीं दे सकते हैं/नहीं देते हैं तो इनसे मुझे क्या सुख मिला.....। कभी-कभी अचानक पापा-भाई अपनी दुकान ले लेते हैं या अपनी चतुराई से पैसा इकट्ठा करके दुकान पर कर्जा चढ़ाकर भाग जाते हैं तब ऐसी परिस्थितियों में आपकी प्रसन्न/संतुष्ट पत्नी आपको तन, मन, धन से सहयोग देगी/दे सकती है/देती है।

माँ आदि की बुराई न सुनें

पत्नी यदि आपके सामने आपके भाई-बहिन, मम्मी-पापा आदि की बुराई करे तो आप उसे प्रोत्साहन नहीं दें। उसकी हाँ में हाँ नहीं मिलावें। उन सब बातों को सुनने में आप रुचि नहीं लें, उपेक्षा कर दें। आवश्यकता हो तो डाँट दें ताकि वह इस प्रकार की चर्चा बार-बार उठाने का साहस नहीं कर पावे। अन्यथा आपको जीवन भर भैया, माँ-बहिन आदि की बुराइयाँ ही सुननी पड़ेंगी। इसी प्रकार पत्नी यदि अपने पीहर वालों के लिए जैसे बहिन, भाई-भाभी आदि के लिए कुछ खरीदने को कहे तो आप कभी उसकी बातों में नहीं आवें। क्योंकि पीहर वालों के लिए अल्प मूल्य वाली वस्तु खरीदने पर भी वह आपकी माँ बहिन-भाभी आदि की आँखों में खटकेगी और उनके मन में बार-बार ये शंकाएँ बनी रहेंगी कि यह तो

अपने घर का सामान पीहर में ले जाकर भर देती है, इकट्ठा करती है। कभी किसी वस्तु के गुम हो जाने पर भी आपके ससुराल वालों पर ही शंका होगी। इसलिए आप पहले से ही इस बात से विरक्त रहें। ताकि आपकी पत्नी और ससुराल वालों पर कोई अंगुली नहीं उठा पावे। भाई-बहिन अर्थात् साले-साली को बार-बार बुलाना, बहुत दिनों तक उनका बहिन (आपके) के घर पर बने रहना भी घर वालों को दु:ख उत्पन्न करता है। और बहू को तो माँ-भाभी आदि कम कहेंगे लेकिन आपको जरूर कहेंगे कि तुम कुछ नहीं कहते हो, क्यों कहोगे ? वो तो तुम्हारी देवता है, उसने तो तुम्हारे को वश में कर रखा है आदि....। अत: आप पहले दिन से ही सावधान रहें।

बड़ों का सम्मान करें

आपके घर में दादा-दादी हैं जो आपको बिना पूछे ही सलाह देने के लिए तत्पर रहते हैं। आपके कार्यों की नुक्ताचीनी करते ही रहते हैं। आपको ऐसे-वैसे अर्थात् अनावश्यक आर्थिक व्यय से रोकते रहते हैं। धन का संगृह ही जिनको प्रिय है। धन बचाना ही एक प्रकार से जिनका काम शेष रह गया है आप उनके साथ भी कटु व्यवहार नहीं करें। पलट कर जल्दी से जवाब नहीं दें। उनके आते ही चोर की भाँति जान बचाकर भागने की कोशिश नहीं करें। उनकी बात का उलटा अर्थ नहीं लें। तत्काल में उनकी बात को स्वीकार करने की कोशिश करें। कई घरों में वृद्धों की बड़े लोग इज्जत नहीं करते हैं। इसलिए सभी लोग उनका अपमान करते रहते हैं, तिरस्कार करते हैं। छोटी-छोटी बहू-बेटियाँ, बच्चे तक उनकी बात पर ध्यान नहीं देते हैं। उनकी आवश्यकताओं का कोई खयाल ही नहीं रखते हैं। क्योंकि छोटे तो बड़ों का अनुकरण करने वाले होते हैं जबकि आस-पड़ोस के लोग उनकी सलाह मानते हैं/सलाह लेना चाहते हैं और उनकी सलाह से माल खरीद-बेचकर लखपति बन जाते हैं। वे उन पड़ोसियों के धन को देख-देखकर भी छीजते रहते हैं कि काश! मेरा बेटा-पोता भी मेरी मान लेता तो धनाढ्य हो जाता। आप उनके साथ ऐसा नहीं करें भले ही आपको उनकी बात नहीं माननी है, आप उनकी बात को नकारें नहीं, एक बार हाँ भर दें, बाद में उस पर सोचें; यदि आवश्यक और उचित लगे तो अवश्य मान लें। नीति में कहा है-**वृद्ध लोग विनय से खुश होते हैं।** सच में जिस घर में वृद्धों का सम्मान होता है वह घर कभी बिखर नहीं सकता, उस घर में आर्थिक हानि नहीं हो सकती। उस घर को जो कोई जब कभी नहीं लूट सकता।

वृद्धों के अनुभव

एक बार एक आततायी राजा ने भारत पर आक्रमण करने का विचार किया। उसके आक्रमण करने के पहले यह जानने के लिए कि भारत में अर्थात् भारतीय शासक के पास कोई बुद्धिमान अनुभवी वृद्ध पुरुष/व्यक्ति है या नहीं, अपने एक सेवक के साथ अंजन-सुरमा की एक डिबिया भेजी। उस डिबिया में मात्र इतना सुरमा था जो दो आँखों में आँजा जा सके। वह सुरमा इतना प्रभावक था कि यदि अंधा व्यक्ति भी उसको आँज ले तो आँखों की ज्योति आ जाती थी। राजा ने उस सुरमे की विशेषता सुनकर विचार किया कि इसका परीक्षण अंधे वृद्ध मंत्री पर किया जाय तो बहुत लाभ मिल सकता है। उसने अपने अंधे वृद्ध मंत्री को बुलाया और अपनी आँखों में सुरमा डालने के लिए कहा। मंत्री ने अपनी एक आँख में सुरमा डाला। सुरमा डालते ही आँख की ज्योति आ गई। उसको दिखने लगा। मंत्री ने शेष सुरमा अपनी जीभ पर रखकर यह अनुमान लगा लिया कि सुरमा में क्या-क्या द्रव्य हैं, सेवक आश्चर्यचकित हो यह सब देखता रहा। मंत्री ने दूसरे दिन एक डिब्बी भरकर सुरमा तैयार किया और राजसभा में अपनी दूसरी आँख में डाला। सुरमा डालते ही आँख की ज्योति आ गई। वह राजसेवक को सुरमे की डिब्बी देते हुए बोला- ''अपने राजा से कह देना, आपको जितना सुरमा चाहिए भारत से मंगवा ले। हमारे यहाँ यह सुरमा पर्याप्त मात्रा में मिल सकता है।'' सेवक ने अपने राजा से भारत की पूरी स्थिति बता दी। राजा ने आक्रमण का विचार यह सोचकर बदल दिया कि जिस देश में बुद्धिमान वृद्ध लोगों का सम्मान है, अच्छे कार्यों में उनकी सलाह ली जाती है, उस देश पर आक्रमण करके मैं विजयी नहीं बन सकता....। इसी विषय में अपना अनुभव सुनाते हुए अमेरिका के भूतपूर्व कृषि मंत्री **आडासन** कहते हैं कि- ''जब मैं इक्कीस वर्ष का था मुझे टी.बी. की भयंकर बीमारी हो गई। डॉक्टरों ने उसे लाइलाज घोषित कर दिया। मुझे हॉस्पिटल में ही एक वृद्ध मिला। उसने कहा- ''बेटा! अभी तुम बहुत छोटे हो। तुम अपनी बीमारी को सीने तक ही रखना, मस्तिष्क तक मत आने देना।'' वृद्ध की इस बात से मैं बहुत प्रभावित हुआ और मैंने वैसा ही पुरुषार्थ किया, फलत: मैंने सब चिन्ताएँ छोड़ दीं। मेरी चिंताएँ छूट गईं। मैं प्रसन्नता से जीने लगा जिससे मैं कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गया। डॉक्टरों को भी आश्चर्य हुआ कि इतनी बड़ी बीमारी प्रसन्न रहने से ठीक हो गई। यह सब वृद्धों के विचारों पर ध्यान देने, उन्हें मानने का ही फल मुझे

प्राप्त हुआ था, मैं आज भी स्वस्थ हूँ।''

एक नौजवान ने एक वृद्ध को कमर झुकाये, लाठी के सहारे हाँपते हुए, धीरे-धीरे चलते हुए देखकर मदोन्मत्त होकर व्यंग्य मिश्रित ध्वनि में हँसते हुए कहा- ''बाबा, क्या ढूँढ़ते जा रहे हो?'' वृद्ध अनुभवी था। उसे युवक के व्यंग्य की तिक्तता समझते देर नहीं लगी। वह बड़े प्यार से मुस्कराते हुए स्नेहसिंचित स्वर में सलाह देते हुए बोला- ''बेटा! मेरा यौवनरूपी बहुमूल्य रत्न खो गया है, उसे ही ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। पर देखो तुम संभलकर रहना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें भी कभी यह दिन देखना पड़े।'' ऐसे होते हैं वृद्ध जो अपमान करने पर भी शिक्षा ही देते हैं।

यदि ससुर के मन में कोई बात भर गई है या किसी के बारे में विकल्प हो गया है, उनको कोई सुनने वाला नहीं है अर्थात् पत्नी मर गई है या उनकी सुनती नहीं है तो ससुर की सुनें। सुनते समय यदि कुछ जवाब देने योग्य बात हो या जिसका जवाब देना आवश्यक लगे या हाँ भरे बिना ससुर को बुरा लग रहा हो तो आप इस प्रकार से उनकी बात सुनें कि उनको ऐसा नहीं लगे कि बहू बिना मन के या अनसुनी करती हुई मेरी बात सुन रही है ताकि ससुर संतुष्ट रहे। यदि आपने भी उनकी बात नहीं सुनी तो वे अपने मन को हल्का करने के लिए घर से बाहर के लोगों को कहेंगे। अड़ोस-पड़ोस को सुनायेंगे तो आपकी और ज्यादा भद्दी लगेगी। इसलिए आप उनकी सुन लें, यह भी एक बहुत बड़ी सेवा है।

बहू हो तो ऐसी

कई महिलाओं को अपने बेटे से बहुत प्रेम होता है। वे चाहती हैं कि उसका बेटा बहुत सुखी रहे, आनन्द-मौज से जीये। वे यह भी जानती हैं कि बेटे को बहू से सुख मिलेगा। लेकिन बहू के आने के बाद उनको ऐसा लगने लगता है कि बेटा अब उनका नहीं रहा है क्योंकि बेटे को मेरी अपेक्षा बहू से ज्यादा प्रेम है। बेटा बहू के साथ जितनी हँसी-मजाक करता है, घूमता-बैठता है, खाता-पीता है उतना मेरे साथ नहीं करता है। उनके (बेटे-बहू के) प्रेम को देखकर उसे ईर्षा परिणाम होने लगते हैं, वह अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ने लगती है। उस समय आपको ये विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है और न ही आपको यह सोचना है कि मम्मी जी मेरे कारण से दु:खी हैं या मम्मीजी को हमारा (पति-पत्नी का) प्रेम अच्छा नहीं लगता है ऐसा कुछ नहीं है। आपकी सास को गलतफहमी हो गई है। उस गलतफहमी को निकालने के लिए आप उनके साथ ऐसा व्यवहार करें जिससे सास के मन में यह

विश्वास हो जावे कि बेटा उसे (माँ को) जितना चाहता है उससे कई गुना अधिक बहू सास को चाहती है। समय-समय पर उनके उबलते हुए क्रोध को प्रेम रूपी जल के सिंचन से शांत करती रहें। एक माँ चाहती थी कि उसका बेटा, जो आई.ए.एस. है, उसकी बहू भी कम-से-कम बी.ए. पढ़ी हुई, मेनर्स वाली, खूबसूरत हो। उसने अपने बेटे की शादी के लिए बहुत लड़कियाँ देखीं। लेकिन उसे किसी लड़की का रंग पसंद नहीं आता, तो किसी के मेनर्स पसन्द नहीं आते। कभी वह लड़की की हेल्थ-हाइट देखकर मना कर देती तो कभी उसकी आँखें उसको पसन्द नहीं आतीं अर्थात् पचासों लड़कियों को जब उसने इस प्रकार नकार दिया तो लड़की वालों ने उसकी बुराई करना प्रारम्भ कर दिया और....। फिर भी उसके भाग्य ने साथ दिया। उसको अपनी मनचाही बहू मिल ही गई। सब लोगों ने बहू के रूप-रंग, मेनर्स आदि की तथा सास की बुद्धि की बहुत प्रशंसा की। बेटे-बहू के विचार बहुत मिलते थे, दोनों के आपसी प्रेम को देखकर माँ को ऐसा लगने लगा कि बेटा अब मेरा कुछ भी नहीं रहा है, वह पूरा ही बहू का हो गया है। उसे उनको (बेटे-बहू को) देख-देखकर गुस्सा आने लगा। वह कुढ़ने लगी। अन्दर-ही-अन्दर वह उनसे बहुत कुछ उल्टा-सीधा कहकर झगड़ा खड़ा करने का प्रयास करने लगी। लेकिन माँ के भक्त बेटे-बहू पर इन सब उल्टी-सीधी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। एक दिन उसने लड़ने के मूड से बहू को अपने कमरे में बुलाया और झल्लाते हुए बोली- ''सुनो बहू- मैं बहुत दिनों से तेरे से बात करना चाहती थी।'' बहू ने धीमे स्वर में कहा- ''जी, मम्मीजी कहिए मैं आपकी सेवा में हाजिर हूँ...''। सास बोली- ''बहू, बुरा न मानना। तुमको... तुमको यह नहीं भूलना चाहिए कि अशोक (तेरा पति) मेरे भी कुछ लगता है...वह मेरा बेटा है'' वह लड़ने के मूड में थी लेकिन बहू ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह थोड़ी देर चुप रही फिर नम्रता से बोली- ''मम्मी जी, भला मैं यह कैसे भूल सकती हूँ कि 'वे' आपके बेटे हैं, यकीनन वे आप के बेटे हैं। इस बारे में मैं आपसे बिल्कुल सहमत हूँ।'' बहू के स्वर में मिठास थी लेकिन उसके शब्दों में छिपी चोट का सास के पास कोई जवाब नहीं था। बहू केवल बी.ए. पास ही नहीं थी, बल्कि सही माने में वह अच्छी थी। उसने आगे बढ़कर सास का हाथ अपने हाथ में ले लिया और नम्र सुरीले लहजे में बोली, ''मम्मी जी! आप भी बहुत जरूरी बात भूल रही हैं... अगर बुरा न मानें तो कहूँ?'' सास हकलाकर बोली- ''कहो।'' बहू ने धीमे-धीमे उसका हाथ सहलाते हुए कहा, ''आप यह बात भूल

रही हैं कि अगर 'वे' आपके बेटे हैं तो मैं भी आपकी बेटी हूँ। अब आप केवल उन्हीं की माँ नहीं हैं, मेरी भी माँ हैं।'' बहू के मुँह से ''वह बहू की भी माँ है'' यह सुनकर सास का दिल पानी-पानी हो गया। उसकी गलतफहमी कि बहू ने उससे बेटे को छीन लिया है, समाप्त हो गयी। उसे विश्वास हो गया कि अब उसके केवल एक बेटा ही सेवा करने वाला नहीं है अपितु जीवनभर अपने ही घर में रहने वाली एक बेटी भी सेवा करने वाली है...। आप भी, आपकी सास कैसी भी हो, उसके साथ ऐसा व्यवहार करें कि सास आपको नहीं चाहती हो तो भी चाहने लगे।

पति-पत्नी

पूर्व में, लड़की को पति के साथ एवं लड़के को पत्नी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, कैसे बोलना चाहिए, किस प्रकार अपनी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए घर की व्यवस्थाओं को सुचारु ढंग से चलाना चाहिए जिससे लोक में हँसी भी न हो और घर में सुख-शांति बनी रहे, आदि अनेक बातों पर प्रकाश डाला गया है। अब पति-पत्नी अपने विचारों का सामञ्जस्य किस प्रकार बिठायें ताकि मन में एक-दूसरे के प्रति द्रोह के भाव उत्पन्न न हों, उन्हीं सब बातों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत है–

पति-पत्नी एक गाड़ी के दो पहिये होते हैं अथवा गृहस्थ रूपी नदी के दो तट होते हैं। मात्र एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती है। जिस प्रकार गाड़ी के दोनों बैल यदि एक विचार वाले हों, संगठित हों, एक-दूसरे की वेदना को समझने वाले हों तो गाड़ी सरलता से अपने गन्तव्य पर पहुँच सकती है, पहुँच जाती है। और यदि दोनों बैलों के विचार नहीं मिलते हों, या एक दूसरे के विचारों में सामञ्जस्य बनाने की क्षमता नहीं हो, एक की पीड़ा में दूसरा पीड़ित नहीं हो तो गाड़ी कितनी भी सुन्दर हो, मजबूत हो, अपने गन्तव्य पर नहीं पहुँच सकती। इसके अलावा गाड़ी में एक अति-आवश्यक चीज होती है- (चिकनाई) ओंगन यदि गाड़ी में ओंगन नहीं डाला जाये तो वह चर-चर(चूँ-चूँ) करने लगती है और धीरे-धीरे चलना बन्द करके टूट जाती है। उसी प्रकार गृहस्थी रूपी रथ के भी पति-पत्नी दो पहिये हैं और दोनों में होता है प्रेम रूपी ओंगन/पति-पत्नी के विचार यदि एक-दूसरे से सामञ्जस्य बिठाते हुए चलते रहें तो गृहस्थ की गाड़ी भी सही ढंग से चलती रहती है और पति-पत्नी में से कोई एक भी अपनी बात पर अटक जावे, हठ पकड़ कर बैठ जावे तो गृहस्थी कभी अच्छी तरह से नहीं चल सकती। वे दोनों ही लोक में हँसी के पात्र

बनते हैं और दु:खी होते हैं। यदि समय पर कभी पति झुक जावे अर्थात् नहीं चाहते हुए भी पत्नी की बात मान ले और कभी नहीं चाहते हुए भी पत्नी पति की बात को स्वीकार कर ले तो उनकी गृहस्थी कभी नहीं बिखरती है और वे कभी दु:खी नहीं होते हैं।

भारतीय परम्परा में पति-पत्नी का सम्बन्ध एक पवित्र सम्बन्ध माना गया है और यह चार बातों पर आधारित है–

(१) ट-स्ट (२) टाइम (३) टॉकिंग (४) टच।

(१) **ट-स्ट-** एक दूसरे पर भरोसा रखें।

(२) **टाइम -** एक दूसरे के लिए समय निकालें।

(३) **टॉकिंग -** परस्पर प्रेमपूर्वक बातों का सिलसिला जारी रखें।

(४) **टच -** एक-दूसरे की जरूरत को समझें। आखिर दोनों में कोई संन्यासी नहीं हैं।

हठ के कारण

एक दम्पती अपने घर में आनन्द से रहते थे। वे यद्यपि दाम्पत्य अर्थात् 'दम्+पती' दम्=इन्द्रियों का निग्रह, पति=स्वामी। अपनी इन्द्रियों को निग्रह करने में सक्षम थे फिर भी कभी-कभी गम्पति अर्थात् गम+पति, गम=चिन्ता, पति=स्वामी, चिन्ताओं के टेंशन के स्वामी बन जाते थे क्योंकि दोनों हठी थे। अपनी बात पर अड़ने में उनको देर नहीं लगती थी। एक दिन मौसम बहुत अच्छा था। घर में मालपुए बने थे। जब पति-पत्नी मालपुए खाने बैठे तो मालपुओं की संख्या ग्यारह निकली। दोनों ने कहा- ''छह कौन खावे और पाँच कौन खावे?'' दोनों अड़ गये। पति कहने लगा- ''मैं स्वामी हूँ। तुम्हारे से बड़ा हूँ इसलिए छह मालपुए मैं खाऊँगा।'' पत्नी ने कहा- ''मेहनत करके मालपुए मैंने तैयार किये हैं इसलिए छह मालपुए मैं खाऊँगी।'' बहुत देर तक दोनों अपने-अपने तर्क देते रहे। दोनों में बहस चलती रही। बहस होते-होते रात के दस बज गये। आखिर दोनों यह निर्णय करके सो गये कि प्रात:काल जो पहले उठेगा वह पाँच मालपुए खाएगा और जो बाद में उठेगा वह छह मालपुए खायेगा। प्रात:काल सूर्य उदय हो गया। दोनों की नींद खुल गई। लेकिन दोनों आँखें बन्द करके पड़े रहे। दूध वाले ने आकर आवाज लगाई। आवाज सुनकर भी दोनों अनजान से बने रहे। जब नौ-दस बजे तक भी दोनों नहीं उठे तो पड़ोसियों ने सोचा- आज इनके घर में कोई-न-कोई विशेष घटना

जरूर घटी है इसलिए नहीं उठे हैं। एक पड़ोसी ने दरवाजा खटखटाया, आवाज लगाई लेकिन जब किसी ने दरवाजा नहीं खोला तो सबने मिलकर दरवाजा तोड़ डाला। दोनों अपनी बात पर अड़े हुए थे। वे दोनों शरम से श्वास रोककर सोए रहे। सब दोनों को मरा हुआ समझकर श्मशान में ले गये और जलाने की तैयारी करने लगे। दोनों सोच रहे थे, हे भगवन् ! अब क्या होगा? पहले कौन बोले? यदि मैं बोलूंगा/बोलूंगी तो हारा हुआ माना जाऊंगा/जाऊंगी.....। आखिर जब अग्नि लगाने का समय आया तो दोनों उठकर कहने लगे- मैं छह खाऊँगा/मैं पाँच क्यों खाऊँ, मैं छह खाऊँगी। मैं बाद में उठी, मैं बाद में उठा.....। दोनों की आवाजें सुनकर लोग यह सोचकर डर गये कि ये दोनों मरकर भूत बन गये हैं इसलिए आकर हमें डरा रहे हैं वे भाग गये। अपनी हठ पर अड़े रहने का यही फल होता है। अतः आप एक-दूसरे के विचारों में अपने आप को ढालते हुए सुख-शांति से जीवें।

सुख-दुःख की बात करें/सुनें

आप दोनों २४ घंटे में लगभग १५-२० मिनट बैठकर आपस में अपने मन की बात भी अवश्य करें। कई लड़के ऐसे होते हैं जो मित्र, परिवार, अड़ोस-पड़ोस आदि से खूब बोलते हैं, हँसी-मजाक करते हैं लेकिन पत्नी से बोलना भी कम पसन्द करते हैं। वे पत्नी के लिए हर प्रकार की भोग सामग्री लाते हैं, खिलाने-पिलाने, घुमाने, शौक-मौज आदि में कभी कोई कमी नहीं रखते हैं लेकिन १०मिनट बैठकर पत्नी के मन की बात नहीं सुनते हैं। पत्नी के ५-१० बातें कहने पर एक-दो बार अति संक्षेप में उत्तर देते हैं। ऐसी पत्नियाँ यद्यपि बाहर में सुखी-सम्पन्न-प्रसन्न नजर आती हैं लेकिन वे अन्दर-ही-अन्दर कितनी घुटती रहती हैं, कितनी दुःखी रहती हैं, यह सब तो वे स्वयं ही जानती हैं। यदि वे किसी से कहें तो सुनने वाले हँसते हैं और झट से कह देते हैं कि ''क्यों जबरन पति की बुराई करती हो? हमें तो उनमें/उसमें कोई कमी नजर नहीं आती हैं।''......। आप अपनी पत्नी के मन की बात सुनें, भले ही आप उसकी पूर्ति नहीं कर पावें, समाधान नहीं कर पावें। लेकिन कम-से-कम सुन तो लें। दो शब्द सान्त्वना के कह दें, नहीं तो ऐसी सम्पत्ति, इतनी भोग-सामग्री में क्या? यदि मन सन्तुष्ट नहीं है, मन में शान्ति नहीं है, इसकी अपेक्षा तो एक गरीब की पत्नी अच्छी जिसको भले ही रूखा-सूखा खाने को मिले लेकिन पति बैठकर सुख-दुःख की बात सुनता है, उससे प्रेम मिलता है। आप शुरू से ही ऐसी आदत बनावें कि २०-२५ मिनट उसके लिए भी निकालें। उसकी बात

सुनें। आप नहीं सुनेंगे तो कौन सुनेगा? सुन सकता है? कहा भी है- स्त्री जाति नाना प्रकार से दुःख उठाती है। जैसे- परतंत्रता का दुःख, पति नहीं मिला तो शरीर को व्यर्थ समझती हैं, सपत्नी का, ऋतुमती होने का, वन्ध्या होने का, विधवा होने का, प्रसूति के समय में रुग्ण होने का, अधिक कन्याओं को जन्म देने का, मृत सन्तान उत्पन्न करने का, अनाथ हो जाने का, गर्भस्राव तथा गर्भभार धारण करना आदि। इन सब दुःखों से स्त्री पहले ही दुःखी है अतः आप तो उसको थोड़ा सुख दे ही दें। वह आपकी जीवन साथी है।

इसी प्रकार पत्नी भी पति के मन को उदास-खिन्न देखकर, पति पर आई हुई आर्थिक-मानसिक विपत्तियों में प्रेमपूर्वक आश्वस्त करते हुए उसकी बात सुने। ऐसे समय में आप ही गुस्सा होकर चिड़चिड़ाएंगी तो उसको और टेंशन होगा। ऐसे समय में आपका सहयोग नहीं मिलने पर वह पागल हो सकता है। डिप्रेसन में आ सकता है। ऐसी स्थिति में किसी से अपनत्व नहीं मिलने पर वह शराब पीना, पाउच-गुटखा खाना, सिगरेट पीना, जुआ खेलना आदि खोटी आदतों से ग्रसित हो सकता है अतः आप ऐसे समय में मित्र के समान उसका मन प्रसन्न रखें। तन-मन-धन से पति का सहयोग करें।

नीतिकारों का कहना है कि-

अर्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य, भार्या मित्रं नरस्य वा॥

अर्थ- स्त्री मनुष्य का आधा अंग है, स्त्री ही श्रेष्ठतम सखा है, स्त्री धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ को सिद्ध करने की मूल आधार है और स्त्री को पुरुष का मित्र कहा गया है।

पति-पत्नी का सामञ्जस्य कब कैसे

एक युवक ने एक सन्त से पूछा- ''सन्तजी! मैं विवाह करूँ या नहीं करूँ। करूँ तो मुझे क्या करना पड़ेगा।'' संत उस समय धूप में बैठकर काम कर रहे थे। उन्होंने उसको अपने पास बिठाया और अपनी पत्नी को लालटेन लाने के लिए कहा। पत्नी गयी और लालटेन जलाकर ले आई। युवक ने सोचा इस संत का दिमाग ठीक नहीं दिखता है। मैं गलत स्थान पर आ गया। यह आदमी धूप में बैठा है और लालटेन मंगा रहा है और इसकी पत्नी भी पूरी बुद्धू है, उसने पूछा भी नहीं कि धूप में लालटेन की क्या आवश्यकता है ? कुछ देर बाद फिर सन्त ने पत्नी से

कहा- दो कटोरा दूध लेकर आओ। पत्नी झट से दो कटोरा दूध में नमक डालकर ले आई। सन्त ने एक कटोरा युवक को दिया तथा एक कटोरे से स्वयं पीने लगा। दूध कुछ कड़वा एवं खारा था। शायद दूध में शक्कर के स्थान पर नमक डाल दिया था। संत दूध पीते बोला- क्या बढ़िया दूध है। युवक यह सुन भौंचक्का रह गया। अब उसे पूरा विश्वास हो गया कि यह सन्त के रूप में कोई मूर्ख व्यक्ति है। इसे अच्छे और खराब, स्वादिष्ट और बेस्वाद में भी भेद मालूम नहीं पड़ता है। युवक ने कहा, ''अच्छा, तो मैं चलता हूँ।'' सन्त ने कहा- ''अरे, तुम कुछ पूछने आये थे, पूछो।'' युवक ने तमक कर उत्तर दिया- ''बस, बस रहने दो। मैं तो जा रहा हूँ।'' सन्त ने प्रेम से कहा, ''नहीं बेटा! इतनी दूर से आये हो, समाधान लेकर जाओ।'' युवक ने उतावली करते हुए कहा- ''तो आप मेरे प्रश्नों का उत्तर जल्दी दो।'' संत- ''मैंने तो तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर दे दिये, अब कौन सा प्रश्न शेष रह गया?'' युवक बोला- ''आपने मेरे प्रश्नों के उत्तर कैसे दे दिये? मुझे तो लगता है कि मैं गलत स्थान पर आ गया हूँ। शायद आप मेरा प्रश्न नहीं समझ पाये हैं या फिर आप मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे पा रहे हैं। इसलिए कह रहे हैं कि मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे चुका हूँ।'' सन्त ने शान्त भाव से कहा- ''सुनो बेटा! मैं उन उत्तरों को स्पष्ट करता हूँ। जब मैंने धूप में बैठकर पत्नी से लालटेन जलाकर लाने को कहा तो उसने न कोई तर्क दिया और न कोई विकल्प किया। चुपचाप लालटेन जलाकर ले आई। ऐसी आज्ञाकारी पत्नी हो तो विवाह कर लो। और जब वह दूध में नमक मिलाकर ले आई तो मैंने भी न कोई तर्क दिया और न कोई विकल्प किया, न उसको डाँटा-फटकारा और न ही दूध का कटोरा फेंका, चुपचाप प्रशंसा करते हुए दूध पी लिया। बस, यदि तुम शादी के बाद अपनी पत्नी को इतना सहन कर सकते हो तो शादी करो और यदि इतना धैर्य नहीं है, इतनी सहनशक्ति नहीं है तो शादी करने का जो आनन्द आना चाहिए, जो संतुष्टि होनी चाहिए उतनी नहीं हो सकती है।'' कहा भी है- पति-पत्नी का जीवन समत्व-सामञ्जस्य में विकसित होता है अन्यथा वह विविध संकटों का अखाड़ा बन जाता है।

बराबरी नहीं करें

आप दोनों यद्यपि बराबर हैं लेकिन फिर भी दोनों के अपने-अपने कर्त्तव्य अलग-अलग हैं। पुरुष का कर्त्तव्य हमेशा स्त्री की रक्षा करना है। स्त्री का कर्त्तव्य पुरुष के प्रत्येक उचितकार्य में सहायक बनना है। पुरुष का कर्त्तव्य पत्नी की

आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर धनार्जन करना है तो स्त्री का कर्तव्य पुरुष के द्वारा लायी गई वस्तुओं (धन) का योग्य रीति से उपयोग करना है। एक दुकान का मालिक है तो दूसरा घर का मालिक है। समय पर पुरुष भी स्त्री की सहायता करे और आवश्यकतानुसार स्त्री भी पुरुष की सहायता करे। दोनों एक दूसरे का महत्त्व समझें लेकिन अहसान करने की दृष्टि नहीं रखें। जहाँ अहसान करने की दृष्टि आ जाती है वहाँ कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है। यदि पत्नी थोड़ा धन कमाकर पति का सहयोग करती है तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह पति को दबाने लगे। पति से यह कहने लगे कि मैं भी कमाती हूँ इसलिए एक टाइम का भोजन आप बनाओं और एक टाइम का मैं। आधे कपड़े आप धोएँ और आधे मैं। एक बच्चे को आप तैयार करें और एक को मैं। पत्नी का धन कमाना, पति का सहयोग करना मुख्य कर्त्तव्य नहीं है। उसका मुख्य कर्त्तव्य तो बच्चों को संस्कारित करके योग्य बनाना और घर को सही-सही व्यवस्थित रखना है। पत्नी पहले अपने कर्त्तव्यों पर ध्यान दे, पुरुष पहले अपने कर्त्तव्यों पर। कर्त्तव्यों को करते हुए भी यदि एक-दूसरे को एक-दूसरे की आवश्यकता है तो सहयोग करे। एक लड़के ने एक इन्जीनियर लड़की से बिना किसी दहेज के इसलिए शादी कर ली कि लड़की जीवनभर धन कमाएगी। लेकिन लड़की कर्त्तव्यनिष्ठ थी। अपने ससुराल आने के बाद उसने सर्विस करना स्वीकार नहीं किया। उसके विचार थे कि वह जब तक अपने बच्चों को योग्य न बना लेगी तब तक दूसरी कोई जिम्मेदारी नहीं ले सकती, नहीं लेगी। उसके पति, सास-ससुर आदि ने उसे सर्विस करने के लिए दबाव डाला। लेकिन उसने स्वीकार नहीं किया। उसने अपने पति आदि को आश्वस्त करते हुए कहा- ''मैं बच्चों को योग्य बनाने के बाद अवश्य ही अपनी पढ़ाई/योग्यता का उपयोग करूँगी अर्थात् सर्विस करूँगी। लेकिन कुछ पैसों के लोभ में मैं बच्चों का जीवन खराब नहीं करना चाहती, उनको माँ के ममत्व से वंचित नहीं कर सकती और फिर सर्विस के श्रम का भार ऊपर आ जाने से मैं अपने स्वामी (पति) के प्रति भी कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं कर पाऊँगी तो शादी से भी क्या....।'' इन सब बातों से ससुराल वाले संतुष्ट हो गये। जब दूसरी बार गर्भवती हुई तो ससुराल एवं पीहर दोनों पक्षों ने उसको गर्भ का परीक्षण करवाने के लिए (गर्भ में लड़का है या लड़की) बहुत बार कहा, यदि लड़की हो तो.....। पहले तो वह परीक्षण करवाने के लिए तैयार नहीं हुई। जैसे-तैसे उसने सबको संतुष्ट करने के लिए परीक्षण करवाया तो दूसरी भी लड़की ही है, यह सुनकर सबके

दिमाग खराब हो गये। सबने उसको डाइरेक्टली इनडाइरेक्टली गर्भपात कराने के लिए कहा, लेकिन उस दयालु माँ (लड़की) ने गर्भपात नहीं करवाया। फलस्वरूप उसके जब लड़की न होकर लड़का हुआ तब सबको समझ में आया कि कर्त्तव्यनिष्ठा और दया का फल कितना महान् होता है। उसने अपने बच्चों में अच्छे संस्कार डालकर उन्हें योग्य बनाया और बाद में सर्विस भी की। उसके परिवार में सुख सम्पन्नता रही। आप भी अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखें। माँ, पिताजी, सास-ससुर, बच्चों आदि के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है उसका ध्यान रखते हुए जीयें ताकि आपके घर में शान्ति रहे, आपका घर भी एक आदर्श घर बने। इसी प्रकार पुरुष भी अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते हुए एक-दूसरे की सहायता करे, बराबरी नहीं। बराबरी अहंकार को उत्पन्न करके एक-दूसरे के मन में खटास उत्पन्न करती है। दोनों अपने-अपने पद का गौरव रखते हुए अपने जीवन का निर्वाह तथा निर्माण करें ताकि बच्चे भी कर्त्तव्यशील एवं निष्ठावान बनें।

अभिवादन करें

आप दोनों (पति-पत्नी) प्रात:काल उठकर एक-दूसरे से अभिवादन, नमस्कार, जय जिनेन्द्र आदि अवश्य करें। अभिवादन करने से एक-दूसरे में लड़ाई-झगड़े, वैचारिक विषमता आदि के कारण हुए मन-मुटाव में स्थायित्व नहीं आता है, अर्थात् मन-मुटाव के कारण परस्पर बोलने में जो हिचक-अहंकार या शर्म की अनुभूति होती है वह नहीं हो पाती है। अभिवादन की परम्परा नहीं होने से कभी-कभी ८-८ दिन तक भी पति-पत्नी आपस में नहीं बोलते हैं। एक-दूसरे के मन में एक-दूसरे के प्रति आक्रोश भाव बढ़ता जाता है। आक्रोश के कारण पति-पत्नी के बीच में बच्चों की हालत बिगड़ने लगती है। बच्चा मम्मी के पास जाता है तो मम्मी पापा के पास धकेल देती है और यदि बच्चा पापा के पास जाता है तो पापा उसे मम्मी के पास धकेल देते हैं। बेचारा बच्चा अनाथ सा हो जाता है। ऐसी स्थिति में बच्चा भी समझने लगता है कि आजकल मम्मी-पापा की लड़ाई चल रही है, वे आपस में बोलते नहीं हैं। कभी-कभी बच्चे इन बातों को मित्रों, रिश्तेदारों के बीच में कह देते हैं जो इन्सल्ट का कारण बनती हैं अत: आप पहले दिन से ही अभिवादन करें। आप यह भी नहीं सोचें कि हम पति-पत्नी हैं, आपस में कैसे अभिवादन करें ? हमेशा अभिवादन करने से आदत पड़ जायेगी और बच्चे भी आपस में अभिवादन करना सीख जायेंगे।

आप दोनों आपस में ऐसा व्यवहार भी नहीं करें कि आप में से किसी एक के घर में नहीं होने पर, कहीं बाहर चले जाने पर दूसरा खुश हो जावे। एक-दूसरे के प्रति मन में प्रतिद्वन्द्विता का भाव न बने। क्योंकि प्रतिद्वन्द्विता करने से हमेशा आर्त्त-रौद्र परिणाम, जो नरक-तिर्यञ्च गति में ले जाने वाले हैं, बने रहेंगे। आपका यह भव भी अशान्ति के कारण बिगड़ जायेगा और क्लेश के कारण जो पापबन्ध होगा उससे अगला भव भी बिगड़ जायेगा। एक दिन एक व्यक्ति की पत्नी की स्थिति ऐसी हो गई मानों मर गई हो। उसने डॉक्टर को दिखाया। डॉक्टरों को भी कुछ समझ में नहीं आया। आखिर सबने मिलकर यह निर्णय किया कि वह मर चुकी है। गाँव, रिश्तेदार, जान-पहचान वालों को सूचना दी गई। सब लोग आये। सबने मिलकर एक अर्थी तैयार की और पत्नी को उस पर लिटाकर श्मशान की तरफ ले जा रहे थे। घर से निकलते-निकलते, घर के दरवाजे में एक कील लगी हुई थी, अर्थी उससे टकरा गई। अर्थी के टक्कर लगते ही पत्नी की चेतना थोड़ी लौटने लगी। वह हिलने लगी, थोड़ी-थोड़ी बुदबुदाने लगी। सबने सोचा, कहीं यह सच में बुदबुदा रही है या भूत बनकर आ गई है। उन्होंने अर्थी को उतार कर देखा तो सच में वह जीवित थी। वह दस वर्ष के बाद फिर मर गई। लोग उसे अर्थी पर रख कर श्मशान में ले जाने वाले ही थे कि पति बोला- ''अरे भाई ! ध्यान रखना, सँभाल कर चलना, कहीं यह फिर से कील से न टकरा जावे। दस वर्ष पहले भी ऐसा ही हुआ था। कील के टकराने के कारण इसने मुझे दस वर्ष और दु:ख दिये हैं अत: आप लोगों को सावधान कर रहा हूँ कि कहीं पुन: ऐसा नाटक न हो जाए।'' यह पत्नी सम्बन्धी घटना है। ऐसी ही घटना पति सम्बन्धी भी हो सकती है। पति के मर जाने पर पत्नी भी इसी प्रकार सोच सकती है। कई विधवा स्त्रियाँ ऐसा कहते सुनी जाती हैं कि अरे उनके जाने के बाद हम तो सुखी हो गये। वो थे तो न खुद खाते थे और न ही खाने देते थे, एक पल भी सुखी नहीं रहने देते थे, हर समय एक तरह से सी.आई.डी. का काम ही करते रहते थे। कई स्त्रियों की तो पति के मरने के बाद हेल्थ भी अच्छी हो जाती है....। इसलिए आप दोनों ही सावधान रहें। एक दूसरे के प्रति ऐसा व्यवहार करें कि मरने के बाद कुछ दिनों तक तथा समय-समय पर पीछे बचने वाला और बेटे-बहू, पौत्रादि आपको याद करें। आपका अभाव उनको अखरे।

आपस में सन्देह नहीं करें

आप दोनों एक-दूसरे के प्रति संदेह नहीं करें। कभी-कभी पत्नी रात्रि में पति के थोड़ी देर से आने पर शंका करने लगती है। अनेक प्रकार की खोटी कल्पनाएँ जैसे- देर से आये हैं, इसका अर्थ ये दूसरी स्त्री के यहाँ गये होंगे, कहीं जुआ खेलने लग गये होंगे, आदि कहते हुए पति के आते ही नाराज होने लगती है, उल्टी-सीधी चार बातें सुना देती है। उसके दिल में यह विचार ही उत्पन्न नहीं होता है कि मैं एक बार देर से आने का कारण पूछ लूँ। हाँ, रोज-रोज यदि बहुत देर से आते हैं, पूछने पर बहाने बनाते रहते हैं तो पत्नी का गुस्सा होना उचित है, होना भी चाहिए और येन-केन प्रकारेण समय पर घर आने के लिए मजबूर कर देना चाहिए। ताकि वह हमेशा समय पर आ जावे। समय पर घर आ जाने से व्यसनों से बचा रहेगा। इसी प्रकार कोई-कोई लड़के भी पत्नी पर बिना प्रयोजन ही संदेह करते रहते हैं। जैसे- यदि अचानक दोपहर में घर पहुँचे और पत्नी घर में नहीं मिली तो उन्हें शंका हो जाती है कि यह किस-किस के यहाँ जाती रहती है? क्या-क्या करती रहती होगी? घर के पैसों को यूँ ही जिस किसी को देती है/देती होगी, पीहर भेजती होगी, आदि....। कोई-कोई तो इस प्रकार की शंकाओं के कारण हमेशा ही पत्नी से लड़ते रहते हैं। पत्नी को मारना, गाली-गलौज करना तो उनका दैनिक आवश्यक सा बन जाता है। वे यह चाहते हैं कि पत्नी घर में ही बैठी रहे। न किसी से बोले और न किसी के घर जावे तो आप ही बतावें वह कैसे जीवेगी? उसका मन कैसे लगेगा? आप दोनों इस प्रकार की शंकाओं से ग्रसित न रहें। एक-दूसरे के विश्वास पर ही संसार के व्यापार-व्यवसाय, व्यवहार, रिश्तेदारी आदि टिके हुए हैं। जिस दिन इस संसार में एक-दूसरे पर विश्वास समाप्त हो जायेगा, यह संसार मात्र क्लेश, लड़ाई और दुःख का घर बन जायेगा। कोई भी व्यक्ति एक क्षण के लिए भी शांति से नहीं रह पायेगा। अत: आप एक-दूसरे के प्रति विश्वास रखें और शांति से जीवें।

कभी-कभी किसी के कहे-सुने में आकर भी आपस में संदेह उत्पन्न हो जाता है। जिस किसी के सामने कोई पत्नी/पति के बारे में कुछ कह दे तो आप सहज रूप से विश्वास नहीं कर लें। क्योंकि कभी-कभी आप दोनों का आपसी प्रेम देखकर ईर्षा के वश भी आपके प्रेम को भंग करने के लिए यद्वा-तद्वा कह सकते हैं अथवा किसी-किसी की सामान्य रूप से ऐसी आदत भी होती है। कोई-कोई हँसी-मजाक में आपको उल्लू बनाने के लिए भी ऐसा कर सकता है। आपको कोई

कुछ कहे तो आप एकदम सहज रूप से उसकी बात पर विश्वास नहीं करें। २-४ बार कह देने पर भी उसके बारे में खोज-बीन करें, वास्तविकता को जानने की कोशिश करें। यदि बात सच्ची भी लग रही हो तो भी पत्नी/पति को पूछे, बात का समाधान करने का प्रयास करें। इस सन्दर्भ में मैंने एक घटना पढ़ी थी जो इस प्रकार है-

जगत काकी की कला

एक दिन जगत काकी एक ब्राह्मण की दुकान पर गई। उससे मीठी-मीठी बातें बनाते हुए बोली- ''बेटा! शरीर इतना कमजोर क्यों है?'' ब्राह्मण बोला- ''माँ! मेरी प्रकृति ही ऐसी है।'' महिला बोली- ''बेटा! तेरी स्त्री डायन है। तुझे जब नींद आ जाती है तब वह निरन्तर तुझे खाती है/चाटती है। इससे तेरा शरीर दुर्बल रहता है। यदि मैं झूठ कहती हूँ तो इसकी परीक्षा कर के देख लेना।'' ब्राह्मण बोला- ''अच्छा, मैं आज ही अपनी पत्नी की परीक्षा करूंगा।'' इस प्रकार ब्राह्मण से दुकान पर बात कर वह ब्राह्मण के घर गयी। और ब्राह्मणी से बातें बनाते हुए बोली- ''बेटी, तेरे पति की जाति क्या है?'' ब्राह्मणी बोली- ''अम्मा जी! मैं ब्राह्मणी हूँ तो मेरे पति ब्राह्मण ही हैं।'' काकी बोली- ''भोली, तुझे पता ही नहीं है। तेरा पति ब्राह्मण नहीं खरवाल है। विश्वास नहीं हो तो रात को उसकी पीठ चाटकर देखना नमक जैसा कड़वा (खारा) लगेगा।'' इस तरह उसके दिल में भी बात जमाकर काकी अपने घर चली गई। ब्राह्मण दुकान से घर आया। भोजन करके कपट निद्रा में सो गया। ब्राह्मणी भी परीक्षा करने के लिए तत्पर थी। थोड़ा सा कपड़ा हटाकर ब्राह्मण की पीठ चाटने लगी। शरीर का पसीना, मैल आदि खारे ही होते हैं इसलिए पीठ को चाटते ही ब्राह्मणी का मुँह खारा हो गया। ब्राह्मण उठा और ब्राह्मणी को पीटता हुआ बोला- ''डायन! रोजाना खाती है। इसीसे मेरा शरीर दिनोंदिन कमजोर होता जा रहा है।'' ब्राह्मणी भी सर्पिणी की भाँति फुफकार करती हुई बोली- ''अरे खरवाल! तूने मुझे नष्ट कर दिया।'' इस तरह दोनों के आपस में भयंकर चिनगारियाँ उछलने लगीं। इधर बाहर बैठी काकी नाच उठी। कोलाहल सुनकर धीरे-धीरे अड़ोस-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये। सबने जब काकी को नाचते देखा तो समझ गये कि यह सब काकी की कला है। सबने दोनों को समझाया....। अन्त में, जगत काकी ने अपनी गलती की क्षमा मांगी एवं ब्राह्मण-ब्राह्मणी ने भी अपनी गलतफहमी के लिए अफसोस करते हुए आपस में क्षमा मांगी।

मेरिज डे/सालगिरह मनावें

आपकी शादी जिस दिन या दिनांक को हुई है, आप दोनों उस दिन को अवश्य याद करें। उस दिन आप संकल्प करें कि आज हम दोनों किसी भी और कितनी भी प्रतिकूलता आने पर भी किसी बात पर किसी से नाराज, गुस्सा नहीं होंगे, लड़ाई-झगड़ा नहीं करेंगे। आप दोनों बैठकर सोचें कि आज के दिन जब विवाह बन्धन होना था/हुआ था उस दिन एक-दूसरे के प्रति क्या-कितना और कैसा अनुराग तथा समर्पण था। क्या-कैसी हमारी कल्पनाएँ थीं। एक-दूसरे को कितना सुख देने का भाव था। हमने उन (उपर्युक्त) बातों को पूरी करने में कितना पुरुषार्थ किया है और कितने विपरीत कार्य करके एक-दूसरे के मन में एक ऐसी टीस उत्पन्न कर दी है जो न कही जा सकती है और न ही शान्ति से सहन की जा सकती है। यदि हमने विपरीत पुरुषार्थ किया है एक-दूसरे को छोटी-छोटी बातों में लड़-झगड़कर दु:खी किया है तो आज के दिन आप अपने विचार दृढ़ करें कि अब हम ऐसे कार्य नहीं करेंगे। कहा भी है- आटे में नमक डाल देने से रोटी स्वादिष्ट हो जाती है उसी प्रकार पति-पत्नी में यदि आटे में नमक के अनुपात से लड़ाई हो तो प्रेम को वृद्धिंगत करने वाली होती है। आज के दिन आप अपने माता-पिता, भाई-भाभी आदि बड़ों के चरण स्पर्श करके आशीर्वाद लेवें ताकि यदि किसी कारण आपकी उनके साथ बोल-चाल, आना-जाना बन्द हो गया हो तो सारा मनमुटाव समाप्त हो जावे। वह वर्षों-वर्षों तक के वैर में परिणत न हो। इस बहाने यदि आप उनसे बोलेंगे, उनके यहाँ जायेंगे तो उनको भी ऐसा नहीं लगेगा कि इनको हमारी कोई आवश्यकता होगी, हमारे से कुछ स्वार्थ पूरा करना होगा। इसलिए हमारे से बोलने आये हैं और आपको भी ऐसा नहीं लगेगा कि हार मानकर झुक गये हैं। आपकी गलती थी इसलिए उनके यहाँ गये हैं। इस दिन आप अपनी शक्ति के अनुसार परोपकार, धार्मिक स्थल, सन्त आदि की आवश्यकताओं हेतु दान दें। आपके यहाँ, आस-पास के नगर में कोई सन्त हो तो उनका आशिष लें। उनसे जीवनविकास के लिए कुछ संकल्प/सूत्र लें। अपनी किसी गंदी आदत को छोड़ें। प्रथम सालगिरह से ही प्रत्येक महीने में एक दिन ब्रह्मचर्य का पालन करने का नियम लें। इस प्रकार प्रतिवर्ष एक-एक दिन का ब्रह्मचर्य बढ़ाते जाने से ३०-३१ वर्ष में आप पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके वानप्रस्थ आश्रम को सहज रूप से गृहण कर सकते हैं या घर में रहकर ही वानप्रस्थ जैसा जीवन व्यतीत करके भव सुधार सकते हैं।

प्रश्न- क्या ब्रह्मचर्य ले लेने पर हम एक-दूसरे (पति-पत्नी) की सेवा नहीं कर सकते हैं, एक-दूसरे से प्रेम नहीं कर सकतें ?

उत्तर - ऐसा नहीं है, ब्रह्मचर्य ले लेने का अर्थ एक-दूसरे के स्पर्श का या आपसी प्रेम का त्याग/छोड़ना नहीं है। ब्रह्मचर्य ले लेने पर भी आवश्यकता पड़ने पर आप एक-दूसरे की सेवा कर सकते हैं, भोजन भी करवा सकते हैं, लेकिन लोक में स्पर्श का निषेध इसलिए किया जाता है कि स्त्री-पुरुष और उसमें भी पति-पत्नी के आपस में स्पर्श करने पर या स्पर्श होने से वासना जागृत होती है/हो सकती है अत: आप ब्रह्मचर्य के दिन अनावश्यक एक-दूसरे का स्पर्श नहीं करें। आवश्यकता पड़ने पर सेवा अवश्य करें। इसी प्रकार एक बिस्तर पर सोना, एक कमरे में सोना भी वासना उत्पत्ति का कारण है। अत: सावधानी रखें। उम्र होने के बाद अर्थात् बेटे आदि की शादी हो जाने पर अपने पौत्र आदि को अपने पास सुला लें।

पति-पत्नी का प्रेम कैसा हो

पति-पत्नी का आपस में लगाव एवं प्रेम होना चाहिए। दोनों का एक-दूसरे के गुणों के प्रति आकर्षण होना चाहिए। दोनों को एक-दूसरे के अभाव में सूनेपन की अनुभूति होनी चाहिए। कुछ समय के लिए भी एक-दूसरे की दूरी खटकनी चाहिए। एक-दूसरे के दोष दिख जाने पर व्यंग्य या हीनता की दृष्टि न आकर सुधार की दृष्टि होनी चाहिए तभी पति-पत्नी घर में सुख शान्ति से जी सकते हैं। एक दिन वनवास के समय राम और सीता दोनों एक स्थान पर बैठे मन बहला रहे थे। लक्ष्मण कुछ काम से कहीं गये हुए थे। राम और सीता की मनभावन बातें चल रही थीं। तभी राम ने एक वृक्ष की ओर इंगित करते हुए कहा- ''सीते! यह वृक्ष कितना भाग्यशाली है कि इसके ऊपर इतनी अच्छी बेल चढ़ी हुई है। अर्थात् कोमल-लचीली बेल इससे लिपटकर इसकी शोभा बढ़ा रही है'' यह सुनकर सीता बोली- ''हे आर्य! इस वृक्ष से भी यह लता अधिक भाग्यशाली है जिसको इतने हृष्ट-पुष्ट, बलशाली, फलों से लदे वृक्ष ने आश्रय दिया है।'' दोनों ही अपनी-अपनी बात को सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे। तभी लक्ष्मण फलादि लेकर आ

> प्रेम एक ऐसा मंत्र है जो पराये को भी अपना बना लेता है और इसके अभाव में अपने भी पराये हो जाते हैं। परन्तु प्रेम की कुछ शर्तें हैं जिनके बिना प्रेम का भवन बिना बुनियाद का मकान है अथवा बिना जड़ का वृक्ष है। वे हैं - स्वार्थ त्याग, सहिष्णुता और निष्कपटता।

पहुँचे। लक्ष्मण को देख सीता ने कहा- ''देखो लक्ष्मण! भाभी माँ के बराबर होती है। तुम मुझे माँ के समान मानते हो। सही-सही निर्णय करना, बताओ यह लता भाग्यशाली है या यह वृक्ष जिसने इस लता को आश्रय दिया है।'' यह सुन राम बोले- ''भैया लक्ष्मण! तुम पक्ष-पात नहीं करना, सही-सही बताना यह वृक्ष भाग्यशाली है या यह लता जिसने इसका आश्रय लिया है।'' लक्ष्मण दोनों की बात सुनकर बोले- ''मैं यह कुछ नहीं जानता कि वृक्ष भाग्यशाली है या लता? मैं तो यह जानता हूँ कि इस वृक्ष और लता की छाँव में रहने वाला अवश्य भाग्यशाली है क्योंकि उसे इतने अच्छे वृक्ष और लता का आश्रय मिला है। अर्थात् राम रूपी वृक्ष का आश्रय पाकर सीता रूपी लता भाग्यशाली है या सीता रूपी लता को पाकर राम रूपी वृक्ष भाग्यशाली है लेकिन इन दोनों का आश्रय पाकर मैं (लक्ष्मण) अवश्य भाग्यशाली हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसी प्रकार आप में अर्थात् पति-पत्नी में इतना प्रेम होना चाहिए कि आपको देखकर देखने वालों को लगे कि वास्तव में गृहस्थ जीवन हो तो ऐसा और पति-पत्नी का प्रेम हो तो ऐसा....।

प्रात:काल प्रार्थना अवश्य करें

आप दोनों ही (यदि बच्चे हों तो उन्हें भी उठाकर) प्रात: लगभग पाँच-साढ़े पाँच बजे उठकर सर्व प्रथम नौ बार अपने इष्ट देव का स्मरण करके प्रार्थना अवश्य करें। बृह्म मुहूर्त में उठकर प्रार्थना करने से (प्रार्थनास्थल) वातावरण प्रशस्त हो जाता है। प्रार्थना के स्वर उच्चारण में शरीर के अंगोपांगों का कुछ अंशों में व्यायाम भी हो जाता है। ऋषियों का मत है कि बृह्ममुहूर्त में उठने से आयु, आरोग्य, शक्ति और बुद्धि का विकास होता है। सूर्योदय के बाद सोने से आलस, प्रमाद तथा तमोगुण की वृद्धि होती है तथा आयु का नाश होता है। प्रार्थना करने से प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ जाती है जो स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है। आपके जल्दी उठ जाने से बच्चे भी जल्दी उठ जाते हैं। बच्चे जल्दी उठकर अपना होमवर्क और पाठ याद करते हैं तो उन्हें वह पाठ सही-सही और स्थायी याद हो जाता है, वह पाठ परीक्षा के बाद भी वर्षों तक याद रहता है। कहते हैं- बृह्ममुहूर्त्त में की गई प्रार्थना अर्थात् भगवान के चरणों में की गई भावनाएँ अवश्य ही फलित होती हैं। बृह्ममुहूर्त्त में उठकर प्रार्थना करने से रात में किये गये पापों का नाश हो जाता है। तथा हे भगवन्! पूरे दिन में मेरे द्वारा ऐसा कोई पाप-अन्याय-अनीति नहीं हो जिससे किसी मेरे भाई (जीव) को तकलीफ हो और मुझे परभव में उसका दु:ख

रूप फल भोगना पड़े। इस प्रकार की प्रार्थना करने से परिणामों में निर्मलता आती है। उठते ही प्रार्थना करने से हमारे दिन का शुभारम्भ भगवान के नामस्मरण से प्रारम्भ होता है जिसको एक मंगलाचरण के रूप में ही मानना चाहिए। जिस प्रकार किसी भी शुभ कार्य को करने के पहले मंगलाचरण किया जाता है उसी प्रकार हमारा दिन भी सुख-शान्ति से व्यतीत हो, इस प्रकार की भावना से मंगलाचरण के रूप में प्रार्थना की जाती है जिसमें हमारे इष्ट देवताओं, इष्ट गुरुओं का स्मरण किया जाता है, जिससे हमारे पूर्वोपार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं और आगे के लिए भंयकर दु:ख देने वाले पापों का बन्ध नहीं होता है।

प्रार्थना

छन्द-ज्ञानोदय

प्रात: उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्!
आशिष दे दो तव भक्ति से, जीवन मेरा हो पावन।
करुणा से मैं पर दुख मेटूँ, हिंसा से नित दूर रहूँ,
झूठ पाप को तजकर हित मित, प्यारे मीठे वचन कहूँ।
तेरे पद में रहे समर्पित, मेरा तन मन ये जीवन,
प्रात: उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्॥१॥
रहे मित्रता सबसे मेरी, सबही मेरे मित्र रहें,
वैर भाव से दूर रहूँ मैं, उर में तेरे चित्र रहें।
सदाचार हो, सज्जन सब हों, बने न कोई भी दुर्जन,
प्रात: उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्॥२॥
व्यसन भाव की गंध रहे ना, पाप ताप सब मूल नसे,
भय ना होवे कभी किसी से, गुरु आज्ञा मम हृदय बसे।
भाई-भाई जैसे बनकर, सुखी रहें सब देश वतन,
प्रात: उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्॥३॥
न्याय-नीति में दया दान में, मानस मेरा तत्पर हो,
मन में हो ना काम व्यथा, ना रेशम चमड़ा तन पर हो।
दुष्कर्मों का विलय शीघ्र हो, धर्म भाव का होय जतन,
प्रात: उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्॥४॥

दोहा

विवेक हो विद्या बढ़े, पाप मुक्त हों धीर।
प्रेम भाव से मेट दें, इक - दूजे की पीर॥
सत्य धर्म की जय, परम पूज्य सद्‌गुरुदेव की जय.....।

सोने से पहले सत्साहित्य पढ़ें

आप दोनों सोने के पहले किसी शिक्षाप्रद साहित्य का अध्ययन अवश्य करें। क्योंकि सत्साहित्य का अध्ययन व्यक्ति को अपने अवगुण देखने की क्षमता प्रदान करता है। जब तक व्यक्ति सत्साहित्य नहीं पढ़ता तब तक उसकी दृष्टि दूसरे के दोषों को देखने में ही लगी रहती है। और जब तक व्यक्ति पर के दोष देखता रहता है तब तक उसे अपने दोष का भान ही नहीं होता। अपने दोषों की जानकारी हुए बिना, अपने दोषों पर दृष्टि गये बिना व्यक्ति अपने दोष सुधार भी कैसे सकते हैं। सत्साहित्य वास्तव में व्यक्ति को वे सब बातें सहन करना सिखा देता है जिन बातों को सुनकर ही व्यक्ति भयभीत हो जाता है, जिनकी कल्पना भी व्यक्ति की आँखों को नम कर देती है। सती सीता में धधकती अग्नि में प्रवेश करने का साहस कहाँ से आया। सती द्रौपदी में 'दु:शासन मेरा शील किसी प्रकार भी नष्ट नहीं कर सकता है।' इस प्रकार का आत्मविश्वास कहाँ से जागृत हुआ। हनुमान की माँ को बाईस वर्ष तक शील पालन का सम्बल कहाँ से मिला इसी प्रकार सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य पर अडिग रखना किससे सीखा। भगवान रामचन्द्र जी को न्याय के लिए इतना कठोर बनकर भी 'मर्यादा पुरुषोत्तम' पद कैसे प्राप्त हुआ, यह सब सत्साहित्य का ही प्रभाव था। उन्होंने महापुरुषों के चरित्रों को पढ़ा ही नहीं, जीवन में उतारा भी था।इन सतियों ने पूर्व सतियों का जीवन आदर्श लेकर ही अपने शील की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की थी। इसी प्रकार परोपकार, करुणा, दया आदि की प्रेरणा भी महापुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़ने से प्राप्त होती है। अत: आप रात में सोने के पहले १०-१५ मिनट दोनों ही एक साथ (एक पढ़े-दूसरा सुने) मिलकर किसी पुस्तक को आदि से लेकर अन्त तक पढ़ें। कुछ विशेष उपयोगी बातों को अपनी डायरी में नोट करें। कभी-कभी उन्हें पढ़ते रहें। यदि साहित्य पढ़ते समय मन में कुछ प्रश्न उठें तो उनको भी लिख लें। किसी विद्वान् या सन्त आदि के पास जाकर उनका समाधान, उत्तर पूछें। कोई-कोई यह सोचते हैं कि हमें साहित्य पढ़ने का समय नहीं मिलता है, यह सही है। आज दौड़-धूप के युग में साहित्य पढ़ने की बात

तो दूर, भोजन करने का भी समय नहीं मिलता है। फिर भी आप जैसे-तैसे समय निकाल कर भोजन करते ही हैं क्योंकि भोजन के बिना जीवन नहीं चलता है। हाँ, **जीवन चलाने के लिए भोजन जितना आवश्यक है उससे कई गुणा जीवन बनाने के लिए सत्साहित्य का अध्ययन-मनन आवश्यक है।** आप यदि साढ़े दस बजे सोते हैं तो पौने ग्यारह बजे सो जावें। आप साढ़े दस बजे तक जाग सकते हैं तो पौने ग्यारह बजे तक भी जागते रहने से मेरे अनुमान से शायद कोई अधिक तकलीफ नहीं होगी। आप साहित्य पढ़ना भी अपने दैनिक आवश्यक कार्यों में से एक आवश्यक कार्य समझें। आप एक बार रुटीन बना लेंगे तो अपनेआप आपका मन लगेगा। यदि हो सके तो आप दोनों मम्मी-पापा न आ पावे तो अकेले मम्मी के पास बैठकर साहित्य पढ़ें। ताकि वृद्ध माँ-पिता के पास बैठना भी हो जाय और उनके सुख-दु:ख आदि की जानकारी भी हो जाय। शनिवार-रविवार आदि छुट्टियों के दिनों में बच्चों को भी पास में बिठावें। उन्हें भी साहित्य सुनावें। ताकि उनमें भी सत्साहित्य के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो, उनकी भी साहित्य के प्रति रुचि बढ़े।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने जब गैरी बाल्डी की पुस्तकों को पढ़ा तो उन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने पुस्तकों को पढ़कर सोचा, जिस तरह गैरी बाल्डी ने इटली की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया, क्या उसी तरह भारत की स्वतंत्रता के लिए नहीं किया जा सकता है? उन्होंने गैरीबाल्डी के जीवन चरित्र से प्रभावित होकर और भी कई स्वतंत्रता सेनानी नेताओं के जीवन चरित्र पढ़े। उनमें से रसेल की जीवन कथा ने भी उन्हें बड़ा प्रभावित किया था। उनके पिता उनको जो हाथ खर्च के लिए पैसा भेजते थे उसमें से वे अधिक भाग साहित्य खरीदने में खर्च करते थे। और उसी साहित्य के अध्ययन-मनन का फल था कि पण्डित जवाहर लाल नेहरू हमारे देश को स्वतंत्र कराने में गाँधी जी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने में सफल हुए। और भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने। उसी प्रकार आप भी साहित्य पढ़कर अपनी खोटी आदतों को सुधार सकते हैं, टेंशन फ्री रह सकते हैं, यहाँ तक कि अपनी आत्मा को स्वतंत्र कराने में समर्थ हो सकते हैं।

पत्नी पति से विरक्त क्यों होती है

(१) पुरुष (पति) के दूसरी शादी करने, अपनी पत्नी को छोड़कर किसी परस्त्री, वेश्या या किसी लड़की से प्रेम करने के कारण।

(२) पति में सन्तान-उत्पत्ति की शक्ति नहीं होने पर।

(३) बहुत काल तक पति के विदेश में रहने या पत्नी की भावना नहीं होने पर भी ब्रह्मचर्य का पालन करने से या जबरदस्ती/बलात्कार करने से।

(४) पति द्वारा पत्नी का बार-बार या सबके सामने तिरस्कार, डाँट-फटकार, मार-पीट, गाली-गलौज आदि करने से।

(५) ऋतु काल में अर्थात् एम.सी. में शुद्धि होने के बाद भी स्त्री की उपेक्षा करने से।

पति पत्नी से विरक्त क्यों होता है

(१) पत्नी के मुख से भाई, मामा, जीजाजी, देवर आदि की प्रशंसा सुनकर के।

(२) पुरुष की इच्छा के प्रतिकूल धर्म, संयम, त्याग आदि धारण कर लेने से पुरुष अपनी स्त्री को छोड़कर परस्त्रीगामी हो जाता है।

(३) अपनी माँ-बहिन आदि की बार-बार बुराई सुनकर के।

(४) स्त्री के शील में थोड़ा सा भी दोष देखकर या संशय भी उत्पन्न हो जाने पर।

विशेष ध्यान दें

आप पति-पत्नी में एक-दूसरे को सुख देने की भावनाएँ मुख्य रहती हैं। पत्नी हमेशा पति को सुख देने के लिए तत्पर रहती है तो पति भी पत्नी को सुख देने के लिए तत्पर रहता है। फिर भी कभी-कभी अज्ञानता एवं प्रमाद के कारण यह सोचकर कि ऐसा कहने या करने से सामने वाले (पति या पत्नी) को सुख होगा, लेकिन वही उसके लिए अत्यन्त दुःख का कारण बन जाता है। एक दिन एक डॉक्टर आया। उसकी पत्नी भी डॉक्टर थी। मैंने पूछा- मेडम (आपकी पत्नी डॉक्टर) नहीं आई। डॉक्टर ने कहा- माताजी! पूरी रात से सोई नहीं थी इसलिए नहीं आई। मैंने कहा- क्यों नहीं सोई थी? उन्होंने कहा- क्या सोती, बेचारी पूरी रात रोती जो रही। मैंने फिर पूछा- क्यों रोती रही, क्या आपने उसको....? डॉक्टर ने कहा- माताजी! कल हम लोग एक स्थान पर बैठे-बैठे बातें/चर्चायें कर रहे थे। चर्चा ही चर्चा में एक व्यक्ति ने मुझे कह दिया कि तू रात्रि में अपनी पत्नी को बेच कर खाता है। कमाता है और अपनी...। मुझे बहुत गुस्सा आ गया। क्योंकि मेडम बहुत ही शीलवती-सुशील नारी है, मेरे से ज्यादा धर्मात्मा है, जितना मैं करता हूँ वह उसीने मुझे सिखाया है और मुझे आपके पास लाने का श्रेय भी उसी को है, फिर

वह ऐसी कैसे हो सकती है? फिर मैं उससे ऐसे काम कैसे करवा सकता हूँ......। इसलिए यद्यपि वे मेरे से बड़े अर्थात् मेरे पिताजी की उम्र के थे फिर भी यह बात सुनकर मैंने गुस्से में उनको दो चाँटे मार दिये और थोड़ी ही देर में घर पहुँचा तो मेडम ने मेरी स्थिति भाँपकर कारण पूछा। मुझे भी वे बातें पच नहीं रही थीं इसलिए मैंने पूरी-पूरी बातें ज्यों की त्यों मेडम को बता दीं। इन्हीं बातों को सुनकर वह रात-भर रोती रही थी। मैंने कहा- भाई डॉक्टर, क्या आपने उन बातों को बताने के पहले इतना विचार भी नहीं किया कि इनको सुनकर मेडम पर क्या प्रभाव पड़ेगा, मेरी बातों को सुनकर मेडम को कितनी पीड़ा होगी और किसी सभ्य व्यक्ति को ऐसी कलंक भरी बात कैसे अच्छी लग सकती है। फिर शीलवती स्त्री को तो अपने शील पर कलंक कभी सहन हो ही नहीं सकता है। मैंने पुनः कहा- क्या आप एक मित्र की परिभाषा भी नहीं जानते जो आपने इतनी बड़ी गलती कर दी। क्या एक मित्र अपने मित्र को कोई ऐसी बातें बता सकता है जो मित्र को दुःख देने वाली हों....। आप यदि कोई बात जो पति या पत्नी के विरोध की हो, झूठी हो तो बिल्कुल नहीं कहें और यदि सच्ची हो तो भी डाइरेक्ट नहीं कहें। जिस व्यक्ति ने कहा है उसका नाम बताकर नहीं कहें। क्योंकि नाम बताने में द्वेष परिणाम उत्पन्न होता है। जब भी उस व्यक्ति की बात छिड़ती है, वह मिलता है/दिखता है उसके प्रति क्रोध की अग्नि धधकने लगती है। आप तो जानते हैं इसलिए आपको तो द्वेष उत्पन्न होगा। साथ-साथ सामने वाले को भी द्वेष उत्पन्न होगा। यदि सामने वाले में दुर्गुण हैं तो आप उसको सुधारने की प्रेरणा दें, प्रयास करें। और यह भी कह सकते हैं कि लोग तुम्हारे/आपके बारे में ऐसा-ऐसा कह रहे थे....। आप दोनों एक-दूसरे के परम हितैषी मित्र हैं अतः कोई भी बात कहने के पहले थोड़ा खयाल अवश्य रखें ताकि भविष्य में डॉक्टर जैसी गलती आपसे नहीं हो।

साधना कक्ष अवश्य बनायें

आप अपने घर में रसोईघर, लेट-ीन-बाथरूम तथा बैठक से दूर अथवा सबसे ऊपर या जगह की कमी न हो तो घर से अलग ही एक साधना कक्ष अवश्य बनावें। जहाँ अपनी ढलती उम्र में साधना के लिए निवृत्तिपूर्वक दिन में दो-चार घंटे व्यतीत करने के लिए, यौवन अवस्था में भी १५-२० मिनट शांति से बैठकर कुछ परभव के लिए भी किया जा सके। जिसमें कुछ मालाएँ, आसन, चटाई, पुरुष के योग्य धोती-दुपट्टा और स्त्री के योग्य सफेद या हल्के रंग की साड़ी आदि तथा कुछ

धार्मिक ग्रन्थ हों। जहाँ अपने ऐतिहासिक आदर्श-पुरुषों के चित्र बने हों, अपने गुरुओं की फोटो लगे हों। वहाँ बैठकर मात्र धर्मध्यान के कार्य ही करें। उस कक्ष में सोना, हँसना, गप-शप करना, इधर-उधर के काम करना आदि अनावश्यक और पापात्मक क्रियायें नहीं करें। ताकि वहाँ का आभामण्डल अच्छा बना रहे। स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी यूनीफॉर्म पहनकर धर्म ध्यान करें। यूनीफार्म पहनते ही उसके योग्य कार्य करने की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। जिस प्रकार सैनिक की वेषभूषा पहनते ही शूरवीरता एवं युद्धविजेता बनने के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। साधना कक्ष में बच्चों को खेलने के लिए नहीं भेजें। छोटे बच्चों को भी वहाँ नहीं सुलावें क्योंकि साधना कक्ष में बच्चों को सुलाने पर संभव है बच्चा वहाँ सू-सू, छी-छी कर देगा जिससे साधनाकक्ष में अशुद्धि होगी। साधना कक्ष बनाने से आपको मकान बनाने में जो पापार्जन हुआ है वह भी कुछ मात्रा में तो कम हो ही जायेगा। अत: आप अपने घर में एक साधना कक्ष अवश्य बनावें।

उपसंहार

इस प्रकार यौवनावस्था के संस्कारों में लड़के-लड़की को अपने-अपने योग्य कार्य करने की, कार्य करते समय ध्यान रखने की कुछ बातें बताई गयी हैं। वास्तव में, घर एक इतना बड़ा जाल है कि जिसमें सावधानी रखने के बाद भी कुछ-कुछ ऐसे कार्य हो ही जाते हैं जो जीवन को दु:खी बनाने वाले होते हैं, फिर भी उन कार्यों के होते ही तत्काल उनको छोड़ दिया जाय तो संभव है किसी हद तक गृहस्थ सुख-शांति से जीवन व्यतीत कर सकता है। कहते हैं, मनुष्य जन्म लेता है तो दो पैर वाला होता है। जब उसकी शादी हो जाती है तो वह चार पैर वाला चौपाया हो जाता है, जब उसके एक बच्चा हो जाता है तो वह छह पैर वाले भौंरे के समान गुनगुनाने लगता है अर्थात् बच्चे के साथ खेलना-खाना-हँसना-बोलना आदि करते हुए जीता है। अब एक प्रकार से बच्चा ही उसकी जिन्दगी बन जाता है। जिस प्रकार भौंरे का जीवन फूल एवं फूल का पराग होता है उसी प्रकार इसका जीवन भी बच्चा और बच्चे के साथ प्रेम ही हो जाता है। जब उसके एक बच्चा और हो जाता है तो वह आठ पैर वाली मकड़ी के समान हो जाता है। जिस प्रकार मकड़ी स्वयं जाल बनाती है उसमें अनेक जीवों को फँसाती है और अन्त में वह स्वयं उसमें फँसकर मरण को प्राप्त हो जाती है। उसी प्रकार यह भी अपने बच्चों आदि का पालन-पोषण करने के लिए जब धन की आवश्यकता पड़ती है तो अनेक लोगों को

अपने चंगुल में फँसाता है और स्वयं भी धन, पुत्र-पौत्र आदि के मोह रूपी जाल में फँसकर मरण को प्राप्त हो जाता है। लेकिन संस्कारित व्यक्ति के साथ इस प्रकार की घटना नहीं होती है। वह मुट्ठी बाँधकर आता है, मुट्ठी बाँधकर अर्थात् परभव के लिए बहुत कुछ लेकर ही जाता है। हाथ पसार कर (खाली हाथ) नहीं जाता है। उसके दोनों भव सुधर जाते हैं। अत: आप दोनों (पति-पत्नी) विवेक पूर्वक रहें, जीवन को संस्कारित करें और मनुष्य पर्याय का लाभ लें।

(६) प्रौढ़ावस्था के संस्कार

जब यौवन अवस्था ढलने लगती है, घर में बेटी शादी के योग्य हो जाती है, बहूरानी आ जाती है, जब अपने आप में सास-ससुरपने की अर्थात् 'मैं सास हूँ', 'मैं ससुर हूँ' आदि की अनुभूति होने लगती है, उस अवस्था का नाम प्रौढ़ावस्था है। यह अवस्था युवावस्था के कई सोपानों से पार होने के बाद प्रारम्भ होती है जिसे मध्याह्नकाल के पश्चात् सायंकाल जैसी जीवन की मधुर संध्या कही जा सकती है। यानी पचास के आसपास की आयु जहाँ जीवन का तनाव कुछ कम हो जाता है लेकिन कुछ (बेटी की शादी आदि की) चिन्ताएँ शेष बची रहती हैं। इस उम्र में व्यक्ति अपने जीवन को धर्ममय और भगवद् भक्ति में अधिक लगाने की आवश्यकता महसूस करने लगता है। इसी अवस्था में आत्मशान्ति की पूर्व भूमिका तैयार की जा सकती है। यही समय कौटुम्बिक जिम्मेदारियों और अन्य व्यावहारिक कर्त्तव्यों से मुक्त होने के लिए उपयुक्त माना जा सकता है। इसी समय अपने आप में एक परिवार के संचालकपने की अनुभूति होने लगती है। शारीरिक शक्ति में भी धीरे-धीरे क्षीणता आने लगती है। यौवन अवस्था में भोगों के प्रति जो लालसाएँ एवं आसक्ति थी वह भी कम होने लगती है। अपने अगले भव के लिए भी कुछ करने अर्थात् संतों की संगति, भगवान के प्रति आस्था/श्रद्धा आदि धार्मिक कार्यों को करने में रुचि बढ़ने लगती है, यही प्रौढ़ावस्था का संक्षिप्त परिचय है।

इस उम्र में जब लड़कियाँ (बेटी) ससुराल से कुछ दिनों के लिए पीहर में आती हैं, उनमें से कई की आदत पीहर में ससुराल वालों की प्रशंसा करने की रहती है तो कई लड़कियों की पीहर में आकर सास-ससुर, ननद-देवर आदि की बुराई करने की। कोई-कोई समझदार लड़कियाँ माहौल देखकर काम करने वाली भी होती हैं। यदि आपकी बेटी आपके यहाँ आकर ससुराल वालों की बुराई करे तो उसे प्रोत्साहन नहीं दें। ऐसे पीहर वाले ही ससुराल में बेटी को दु:खी बना देते हैं,

अलग रहने के लिए प्रेरित कर देते हैं क्योंकि वे बेटी द्वारा बताई गई ससुराल वालों की छोटी-छोटी बातों को भी पूर्ण रूप से सच मानकर बेटी का पक्ष लेते हैं। बेटी की हाँ में हाँ मिलाकर बेटी के मन में ससुराल वालों के प्रति कड़वाहट पैदा कर देते हैं और बेटी के दिल में ससुराल वालों के प्रति गलत भावनाएँ भरकर तलाक तक की नौबत खड़ी कर देते हैं। लड़की पीहर वालों के बहकावे में आकर ससुराल में लड़ाई-झगड़ा, तू-तू, मैं-मैं प्रारम्भ कर देती है। ससुराल वालों के द्वारा पीहर नहीं भेजने पर छुपकर भाग जाती है /भागने की कोशिश करती है। फोन-पत्र आदि के माध्यम से ससुराल की बातें पीहर पहुँचाने लगती है, आदि-आदि अनेक प्रकार के उल्टे-सीधे कार्य करके ससुराल वालों को परेशान कर देती है, अधिक समय पीहर में व्यतीत करने लगती है। तत्काल में तो माता-पिता, भाई आदि सहायता करते हैं, अच्छा रखते हैं क्योंकि वह उनके यहाँ मेहमान के रूप में रहती है। लेकिन धीरे-धीरे जब वह घर की स्थायी सदस्य बन जाती है तो फिर माता-पिता को अखरती तो नहीं है पर चिन्ता का कारण अवश्य ही बन जाती है। किन्तु भाई-भाभी को निश्चित रूप से अखरने लगती है। उनके मन में यह विचार आने लगते हैं कि जीवनभर इसका खर्चा कौन उठाएगा? भाई भले ही अपना हो लेकिन भाभी तो परायी ही होती है। वह ननद का हमेशा घर में रहना सहन नहीं कर पाती है। फलस्वरूप, वह ननद को जब कभी हँसी-मजाक में ताने मारने लगती है। उसको भार रूप समझती हुई उसका तिरस्कार करना प्रारम्भ कर देती है। वह सोचती है कि जिन्दगी भर के लिए दीदी यहीं रहने वाली है मैं कब तक उसका सम्मान करती रहूँगी....ऐसी स्थिति में भैया भी न पत्नी को कुछ कह पाता है और न बहिन का कुछ कर पाता है। फिर बेटी और माता-पिता दोनों के पश्चाताप के आँसू बहने लगते हैं। अत: आप पहली शिकायत में ही बेटी को समय के अनुसार डाँटकर या प्रेम से समझावें। ससुराल वालों के प्रति उसमें अपनत्व का भाव उत्पन्न करें। ससुराल को अपना स्थायी घर समझकर उनके (ससुराल वालों के) प्रति समर्पित रहने की प्रेरणा दें।

नोट- यदि व्यक्ति को गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा यौवनावस्था में संतों का समागम नहीं मिला है, उसकी माँ ने इन अवस्थाओं में संस्कार नहीं डाले हैं तो भी वह प्रौढ़ावस्था में सत्संगति, सत्साहित्य और संतों का समागम करके जीवन का रहस्य समझ सकता है, जीवन जीने की कला सीखकर वृद्धावस्था एवं मौत को सुधारने के साथ-साथ अगला भव भी सुधर सकता है।

यदि लड़की ससुराल से भाग आवे तो

एक सेठ था। उसके एक ही लड़की थी। वह लड़की बड़े लाड़-प्यार से पली थी। ज्यादा लाड़-प्यार से वह जिद्दी, ढीठ और उच्छृंखल बन गयी थी। अहं और उत्तेजना उस लड़की की प्रत्येक क्रिया से टपकती थी। वह लड़की आधुनिक और घमंडी थी। वह जब शादी करके ससुराल गयी तो अपने कर्कश-अभिमानी स्वभाव के कारण सबको खटकने लगी। उसके व्यवहार से सब दु:खी थे तो वह भी ससुराल वालों के व्यवहार से दु:खी थी। उसने फोन करके भैया को बुलवा लिया और सबसे लड़-झगड़कर पीहर चली आयी। रास्ते भर ससुराल वालों की बुराई करती रही। घर पहुँचकर माँ से लिपटकर जोर-जोर से रोने लगी। पिता ने पूछा-

पिता - बेटी, ससुराल कैसी लगी?
बेटी - पिताजी, ससुराल तो एकदम नरक है।
पिता - तेरे ससुर कैसे हैं?
बेटी - एकदम राक्षस जैसे।
पिता - सास?
बेटी - अरे, सास तो डायन है पिछले जन्म और इस जन्म की भी।
पिता - बेटी, तो तुम्हारी ननद तो अच्छी होगी?
बेटी - पिताजी, ननद तो पक्की लड़ाकू और चुगलखोर है।
पिता - और तेरे देवर कैसे हैं?
बेटी - पापा, देवर तो एक नम्बर का झूठा और मक्कार है।
पिता - जेठ?
बेटी - अहो, उनके बारे में मत पूछो वो तो पूरा लोभी, लालची और धूर्त्त है।
पिता - और हमारे जँवाई अर्थात् तेरा पति कैसा है?
बेटी - अरे, वह तो पूरा यमराज है पिताजी! यमराज।
पिता - बेटी, घर के अड़ोस-पड़ोस कैसे हैं?
बेटी - दुष्ट, पापी, लफंगे और बदनाम हैं सभी पड़ोसी।

सेठ ने सोचा, ससुराल का एक व्यक्ति खराब हो सकता है। दो खराब हो सकते हैं, सभी लोग खराब कैसे हो सकते हैं? उसने बेटी से पूछा- ''बेटी! तुम कितनी बजे उठती हो?'' बेटी ने कहा- ''लगभग साढ़े सात-आठ बजे, जब सास

सबको दूध-चाय दे चुकी होती है। मैं भी उठकर चाय पी लेती हूँ।'' सेठ ने कहा- ''बेटी, तुम आठ बजे उठती हो तो तुम्हारी सास कुछ नहीं कहती?'' बेटी ने कहा- ''पापा, सास मुझे कुछ कैसे कह सकती है वह दो कहती है तो मैं तत्काल दस सुना देती हूँ और वो भी इस ढंग से सुनाती हूँ कि दूसरे भी कुछ कहने का साहस नहीं करें।'' पिता ने पूछा- ''बेटी! तो क्या तू अपने पति के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करती है ?'' बेटी बोली- ''पापा! ऐसा व्यवहार नहीं करूँ तो क्या उनको पूजने ही लगूँ? उसने मेरे साथ शादी की है तो उसे मेरा कहना भी मानना पड़ेगा। मैंने उससे शादी कर ली। इसका अर्थ क्या मैं उसकी और उसके भाई-बहिन, माँ-पिता सबकी नौकरानी हो गयी। क्यों मैं पूरे दिन उन सबका काम करती रहूँ। वो मुझे एक शब्द भी कहकर देखें ? एक-दो बार कहा तो मैंने ऐसे उत्तर दिये कि बस, बेचारे चुप्पी लगाकर बैठ गये। अब किसीमें मेरे से बोलने की ताकत ही नहीं है। अरे पापा! मेरे पीछे जो कुछ बकते रहें। उससे मुझे क्या? मैं तो थोड़े ही दिन में...।'' इन सब बातों को सुनकर सेठ की समझ में आ गया कि बेटी को अति लाड़-प्यार से रखने का यह दुष्फल है। उन्होंने उसे समझाया कि ''बेटी! तुम गुस्सा करती हो, बड़ों के सामने पलटकर जवाब देती हो, तुम अपने आप के सामने किसी को कुछ भी नहीं समझती हो। इसीलिए तुम्हारे ससुराल में तुम्हें कोई नहीं चाहता। तुम्हें घर नरक जैसा लगता है। सास जो माँ के समान होती है तुम्हें डायन के समान लगती है....।'' एक दिन दामाद बेटी को लेने आया। सेठ ने बेटी को ससुराल जाने की तैयारी करने के लिए कहा तो बेटी ने स्पष्ट कह दिया- ''पापा, मैं ससुराल नहीं जाऊँगी। मुझे ऐसे घर में बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है। आप कुछ भी करें मैं ससुराल नहीं जाऊँगी।'' सेठ बहुत परेशान हो गया। एक दिन सेठ ने सेठानी से अपने मन की बात कही। सेठानी ने भी अपने मन में बेटी को समझाने की कुछ विधियाँ सोचीं और एक दिन बेटी से बोली- ''बेटी! देखो, तुम्हारी बहिन को, उसकी सास कितनी खराब नेचर की है। जब कभी बिना प्रयोजन के ही डाँटती रहती है, किच-किच करती रहती है तो भी वह कभी पलटकर जवाब नहीं देती है, चुप रहती है, मौनपूर्वक सब कुछ सुनकर पी जाती है। तभी तो उसकी सास-ननद हमेशा बहू की प्रशंसा करती रहती हैं। समाज वाले भी अपनी बहुओं को उसका उदाहरण देते हैं और देखो तुम अपनी सहेली को, मम्मी के घर पर कभी लोटा उठाकर इधर से उधर नहीं रखा था । आठ-आठ बजे उठने वाली ससुराल में फटाफट मम्मी जी-सास के

पहले उठकर काम करना शुरू कर देती है। ननद को तो ऐसा प्रेम से रखती है कि वह अपनी मम्मी से भी ज्यादा भाभी को चाहती है। भाभी पीहर आ जाये तो दिन में दो-तीन बार फोन कर देती है। इसीलिए तो पीहर वाले तीन बार लेने भी चले जावें तो भी मुश्किल से दो-चार दिन के लिए भेजते हैं। पूरे ससुराल में सबकी लाड़ली बनी हुई है। बेटी, तुम भी अपना व्यवहार अच्छा बनाओ, गुस्सा करना छोड़कर हमेशा सबसे खुश होकर बोलो। कभी भी पलटकर जवाब नहीं दो। आलस छोड़कर सास-ननद के काम में हाथ बँटाओ। अपने घर के कामों को मजबूरी समझकर मत करो, काम करना अपना कर्त्तव्य समझो। तुम भी ससुराल की लाड़ली बन जाओगी। इस प्रकार माँ ने कई बार बेटी का मूड देख कर अनेक युक्तियों एवं उदाहरणों से उसको समझाया। आखिर माँ की शिक्षाओं का बेटी के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने भी मन में ठान ली कि अबकी बार मैं भी ससुराल में इस ढंग से रहूँगी कि मेरे मम्मी-पापा को फिर कभी मुझे नहीं समझाना पड़ेगा। समय पर फिर से ससुराल वालों का बुलावा आया। बेटी जब ससुराल पहुँची तो किसी ने उसकी तरफ नहीं देखा। कोई उससे नहीं बोला लेकिन उसने उसका कुछ भी बुरा नहीं माना। वह चुपचाप घर के काम में लग गयी। दूसरे दिन जब वह सुबह-सुबह जल्दी उठी और सासु के पैर (चरण) स्पर्श करते हुए बोली- ''माँ, मुझे आशीर्वाद दो, मेरा आज का दिन शान्ति तथा प्रेम से व्यतीत हो और मैं पूरे दिन खुश रहूँ।'' सासू ने आश्चर्यचकित होते हुए बहू को आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद पाकर बहू खुश हो गई। दूसरे दिन बहू के पैर की ठोकर से एक गिलास फूट गया। ससुर ने कहा- ''बहू थोड़ा देखकर चला करो। तुम तो जब देखो उलटे-सीधे काम ही करती रहती हो। विवेक से काम करना तो तुमने सीखा ही नहीं है,'' आदि-आदि अनेक बातें सुना दीं। इतनी कड़वी बातें सुनकर भी बहू ने हाथ जोड़कर कहा- ''पिताजी! गलती हो गई। मुझे क्षमा करना, अब ध्यान रखूँगी।'' ससुर बहू का उत्तर सुनकर सन्तुष्ट हुआ। आज पहली बार बहू ने अपनी गलती को इतने प्रेम-विनमृता से स्वीकार किया था। इस प्रकार उसे कोई भी कुछ कहता, डाँटता, टिप्पणी करता तो वह चुपचाप सुन लेती, न पलटकर कुछ जवाब देती और न ही गुस्सा करती। धीरे-धीरे घर के सभी लोग उससे बोलने लगे। उसका और उसकी आवश्यकताओं का ध्यान रखने लगे। सास ने बहू को घर की पूरी जिम्मेदारी सौंप दी। तिजोरी की चाबी देकर ससुर ने उसे घर की मालकिन बना दिया। रक्षा-बन्धन के त्यौहार पर बहू का भाई

लेने आया। नहीं चाहते हुए भी बहू को पीहर जाना पड़ा। बेटी घर पर आकर माँ से लिपट कर रोने लगी।

माता-पिता ने पूछा- बेटी, ससुराल कैसी है?

बेटी - पापा, ससुराल तो एकदम स्वर्ग है।

मम्मी - बेटी, तेरे ससुर कैसे हैं?

बेटी - मम्मी, पूछो मत, ससुर जी तो पापा से भी ज्यादा स्नेह रखते हैं।

भैया - दीदी, तुम्हारी सास कैसी है?

बहिन - भैया, मेरी सास तो इतनी अच्छी है कि मुझे कभी मम्मी की याद नहीं आने देती है।

पापा - और बेटी, यह तो बताओ तुम्हारी ननद कैसी है?

बेटी - पापा, ननद से अच्छी सहेली तो मेरी कोई दूसरी हो ही नहीं सकती है।

अन्त में माँ ने पूछा- बेटी! एक बात और बताओ, हमारे दामाद कैसे हैं? बेटी ने बड़े प्रेम से कहा- ''मम्मी, आपके दामाद तो सच में स्वर्ग के देवता तुल्य हैं।'' इस प्रकार कहती हुई माँ से पुन: लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसको वे पुरानी बातें याद आने लगीं। जब वह भैया को बुलाकर उसके साथ ससुराल से लौट आई थी। जिस समय उसे ससुराल नरक जैसा दिखता था। तब उसने पापा के समझाने पर भी ससुराल जाने के लिए स्पष्ट मना कर दिया था। आज वही बेटी अपने माँ-पिता की शिक्षाओं से अपनी अज्ञानता से हुई गलतियों को सुधारकर ससुराल में सबकी लाड़ली बन गई थी। अपने ससुराल का आवश्यक अंग बन गयी थी, यही सब कुछ सोच-सोचकर मन-ही-मन अपनी नादानी पर रोती हुई माता-पिता का परम उपकार मान रही थी और भगवान को लाखों धन्यवाद दे रही थी कि उसने उसे समय रहते सावधान होने की शक्ति दी। उसीका फल है कि आज वह स्वर्ग से भी अधिक सुख भोग रही थी। वह बार-बार भगवान से प्रार्थना कर रही थी कि हे भगवन्! मेरी जैसी नादान अज्ञानी बालिकाओं/बहुओं को तू पहले ही सद्बुद्धि दे देना ताकि उनके मन में कभी किसी के प्रति दुर्भाव उत्पन्न न हो.....।

आप भी अपनी बेटी को ससुराल में समर्पित रहने की प्रेरणा दें। बार-बार

उसे अच्छी शिक्षाएँ दें। आदर्श बहुओं की बातें सुनाते रहें ताकि आपके और आपकी बेटी के साथ (उपर्युक्त) ऐसी घटना नहीं घटे कि आपको उसके लिए बाद में पुरुषार्थ करना पड़े। निश्चित आपको सफलता मिलेगी।

गुप्त को गुप्त रखें

आप बहू को बेटी के समान अपनी ही समझें फिर भी अपनी गुप्त बातें जो बहू के आने के पहले आपके अर्थात् पति-पत्नी, पुत्र, पुत्री, बूआ आदि के साथ बीती हुई हैं, माँ-बेटे की या पिता-पुत्र की भी बात को आप बहू के सामने नहीं खोलें। संसार बड़ा विचित्र है, कब किस कर्म के उदय से क्या हो जाता/हो सकता है व्यक्ति स्वयं भी नहीं समझ पाता है इसलिए कुछ हो भी गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, आप ध्यान रखें। बहू आपकी हर बात को बड़े गौर से सुनेगी और वैसी ही धारणा बनाकर याद रखेगी। संभव है भविष्य में अवसर पाकर वह व्यंग्य कर दे जिसे सुनकर आपको ऐसा लगे कि अब मैं संसार में मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ......। आपके पास जो गुप्त सम्पत्ति हो, बैंक आदि में जमा पैसा हो, सबका सब बहू के सामने नहीं रखें। नयी-नयी बहू विनयवती, चरणों में रहने वाली होती है लेकिन पुरानी होने के बाद, घर की सत्ता हाथ में आ जाने के बाद, उसके अन्दर क्या परिर्वतन हो जाये कहा नहीं जा सकता है। जैसे-जब शादी पक्की होती है तब व्यवहार में और ससुराल आ जाने के बाद के व्यवहार में अन्तर आप स्वयं अनुभव करते होंगे। अत: जो सामान्य बातें हैं, सामान्य सम्पत्ति है उसको बताने में कुछ नहीं। लेकिन विशेष बातें और सम्पत्ति आदि बता देने पर भविष्य में आपका जीवन ही दु:खी हो सकता है।

इसी प्रकार आप अपने मूल्यवान आभूषण, आभूषणादि रखने की संदूक पेटी, तिजोरी आदि की चाबी कहाँ रखती हैं, बाहर जाती हैं तो कहाँ रखकर जाती हैं किसको देकर जाती हैं। इन बातों का बहू के सामने प्रसंग ही नहीं आने दें ताकि बहू के पूछने पर बताना भी नहीं पड़े और बताने के लिए मना भी नहीं करना पड़े। कभी प्रसंग आ जावे तो चतुराई से प्रसंग/प्रकरण बदल दें जिससे बहू के मन में यह संदेह या भावना उत्पन्न नहीं हो कि आप बहू से कुछ छुपाकर भी रख सकती हैं, छुपाती भी हैं। उसको तो आपके ऊपर ऐसा ही विश्वास रहे कि मम्मीजी मेरे से कुछ भी छुपाकर नहीं रखती हैं। आज की बहुएँ वैसे भी खोजबीन में ज्यादा रुचि रखती हैं और व्यवहारकुशल भी होती हैं। वे कभी सास की सरलता का दुरुपयोग भी कर

सकती हैं /कर लेती है। आपके आगे-पीछे फिरकर गुप्त धनादि को जानकर ईर्षावश हड़प सकती है अत: सावधानी रखें।

गुप्त बात बताने से

एक सेठ को शादी के बहुत वर्षों के बाद संतान प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त होने वाला था। जिस दिन से सेठानी गर्भवती हुई थी उसी दिन से घर की सम्पत्ति न जाने कहाँ जाने लगी, समझ में नहीं आ रहा था। देने वालों ने देने के लिए मना कर दिया और लेने वाले लेने के लिए आकर खड़े हो गये। धीरे-धीरे घर की पूरी सम्पत्ति समाप्त हो गई। जब तक पुत्र का जन्म हुआ घर में भोजन की भी मुश्किल दिखने लगी। सेठ ने धन कमाने का बहुत प्रयास किया लेकिन उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया। आखिर सेठ-सेठानी ने निर्णय किया कि सेठ, सेठानी और पुत्र को कुछ दिन के लिए ससुराल में अर्थात् सेठानी के पीहर में छोड़कर धनार्जन के लिए परदेश जावे। योजना के अनुसार सेठ, सेठानी और पुत्र को लेकर ससुराल की तरफ रवाना हुआ। सेठानी ने सोचा- ''सेठ का भाग्य तो कुछ साथ नहीं दे रहा है। यदि परदेश में भी सेठजी धनार्जन नहीं कर पाये तो उनके साथ मुझे भी कष्ट उठाने पड़ेंगे। इससे तो अच्छा है कि मैं किसी युक्ति से सेठजी को मारकर पुत्र के साथ पीहर में रहूँ।'' इस प्रकार मन में विचारकर उसने सेठ से कहा- ''सेठजी! मुझे जोर से प्यास लगी है। सेठजी सेठानी को पानी पिलाने के लिए कुए पर ले गये और सेठानी को एक तरफ बिठाकर पानी खींचने लगे। पानी की बाल्टी ऊपर आने पर जैसे ही सेठजी उसको लेने के लिए झुके, सेठानी ने आकर उनको धक्का दे दिया। सेठानी के धक्के से सेठजी कुए में गिर गये। सेठानी सेठजी को कुए में गिराकर निश्चिन्त होकर पीहर चली गई। पीहर में सेठजी के मरण की बात बताकर अपने बेटे के साथ रहने लगी। सेठजी को कुए में एक कोटर का पत्थर हाथ में आ गया। सेठजी ने उस पत्थर को पकड़कर आवाज लगाई। ''अरे, कोई मुझे इस कुए में से निकाल लो''....। एक ग्वाले ने यह आवाज सुनी तो उसने युक्ति लगाकर सेठजी को कुए से निकाला। सेठजी कुए से निकलकर संसार का विचार करते हुए कमाने के लिए विदेश चले गये। भाग्य ने पलटा खाया। सेठ को व्यापार में धन बरसने लगा। लगभग १२ वर्ष के बाद सेठ ने सोचा-अब घर जाकर सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत करना चाहिए। सेठ एक दिन सेठानी को लेने ससुराल पहुँचा। सेठानी ने जैसे ही अचानक सेठजी को देखा तो सकपका गयी। फिर भी उसने सेठजी का सम्मान किया। कुछ दिन के

बाद सेठजी पत्नी और पुत्र को लेकर अपने घर चले आये। समय पाकर सेठजी के घर में बहू आ गई। एक दिन सेठ जी भोजन कर रहे थे। सेठानी पंखा झल रही थी और बहू गरम-गरम भोजन बनाकर सेठ जी को परोस रही थी। उसी समय झरोखे में से सूर्य की कुछ किरणें सेठ जी के चेहरे पर पड़ने लगीं। सेठानी ने अपनी साड़ी का पल्ला फैलाकर सेठजी की धूप को रोक दिया। सेठानी को इस प्रकार सेवा करते देखकर सेठजी को पूर्व (कुए में गिराने) की घटना का स्मरण हो आया। उनको उस समय से इस समय की तुलना करके हँसी आ गई। जब सेठजी को हँसी आ रही थी उसी समय बहू रोटी परोसने आई। रोटी परोसते-परोसते बहू ने देखा सेठजी अपने आप हँस रहे हैं तो उसको लगा कि पिताजी मेरे ऊपर अर्थात् मेरी किसी बात पर मुझे देखकर हँस रहे हैं। वह ससुर जी से इसका कारण जानने के लिए हठ करने लगी। सेठजी ने सहजता से कुए में गिराने वाली पूरी घटना सुना दी। बहू ने बात गाँठ में बाँध ली अर्थात् अच्छी तरह से याद रख ली। एक दिन सास-बहू में लड़ाई हो गई। बहू ने गुस्से में सास को उस घटना का स्मरण दिलाते हुए व्यंग्य कर दिया कि हाँ-हाँ मैं जानती हूँ जब तुमने अपने पति को ही कुए में धक्का दे दिया तो मेरे साथ क्या नहीं कर सकती हो, कुछ भी कर सकती हो, यह सुनकर सास के तो होश ही उड़ गये। उसको इस बात का इतना बुरा लगा कि वह फाँसी लगाकर मर गई। जब बहुत देर तक बहू ने सास को नहीं देखा तो वह ढूँढ़ते हुए उस कमरे में पहुँची जहाँ सास फाँसी लगाकर मरी थी। बहू ने सोचा, ''ओहो! मेरे कारण आज सास को फाँसी लगाकर मरना पड़ा। अब मुझे जीने से क्या मतलब?'' वह भी फाँसी लगाकर मर गई। जब बेटा घर आया तो सास-बहू को मरा हुआ देखा तो वह भी फाँसी लगाकर मर गया। इस प्रकार अपनी गुप्त बात बहू को बताने से तीन व्यक्ति आत्महत्या करके मर गये। अत: अपनी गुप्त बात कभी किसी को नहीं बतावें और बहू को तो किसी हालत में नहीं बतावें।

बहू को बेटी के समान रखें लेकिन

आप बहू को भले ही बेटी के समान रखें लेकिन शुरू से इतना सिर पर नहीं चढ़ावें कि वह आपको पलटकर जवाब देने लगे। सास के डाँटने पर ससुर एवं ससुर के थोड़ा कह देने पर सास बहू का पक्ष नहीं लें। ऐसा करने से बहू के हौसले बढ़ने लगते हैं। उसमें पक्ष लेने वाले के प्रति श्रेष्ठता तथा पक्ष नहीं लेने वालों के प्रति हीनता के भाव उत्पन्न होने लगते हैं। कभी-कभी उसे ऐसा भी लगने लगता है कि

ससुर जी मम्मीजी से भी ज्यादा मुझे चाहते हैं, यह सोचकर वह भी मम्मीजी का तिरस्कार करने लगती है। फलत: घर में संक्लेश, लड़ाई-झगड़ा प्रारम्भ हो जाता है। कुछ दिन तो ससुर को अच्छा लगता है लेकिन धीरे-धीरे बहूरानी ससुर का भी तिरस्कार करने लगती है। वह यह सोचकर कि ससुर जी तो पूरे मेरे आश्रित हैं उनके कार्यों को करने में लापरवाही करने लगती है। उनके कुछ कहने पर सुनी-अनसुनी करने लगती है। एक घर में ससुर बहू को बहुत ज्यादा लाड़ से रखते थे। पत्नी ने कई बार उनको बहू को अति लाड़ देने के लिए मना किया। लेकिन ससुर ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। आखिर इस प्रकार देखते-देखते सास के दिमाग में सदमा बैठ गया, सास पागल सी हो गई। मनोवैज्ञानिक डॉक्टर को दिखाने पर जब समझ में आया कि सास को इस कारण से अर्थात् बहू का विशेष पक्ष लेने से बहू सास का तिरस्कार करने लगी थी इसलिए सदमा हुआ है तो ससुर पहले से हार्ट का पेशेन्ट था, उसको अटेक आ गया। वह वहीं मरण को प्राप्त हो गया। एक सास ने अपनी बहू का बहुत पक्ष लिया, सिर पर चढ़ा लिया। फलत: एक दिन सास ने पानी पीकर गिलास रखा। बहू ने झट से टोक दिया कि मम्मी आप जूठी गिलास यहाँ नहीं रखा करो। यह सुनकर सास को समझ में आया कि बहू को इतना साहस कैसे आ गया, अति लाड़ प्यार से। एकसास ने अनेक बार पति को समझाया लेकिन जब वह नहीं माना तो उसने बहू-बेटे को अलग कर दिया। ससुर अपनी पत्नी को छोड़कर बहू के यहीं रहने लगा। यद्यपि वह अपनी कमाई गई सम्पत्ति का काफी भाग बहू के घरखर्च में लगाता था, फिर भी बहू को ससुर खटकने लगा था क्योंकि अब उसका पति उसे बहुत अच्छी (प्रेम) तरह से रखने लगा था। उसने ससुर को अपने घर पर आने से मना कर दिया। ससुर जब बहू से तिरस्कृत होकर स्वयं की पत्नी के पास पहुँचा तो पत्नी ने कहा- जब मैंने इतनी बार समझाया आप नहीं माने तो मैं भी अब आपको अपने घर में नहीं.....। इसी प्रकार की अनेक घटनाएँ प्राय: घरों में घटती रहती हैं। बहू का पक्ष लेने से न सास को कुछ मिलता है और न ससुर को। आखिर वृद्धावस्था में तो पति-पत्नी ही आपस में एक-दूसरे का सहयोग-सेवा करने वाले बचते हैं। पक्ष नहीं लेने पर सम्भव है, बहू सास-ससुर दोनों का विनय-सम्मान और सेवा कर दे। अत: आप बहू को बहू समझते हुए बेटी जैसा रखें।

अपनी जिम्मेदारी कम करें

अब आप पारिवारिक जिम्मेदारियाँ कम कर दें क्योंकि जितनी जिम्मेदारियाँ

ज्यादा होती हैं उतनी ही चिन्ताएँ ज्यादा होती हैं और जितनी चिन्ताएँ ज्यादा होती हैं उतना ही अच्छे कामों में मन नहीं लगता है। अत: आप अपनी जिम्मेदारियों को धीरे-धीरे बेटे-बहू को संभलवाते जावें। कहा भी है- यदि बेटा अच्छी तरह से व्यापार संभालने योग्य हो जाये तो पिता को व्यापार की तथा बहू के आ जाने पर माँ को घर की अपनी जिम्मेदारियाँ कम कर लेनी चाहिए। आप अपने बेटे-बहू को वे जिम्मेदारियाँ अवश्य सौंप दें जिनको बेटा भी कर सकता है अर्थात् बेटे के करने में भी व्यावहारिकता बनी रहे। जैसे- आपके दो बच्चों की शादी हो गई है, तीसरा छोटा है या दूसरा बच्चा भी छोटा १०-१५ वर्ष का है तो उसको क्या पढ़ाना है, कहाँ तक पढ़ाना है, सर्विस करवाना है या दुकान करवानी है। दुकान करवानी है तो कहाँ, क्या, किसका व्यापार करवाना है; उसकी शादी कहाँ, कब, किससे करवानी है। रिश्तेदारों में आना-जाना, किस रिश्तेदार को किस फंक्सन में क्या-क्या कितना देना है। सामाजिक रीति-रिवाजों में कहाँ क्या करना है। बूआ-मामा, मौसी आदि के यहाँ कब कितना जाना है, आदि.....। आवश्यकता समझकर आप भी उनके फंक्सन में उपस्थिति दें। लेकिन मुख्य जिम्मेदारी बहू-बेटे की रहे। इसी प्रकार सास भी किस त्यौहार पर क्या मिठाई बनाना है। रोज भी सब्जी दाल, चावल, दलिया-खिचड़ी आदि में क्या-क्या बनाना है। कैसा बनाना आदि के बारे में भी ज्यादा नहीं करें क्योंकि यदि आपके कहने से बहू ने बना ली और बिगड़ गयी या किसी को पसन्द नहीं आई तो बहू झट से कह देगी। ''मैं तो यह चीज बना ही नहीं रही थी। मुझे तो यह चीज बनाना आता ही नहीं है लेकिन मम्मीजी ने कहा इसलिए मुझे बनानी पड़ी। मैंने बनाई, बिगड़ गई तो क्या करूँ।'' इसी प्रकार घर में खीचला, बड़ी, आचार, पापड़ आदि खतम हो गये हैं। कितने और कब बनाने हैं। दाल, धना-जीरा, मिर्च-मसाला आदि कितने बचे हैं, कितने मँगवाने है, आदि की चिन्ता अपने सिर पर नहीं रखें। बहू का भी अपना घर है। आप अब वृद्धावस्था में प्रवेश कर चुकी हैं, करने वाली हैं इसलिए निश्चिन्त रहें लेकिन फिर भी बहू के कार्यों में अपनी शक्ति के अनुसार पूरा-पूरा सहयोग करें। आगे होकर काम नहीं छेड़े। प्रारम्भ नहीं करें लेकिन बहू ने काम शुरु किया है या करने की भूमिका बना रही है तो उसका पूरा ख्याल रखें ताकि बहू को एकदम ऐसा नहीं लगे कि मम्मीजी को तो किसी काम से कोई मतलब ही नहीं है। उन्होंने तो घर का पूरा काम मुझ अकेली पर ही डाल दिया है मैं अकेली इतना काम कैसे करूँ, आदि....।

बहू को स्वतंत्रता दें

शादी के बाद बेटा केवल आपका बेटा ही नहीं रहता। अब वह किसी ओर से भी प्रेम करने लगा है और वह प्रेम कुछ दिन-महीनों या वर्षों के लिए नहीं अपितु उस समय तक के लिए है जब तक उसके शरीर में प्राण हैं। कहते हैं, विवाह के बाद लड़के-लड़कियों का एक अलग ही रूप हो जाता है। आप पूर्व के समान अब भी आगे-आगे होकर बेटे को चाय-नाश्ता देना, भोजन करवाना, घर में आते ही उसकी अनुकूल व्यवस्थाएँ करना जारी नहीं रखें क्योंकि शादी के कुछ वर्षों तक पति-पत्नी में अधिक-से-अधिक बोलने, घूमने, खाने-पीने आदि में स्वतंत्र (केवल दोनों ही हों। उन दोनों के बीच में कोई डिस्टर्ब करने वाला न हो) रहने की कामनाएँ रहती हैं। घर में आते ही बहू को ही उसका मान-सम्मान करने दें। बहू संकोच से नहीं कर रही हो तो उसे सम्मान करने के लिए कहें। आप नहीं करेंगी तो बहू अपने आप करेगी। चाय-नाश्ता और भोजन भी बहू को ही तैयार करने दें। क्योंकि नये-नये में बेटे को भी लगता है कि मैं अपनी नवोढ़ा पत्नी के हाथ का भोजन करूँ। आप अपनी बेटी को भी इसके बारे में समझा दें कि भैया चाहे कितना ही तुम्हें चाहता है, तुम्हारे हाथ से/हाथ का खाना-पीना पसन्द करता है फिर भी उसे अब इन कामों में मौन रखना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से पति-पत्नी में लड़ाई, मन-मुटाव होने लगता है। पत्नी के मन में ऐसे विचार आने लगते हैं कि इनको तो अपनी बहिन और मम्मी के हाथ का भोजन, नाश्ता, काम आदि ही पसन्द आता है। इनको माँ एवं बहिन से जितना प्रेम है उतना सा प्रेम भी मेरे से नहीं है। इस प्रकार के विचारों के कारण बहू में सास-ननद के प्रति भी खराब भावनाएँ पनपने लगती हैं। एक घर में नई-नई बहू आई थी। बहिन ने भैया की जब वह बीमार हुआ था बहुत सेवा की थी इसलिए वह उसका बहुत उपकार मानता था तो बहिन भी भैया का स्वास्थ्य ठीक होने के बाद भी बहुत ध्यान रखती थी। बहिन ने भैया की शादी के बाद भी भैया की सेवा करना भोजन-नाश्ता करवाना आदि काम नहीं छोड़ा और भैया ने भी अपनी बहिन के प्रेम और संकोचवश कुछ नहीं कहा। फलत: बहू अपने आप को ससुराल का अनावश्यक अंग अनुभव करने लगी क्योंकि उसने विवाह के पहले जो अरमान संजोये थे उन सब पर पानी फिर गया था। वह अपने पति का कुछ भी कार्य स्वतन्त्रता पूर्वक करने का अधिकार नहीं रखती थी।/नहीं कर सकती थी। पति से कुछ कहने पर वह भी कह देता था कि बहिन ने मेरी बहुत सेवा की है,

मुझे मरने से बचाया है इसलिए मैं उसका उपकार नहीं भूल सकता, मैं उसे कुछ नहीं कह सकता...। थोड़ा और कुछ कहने पर यह तक कह देता था कि तुझे रहना हो तो रह, नहीं रहना है तो कोई बात नहीं लेकिन...। बहिन का इतना पक्ष लेने से बहिन भी भाभी को यद्वा-तद्वा बोलने में, जब कभी तिरस्कार करने में नहीं चूकती थी। ऐसे ही वातावरण में समय बीतता गया। बहू के एक पुत्र भी हो गया। फिर भी बहू का मन प्रसन्न नहीं था। उसके मन में तो शादी के कुछ दिन बाद से ही उस घर में नहीं रहने की धारणा बन चुकी थी। आखिर बहू ने एक दिन तलाक की बात कह ही दी...।

इन सब विचारों को उत्पन्न करने का कारण क्या था? ये सब परिणाम क्यों उत्पन्न हुए? आप स्वयं सोचें। शायद माँ-बहिन भाभी के साथ ऐसा बर्ताव नहीं करती। भाभी को भी भैया के साथ अपने समान प्रेम, वात्सल्य, सेवाभाव अपनत्व बढ़ाने का अवसर देती, यदि बहू पति से विरक्त हो रही होती तो भी उसको प्रेम के लिए प्रेरित करती तो आज बहू के मन में यह भाव उत्पन्न ही नहीं होता और आपका घर बहू को रहने के अयोग्य नहीं लगता। आप भैया/बेटे की सेवा, आगे-पीछे का सब काम, भोजन-नाश्ता आदि कब देंगी। आखिर जीवन भर तो बेटे को बहू (पत्नी) के साथ ही रहना है। आप तो कुछ दिन के बाद असहाय/वृद्धावस्था में शक्तिहीन हो जायेंगी। आप स्वयं पराधीन हो जायेंगी। आपकी बेटी ससुराल चली जायेगी। फिर यदि बहू का प्रेम आपके बेटे से नहीं हो पाया तो आपके बेटे का क्या होगा? आपके बेटे की सेवा कौन करेगा? और भाभी के मन में आपकी बेटी की इन चेष्टाओं से दुर्भावनाएँ उत्पन्न हो गईं तो उसे कौन बुलाएगा? वृद्धावस्था में आपकी सेवा कौन करेगा?....। आदि पहलुओं पर विचार करके बहू के साथ अच्छा व्यवहार करें। बहू को अपने पति के साथ रहने की, अपने शौक-मौज पूरा करने की स्वतंत्रता दें।

इसी प्रकार धर्म के क्षेत्र में भी आप बहू को मजबूर नहीं करें। क्योंकि श्रद्धा अपनी अलग-अलग होती है। यह ठीक है कि आप अपने धर्म के बारे में युक्ति, प्रमाण, दृष्टान्त आदि से समझावें। लेकिन दबाव नहीं डालें। दबाव हमेशा मन को तोड़ने वाला होता है। धर्म कभी थोपा नहीं जाता, धर्म तो अपने आत्मा की परिणति है और सच में वास्तविक धर्म तो जीओ और जीने दो है, अहिंसा है, उसकी पुष्टि हमारे जीवन में हो वही कल्याणकारी होता है। इस प्रकार धर्म को समझकर यदि

बहू का धर्म सही सच्चा है तो आप उसे स्वीकार करें। कोई संकोच की बात नहीं है। क्योंकि अच्छी चीज तो कीचड़ में हो तो भी उठा लेनी चाहिए। फिर वह तो अपने घर की बहू है और सही धर्म बता रही है तो गृहण करना ही चाहिए।

आस्था का प्रभाव

श्रीमति नाम की जैन लड़की का जैनेतर धर्म वाले लड़के के साथ विवाह हो गया। उसका पति डॉक्टर था। अच्छा सभ्य लड़का था लेकिन वह भी माँ के सामने कुछ कहने की ताकत नहीं रखता था। बहू के आने पर सास ने कहा- ''अब तुम्हें हमारे धर्म को पालना पड़ेगा। अब जिनेन्द्र की पूजा छोड़कर हमारे कुलदेवता की पूजा करो।'' बहू ने नम्रतापूर्वक कहा- ''अम्माजी! मुझे शान्ति स्वरूप जिनेन्द्रदेव के दर्शन तथा दिन में ही भोजन करने की आज्ञा दें। मैंने ये नियम अपने गुरु महाराज से लिये हैं। अत: मैं नियम तोड़ नहीं सकती। नियम तोड़ना महान् पापबन्ध का भी कारण है।'' सास ने तनककर कहा- ''बहू, मैंने पहले ही कह दिया था कि मेरे यहाँ जिनेन्द्र की पूजा नहीं चलती, हमारे यहाँ तो रात्रि में ही भोजन करना पड़ेगा। तुम्हारे लिए दिन में भोजन कौन बनाएगा। आज से तुम्हारा मन्दिर जाना बन्द। मुझे मनमानी बातें पसन्द नहीं हैं,'' आदि....। लड़की ने अपने पति के सामने गिड़गिड़ाकर, रो-धोकर कहा तो पति ने कहा- ''मैं तुम्हारे पक्ष में हूँ, मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा, न मंदिर जाने से रोकूंगा, ना रात्रि में भोजन करने के लिए कहूंगा। लेकिन मैं अपनी माँ के सामने कुछ नहीं कह सकता।'' एक दिन श्रीमति ने पुन: सास के सामने निवेदन किया- ''मम्मी जी! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये। मैं तो आपकी आज्ञा का पालन सिर झुकाकर करती हूँ पर मेरी बचपन की प्रतिज्ञा को भंग न होने दीजिए। मेरी गलती हो तो क्षमा कर दीजिए।'' सास ने गुस्से में कहा- ''यदि तुम मेरे आदेशों का पालन नहीं कर सकती हो तो अपने पति को लेकर अलग हो जाओ या फिर अपने पीहर ही चली जाओ। मेरे घर में तुम्हारे नियम नहीं चल सकते। तुम नहीं मानोगी तो तुम्हें हम बलपूर्वक रात में खिलाएँगे।'' सास के इस निर्णय को सुनकर श्रीमति को मर्मान्तक व्यथा हुई। रोती हुई वह गुरु के द्वारा दिये गये मंत्र का जाप करने लगी। वह चारों प्रकार के आहार का त्याग करके मौनपूर्वक जिनेन्द्र भगवान का ध्यान करने लगी। सास को श्रीमति के सत्यागृह का समाचार मिला तो वह हाथ मटकाते हुए कहने लगी- ''देखती हूँ कितने दिन भूखी रहती है। दो-चार-आठ दिन, आखिर तो भूख लगेगी, मेरे यहाँ ये ढोंग नहीं चल सकते।'' श्रीमति को

णमोकार मंत्र का जाप करते-करते तीन दिन हो गये। तीसरे दिन रात्रि में सास को स्वप्न आया। किसी ने स्वप्न में उसको कहा- ''देवी! तुम इस सावित्री बहू को क्यों कष्ट दे रही हो ? इसका पदार्पण इस घर में मंगलकारक है। यदि तुम नहीं मानोगी, बहू को मंदिर नहीं जाने दोगी तो तुम्हारे पूरे शरीर में कुष्ठ हो जायेगा। प्रात:काल सास उठी तो उसका दिल और दिमाग भारी था। उसको रह-रहकर स्वप्न याद आ रहा था। लेकिन जिद्दी स्वभाव के कारण वह बहू को स्वतंत्रता नहीं देना चाहती थी। उसने विचार किया- ''अरे स्वप्न तो झूठे होते हैं। स्वप्न तो दिन में किये गये विचार का ही परिणाम होता है। यह बहू क्या आई, मेरे लिए तो बलाय बन गई। मैं मेरे इष्ट के अतिरिक्त किसी को भी पूजने की अनुमति नहीं दे सकती हूँ। देखती हूँ कितने दिन भूखी रहती है। तीन दिन तो हो गये, चौथे दिन पेट में चूहे दौड़ने लगेंगे तब स्वयं ही रात्रि में भोजन करेगी। मेरे सामने किसी की चलने वाली नहीं है।'' श्रीमति अपने मंत्र-जाप में लीन थी। सास ने अपने देव के सामने दीपक जलाया। उसके स्वयं के देव की मूर्ति में से आवाज आई, कुष्ठ हो जावे।'' आश्चर्य कि उसके शरीर में तत्काल कुष्ठ हो गया। सास फटाफट बहू को धर्म की स्वतंत्रता देते हुए बोली- ''श्रीमति बेटी! मैं तुझे धर्म साधना की पूरी स्वतंत्रता देती हूँ। मुझे अपने पाप का फल मिल गया। मैंने तुम्हें व्यर्थ ही कष्ट दिया। मुझे क्षमा करो....।'' श्रीमति की श्रद्धा से प्रभावित होकर पूरे परिवार ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया। फलत: सास का रोग भी ठीक हो गया।

कर्त्तृत्व बुद्धि नहीं रखें

इतने दिन आप बच्चों को किसी भी कार्य को करने के लिए और अहितकर कार्य को नहीं करने के लिए मजबूर कर सकते थे। उनके नहीं मानने पर साम-दाम-दण्डादि की नीति भी अपनाते थे, अपना सकते थे। इतने दिन बच्चे नाबालिग थे, न पूरे समझदार थे, न ही अज्ञानी; इसलिए आप उन्हें कभी डाँट-फटकार करके तो कभी प्रेम से समझा सकते थे। फिर इतने दिन तक उसकी शादी भी नहीं हुई थी। वे अपने पैरों पर खड़े नहीं हुए थे अर्थात् अच्छी तरह कमाने नहीं लगे थे। तब तक उन्हें आपकी गरज (आवश्यकता) भी थी। और आपका भी कर्त्तव्य था इसलिए आप उन्हें कह भी सकते थे तथा वे सुन भी लेते थे लेकिन अब वो बात नहीं है। अब वे समझदार हो चुके हैं। यदि वे आपकी कोई (एक-दो) बात नहीं सुनें तो आपको परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही बार-बार इस बात को

याद दिलाने की आवश्यकता है कि वह जो कर रहा है वह उसे भविष्य में कष्ट देने वाला होगा। जिस विधि से वह धन अर्जन करना चाह रहा है उस विधि से धन-अर्जन नहीं होगा, अपितु धन की हानि ही होगी। बहू जिस विधि से धन का उपयोग कर रही है, धन को अनुचित खर्च कर रही है और यदि वह इसी प्रकार मूर्खता करती रही तो हो सकता है उसके पति अर्थात् बेटे को कर्जदार बनना पड़े....। आप समय-समय पर सुझाव दें, उससे होने वाली हानि-अहित को समझावें लेकिन नहीं मानने पर रोना, दु:खी होना, गुस्सा करना आदि काम नहीं करें। आपके जाने के बाद भी बहू-बेटे अपने परिवार का भरण-पोषण करेंगे। जिनके माता-पिता नहीं होते हैं वे बच्चे भी संसार में जीवित रहते हैं। अपना विकास करते हैं, अपने जीवन का निर्वाह/निर्माण करते हैं अत: आप भी धीरे-धीरे कर्त्तृत्व बुद्धि को छोड़े। कर्त्तृत्व के भाव से हमेशा अहंकार उत्पन्न होता है। जब सामने वाला बात नहीं मानता है तो अहंकार को ठेस पहुँचती है अहंकार पर ठेस लगने पर व्यक्ति तिलमिला जाता है। उसे क्रोध उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है- अहंकार रूपी वायु के झोंके से क्रोध रूपी अग्नि प्रज्वलित होती है। आप बेटे-बहू को बिना मांगे सलाह नहीं दें। बार-बार पूछने पर थोड़ी से सलाह दें। पहली-दूसरी बार पूछने पर आप उसका उत्तर देने में रुचि न लें, टाल दें। कह दें- बेटा, देखो, देख लो, उचित लगे वैसा कर लो। आगे-पीछे विचार कर लो आदि....। दो-चार बार पूछने के बाद आप उत्तर देंगे तो आपकी बात को बेटे-बहू, पौत्र आदि ध्यान से/उपयोग पूर्वक सुनेंगे और मानेंगे भी क्योंकि उन्हें बहुत इंतजार करने के बाद आपसे कुछ सलाह मिली है। आप बार-बार और बिना पूछे कहेंगे तो बेटे-बहू यह सोचकर कि अरे बूढ़े लोग तो ऐसे ही होते हैं, वे तो जब देखो तब कुछ-न-कुछ कहते ही रहते हैं। हम कब तक इनकी मानते रहेंगे। दूसरी बात, ये आज के जमाने के बारे में समझते ही क्या हैं! ये पुराने जमाने के हैं, पुराने जमाने से चलते हैं और पुराने विचारों के अनुसार ही हमको चलाना चाहते हैं, आपकी बात पर ध्यान नहीं देंगे तब आपको ऐसा लगेगा कि ऐसे घर एवं संसार में जीने से क्या? अब तो मर जाना ही अच्छा है....। अत: आप पहले से ही सावधान रहें ताकि आपके भावों में संक्लेश उत्पन्न न हो। आप भी शान्ति से रहें और बेटे-बहू भी शान्ति से रह सकें।

व्यंग्य नहीं करें

यदि आपके बेटे की शादी के बाद दो-चार वर्ष तक भी बच्चा नहीं हो तो

आप बहू पर व्यंग्य नहीं करें कि ''तुम्हारे अभी तक कोई बच्चा नहीं हुआ है। हे भगवन्! हमें कब पौत्र का मुँह देखने को मिलेगा? उसकी तो तेरे से बाद में शादी हुई तो भी दो बच्चे हो गये और....। अरे भाई, बुढ़ापे में एक पौत्र हो तो समय पास हो जावे। बच्चों के बिना तो घर श्मसान जैसा लगता है, आदि....।'' एक बहू ने लड़का होने के सात दिन बाद ही आत्महत्या कर ली। उसने डॉक्टर को पत्र लिखा- ''यह पुत्र इस खानदान का अवश्य है लेकिन मेरा पति इसका बाप नहीं है। वह तो बेचारा बाप बनने के योग्य ही नहीं है परन्तु खानदान कुल (परम्परा) चलाना जरूरी था इसके लिए मुझे मारा-पीटा गया, गालियाँ, ताने देकर मुझे उसके लिए मजबूर किया गया कि मैं अपने ससुर के साथ.......।'' बहू को नहीं चाहते हुए भी ससुर के हाथ अपना शील क्यों बेचना पड़ा? उसका कारण घर के बड़े-बूढ़ों के द्वारा किये गये व्यंग्य ही थे। यहाँ बहू ने अपने मन में वासना के वशीभूत होकर ससुर के साथ भोग किया है ऐसा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यदि ऐसा होता तो उसने पुत्र प्राप्त करके सातवें दिन ही क्यों आत्महत्या कर ली..... ? आप अपनी बहू के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करें कि उसे मजबूर होकर व्यभिचार करना पड़े या आत्महत्या करनी पड़े। बच्चे होना, किसी के हाथ की बात नहीं है और ऐसा भी नहीं हो सकता कि आपकी बहू ने विवाह किया है तो उसको भी माँ बनने की कामनाएँ/इच्छाएँ उत्पन्न होती ही होंगी। आपके बेटे-बहू भी संतान-प्राप्ति का पुरुषार्थ करते ही होंगे लेकिन भाग्य साथ नहीं दे रहा है तो वे भी क्या कर सकते हैं यहाँ, यदि शादी हुए २-४ वर्ष हो गये हैं और संतान नहीं हो रही है तो उपचार करवावें, डॉक्टर को दिखावें, भगवान की भक्ति करें। आवश्यकता हो तो नगर के बाहर जहाँ इस बीमारी की दवाई होती हो, कर लेवें। लेकिन मंत्र-तंत्र के चक्कर में कभी नहीं पड़ें। मंत्र-तंत्र के चक्कर में पड़ने पर संतान हो या न हो आस्था और पैसा तो समाप्त हो ही जाते हैं। आपके बेटे के भाग्य में संतान नहीं लिखी है उसने पूर्व में अपनी संतान का गर्भपात करवाया होगा अथवा उसने कोई ऐसा भयंकर पाप अवश्य किया है कि जिसके फल में उसे संतान की प्राप्ति नहीं हुई है। इसमें मात्र बहू की ही कमी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। आप अपने बेटे की दूसरी शादी भी करवा देंगे तो भी यदि भाग्य में संतान नहीं लिखी होगी तो उसे पिता बनने का भाग्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि बहू को दो-तीन लड़कियाँ हो जावे तो भी आप व्यंग्य नहीं करें। बेटा-बेटी होना कुछ पूर्वोपार्जित कर्मों पर भी आधारित है। कहते हैं जो पूर्व भव में कर्जा

लेकर चुकाता नहीं है, बिना चुकाये ही मर जाता है या सामने वाले का पैसा देने से इन्कार कर देता है तो उसको अगले भवों में बेटियाँ होती हैं, उसको बेटी के बहाने कर्जा चुकाना पड़ता है या फिर घर वालों की बीमारी आदि में पैसा खर्च करके चुकाना पड़ता है। आपके बेटे ने भी पूर्व में ऐसा ही कुछ किया होगा। इसलिए उसको बेटा नहीं हुआ। बहू के स्थान पर आपके या आपकी बेटी के २-३ बेटियाँ होतीं तो क्या आप जबरन उनको बेटा बना देतीं या बेटा पैदा कर ही लेतीं? कुछ नहीं कर पातीं। आपको अधिक बेटियाँ पसन्द नहीं है तो बहू को बेटे के लिए इतना इंतजार करने के लिए क्यों मजबूर करती हैं कि उसको ३-४ बेटियाँ हो जावे। आप सोचें बहू तो बेचारी संतान नहीं होने से या बेटियाँ होने से पहले ही दु:खी है फिर आप ऊपर से उस पर व्यंग्य करके क्यों जले पर नमक छिड़कने वाला काम करके पाप कमाती हैं।

पीहर वालों को बीच में न लें

यदि आप दोनों (सास-बहू) में लड़ाई-झगड़ा, मन-मुटाव हो जावे तो आप गुस्से में आकर बहू को पीहर सम्बन्धी अर्थात् पीहर वालों को बीच में लेकर कोई उलाहना न दें। जैसे- ''अरे, तेरी माँ ने कब अपनी सास को अच्छे से रखा था जो तू मुझे रख लेगी।'' ''ओहो, अब तो बहुत दिखाने लगी हो। थोड़ा सोचो, पीहर में क्या-क्या खाती थी, क्या पहनती थी। वह सब हमें भी मालूम है।'' जैसे-माँ-बाप होंगे वैसे ही तो बच्चे होंगे, अच्छे होंगे भी कहाँ से। आखिर है तो उन्हीं माँ-बाप की बेटी आदि.....।'' इन उलाहनों को सुनकर बहू को बहुत बुरा लगेगा। क्योंकि जिन्होंने उसे जन्म दिया है, पालन-पोषण करके बड़ा किया है उनके लिए वह ऐसे-वैसे शब्द कैसे सुन सकती है। वह भी गुस्से में आपको यद्वा-तद्वा कुछ कह देगी तो आपको भी बुरा लगेगा, बात बढ़कर झगड़े में परिवर्तित हो जायेगी। घर का माहौल बिगड़ जायेगा। वास्तव में पीहर वालों ने आपका बिगाड़ा ही क्या है। उन्होंने तो लड़की को इतना बड़ा करके आपको सौंप दिया। फिर आप उनको बीच में क्यों लेते हैं, यदि आपके माँ-पिता के लिए कोई कुछ कहे तो आपको कैसा लगेगा। जब आप अपने माता-पिता के लिए कुछ नहीं सुन सकते हैं तो फिर दूसरे को कहने का साहस कैसे कर लेते हैं यह आश्चर्य की बात है। किसी-किसी घर में ससुर-देवर आदि भी बहू के साथ ऐसा व्यवहार कर लेते हैं। उनको भी उपर्युक्त विचार मन में लाकर दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार कभी बहू से कोई गलती हो गई हो, उसने किसी की कोई चीज बिना पूछे उठा ली हो, किसी के साथ गलत काम कर लिया हो, किसी को विशेष धोखा आदि दे दिया हो तो उसको उलाहने के रूप में बहू से नहीं कहें। जैसे-जानती हूँ, तू कौन है और कैसी है। हाँ, हाँ हमें सब मालूम है कि आप कितने दूध के धुले हैं, आदि....। दूसरी बात उन दोषों को किसी दूसरे के सामने भी नहीं कहें। दूसरे के सामने कह देने से आपको लाभ ही क्या हो जायेगा, उलटा दूसरे की निन्दा करने का पाप ही आपके सिर पर मढ़ जायेगा। समय पाकर लोग आपको ही अंगुली दिखायेंगे कि इनकी बहू ऐसी है। बहू के दोष दूसरों के सामने कह देने से बहू सुधर भी तो नहीं सकती है। और संसार में गलती किससे नहीं हो जाती है। ऐसी गलती यदि आपकी बेटी से हो जाती तो आप क्या करते? क्या बेटी के दोषों को भी इसी प्रकार सबके सामने कहते रहते? क्या उस पर भी इसी प्रकार व्यंग्य करते रहते, नहीं, यह भी तो आपकी बेटी जैसी ही बच्ची है, नासमझ है इससे भी गलती होना स्वाभाविक है, इसे, भी आप प्रेमपूर्वक गलती बताकर गलती सुधरवा दें। ताकि बहू के मन में आपके प्रति विद्वेष परिणाम उत्पन्न न हों। अत: आप थोड़ा संयम रखें, बहू के साथ सीधा-सरल व्यवहार करें। उसके साथ अपनत्व बनावें जिससे वृद्धावस्था में वह आपकी सेवा करने में जी नहीं चुरावे।

अपने बच्चों का पक्ष न लें

आप ननद-भौजाई (भाभी) में, देवर-भाभी में यदि कोई बात हो जावे वाद-विवाद हो जावे तो आप अपनी बेटी का या बेटे का पक्ष न लें। वैसे अधिकतर बहुओं की पहले से ही यह धारणा बनी रहती है कि मम्मी-पापा तो अपने बच्चों का ही पक्ष लेंगे चाहे उनकी गलती हो या मेरी। क्योंकि वे उनके अपने बच्चे हैं, मैं पराये घर से आई हुई हूँ फिर आप सच में अपने बच्चों का पक्ष ले लेंगी तो उनकी यह धारणा और दृढ़ बन जायेगी और भविष्य में आपने उसका पक्ष भी लिया तो भी उसको ऐसा लगेगा कि मम्मी मुझ पर व्यंग्य कर रही है, पक्ष नहीं ले रही है या मुझे यह विश्वास दिलाने के लिए कि मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ, मेरे सामने अर्थात् बाहर से तो मेरा पक्ष ले रही हैं लेकिन अन्दर से तो वह दीदी-भैय्या को ही चाहती हैं। उनका ही पक्ष लेंगी अथवा अभी मुझसे मम्मीजी को कुछ विशेष काम करवाना होगा। मेरी इनको कुछ विशेष आवश्यकता ही पड़ गई होगी। इसलिए मेरा पक्ष ले रही हैं अन्यथा.....। आप यदि बहू की गलती है तो भी उसको नहीं डाँटे। संसार

में कहावत है कि समझदार सासु बहू को कभी डाइरेक्ट नहीं डाँटती है। अपनी बेटी को इस ढंग से डाँटती है कि बहू को अपनी गलती समझ में आ जाती है। यदि उसकी (बहू की) गलती है तो भी बच्चों का पक्ष नहीं लें बल्कि बच्चों को समझावें कि बड़ी भाभी माँ के बराबर होती है तुम्हें उनका सम्मान करना चाहिए। और यदि बच्चों की गलती है तो उन्हें जरूर डाँटे लेकिन ज्यादा जोर से नहीं। इतना भी नहीं डाँटे कि भाभी में ननद-देवर को डाँट-फटकार करने का साहस आ जावे। यदि आप दोनों की बात का निर्णय करने में समर्थ नहीं हैं तो दोनों के बीच में बोले ही नहीं। कह दें- ''तुम दोनों ननद-भाभी जानो, मैं तुम लोगों के बीच में क्यों बोलूँ।'' यदि आपने बहू का पक्ष लिया तो बच्चों को एक प्रकार से अनाथपना सा अनुभव में आवेगा और यदि छोटा लड़का है तो उसकी यह धारणा बनेगी कि मम्मी-पापा तो भाभी का पक्ष लेते हैं तो भाभी ही सेवा करेगी। मुझे क्या करना, मुझे सेवा करने की आवश्यकता ही कहाँ है, आदि.....। अत: आप दोनों (सास-ससुर) अपने बच्चों का पक्ष लेकर बहू से और बहू का पक्ष लेकर दूसरे बच्चों से व्यवहार नहीं तोड़ें, कैसी भी बहू हो आखिर समय पर वही काम आयेगी।

बहू को सी.आई.डी. नहीं लगावें

आपकी बहू कब-क्या कर रही है? किससे बोल रही है? कहाँ जा रही है? इन बातों की सामान्य जानकारी रखें। लेकिन इन सबकी जानकारी के लिए अपने बेटे-बेटी को गुप्तचर के रूप में नियुक्त नहीं करें। ननद-देवर को गुप्तचर के रूप में देखकर बहू को मन में ऐसा लगेगा कि क्या मैं ससुराल वालों अर्थात् सास-ससुर की अपनी नहीं हूँ, क्या मैं इस घर की सदस्या नहीं हूँ, क्या मैं इनसे छुपकर कुछ ऐसे काम करती हूँ जो घर के लिए अहितकर हैं या घर की कुल परम्पराओं को कलंकित करने वाले हैं.....। फिर गुप्त रूप से किसी की चर्चा को सुनना बड़ा पाप माना गया है। एक लड़के की नयी-नयी शादी हुई थी। बहिन भाई-भाभी की गुप्तचर बनकर खोज-बीन करने लगी। भैया को लगा कि इसके कारण हम (पति-पत्नी) स्वतंत्र नहीं रह सकते। एक-दो बार बहिन को समझाया। लेकिन बहिन पर कोई असर नहीं हुआ। भैय्या ने गुस्से में एक लड़के के साथ जो विशेष योग्य भी नहीं था, जिसका घर भी किराये का था, एक ही दिन में सगाई-शादी आदि सभी कार्यक्रम करके बहिन को ससुराल भेज दिया। यह है सी.आई.डी. बनने का दुष्परिणाम। दूसरी बात सी.आई.डी. का काम करने से भाई-भाभी के मन में माँ-बेटी के प्रति

विद्वेष परिणाम उत्पन्न होने लगते हैं। सी.आई.डी. बनने वाले/वाला गलतफहमी में ज्यादा पड़ता है इधर की उधर करना लोक में नारद विद्या कहलाती है। गलतफहमी में आपकी बेटी आपसे भाभी के बारे में उल्टी-सीधी बातें कहेंगी। आप उसको सही मानकर बहू पर संदेह करेंगे। बहू के प्रति आपके परिणाम बिगड़ेंगे। आपका दिमाग बहू के प्रति अनेक प्रकार की आशंकाओं से भर जायेगा। आपके परिणामों का सम्प्रेषण बहू के मन में भी होगा। बहू के परिणाम भी आपके प्रति बिगड़ने लगेंगे। इसके विषय में एक ऐतिहासिक कथानक है-

एक राजा की सवारी निकल रही थी। एक सेठ अपने बंगले में खड़ा सवारी की शोभा देख रहा था। राजा को देखकर उसके मन में अचानक एक विकल्प उत्पन्न हुआ कि यदि यह राजा अभी (कुछ ही दिनों में) मर जावे तो मेरा वर्षों से रखा हुआ चन्दन अच्छे भाव में बिक जायेगा। वह इस प्रकार विचार करते-करते अपने में (कल्पनाओं में) खो गया। तभी सेठ को देखकर राजा के मन में विकल्प आया कि इस सेठ को बुलाकर आज ही फाँसी की सजा देनी चाहिए। उसने अपने विचार मंत्री को बताये। मंत्री ने कहा- राजन्! सेठ का कौन सा अपराध है जिस कारण से आप सेठ को मृत्युदण्ड देना चाहते हैं। राजा ने कहा- ''मंत्रिवर! यद्यपि सेठ की कोई गलती नहीं है फिर भी मेरे मन में बार-बार इसको मारने का भाव उत्पन्न हो रहा है। बहुत विचार करने के बाद भी इसका कारण मुझे भी समझ में नहीं आ रहा है।'' मंत्री ने राजा के विचारों को सुन उसकी सही जानकारी करने के लिए खोज-बीन करना प्रारम्भ किया। अनेक प्रकार से छान-बीन करने के बाद भी जब कोई निर्णय नहीं हुआ तो मंत्री ने सेठ को बुलाकर पूछा- ''सेठ जी! राजा की सवारी को देखकर तुम्हारे क्या भाव हुए थे?'' सेठ हाथ जोड़कर बोला, ''मंत्रिवर! मुझे क्षमा करो, पहले मुझे अभयदान दो। फिर मैं सही-सही बात बताऊँगा।'' मंत्री ने उसको अभयदान देकर पूछा तो सेठ ने निश्छल होकर अपने मन की पूरी बात बताई। तब राजा-मंत्री आदि को समझ में आया कि एक-दूसरे के परिणामों का कितना सम्प्रेषण होता है, प्रभाव पड़ता है.....।

दूसरी बात, बेटी की ऐसी गुप्त जानकारी करने/लेने की आदत पड़ जायेगी तो वह भविष्य में ससुराल में जाकर भी ऐसे ही काम करेगी। ऐसे काम करने से वह भी दु:खी होगी और आपको भी बदनाम करेगी। कभी-कभी, सी.आई.डी. लगाने से बहू और ज्यादा स्वच्छन्द वृत्ति करने लगती है। उसको ऐसा लगता है कि जब ये

मेरे हर कार्य को छुपकर देखते हैं, खोज-बीन करते रहते हैं तो अब मैं भी इनके सामने ही सब करूँगी। जैसे- पीहर वालों को फोन करना, उनके आने पर विशेष नाश्ता, भोजन आदि की व्यवस्था करना, उनके साथ लेन-देन करना आदि। एक बहू, जिसकी ननदें हमेशा उसके कामों को देखने के लिए पीछे ही लगी रहती थीं, थोड़े दिन तो सब कुछ सहन करती रही। लेकिन कुछ दिनों के बाद वह स्वतंत्र रूप से ही नहीं स्वच्छन्द रूप से प्रवृत्ति करने लगी। जब इन बातों के लिए बार-बार उसको डाँट पड़ने लगी तो वह अलग रहने के लिए तैयार हो गई। सी.आई.डी. लगाने से संभव है बहू छुप-छुपकर गलत कार्य भी करने लगे, पकड़ में आने पर सुसाइड कर ले, घर का सामान समेटकर आपसे अलग हो जावे या बहू से घबराकर आपको ही कुछ करना पड़े। इससे तो अच्छा है कि आप बहू के कामों की विशेष जाँच-पड़ताल नहीं करें। वास्तव में, किसी कार्य के लिए रोकने पर मन उसी कार्य को करने में तत्पर होता है अत: बहू को सामान्य कार्यों में बहुत नहीं रोकें, बहुत नुक्ताचीनी नहीं करें ताकि बहू को आपसे छुपकर कुछ करने के विचार ही उत्पन्न न हों।

अच्छा कार्य करने पर प्रशंसा करें

आपकी बहू यदि अच्छा कार्य करती है तो समय पर उसकी प्रशंसा अवश्य करें। लेकिन इतनी प्रशंसा भी नहीं करें कि वह आपको, आपकी बेटी या सास को ही हीन दृष्टि से देखने लगे। गर्वोन्मत्त होकर भविष्य में आपका ही तिरस्कार करने लगे। एक सेठ अपनी बहू के कामों की, रहन-सहन, साफ-सफाई आदि की बहुत प्रशंसा करता था। उसके साथ-साथ अपनी पत्नी-बेटी आदि की बुराई भी करता रहता था। फलत: अतिप्रशंसा सुनकर लोगों को उसके चरित्र में ही संशय होने लगा। बहू के साथ उसको लांछन लगाने लगे।

एक सेठानी अपनी बहू की बहुत प्रशंसा करती थी। प्रशंसा सुन-सुनकर घमण्ड में फूली बहू को एक दिन किसी विशेष बात (कार्य) का निर्णय लेना था, लोगों ने सेठानी से पूछ लेने की सलाह दी। तब बहू ने झट से कह दिया- ''कुछ नहीं, मम्मी जी तो कुछ नहीं कहेंगी। उनको पूछने की तो ज्यादा आवश्यकता भी नहीं है, वो तो मैं कहूँगी, मान ही जायेंगी''...। अत: आप (सास-ससुर) बहू की अति प्रशंसा भी नहीं करें तो उसके कार्यों को आँखों के नीचे से ही नहीं निकाल दें। ऐसा भी नहीं करें कि बहू अच्छे कार्य करती है समय पर करती है, विवेक पूर्वक

आर्थिक परिस्थिति का ध्यान रखते हुए कार्य करती है तो भी आपके मुख से उसकी प्रशंसा का एक शब्द भी नहीं निकलता है जैसे कि वह आपके कुछ लगती ही नहीं है। आप अपनी बेटी के ही गीत गाती रहती हैं। समय-समय पर आये हुए अतिथि-रिश्तेदार आदि के सामने थोड़ी प्रशंसा अवश्य करें। प्रशंसा करने से बहू में आपके प्रति बहुमान का भाव बढ़ेगा। कार्य करने में उत्साह तथा कार्यक्षमता बढ़ेगी। वह और भी अच्छी चतुराई से कार्य करेगी, आलसी नहीं बनेगी। आप अपनी बेटी की ही प्रशंसा करती रहेंगी तो बहू को मन में लगेगा कि जब दीदी ही सब कार्य अच्छे करती है, दीदी को ही अच्छा भोजन बनाना आता है, मुझे अच्छा बनाना नहीं आता है तो मैं क्यों रसोईघर में जाकर परेशान होऊँ, क्यों कपड़े धोने, साफ-सफाई करने आदि में अपना समय बरबाद करूँ? क्यों टी.वी. देखने का आनन्द छोड़ूँ....। ये सब तो दीदी/मम्मी कर लेंगी। इस प्रकार विचार कर सोती रहेगी, टी.वी. देखकर अपना समय बितायेगी। आप यह नहीं सोचें कि मेरी बेटी इतने अच्छे काम करती है, क्या मैं उसकी प्रशंसा नहीं करूँ। उसकी भी प्रशंसा करें लेकिन विवेक रखें ताकि बहू के मन में विकल्प उत्पन्न न हों।

बहू से पैर अवश्य दबवावें

आप बहू से शाम के समय पैर अवश्य दबवावें। पैर दबवाने का अर्थ सेवा करवाना नहीं है अपितु पैर दबवाने के बहाने से बहू १०-१५ मिनट आपके पास बैठेगी। दिन में हुई अच्छी-बुरी, सुख-दु:ख तथा स्वास्थ्य आदि के बारे में आपसी जानकारी मिलेगी। जानकारी मिलने पर एक-दूसरे के दु:ख को दूर करने, एक-दूसरे का सहयोग करने का भी भाव उत्पन्न होता है। ऐसी परम्परा नहीं होने पर कई दिनों तक सास-बहू का एक साथ बैठना भी नहीं हो पाता एक-दूसरे से बात करने का, बोलने का अवसर ही नहीं मिल पाता है। बहू अपने कमरे में अपना काम करती है या बच्चों में लगी रहती है और सास अपने कमरे में रहती है। कभी दिन में सास-बहू की आपस में लड़ाई-झगड़ा, बात-चीत हो गई और यदि पैर दबाने की परम्परा नहीं है तो दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति द्वेष के परिणाम पनपते रहते हैं, आपस में एक-दूसरे को देखने में कतराते हैं। दोनों ही एक-दूसरे से अति आवश्यकता होने पर या बच्चे आदि को बीच में लेकर बोलती रहती हैं। आपस में नहीं बोलने से मन में वैर भावों की गाँठ बँधती जाती है, बढ़ती जाती है, पैर दबाने की परम्परा होने से शाम के समय बहू को सास के पास जाना ही होगा। बहू जब सास के पैर दबाएगी

तब सहज रूप से एक-दूसरे से बातचीत करेंगी ही। मन-मुटाव समाप्त हो जायेगा। इसलिए पैर दबाने की परम्परा अवश्य बनावें। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि बहू बेचारी पैर दबाती ही रहे और आप नींद के खर्राटे भरने लगें, आपको यह भी भान नहीं रहे कि मैं एक बार बहू से यह तो कह दूँ कि ''बेटा, बस, अब रहने दो, जाओ, तुम भी सो जाओ।'' आप इस बात का पूरा ध्यान रखें, अन्यथा कुछ ही दिनों में बहू पैर दबाना बन्द कर देगी। पैर दबाना तो एक औपचारिकता है, मुख्य उद्देश्य तो प्रेम बनाये रखना है। इसी प्रकार घर से बाहर किसी रिश्तेदार आदि के यहाँ जाते समय बहू आपके पैर पड़े अर्थात् चरण-स्पर्श करे। जहाँ की जैसी परम्परा हो, तो आप यह सोचकर कि अरे, कौन छोटा और कौन बड़ा, अब तो चरण छूने का जमाना गया बेटा....। पैर छूकर घर के बाहर जाने से आपको यह ध्यान रहेगा कि बहू कहाँ, कितनी बार और कितनी देर से गई है। आपकी बहू बिना पूछे/कहे कहीं गई है और अचानक किसी ने आकर आपसे बहू के बारे में पूछ लिया तो आप क्या जवाब देंगी/दे सकती हैं? आपके यद्वा-तद्वा अथवा मुझे पता नहीं है, इस प्रकार का जवाब देने पर सामने वाला क्या सोचेगा कि आप एक ही घर में रहते हैं और आपको इतना भी पता नहीं है कि बहू कहाँ गई है, आदि...... और भी उपर्युक्त सभी कार्य भी चरणस्पर्श से सध जायेंगे।

एक दिन एक बहू हमारे पास आई। उसके साथ छोटी बहुएँ और थीं उसने उनका परिचय कराते हुए कहा- ''माताजी! ये दोनों मेरी देवरानियाँ हैं।''....। मैंने हँसी के तौर पर कहा- ''तब तो तुम बहुत बड़ी हो। ये लोग तुम्हारे चरणस्पर्श करती होंगी।'' उसने कहा- ''नहीं, माताजी ये लोग तो पैर छूती हैं लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगता है। मैं इनसे पैर नहीं पड़वाती/छुवाती हूँ। हम सब बराबरी के हैं तो क्या पैर पड़वाना!'' मैंने उपर्युक्त बातों को समझाया तो उसने कहा- ''सही बात है, अब मैं छुवाया करूँगी।'' वास्तव में इसी बहाने एक-दूसरे में प्रेम-वात्सल्य-अपनत्व और छोटों के प्रति अपने कर्त्तव्य तथा विनय भाव बने रहते हैं। वैर की गाँठ नहीं बँधती- जो एक बार बँध जाने पर भव-भव में दु:ख देती रहती है। किसी संत ने कहा है- भले ही लड़ लेना, पिट जाना, पीट देना मगर बोलचाल बन्द मत करना क्योंकि बोल-चाल के बन्द होते ही सुलह के सारे दरवाजे बन्द हो जाते हैं। गुस्सा इतना बुरा नहीं है जितना गुस्से के बाद आदमी जो वैर पाल लेता है, वह बुरा है। गुस्सा तो बच्चे भी करते हैं मगर बच्चे वैर नहीं पालते। वे इधर झगड़ते हैं और

उधर अगले ही क्षण फिर एक हो जाते हैं। कितना अच्छा हो कि इस मामले में हर व्यक्ति बच्चा ही बना रहे/बच्चा बन जावे।

ऐसा व्यवहार करें कि बेटे-बहू में प्रेम बढ़े

कई महिलाएँ बेटे को अपने वश में देखकर बहू के कमरे में नहीं जाने देती हैं। बहू की सुख-सुविधाओं का ध्यान नहीं रखने देती हैं, बहू के बारे में बेटे को जब कभी उलटा-सीधा सुनाकर बहू के प्रति विरक्त रखने की कोशिश करती हैं। उसे स्वयं सोचना चाहिए कि बेटे को बहू से विरक्त ही रखना था तो अपने बेटे की शादी ही क्यों करवाई, क्यों बेटे की शादी करवाकर एक लड़की के जीवन को दु:खी बनाया। यदि आपकी (सास की) सास भी अपने बेटे को आपसे विरक्त रखती, आपके पास नहीं आने देती तो कैसा लगता? माँ को तो ऐसा काम करना चाहिए कि बेटा यदि पत्नी से प्रेम नहीं भी कर रहा हो, पत्नी से विरक्त भी रहता हो तो उसका प्रेम बढ़े। यदि बेटा पत्नी से नहीं बोलता हो तो उसको समझावें। बेटे को पत्नी से विरक्त रखने पर या उसके विरक्त रहने पर उसका दूसरा दुष्परिणाम हो सकता है कि वह किसी दूसरी (अविवाहित-विवाहित स्त्री) से प्रेम करने लगे, व्यभिचारी बन जावे। कई महिलाएँ बेटे के सामने बहू की शिकायतें करके अपने आपको अच्छा सिद्ध करने की कोशिश करती हैं। समझदार बेटे जो प्रेम का महत्त्व समझते हैं वे तो माँ की बातों में नहीं आते हैं। लेकिन नासमझ बेटे अपनी माँ की बातों में आकर पत्नी को तलाक तक देने को भी तैयार हो जाते हैं।

बिगड़े बेटे को भी एकदम न नकारें

यदि आपका बेटा किसी निमित्त से अर्थात् कुसंगति से, अधिक छूट देने से व्यसनों में फँस जावे अर्थात् जुआ खेलने लगे, परस्त्रीगामी हो जावे, शराब आदि व्यसनों में फँस जावे तो आप उसे एकदम नहीं नकारें, तिरस्कार नहीं करें, एकदम ऐसा नहीं समझने लगें कि अब यह कभी नहीं सुधर सकता है। इसको तो घर से ही निकाल देना चाहिए। घर में बुलाना ही नहीं चाहिए आदि-आदि विचार करके उसके जीवन-विकास के बारे में सोचना ही बन्द न कर दें। संभव है, वह भी आपके अच्छे व्यवहार से सुधर जावे। फलटण में एक परिवार था। उसके सभी सदस्य धार्मिक प्रवृत्ति के थे। दुर्योग से उस परिवार का एक लड़का व्यसनों में फँस गया। कुछ समय के बाद वह घर छोड़कर चला गया और एक वेश्या के घर में रहने लगा। दस-बारह वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद उस परिवार में एक विवाह का

अवसर आया। घर के प्रमुख बहुत धार्मिक थे, प्रतिमाधारी और बहुत समझदार थे। उन्होंने घर के सदस्यों से कहा- ''अरे! शादी में तो उसे भी (जो बिगड़ा था) बुला लाओ। निमंत्रण पत्र देकर आओ।'' दूसरे लड़कों ने कहा- ''हम उसके वहाँ जाकर निमंत्रण पत्र दें, हम नहीं जा सकते, हमें नहीं बुलाना उसको।'' उन्होंने कहा- ''अच्छा! घर के बाहर से आवाज लगाकर कह देना कि हमारे घर में शादी है, तुम्हें ताऊजी ने बुलाया है। आखिर उससे खून का सम्बन्ध है।'' घर का एक सदस्य गया और बाहर रास्ते से कहकर आ गया- ''तुम्हें ताऊजी ने बुलाया है, घर में शादी है।'' यह सुन लड़का सोचता रहा, ताऊजी ने मुझ जैसे पापी को क्यों याद किया होगा? वे स्वयं कितने धर्मात्मा हैं। उन्होंने याद नहीं किया होगा, यह (भैया) मुझे बहकाने आया होगा....। यह सोचकर वह विवाह में नहीं गया। विवाह के दिन ताऊजी ने देखा वह नहीं आया है। उन्होंने उस लड़के से पूछा जो बुलाने गया था, ''तुमने उसे सूचना दी थी या नहीं?'' उसने बताया- ''ताऊजी कह तो आया था।'' ताऊजी ने कहा- ''जाओ अभी बुलाकर लाओ।'' सभी चुप रहे, वहाँ कोई नहीं जाना चाहता था। ताऊजी समझ गये। वे स्वयं चुपचाप चल पड़े। वहाँ जाकर उस बेटे को पुकारा। उसने देखा- ''ताऊजी स्वयं आये हैं मेरे पास।'' उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह उतरकर नीचे आया। ताऊजी ने कहा- ''चलो, घर में आज विवाह है।'' वह ताऊजी को इन्कार नहीं कर सका और साथ चल दिया। घर पहुँचकर ताऊजी उसे अपने साथ मंदिर ले गये, तिलक लगाया। खाना खाने बैठे तो अपने पास बिठाया। सब खाने लगे, पर वह रो रहा था। मन में सोच रहा था, ''मैं इतना पापी, मैंने घर की मर्यादा खो दी और ताऊजी मुझे अपने पास बिठाकर भोजन करा रहे हैं।'' मन पश्चाताप से भरा था। विवाह सम्पन्न हो गया। ताऊजी ने कहा- ''जाओ, अब तुम जा सकते हो।'' यह सुनकर वह फूट-फूटकर रोता हुआ ताऊजी के पैर पकड़ कर बोला- ''ताऊजी! मुझे माफ कीजिए, प्रायश्चित्त दीजिए।'' वह सुधर गया। उसने धीरे-धीरे श्रावकोचित क्रियाएँ करना शुरू कर दिया। ऐसा करते-करते वह साधु बन गया। परिवार के एक व्यक्ति के वात्सल्य से भ्रष्ट हुआ बेटा भी सुधर गया और यह कोई आश्चर्य वाली बात भी नहीं है क्योंकि जवानी का नशा कम होने पर छोटे से निमित्तों से भी व्यक्ति सुधर सकता है, सुधरता है। अत: भले ही आपका बेटा या बहू उद्दण्ड है, मार्ग-भ्रष्ट है, आपके यहाँ नहीं आते हैं, आपको देखना भी नहीं चाहते हैं तो भी आप भले ही उससे नहीं बोलें, उसके यहाँ

नहीं जावे; लेकिन वार-त्यौहार, फंक्सन आदि के समय उसे जरूर याद कर लें और यदि बुलावे तो चले जावें, संभव है आपका बिगड़ा बेटा भी सुधर जावे।

ध्यान दें बेटे-बहू क्या चाहते हैं

आप ध्यान रखें कि बहू कब अर्थात् किस समय क्या चाहती है। वह भी आपकी ही बेटी के समान खाना-खेलना, हँसना-बोलना, शृँगार करना, घूमना आदि चाहती होगी। वह भी धार्मिक स्थानों पर जाना, संतों के उपदेश आदि सुनना चाहती है। आप जैसे ही धार्मिक कार्यक्रमों का या सामाजिक, शादी, बर्थ-डे आदि किसी कार्यक्रम का समय हुआ, घर के सब काम बहू के ऊपर छोड़कर झट से तैयार होकर अपनी बेटी के साथ चल देती हैं। ऐसा करने से बहू के मन में यह सोचकर कि ''अरे! मैं छोटी हूँ, बहू हूँ, इसका अर्थ यह नहीं कि मैं किसी कार्यक्रम में जा ही नहीं सकती। मुझे जाने का चांस ही नहीं मिलेगा।'' छुपकर या आपको बिना बताये ही वह जाने लगे आपके तैयार होने के पहले ही वह सब काम छोड़कर तैयार होना शुरू कर दे। आप ऐसा नहीं करें। सास-ननद-बहू आदि दोनों-तीनों मिलकर जल्दी से काम निपटाकर बहू को भी अपने साथ ले जावें ताकि बहू की इच्छा भी अन्दर दबी नहीं रहे। मेरे विचार से तो यदि बहू धार्मिक कार्यक्रमों में, संतों के उपदेश सुनने आदि पुण्यानुष्ठानों में नहीं जा रही हो तो भी आपको ले जाना चाहिए और इतना तक कह देना चाहिए कि ''बहू! तुम जाओ, उपदेश सुन आओ, घर का काम तो मैं (हम लोग) कर लूँगी, बच्चों को मैं सम्हाल लूंगी। घर का काम तो बाद में भी हो जायेगा।'' ऐसा करने से आप यह नहीं सोचें कि मेरा धर्मध्यान, उपदेश, संतसमागम छूट जायेगा/कम हो जायेगा, नहीं, इससे तो आपको एक बहुत बड़ा लाभ होगा जब आप वृद्ध हो जायेंगी तब आपकी बहू संस्कारित, धार्मिक रूचि वाली होगी/बन जायेगी तो आपके धर्मध्यान में सहयोग देगी, आपके नियमों को पालन कराने में आनाकानी नहीं करेगी, आपको धार्मिक ग्रन्थ सुनाएगी.....। सामाजिक फंक्शन हो तो कभी बहू को भेज दें, कभी आप चली जावें फिर भी अधिक बार तो बहू को ही भेजें ताकि वह भी समाज के अपरिचित लोगों के साथ घुल-मिलकर रहना सीख सके। इसी प्रकार आप महीने, दो महीने में कभी गुरु दर्शन को, कभी तीर्थ-यात्रा के लिए, कभी घूमने के लिए चल दिये। बेटे-बहू को एक बार भी कभी भेजा ही नहीं तो उनको लगेगा कि अरे! जब देखो मम्मी-

पापा घर-दुकान छोड़कर चले जाते हैं। हमारा तो नम्बर ही नहीं आता है अत: वर्ष में आप चार बार जाते हैं तो एक-दो बार बहू-बेटे को भी भेजें ताकि आपका जाना उनको नहीं अखरे।

बेटे को उलाहना न दें

यदि बहू से कोई गलती हो जाय, बहू को काम करना अच्छे से नहीं आता हो, धीरे-धीरे करती हो, ढंग से रहना नहीं आता हो या उसमें कोई कमी हो तो आप बेटे पर इन बातों को लेकर व्यंग्य नहीं करें। जैसे- ''बेटा! तुम्हारी रानीजी को काम करने बिठा दो तो सुबह से शाम हो जावे लेकिन रानीजी का काम पूरा न हो पावे।'' ''लो बेटा, आज बहूरानी ने क्या स्वादिष्ट चीज बनाई है कि हम तो खाते ही रह गये, अब तो हमेशा ये चीज उसीसे बनवायेंगे। देखो, पता है आज घर की सफाई किसने की है ? घर कितना सुन्दर चमक रहा है, लग रहा है बहू ने पूरे घर में गेनाइट ही लगवा दिया है आदि''.....। आप इस प्रकार की व्यंग्यात्मक बातें बेटे के सामने कह-कहकर बेटे के मन में बहू के प्रति हीन भावनाएँ उत्पन्न नहीं करें क्योंकि जैसी भी पत्नी मिली है उसी के साथ आपके बेटे को पूरा जीवन व्यतीत करना है।

(१) आपके इन वचनों को सुनकर यदि बेटे के मन में बहू के तिरस्कार का भाव उत्पन्न हो गया/होने लगा तो बेचारी बहू कहाँ जायेगी और इसमें आपको क्या मिल जायेगा? आपको तो यदि बेटा उसके साथ ऐसा करता है तो बहू का पक्ष लेते हुए समझाना चाहिए। बहू को भी यदि काम करना नहीं आता है तो सिखाना चाहिए।

(२) आपकी ऐसी व्यंग्य भरी बातें सुनकर आपके बेटे को अपने ही जीवन से उदासी आ गई तो वह यह सोचकर कि मुझे ऐसी पत्नी मिली है जिसके कारण जीवनभर मुझे ताने सुनने पड़ेंगे तो ऐसे जीने में भी क्या, आत्महत्या कर सकता है। आपके उलाहने सुनकर यदि बहू-बेटे को आपके प्रति घृणाभाव उत्पन्न हो गया तो क्या वे वृद्धावस्था में आपकी सेवा करेंगे? कदापि नहीं। (३) यदि बेटे ने आपके व्यंग्य सुनकर कभी क्रोध में आपको ही तीखा जवाब दे दिया तो आपको कैसा लगेगा? आदि-आदि बातों का विचार कर आप बेटे को उलाहने नहीं दें, अच्छा व्यवहार करें ताकि बेटे-बहू में आपसी प्रेम बना रहे और आपको भी पाप का बन्ध नहीं हो।

सास बनो तो ऐसी

एक लड़की की शादी हुए कुछ ही दिन हुए थे। जब वह ससुराल में आई तो ससुराल में उसके आने की बहुत खुशी थी क्योंकि बीसों वर्ष बाद घर में बहू आई थी। सब उसे बहुत लाड़-प्यार से रखते थे। सास-ससुर, ननद-देवर सभी उसे हाथों पर लिये रहते थे। वह अपने परिवार से प्रेम पाकर हमेशा सोचती रहती थी कि कहीं मेरे से कोई गलती न हो जावे। एक दिन वह भोजन बना रही थी। गर्मी का मौसम था, अंगीठी जल रही थी, रोटी बनाती जा रही थी और एक-एक को परोसती जा रही थी। एक कटोरे में घी निकाल रखा था वह समाप्त हो गया था इसलिए बहू घी लेने के लिए उठी, हाथ धो कर घी का डिब्बा निकालने लगी। उसने जैसे ही डिब्बा उठाया हाथ गीले होने के कारण वह फिसल गया। गिरते ही डिब्बा चकनाचूर हो गया, डिब्बे का घी पूरे आंगन में फैल गया। इधर घी आँगन में बह रहा था उधर बहू की आँखों से आँसू बह रहे थे, दिल की धड़कन बढ़ रही थी, छाती धोंकनी की तरह धड़कने लगी। सोच रही थी अब क्या मुसीबत खड़ी हो जायेगी....। ऊपर कमरे में सासू जी स्वाध्याय कर रही थी। डिब्बे के फूटने की आवाज सुनते ही दौड़ी-दौड़ी नीचे आई। बहू की पीठ पर हाथ फेरा और बोली- ''बेटा, बहू! कोई बात नहीं, चिन्ता मत करो, घबरा मत, जा शान्ति से बैठ जा। मैं अभी सब साफ किये देती हूँ।'' यह सुन बहू के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। कहाँ तो बहू सोच रही थी शायद आज तो माँ की बहुत डाँट पड़ेगी लेकिन माँ की सहानुभूति प्राप्त कर वह और सिसक-सिसककर रोने लगी। सास ने सब सफाई कर दी.... सब कुछ हो गया। सब अपने-अपने काम में लग गये। भविष्य में भी किसी बात पर इस घटना का जिक्र तक न हुआ जिससे कि बहू को नीचा देखना पड़े। घी तो बह गया पर उसकी सुवास रह गई। बहू अपने भाग्य को सराहती, रोम-रोम में सास की प्रशंसा करती हुई उसका गुणगान करती रही। अपनी माँ को पत्र लिखा- ''माँ! मुझे यहाँ दूसरी माँ मिल गई है, आप जैसा प्यार यहाँ भी पाकर मैं निहाल हो गई हूँ...।''

बहू के आने के बाद सास-ससुर के साथ व्यवहार

जब आपके घर में बहू आ जावे आप अपने सास-ससुर के साथ अपना

व्यवहार अवश्य सुधार लें। वैसे आप सास-ससुर के साथ अच्छा व्यवहार ही करते हैं लेकिन फिर भी अब आपके व्यवहारों को याद रखकर आपके साथ भी वैसा ही व्यवहार करने वाला एक सदस्य आ गया है। अर्थात् आपके घर में बहू आ चुकी है। यदि आप उसे एक मित्र बनायें/मित्र बनाने की कोशिश करें तो आपके जीवनसाथी के समान वह भी आपकी मित्र बनकर जीवनभर साथ दे सकती है और यदि आप उसको मित्र नहीं बना पाये तो आपके शत्रु पक्ष में अर्थात् जिनसे आपकी नहीं बनती है उनसे मिलकर आपके साथ कैसा व्यवहार करेगी या कर सकती है आप स्वयं अनुमान लगावें। फिर उसके साथ-साथ आपने यदि अपने सास-ससुर के साथ अच्छा व्यवहार भी नहीं किया तो संभव है बच्चे के समान आपकी बहू भी आपके दादा-दादी के बिस्तर, भोजन के पात्र आदि को संभालने लगे। जैसा आप सास-ससुर को भोजन देती हैं वैसा ही भोजन आपको देने की लिस्ट अपने स्मृति पटल पर अंकित कर ले अथवा आपके सास-ससुर के पक्ष में मिलकर आपको उनकी दृष्टि से और गिरा दे। इसलिए बहू के आने के बाद, आप भले ही इतने दिन सास-ससुर के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती थीं लेकिन अब उस आदत को सुधार लें। अब आपकी भावनाएँ भले ही अन्दर से (सास का अच्छा नेचर नहीं होने से, पक्षपात करने से अथवा दूसरी बहू को अच्छा रखने के कारण) सेवा करने के भाव नहीं हो रहे हों तो भी आप बहू से सेवा करवावें, बहू को उनका काम करने की प्रेरणा दें ताकि बहू की यह धारणा न बने कि मम्मी-पापाजी दादा-दादी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं या उनकी उनसे बनती नहीं है और वह भी वृद्धावस्था में आपकी सेवा करने से जी नहीं चुरावे। अन्यथा वह आपको कभी यह उलाहना भी दे सकती है कि जब आप अपने सास-ससुर की सेवा नहीं करती हैं तो फिर मेरे से सेवा करवाने की आस ही क्यों लगाती हैं ? मैं भी क्या करूँ, यह तो संसार की नीति ही है कि जो जैसा करता है उसको वैसा फल मिलता है। एक सास-ससुर की अपने बेटे-बहू से बिलकुल नहीं बनती थी। उनके बेटे-बहू अपनी शादी के कुछ महीनों के बाद अलग हो गये। धीरे-धीरे सास-ससुर से उनकी बोल-चाल बन्द हो गई। उनका लड़का बड़ा हो गया। उसकी शादी निश्चित हो गयी। तब उनके बेटे ने कहा- ''पापा, यदि आप दादा-दादी को नहीं बुलाओगे तो मैं शादी नहीं करूँगा और आप सोचो यदि मैं मम्मी के साथ ऐसा व्यवहार करूँगा तो आपको कैसा लगेगा?'' यह सुनकर मम्मी-पापा की अकल ठिकाने आ गयी। यदि वह बेटा यह

सब नहीं कहता और पत्नी के आने के बाद दोनों ही इसी प्रकार की धारणा बना लेते तो उनके साथ क्या बीतती? बेटा समझदार था, रोज देखता था कि मम्मी-पापा, दादा-दादी के साथ कैसा व्यवहार करते हैं लेकिन उसने समझदारी से काम किया, जिससे समय रहते ही मम्मी-पापा को सावधान होने का चांस मिल गया। यदि बहू आकर इस प्रकार का वातावरण देखती तो उसमें क्या संस्कार पड़ते; वह अपने सास-ससुर के साथ क्या व्यवहार करती भगवान जाने। अत: आप भी बहू आने के पहले ही अपना व्यवहार सुधार लें ताकि आपके बेटे को इतना कड़वा नहीं कहना पड़े और बहू भी आपकी सेवा करने में नहीं हिचकिचाए।

(७) वृद्धावस्था के संस्कार

जीवन का अर्थात् शरीर, मन, वचन आदि में जब उतार/उत्साहहीनता, शक्तिहीनता आने लगती है, आँखों की ज्योति खराब हो जाती है, कानों से कम सुनाई देने लगता है, घुटने काम करना लगभग बन्द/कम कर देते हैं, हाथ-पैर भी जवाब देने की कोशिश करने लगते हैं, यही वृद्धावस्था है। यह प्रौढ़ावस्था का ढलान है। यद्यपि वृद्धावस्था एक साथ नहीं आती फिर भी वृद्धावस्था का बहुभाग जब प्रौढ़ावस्था के रूप में व्यतीत हो जाता है तब वृद्धावस्था दिखने लगती है। यह अवस्था वृक्ष पर लगे हुए सूखे पत्ते के समान होती है। जिस प्रकार वृक्ष पर लगा सूखा पत्ता वायु के किस झोंके से अर्थात् किसी छोटे से निमित्त से भी गिरकर नष्ट हो सकता है, उसका कोई विश्वास नहीं रहता है कि वह कब तक, कितने दिनों तक इस वृक्ष पर रहेगा/रह सकता है; इसी प्रकार वृद्ध व्यक्ति के जीवन का भी कोई विश्वास नहीं रहता। वह कब छोटी सी बीमारी से या बिना बीमारी के ही मर जायेगा/मर सकता है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस उम्र में व्यक्ति पराधीनता की अनुभूति करने लगता है। यदि यौवनावस्था एवं प्रौढ़ावस्था में पति-पत्नी का प्रेम बना रहा, वे एक-दूसरे के पूरक बने रहे तो इस वृद्धावस्था में एक-दूसरे के सुख-दु:ख में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। वृद्धावस्था में पति-पत्नी को मित्र के रूप में कल्पना करते हुए कहा है- वृक्ष से एक पत्ता टूटकर मिट्टी के एक ढेले पर जा गिरा। तभी आँधी का जोर बढ़ने लगा। पत्ते ने ढेले से कहा ''ढेले भैया, मुझे बहुत डर लग रहा है, अब यह आँधी क्या पता मुझे उड़ाकर कहाँ ले जायेगी!'' ढेले ने कहा- ''नहीं मित्र, मैं तुम्हें नहीं उड़ने दूँगा। मैं तुम्हारी सहायता करूंगा।'' इस प्रकार कहता हुआ पत्ते के ऊपर गिर गया। वजन पड़ने से पत्ता नहीं

उड़ा। कुछ देर के बाद पानी आने लगा। अब ढेले ने कहा- ''भाई पत्ते, अब मैं नहीं बच सकता यानी मैं पानी में गलकर मिट्टी में मिल जाऊँगा।'' पत्ते ने कहा- ''नहीं मित्र, मैं तुम्हें नहीं गलने दूँगा।'' इस प्रकार कहते हुए पत्ता ढेले के ऊपर आ बैठा अर्थात् पत्ते ने ढेले को ढक दिया, ढेला बच गया। एक कवि ने एक भजन में बुढ़ापे का चित्रण करते हुए कहा है-

चेतन ! चेत बुढ़ापो आयो रे, आयो रे,
सूखी पिंजर हो गई थारी कंचन काया रे।

नैना नजर गेल नहीं सूझे, दाँत हो गया खोळा,
लेय सके ना गंध नाक से, कान हो गया बोला।
अब तो सूना ढोल बजावे रे, सूखी पिंजर हो गई,
चेतन! चेत....॥

बेटा चाले आँका बाँका, बहुआँ रा भरमाया,
मूंडा से ही केवण लाग्या, हीड़ा कर-कर थाक्या॥
बूढ़ो घणो सतावे रे, सूखी पिंजर हो गई,
चेतन! चेत....॥

घर की नारी देख-देख कर, फर-फर मूंडा मोड़े,
खाय सकी नहीं,ओढ़ सकी नहीं, सेवा कर-कर हारे।
मैं तो जीवन भर दुखियारी रे, सूखी पिंजर हो गई,
चेतन! चेत....॥

करड़ी रोटी चबे न मुख से, नरम खीचड़ी भावे,
खारो खाटो खाय सकूं नहीं, मन मीठा पर जावे।
तू तो सुन ले मारा जाया रे, सूखी पिंजर हो गई,
चेतन! चेत....॥

बहुआँ छोड्या कांण कायदा, कद मरसी यो डाकी,
छोरा-छोरी केवण लाग्या, मरे न माचो छोड़े।
मैं तो बूढ़ा सूं घबरावां रे, सूखी पिंजर हो गई,
चेतन! चेत....॥

आछो खायो आछो पहर्यो, खूब उड़ाई मौज,
वे दिन नजरां देखतां जी, मन में आवे रोज।
वो तो भुगत्या बिन ना छूटे रे, सूखी पिंजर हो गई,
चेतन! चेत....॥

अर्थ - हे चेतन आत्मा! अब तो तू सावधान हो जा, तेरा सोने जैसा शरीर सूखकर पिंजर (ढाँचे) के समान हो गया है। अरे, तुम्हें आँखों से दिखना बंद हो गया है, दाँतों से रहित तेरा मुँह पोपला हो गया है, नाक से गंध नहीं आती है और कान भी बहरे हो गये हैं। अब तो तू फालतू के ही ढोल बजा रहा है अर्थात् तेरी बातों को अब कोई सुनने वाला नहीं है। तेरे पुत्र बहुओं के चक्कर में पड़कर तेरी बातों पर कोई ध्यान ही नहीं देते हैं और वे मुँह से ही कहने लगे हैं कि तुम बूढे, उन्हें बहुत सताते हो।

घर की पत्नी तुम्हें (तुम्हारे निर्बल शरीर को) देख-देखकर मुँह मोड़/फेर कर कहने लगी है कि हे बूढ़े! तेरे कारण से मैं न कुछ खा ही सकी हूँ और न ही कुछ पहन सकी हूँ। मैं तो तुम्हारी सेवा कर-करके थक गयी हूँ, तुम्हारे कारण मैं जीवन भर दु:खी ही रही हूँ।

इन बातों को सुनकर वृद्ध कहता है कि मुझ से कड़क रोटी चबती नहीं है, नरम-नरम खिचड़ी भाती है। खट्टा और खारा अच्छा नहीं लगता है, मुझे तो मीठा भाता है, बहुएँ खिचड़ी बनाती नहीं हैं, मीठा खाने को देती नहीं हैं, बेटा! तू तो मेरी सुन ले। तू तो मेरे वीर्य से उत्पन्न हुआ है। आदि.....।

बहुएँ विनय भाव छोड़कर सोचने लगी हैं कि यह डाकी कब मरेगा और बच्चे कहने लगे हैं कि यह बूढ़ा न मरता है और न खाट ही छोड़ता है अर्थात् स्वस्थ होता है। हम तो बूढ़े से बहुत घबरा गये हैं। वृद्ध सोचता है कि मैंने जीवनभर अच्छा खाया, अच्छा पहना और खूब मौज उड़ाई वे दिन जब याद आते है तो मात्र रोना ही आता है। अब तो उन कर्मों को भोगे बिना छूट नहीं सकते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए जीवन व्यतीत करता है।

वैसे जब तक पति-पत्नी दोनों रहते हैं तब तक इस प्रकार की परिस्थितियाँ नहीं आती हैं कि मम्मी-पापा किसके पास रहते हैं या इन्हें कौन रखता है, इनका काम कौन करेगा। क्योंकि जब तक आदमी रहता है वह अपने दो व्यक्तियों के योग्य कुछ-न-कुछ कमा ही लेता है इसलिए बेटे-बहू के सामने हाथ फैलाने की

आवश्यकता नहीं होती है, पत्नी होती है जो भोजन-पानी जैसे-तैसे बनाकर पति को खिला ही देती है। सुख-दुःख में एक-दूसरे के सहयोगी बनकर और पति को कुछ हो जावे तो पत्नी और पत्नी को कुछ हो जावे तो पति सहयोग दे ही देते हैं, देना भी चाहिए। फिर यह सब पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम पर भी आधारित रहता है। यदि दोनों में अच्छा प्रेम है तो यह सब सहज हो जाता है और यदि प्रेम नहीं है तो एक-दूसरे की सेवा विचारणीय होती है। लेकिन जब दोनों में से एक चला जाता है अर्थात् एक मर जाता है तो दूसरे को कहाँ रहना है, किसके पास रहना है, विचार करना आवश्यक होता है। यदि पत्नी मर जाती है और पति जब तक चलता-फिरता रहता है तब तक भी भोजन-पानी आदि में कोई कठिनाई नहीं आती क्योंकि पुरुष वर्ग को रखने में महिलाएँ ज्यादा नहीं कतराती हैं क्योंकि एक तो पुरुष वर्ग बहू के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता दूसरी बात कुछ कमाता भी है। तीसरी बात उसके पास पूर्वोपार्जित कुछ धन भी होता है लेकिन पति के मर जाने पर जब पत्नी अकेली रह जाती है तब यदि एक ही बेटा है तो फिर उसी के पास रहना ही है। कभी-कभी कोई-कोई वृद्ध जब तक अपनी शक्ति चलती है तब तक दादागिरी दिखाते हैं अर्थात् बेटे-बहू से अलग रहने लगते हैं, साथ ही रहते हैं तो यदि बहू कुछ काम करने लगती है तो उसके हाथ से काम छीन लेते हैं, कहने लगते हैं- रहने दे, मैं तो अपना काम स्वयं कर लूँगी, मेरे भी हाथ-पैर चल रहे हैं या बहू के काम करने के पहले ही जल्दी-जल्दी अपना काम कर लेती है। वह सोचती है कि मैं ऐसा चांस ही नहीं आने दूँ। ऐसा बार-बार करने पर कभी बहू भी कह देती है ''हाँ, मम्मी जी! अभी आपके हाथ-पैर चल रहे हैं लेकिन जब हाथ-पैर चलना बन्द हो जायेंगे तब हम ही काम आयेंगे या आखिर आपके हाथ पैर कब तक चलते रहेंगे।'' ''बहू मेरे कपड़े धो-सुखाकर या और कोई काम करने का अहसान करे। यदि मैंने उससे काम करवा लिया और मैं उसका काम नहीं कर पाई तो वह मुझे सुनायेगी। उलटा-सीधा कुछ कहेगी, आदि.....।'' ऐसा सोचना कोई अच्छी बात नहीं है, ऐसा करने से शुरू-शुरू में तो बहू को भी इस बात की तकलीफ होती है लेकिन धीरे-धीरे वह निश्चिन्त हो जाती है। फिर जब वक्त आता है, बहू की हेबिट नहीं होने से वह काम करना भूल जाती है तो सास-ससुर उसको सौ बातें सुना देते हैं, उसकी अनेक शिकायतें करने ही लगते हैं, अड़ोस-पड़ोस में जाकर अपने दुःख के रोने रोते हैं.....। ऐसी स्थिति में वृद्धों को क्या करना चाहिए? इसका उत्तर यही है कि-

(१) शुरू से ही सास-ससुर बहू के साथ अच्छा व्यवहार करें।

(२) हाथ-पैर चलने पर भी बहू से अपना काम करवाते रहना चाहिए ताकि बहू को आपका (सास-ससुर) काम करने का अभ्यास बना रहे।

बँटवारा करते समय ध्यान रखें

जब आपके सभी बच्चों की शादी हो जावे, सबकी अपनी फेमिली हो जावे, और आपके भी निवृत्ति के दिन आ जावें तब आप अपनी सम्पत्ति का बँटवारा करते समय ध्यान रखें। यदि आपके दो बेटे हैं तो अपने धन-जमीन, सोना-चाँदी, मकान-दुकान आदि में से पहले अपनी बेटी के रीति-रिवाज के लिए, अर्थात् बेटी के बच्चों की शादी के समय जो पीहर वालों को करने पड़ते हैं, आवश्यक धन निकालकर अलग रख दें। उसके बाद धन के तीन भाग करें। दो बेटों के और एक भाग आपका। यदि आपके पास धन कम है तो आप अपने बेटों का हिस्सा दे ही दें, धन का बँटवारा करें ही करें कोई जरूरी नहीं है। यदि इतना ही धन है कि जिसके ब्याज, फसल, किराया आदि से प्रतिमाह मात्र आपके जीवन-निर्वाह जितना ही पैसा प्राप्त होता है तो आप बेटोंसे (यदि वे माँगें तो) स्पष्ट कह दें कि हमारे पास देने जितनी कोई चीज ही नहीं है। इतना सा सोना-चाँदी, मकान-दुकान आदि है सो हमें भी आवश्यक है। और जो हमारी अन्त समय तक सेवा करेगा उसको मिलेगा। दोनों करेंगे तो आधा-आधा दोनों को मिलेगा। यदि आपके पास सोना-चाँदी, मकान आदि नहीं है, बैंक बेलेंस है या पेंशन मिलती है तो उसमें से भी आप अपने हिसाब से खर्च करते रहें, कुछ दान देते रहें और कुछ बचाते भी रहें जो समय पर काम आ सके। कभी-कभी बेटे-बहू धन लेने के लिए बहुत वादे कर लेते हैं कि हम निश्चित रूप से आपकी सेवा करेंगे। उन वादों के बहकावे में आकर आप अपनी सम्पत्ति बेटों को न दें क्योंकि धन के लिए आदमी क्या नहीं कर सकता और धन हाथ में आने के बाद कैसा हो जाता है यह तो स्वयं रोज ही सुनते-देखते रहते होंगे। बेटे के हाथ में धन आने के बाद यदि वह अपने वादों से मुकर जावे, आपकी सेवा नहीं करे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यदि वह वादों से मुकर गया, उसने आपकी सेवा नहीं की तो आप क्या करेंगे? ऐसा कर देने अर्थात् उनकी बातों पर विश्वास करके सम्पत्ति दे देने पर स्वयं के पास तो पैसा रहता नहीं जिससे कि यदि बेटे-बहू सेवा/काम नहीं कर रहे हैं तो नौकर आदि से करवा लें और स्वयं से कुछ काम होता नहीं है तब तड़फ-तड़फ कर या आस-पड़ोस, रिश्तेदार आदि के सामने

हाथ फैलाकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इसलिए मरते समय भी पूरी सम्पत्ति बेटों को नहीं दे। अपनी पत्नी के नाम पर ही करके जावें। चाहे आपके विचार पत्नी से बिलकुल नहीं मिलते हैं, जिन्दगी भर भी आप दोनों की लड़ाई होती रही हो, चाहे आपके सामने बेटे-बहू माँ को बहुत अच्छा रखते हों तो भी आप सम्पत्ति बेटे के नाम नहीं करें, पत्नी के नाम पर ही करें। क्योंकि आपके मरने के बाद भी पत्नी के पास सम्पत्ति होगी तो बेटे-बहू भी सेवा कर देंगे और नहीं की तो वह स्वयं पैसों के बल पर अपना काम करवा लेगी। आप अपने जीते-जी ही या प्रौढ़ावस्था से ही पत्नी के नाम से कुछ पैसा बैंक आदि में या सोना-चाँदी, जमीन आदि के रूप में रखते रहें ताकि आपके ऊपर एक साथ भार नहीं पड़े। कभी-कभी वृद्धावस्था में अपने पास पैसा नहीं होने से मंदिर, साधुसमागम आदि के लिए भी तरसना पड़ता है, क्योंकि बेटे ने मकान मंदिर से दूर बना लिया। आप में पैदल चलकर दोनों टाइम मंदिर जाने की शक्ति नहीं है, बेटे के पास स्कूटर आदि से मंदिर छोड़ने का टाइम नहीं है या वह छोड़ना नहीं चाहता और स्वयं के पास पैसा है नहीं जिससे कि टेम्पो आदि से मंदिर चले जायें। यदि पैसा है तो हमेशा के लिए फिक्स टेम्पो करके वृद्धावस्था में भी धर्म/साधु आदि का पूरा लाभ लिया जा सकता है।

बँटवारा नहीं करने से

दामोदर दास के तीनों लड़कों का विवाह हो चुका था। उसके घर में बहुत जायदाद थी। मात्र उसके एक बेटी कुँवारी थी। उसकी माँ पहले ही मर चुकी थी और उस (पिता) की भी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु होते ही घर की बहुओं में हलचल मच गयी। बहुएँ घर के जेवर आदि मूल्यवान चीजें पीहर भेजने लगीं। घर में अंधाधुंध काम होने लगे। तीनों बहुओं का आपस में मेल नहीं था। वे अलग होना ही चाहती थीं, वे ससुर के मरने का ही इंतजार कर रही थीं। पिताजी की मृत्यु के सातवें दिन ही किसी खास बात पर लड़कों ने जायदाद का बँटवारा करना तय कर लिया। तीनों अपने वृद्ध गरीब चाचा को बुला लाये। बिना कुछ बोलचाल के बँटवारा हो गया। लेकिन बेटी (बहिन) कहाँ रहेगी? मकान बड़े भाई के हिस्से में हो गया, दोनों छोटे भाई नकद रकम लेकर संतुष्ट हो गये। हर भाई ने बहिन को रखने के लिए एक शर्त रखी। वह शर्त थी- यदि मेरे पास रहोगी तो शेष दो भाई के घर का दरवाजा बन्द रहेगा। संयोग से रास्ते में भेंट होने पर भी उनसे बातचीत करने की बात कान पर आई तो समझ लो तुम्हारे लिए इस घर में जगह नहीं रहेगी। बेचारी

बहिन क्या करती, आखिर बहिन को सबसे बड़े भाई के यहाँ रहना पड़ा। उसके भाई-भाभी उसको अपनी शर्त के अनुसार ही रखते थे। एक दिन बहिन को गुस्सा आ गया। वह भाभी की डाँट, फटकार, धमकियाँ सुनती हुई भी बगीचे से सहजना की फलियाँ लेकर अपनी चाची के यहाँ पहुँच गई। चाची के वात्सल्य पूर्ण व्यवहार से वह फूट-फूटकर रोने लगी। तभी उसका दूसरे नम्बर का भाई आ गया। बहिन ने चाची से कहा- ''चाची, मैं अभी आधी फलियाँ भैया को दे देती हूँ, आधी आप ले लो।'' चाची ने सहज स्वीकार कर लिया। तभी तीसरे नम्बर वाला भैया भी वहाँ पहुँच गया, बहिन चाची से फलियाँ लेकर छोटे भैया को देने लगी तभी चाची ने कहा- ''क्यों बेटी! क्या भैया बाजार से इतनी सी फलियाँ भी नहीं खरीद पायेगा।'' बहिन ने कहा- ''नहीं, चाची! भैया बहुत फलियाँ खरीद सकते हैं लेकिन अपने पिताजी के बगीचे की फलियाँ कब खायेंगे?'' तभी बड़े भैया आ गये, बड़े भैया को देखकर बहिन डरकर भैया के पैरों में पड़कर सुबक-सुबककर रोने लगी। उसका रोना देखकर बड़े भैया का हृदय करुणा एवं प्रेम से भर गया। उसने बहिन को उठाते हुए कहा- ''बहिन रोओ नहीं, मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूंगा। बोलो, तुम क्या चाहती हो?'' बहिन ने कहा- ''भैया, मैं अपने तीनों भैया को चाहती हूँ। मेरी जब इच्छा हो मैं उस भैया के घर जा सकती हूँ......।'' तीनों ने उसकी बात स्वीकार कर ली....। यह है, जीते जी बँटवारा नहीं करने का फल। जीते जी बँटवारा करने से भाई-भाई में भी विद्वेष उत्पन्न होता है। पीछे बेटी, पत्नी या कम दिमाग वाला बच्चा हो तो उसकी ऐसी ही हालत होती है अत: आप समय रहते ही अर्थात् मरने से पहले ही सम्पत्ति बेटे, पत्नी, बच्चों आदि में अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार अवश्य बाँट दें।

बँटवारा करते समय पक्षपात नहीं करें

आपका छोटा या बड़ा बेटा कितना भी अच्छा हो, आपका भक्त हो, आपके कहे बिना एक कदम भी नहीं रखता हो, उसकी पत्नी भी आपके प्रति विशेष प्रेम वाली हो, आप सम्पत्ति का बँटवारा करते समय किसीको कम और किसी को ज्यादा नहीं दें। एक से छुपाकर दूसरे को नहीं दें क्योंकि आप कितना ही छुपकर करें, बात खुले बिना नहीं रहती है। कभी-न-कभी बात खुल ही जाती है। वस्त्राभूषण पहने हुए एक बच्चा रास्ता भटक गया। भटकते-भटकते वह एक जंगल में पहुँच गया। थका हुआ वह एक वृक्ष के नीचे बैठा। बैठे-बैठे उसको नींद आ

गई। तभी वहाँ एक संन्यासी ने उसको देखा। संन्यासी के मन में बच्चे को देखकर लोभ उत्पन्न हो गया। वह उसको मारने ही वाला था कि उसकी (बच्चे की) नींद खुल गई। बच्चे ने कहा- ''संन्यासी, मुझे मारो नहीं, अन्यथा बात कभी भी खुल जायेगी।'' संन्यासी ने कहा- ''यहाँ कौन देख रहा है जो बात खोल देगा, यहाँ तो एक चिड़िया भी नहीं है।'' बच्चे ने कहा- ''बाबाजी, देखो, वह पानी का बुलबुला देख रहा है। वह कह देगा, तुम्हारी पोल खुल जायेगी। तुम पकड़े जाओगे, तुम्हे फाँसी की सजा मिलेगी।'' संन्यासी ने बच्चे की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने उसको मार डाला और आभूषण उतारकर एक गड्ढे में गाड़ दिया। बच्चे की खोजबीन की गई। नहीं मिलने पर सी.आई.डी. लगाये गये। बच्चे की खोज करने के लिए एक सी.आई.डी. उसी संन्यासी का भक्त बन गया। ८-९ महीने बाद वर्षा बहुत आई, पानी के बुलबुले उठ रहे थे। भक्त वैय्यावृत्ति कर रहा था। संन्यासी को बुलबुले देखकर हँसी आ गई। भक्त ने संन्यासी से हँसने का कारण पूछा। संन्यासी ने भक्त को अपना समझकर सब बात बता दी। बुलबुले ने बात (कपट) खोल दी। अत: आप छुपाकर भी किसी बेटे-बहू को कुछ न दें। जैसे ही दूसरे बेटे-बहू को आपकी बात मालूम पड़ेगी कि मम्मी-पापा छोटे या बड़े वाले को ज्यादा देते हैं, छुपाकर देते हैं तो आपके प्रति उनके भाव अच्छे नहीं रहेंगे। ऐसा करने से कभी-कभी तो माता-पिता के बीमार हो जाने पर भी बेटे-बहू कह देते हैं कि उनको देते हैं, छुप-छुपकर खिलाते हैं तो वे करेंगे, हम क्यों करेंगे। हम तो बिल्कुल नहीं करेंगे। और समय पर पैसा खर्च करने की बात तो दूर रही सामने तक नहीं देखते हैं। अत: आपके तो दोनों ही बेटे बराबर हैं, हाँ जो बेटा आपका लाड़ला या सेवा करने वाला है उसको आपके हिस्से का सहज रूप में मिलेगा ही और आपकी सेवा करने से जो पुण्य मिलेगा उसके फल में उसको जो मिलेगा उसकी गणना कौन कर सकता है इसलिए आप दो-चार हजार ज्यादा देकर उसके पुण्य को क्यों घटाते हैं क्योंकि आपके द्वारा छुप करके दूसरे भैया से ज्यादा लेकर हो सकता है उसमें स्वार्थ भावनाएँ उत्पन्न हो जावें और वह स्वार्थी बनकर आपकी सेवा करेगा तो उसको सेवा का कुछ भी फल नहीं मिल सकता है। और फिर दो-चार हजार ज्यादा दे देने से उसका कितना काम चल जायेगा, आखिर उसका काम तो स्वयं के कमाने से ही चलेगा। आप इतना सा देकर दूसरे बेटे की दृष्टि से क्यों गिरते हैं, क्यों उसके मन में माता-पिता के प्रति खराब भाव होने का अवसर देते हैं। यही सब सोचकर आप बँटवारा

करते समय पक्षपात नहीं करें ताकि आपके सभी बेटे आपकी सेवा करने में तत्पर रहें।

इसी प्रकार आप अपने परिचितों, रिश्तेदारों-मित्रों आदि के सामने कभी यह नहीं कहें कि छोटा वाला/बड़ा वाला तो ठीक ही है। छोटा/बड़ा वाला अच्छा है, वह करेगा हमारी सेवा तो, उसकी पत्नी भी अच्छी है, उसको हमारे से थोड़ा प्रेम भी है, वो घर पर (बाहर रहता है) आता-जाता भी रहता है वो तो बहुत कम ही आता है, आदि.....। ये बातें जिस दूसरे बेटे के पास पहुँचेंगी, दूसरे बेटे को जब ये बातें मालूम पड़ेंगी तो आप सोचें उसको कैसा लगेगा। ये सब बातें सुनकर भी क्या उसकी भावना आपकी सेवा करने की हो सकती है वह आपकी सेवा करने के विचार बना सकता है, कभी नहीं बना सकता। उसके तो यदि थोड़ी-बहुत सेवा करने के भाव होंगे तो वे भी समाप्त हो जायेंगे। क्योंकि आपकी भावनाओं का सम्प्रेषण ही ऐसा होगा। इन बातों को सुन उसे ऐसा भी लग सकता है कि मम्मी-पापा मुझसे सेवा करवाना ही नहीं चाहते हैं या हमारे (पति-पत्नी, बच्चों के) हाथ की सेवा उनको पसन्द नहीं आती है। अर्थात् हमें सेवा करना नहीं आता...। और जब वह बेटा सुनेगा कि मम्मी-पापा को हमारे हाथ की सेवा पसन्द है या उन्हें यह विश्वास है कि दूसरा भैया सेवा नहीं करेगा तो वह भी लापरवाही कर सकता है और यदि लापरवाही करेगा तो फिर आपकी सेवा कौन करेगा। इसलिए आप ऐसी इधर-उधर की बातें करें ही नहीं ताकि दोनों (सभी) बेटों के मन में आपके प्रति सेवा के भाव बने रहें।

आदेशात्मक नहीं बोलें

अब आप जवान नहीं हैं। अब आपमें वह शक्ति नहीं बची है जिसके बल पर आप कुछ कर सकें। अब तो आप बेटे-बहू के पास रहते हैं। एक समय था जब बेटा आपके पास रहता था। आप स्वयं किसी के पूछने पर यही कहते होंगे कि हम उस छोटे या बड़े बेटे के पास रहते हैं और बेटे-बहू भी यही कहते होंगे कि मम्मी-पापा हमारे पास रहते हैं या छोटे/बड़े भैया के पास रहते हैं। बस, इन बातों से ही आपको समझ लेना चाहिए कि अब आप इस घर के होकर भी मालिक नहीं हैं, स्वामी नहीं हैं। इसलिए आपको किसी को किसी भी बात का आदेश देने का अधिकार नहीं है। यदि आप शान्ति से जीना चाहते हैं तो अब आपको स्वयं ही आदेश नहीं देना चाहिए ताकि न आपको कभी ऐसा लगे कि बच्चों-पोतों-बहुओं ने

बात नहीं मानी और न उनको यह लगेगा कि हमने अपने वृद्धों की बात नहीं मानी।

कुछ-न-कुछ अवश्य करते रहें

अब आप वृद्ध हो गये हैं। आपकी शक्ति कम हो गयी है। फिर भी आप थोड़ा-बहुत कुछ-न-कुछ अवश्य करते रहें। जैसे आप अब दुकान पर बैठने का काम नहीं कर सकते हैं तो बेटे को समय पर रोटी खाने के लिए भेजना, उधारी की रकम लाना, सब्जी आदि सामान्य चीजें लाना, आदि, इसके अलावा घंटे-दो घंटे किसी की दुकान पर या अपनी ही दुकान का बही-खाता करने का काम अवश्य करें। यदि आप पढ़े-लिखे हैं तो भले ही फ्री में पढ़ावें लेकिन पढ़ावें अवश्य ताकि आपकी बुद्धि कुण्ठित नहीं हो और आपका मन भी लगा रहे। आप किसी कार्य में अपना मन नहीं लगायेंगे तो बेटे-बहू के कामों में डिस्टर्ब करेंगे और डिस्टर्ब करने से आपस में झगड़ा होगा, मन मुटाव होगा....। इसका अर्थ यह नहीं कि आप पूरे दिन मोबाइल या फोन लेकर बैठे रहें। व्यापारियों से बात करके व्यापार करते रहें। एक दिन लगभग ७० वर्ष का एक व्यक्ति आया। मैंने कहा- ''बाबाजी, पूरे दिन क्या करते हैं? घंटे, दो घंटे माला फेरा करो। थोड़ा (धार्मिक) ग्रन्थों का अध्ययन किया करो।'' उन्होंने कहा- ''माताजी, मैं पूरे दिन कुछ नहीं करता हूँ, केवल व्यापारियों के फोन अटेंड करता हूँ और यदा कदा कार लेकर माल के पैसे लेने चला जाता हूँ।'' मैंने कहा- ''आपका बेटा तो सपूत है, काम करता ही है, आपका व्यापार भी अच्छी तरह संभाल लेता है फिर आप किसके लिए इतना श्रम करते हैं।'' वे बोले- ''नहीं, माताजी मैं भैया (बेटे) के लिए कुछ नहीं करता हूँ। इन दोनों (उनके पास दोनों पोते खड़े थे) के लिए करता हूँ।'' ऐसी होती है असंस्कारित वृद्ध लोगों की धारणाएँ। आप ऐसा नहीं करें, आप काम करें। लेकिन अपनी शक्ति को केवल काम में ही नहीं लगावें; थोड़ा अपनी आत्मा के कल्याण में भी लगावें। इसी प्रकार महिलाएँ भी बच्चों को पढ़ाना-लिखाना, खिलाना, स्कूल से लाना-छोड़ना, कहानियाँ सुनाना आदि काम करती रहें। घंटे दो घंटे सिलाई-बुनाई, चरखा चलाना आदि घरेलू उद्योग जो आपके यहाँ चलते हैं, आप कर सकती हैं, करती रहें/ करें। यदि बहू को सिलाई आदि में आपके सहयोग की आवश्यकता हो तो सहयोग भी अवश्य दें ताकि आपका मन लगा रहे और घर में शांति भी बनी रहे।

एक वृद्ध अप्रैल के महीने में जमीन में गड्ढे खोद रहा था। उसकी दशा बहुत दयनीय थी। एक बच्ची ने उनसे पूछा- ''बाबा! आप ये क्या कर रहे हैं ?''

वृद्ध ने बिना रुके उत्तर दिया, ''मैं गड्ढे खोद रहा हूँ ?'' उसने पूरे मैदान में काफी गड्ढे खोद लिये। एक दिन फिर किसी ने पूछा- ''बाबा, आपने इतने गड्ढे क्यों खोदे?'' वृद्ध ने कहा- ''मैं इनमें पेड़ लगाऊँगा, बरसात आने से पहले पूरी तैयारी करनी है।'' बच्चों ने कहा- ''अब पेड़ लगाकर क्या करोगे? आप इनके फल तो खा नहीं पाओगे।'' बाबा ने कहा- ''ये पेड़ मैं अपने लिए नहीं लगा रहा हूँ, ये मैं तुम्हारे लिए लगा रहा हूँ। मैंने जिन पेड़ों के फल खाए उन्हें मैंने नहीं लगाया था और शायद उसने भी उनके फल नहीं खाए होंगे जिसने पेड़ लगाए।''

एक बहू ने बताया - मेरी दादी सास लगभग ९५ वर्ष की आयु की है। वह अपना काम खुद करती है। अक्सर बाजार के सामान के साथ पुड़ियों पर धागा लपेटकर आता है। वे कहती हैं, बहू, धागा निकले मुझे दे देना। उस धागे को वे सुलझाकर लच्छी बनाती हैं और फिर किसी दिन एक सुन्दर सी डोरी मुझे पकड़ा देती हैं और मैं आश्चर्यचकित होकर पूछती हूँ- माँ सा! आपने ये सब कब बना डालीं? माँ सा कहती हैं, रात को नींद खुल जाती है न तो फिर पड़े-पड़े बड़ा खराब लगता है इसलिए मैं उन धागों को गूँथने बैठ जाती हूँ.... और ये सुन्दर डोरी बन जाती हैं। माँ सा का इतनी उम्र में भी यह रचनात्मक कार्य है। वे कहती हैं डोरी गूँथने में इतनी मगजमारी होती है कि दिमाग नई-नई डिजाइन में उलझ जाता है और बुरे विचार गायब। दो वृद्धों के जीवन की ये घटनाएँ, उनकी अपने आप को काम में लगाए रखने की एक विधि है। आप भी अपने आप को किसी काम में व्यस्त रखें। अगर शारीरिक श्रम कम होता है तो साहित्य पढ़ने में अपना मन लगावें।

एक ही बेटे के पास बँधकर नहीं रहें

आप पुरुष हैं या स्त्री, यदि आपके एक से ज्यादा बेटे हैं तो आप एक ही बेटे के यहाँ बँधकर नहीं रहें। चाहे आपका एक बेटा किसी दूसरे गाँव या शहर में रहता हो, चाहे वह गाँव ऐसा हो जहाँ आपका मन नहीं लगता हो, जहाँ के धार्मिक साथी आपकी बराबरी के न हों,अड़ोस-पड़ोस में आपके विचारों से मेल खाने वाले लोग नहीं रहते हैं, जहाँ की भाषा (कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट-) भी आप नहीं समझ पाते हों तो भी आप वर्ष में यदि पास में है तो २-४ बार उसके यहाँ आठ-पन्द्रह दिन रह आवें और दूर है तो स्वास्थ्य एवं वहाँ के वातावरण के अनुसार वर्ष में एक ही बार में दो-चार महीना रह आवें ताकि दोनों में से किसी भी बेटे के मन में यह धारणा नहीं बने कि आप छोटे या बड़े बेटे के पास रहना चाहते हैं या किसी

एक के पास नहीं रहना चाहते हैं। आप किसी भी बहू के पास रहें दूसरी बहू के बच्चों से भी उतना ही प्रेम रखें। समय आने पर आवश्यकता के अनुसार उतना ही सहयोग करें जितना आप, जिसके पास रहते हैं, उसका करते हैं। आप अपने बहू, पौत्र-पौत्री आदि को त्यौहार आदि के दिनों में कुछ राशि सौ-पचास-पच्चीस जितने आप दे सकते हैं, अवश्य दें ताकि आपके प्रति उनकी वात्सल्य की भावना बनी रहे। एक महिला यद्यपि संयुक्त परिवार में ही रहती थी लेकिन छोटे बेटे के प्रति उसका प्रेम था, वह बड़े बेटे से बोलती भी बहुत कम थी। जब देखो छोटे ही छोटे के गीत गाती रहती थी। फल यह हुआ कि बड़ा बेटा तो गम्भीर था कुछ नहीं कहता था लेकिन उसके बच्चे दादी को जो मन में आया बोलते रहते थे और दादी उन छोटे-छोटे बच्चों के कटु सत्य वचन के तीरों को सुनकर रोने के अलावा कुछ नहीं कर पाती थी। आश्चर्य इस बात का भी था कि दोनों बहुओं का आपसी प्रेम भी उसको खटकता था। इसलिए छोटी बहू भी उसके सुख-दु:ख की बात नहीं सुनती थी अत: आप ऐसे काम नहीं करें।

बोलते समय जबान पर लगाम रखें

आप बोलते समय इस बात का विचार अवश्य रखें कि आप जो बात कह रहे हैं, इस प्रकार की बातें आपके बहू-बेटे को पसन्द हैं या नहीं। जैसे- कभी कोई दोनों पिता-पुत्र, पति-पत्नी, माँ-बेटे/बेटी बात/काम कर रहे हैं उनके बीच में आपका सजेशन, टोका-टोकी, आपके विचार रखना, आदि। यदि आपके बीच में बोलने से उनको बुरा लगता है तो वे आपके विचारों को सुनकर अनसुनी कर देते हैं या मजाक/व्यंग्यात्मक हँसी करके रह जाते हैं तो आप बिल्कुल नहीं बोलें। चाहे उनका काम कितना ही गलत हो वहाँ आपका बोलना मात्र अपना अपमान करवाना है। नीति में भी कहा है-

बहु सुनबो कम बोलबो, यही बड़ों की रीत।
याही तैं विधि ने दिये, दोय कान इक जीभ ।।

कई महिला/पुरुष जिस बहू-बेटे के पास रहते हैं, दूसरे वालों के पास जाकर उसकी बुराई करते रहते हैं। घर के बाहर भी मित्रों, परिचितों, रिश्तेदारों आदि के बीच बहू-बेटों के बारे में यद्वा-तद्वा बोलते रहते हैं। यही आपमें और बहू-बेटे में लड़ाई का कारण बनता है क्योंकि उनको लगता है कि एक तो हम इनकी इतनी सारी व्यवस्थाएँ/सेवा करते हैं और ऊपर से ये हमारी ही बुराई करते हैं। यदि

हम खराब हैं तो जायें उन्हीं के पास जो अच्छे हैं.....। यदि वृद्ध लोग बिना प्रयोजन के कभी बच्चों को, कभी बहुओं को तो कभी नौकर-चाकर आदि को ही कुछ-कुछ कहते रहते हैं तो उनकी बहुएँ-बच्चे यह तक कहने लगते हैं कि ''बाबा खाते तो एक बार हो और बोलते पच्चीस बार हो, चुपचाप बैठ जाओ, क्यों अनावश्यक परेशान करते हो, पूरे दिन कुछ-न-कुछ बड़बड़ाते ही रहते हो। कभी तो १० मिनट शांति से बैठ जाया करो आदि.....।'' आप पहले से ही नहीं बोलें क्योंकि यौवन के नशे में चूर व्यक्ति को बूढ़े व्यक्ति का बोलना प्राय: अच्छा नहीं लगता है। अत: आप बच्चे को लेकर उसके साथ खेलते रहें। पुरुष हैं तो बाजार आदि का काम करते रहें ताकि आपको ज्यादा बोलने का समय नहीं मिले जिससे कि उनको ऐसे-वैसे शब्द कहने पड़ें। दूसरी बात आप कभी बच्चों-बहुओं से बराबरी नहीं करें अर्थात् उनके कुछ कहने पर बराबरी से जवाब नहीं दें ताकि बच्चों को आपका तिरस्कार करने का अवसर ही न मिले।

आप बहू-बेटे के वैभव-सम्पत्ति-भोग सामग्री आदि को देखकर ईर्षा के परिणाम भी नहीं रखें। आप उनके ऐशयुक्त जीवन से अपने जीवन की तुलना करके उलटा-सीधा व्यंग्य या अपने दु:ख का रोना न रोवें। इससे भी बेटे-बहू को लगता है कि जब मम्मी/पापाजी हमारे सुख से ही दु:खी हैं तो हम उन्हें सुखी बनाने की कोशिश क्यों करें? अत: आप अपने आपको कंट-ोल में रखें।

एक वृद्धा अपने बेटे के नवनिर्मित मकान को देखकर खुश होने के बजाय दु:खी होती हुई बेटे से बोली- ''बेटा! तेरे बाबूजी से कितनी बार कहा, एक छोटा-मोटा मकान बनवा लो। बुढ़ापे में काम आयेगा पर नहीं, वे तो बस पूरा पैसा बच्चों का भविष्य बनाने में लगाते रहे....।'' मैं सोचती हूँ वह वृद्धा इसके आगे दो-चार वाक्य और कह देती तो कितना अच्छा होता, जिनको सुनकर बेटे-बहू खुश हो जाते अर्थात् वह इसके आगे यह बोलती- ''चलो, अच्छा हुआ, मेरी इच्छा वे (तुम्हारे बाबूजी) पूरी नहीं कर पाये तो तुमने तो कर ही दी। अब मैं वृद्धावस्था में ही सही तुम लोगों को नये मकान में रहते देखकर खुश रहूँगी....।'' इस प्रकार आप थोड़ी बुद्धि से काम लेकर बहू-बेटे को अपना बनाकर रख सकती हैं।

आप अपने भोजन के विषय में भी कभी फरमाइश नहीं करें। जैसा थाली में आवे चुपचाप खा लें। पेट तो किसी भी भोजन से भर सकता है लेकिन मन की तृष्णाएँ शान्त नहीं होतीं। उसको कितना भी खिला दो वह खाली ही रहता है।

अत: आप किसी भी चीज की मांग नहीं करें। संतोषवृत्ति रखें। संतोष का फल हमेशा मीठा होता है। संतोष से व्यक्ति स्वयं भी सुखी रहता है और सामने वाले को भी सुख उत्पन्न करता है। कुछ बने तो भी संयम से खावें अर्थात् भजिया, पूड़ी, कचौड़ी आदि नमकीन, गुलाबजामुन, कलाकन्द, बर्फी, जलेबी आदि मिठाइयाँ बनी हैं तो अपने स्वास्थ्य की क्षमता के अनुसार खावें। आपने ज्यादा खाया, आपका स्वास्थ्य खराब हो गया। पेट बिगड़ गया तो बेटे-बहू पौत्रादि आपको डाँट सकते हैं, उलटा-सीधा कह सकते हैं और भविष्य में नमकीन-मिठाई, पापड़-खीचला आदि खिलाने की बात तो बहुत दूर, बनाएँगे तो भी छुपाकर रखेंगे, छुपकर खा लेंगे। कम खाने से आपको दोहरा लाभ होगा। एक तो आपका पेट खराब नहीं होगा। दूसरे बहू-बेटे आदि यह सोचकर कि अरे दादाजी/मम्मीजी/दादी तो दो-चार भजिया खायेंगे। मिठाई के एक-दो पीस खायेंगे इसलिए उनको बता भी दें, उनकी थाली में परोस भी दें तो कोई ऐसी बात नहीं है।

आप वृद्ध हैं, रिटायर हो गये हैं, आपको अधिक समय तक घर में रहना ही पड़ेगा या रहते ही हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि आप घर की बहू-बेटियों के कार्यों में नुक्ताचीनी करने लगे। एक बहू ने मुझे कहा- ''माताजी! पापा जी बहुत अच्छे हैं लेकिन अब रिटायर हो गये हैं इसलिए पूरे दिन घर में रहते हैं और यदि २-४ घण्टा भी कोई फल बाहर रखा रह गया तो जल्दी से टोक देते हैं। डाँट देते हैं। ''ये फल, नींबू बाहर क्यों रखे हैं। फ्रिज में क्यों नहीं रखे, ये सड़ जायेंगे। ये बर्तन यहाँ क्यों रखे हैं, ये चीजें किसने बिखेर दीं आदि....। माताजी! कितना भी सम्हाल कर रखूँ। बच्चे फिर-फिर से बिखेर ही देते हैं, इधर-उधर कर ही देते हैं। जब मैं पापा जी से बार-बार सुनती हूँ तो कई बार मन में आ जाता है कि मैं पापाजी को थोड़ा जोर से बोलकर कह दूँ ''पापाजी! आपको इन सब बातों से क्या करना है। आप अपने रूम में क्यों नहीं रहते....।'' वृद्ध हो या जवान, आदमी घर को नहीं संभाल सकता। आपके बच्चे भी छोटे होंगे तब वे क्या-क्या करते होंगे, कितनी चीजें बिखेरते होंगे, सड़ती होंगी आपको क्या पता? क्योंकि आप ऑफिस में रहते थे। आपकी पत्नी ने कभी इस प्रकार की कोई बात आपसे नहीं बताई। बच्चों की हरकतें माँ ही सहन कर सकती हैं, पिता नहीं। आप भी घर में रहते हैं लेकिन आपको बहू-बेटी, पत्नी, पौत्र आदि के कार्यों को नजर अन्दाज करना चाहिए। नहीं तो आपको यदि कभी बहू ने कड़वा कह दिया तो आप अन्दर से कितना

तिलमिलाएँगे। आप सोचें और फिर रहना भी वहीं पड़ेगा। उसी बहू से तुम्हें प्रेम से बोलना पड़ेगा, उसी के यहाँ खाना पड़ेगा.....। अत: अपनी जबान पर थोड़ा कंट-ोल रखें ताकि आपको बहू से कभी तिरस्कार की कड़वी घूंट नहीं पीनी पड़े।

इसी प्रकार यदि बच्चे के कपड़े खरीदे हैं तो यह कह देना कि ''अरे! अभी दो महीने पहले तो कपड़े लाये थे, इतनी जल्दी फिर ले आये। इतनी सारी फल-सब्जियों का क्या करोगे? इतनी क्यों लाये? अभी तो तुम लोग घूमकर आये थे फिर से जाने लगे... आदि-आदि बातों से डिस्टर्ब नहीं करें। क्योंकि अपने जमाने के अनुसार उनको भी चलना ही पड़ता है। एक युगल आया। मैंने पूछा- ''इतनी दूर तुम लोग गत वर्ष तो आये थे, फिर आ गये।'' उन्होंने कहा- ''माताजी! पापा तो बहुत मना कर रहे थे, डाँट भी रहे थे लेकिन हमने सोचा, जवानी है तब तक (पहाड़ों पर चढ़कर) यात्रा कर लें। अभी से घुटने दुखने लगे हैं तो बुढ़ापे में तो पता नहीं क्या होगा? यही सोचकर आ गये। फिर पापा तो हमेशा मना करते ही रहते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि मैं इतना पैसा खर्च क्यों करता हूँ। माताजी! मैं तीर्थयात्रा, दान, गुरुदर्शन आदि में पैसा खर्च नहीं करूंगा तो क्या बाँधकर साथ में ले जाऊँगा। मैं सोचता हूँ जितना करना हो कर लो, कब मौत आ जायेगी। कुछ साथ जाने वाला नहीं....।'' आप इन सब बातों का खयाल रखें ताकि बेटे को आपकी बात का उल्लंघन करने के लिए मजबूर न होना पड़े।

कुछ सम्पत्ति अपने पास अवश्य रखें

आप यह सोचकर कि अब मुझे पैसों से क्या करना है, मेरे से सँभलते भी नहीं हैं और मुझे पैसों की आवश्यकता भी क्या है, पूरी सम्पत्ति बेटों को नहीं देवें। पैसा नहीं होने पर सेवा करता ही कौन है, पैसा हो और यदि देने के भाव नहीं दिखे तो भी लोग सेवा नहीं करते हैं तो फिर यदि पास में पैसा हो ही नहीं तो कौन सेवा कर सकता है। और इस जमाने में तो यह बात विशेष विचारणीय ही है। पैसा पास में हो तो सम्भव है कोई थोड़ी सेवा कर भी देगा। कभी-कभी पूरी सम्पत्ति दे देने से छोटी-छोटी चीजों के लिए बेटे-बहू के सामने हाथ फैलाने पड़ते हैं। कभी कुछ दान देने का भाव भी हो तो बेटे से माँगना पड़ता है, बेटे से माँगने के लिए सोचना पड़ता है और बेटे के मना कर देने पर मन-मसोस कर रहना पड़ता है। अत: आप अपने पास कुछ मूल्यवान और कुछ हमेशा खर्च के लिए प्राप्त हो जावे ऐसी सम्पत्ति अवश्य रखें। यदि कुछ काम करते हैं तो पूरी आमदनी बेटे को न दें।

एक वृद्ध सेठ के चार पुत्र थे। उसने अपनी पूरी सम्पत्ति को यह सोचकर कि चारों बेटे-बहुएँ अच्छे हैं और सम्पन्न भी हैं इसलिए मुझे क्या करना है, बुढ़ापे में कोई-न-कोई तो मुझे दो रोटी खिला ही देगा, चारों पुत्रों में बराबर-बराबर बाँट दी। पुत्रों की माँ धन के बँटवारे के पहले ही मर चुकी थी। जब तक सेठजी दुकान आदि का काम सम्हालते थे सब अच्छा चलता रहा। लेकिन जब सेठजी से काम होना कम हो गया, सेठ जी की इन्द्रियों और शरीर ने जवाब देना प्रारम्भ कर दिया तो बेटे-बहुओं ने भी जवाब देना प्रारम्भ कर दिया अर्थात् बेटे-बहू भी वृद्ध सेठ को भोजन कराने, कपड़े धोने आदि में एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। कभी-कभी तो यहाँ तक स्थिति आ जाती थी कि ''सात मामा का भानजा भूखा रह गया।'' कहावत घटित हो जाती थी। सेठजी को भी भोजन नहीं मिल पाता। सेठजी अपनी गलती (पूरी सम्पत्ति बाँट देने) का पश्चाताप करते हुए दु:खी रहने लगे। ऐश में जीने वाले सेठ के पास किसी गरीब को देने के लिए २-४ रुपये भी नहीं थे। आखिर एक दिन सेठ ने मजबूर होकर अपने एक मित्र के सामने अपनी व्यथा कह सुनाई। मित्र की बात सुनकर मित्र बहुत दु:खी हुआ लेकिन वह भी वृद्ध था। वह भी अपने बेटे-बहू के आश्रित था अत: वह धन से अपने मित्र की सहायता करने में असमर्थ था। इसलिए उसने अपने मित्र को एक युक्ति बताकर उसके अनुसार काम करने की सलाह दी। मित्र ने युक्ति स्वीकार कर ली। एक दिन वृद्ध सेठ और मित्र एक झोले में कुछ नये डिब्बे लेकर घर पहुँचे और अपने कमरे के दरवाजे को थोड़ा सा बन्द करके डिब्बे खोलने लगे। डिब्बे खुलने की धीमी-धीमी आवाज सुनकर बहुओं में हलचल मच गयी। आज फलाने सेठजी जो पिताजी के मित्र हैं, एक झोले में नये डिब्बों में कुछ-न-कुछ मूल्यवान वस्तु लेकर आये....। उन सबने मिलकर जानकारी प्राप्त करने के लिए एक बच्चे को दादाजी के पास (देखने के लिए) भेजा। बच्चा दादाजी-दादाजी कहता हुआ कमरे में पहुँचा और दादाजी से लिपट गया। उस समय दोनों सेठ गले का हार देख रहे थे, चूड़ियाँ पास में रखी थीं और एक-दो डिब्बों में सोने के बिस्किट से कुछ चमक रहे थे। बच्चा ५-१० मिनट में मम्मी-चाची के कहे अनुसार सब कुछ देखकर आ गया। बहुओं ने बच्चे से सब जानकारी ले ली। थोड़ी देर में मित्र अपना झोला लेकर चला गया। झोले में डिब्बे का कोई शेप नहीं दिखा। सबको विश्वास हो गया कि मित्र सेठ अब आभूषण सेठजी के पास छोड़कर गये हैं। सेठ ने अपनी पेटी के अच्छे बड़े दो ताले लगाकर चाबियाँ

कमर में बाँध लीं और पेटी को अपने तकिये के पास रख लिया। वे जब भी बाहर निकलते अपने कमरे के ताला लगाकर जाते, कभी-कभी धीरे से पेटी खोलकर टटोल लेते थे। इन सब क्रियाओं से बेटे-बहू को विश्वास हो गया कि सेठ के पास कम-से-कम भी ५०-६० तोला सोना तो है ही। धीरे-धीरे इनडाइरेक्ट मित्र आदि के माध्यम से बेटों ने धन के बारे में जानकारी ले ली। और सेठ से यह भी जान लिया कि जो सेवा करेगा उसे पूरी सम्पत्ति मिलेगी। सभी बहुएँ-बेटे आगे-आगे सेठ के भोजन आदि की व्यवस्था करने लगे। सभी ने बैठकर यह निर्णय लिया कि अपन सभी पिताजी की सेवा करेंगे और पिताजी के जाने के बाद धन को भी सभी बाँट लेंगे। सभी अच्छी सेवा करते थे। आखिर वह दिन आ गया जब सेठ की आत्मा इस शरीर को छोड़कर चली गयी। सबने मिलकर सेठ की मृत्यु के बाद होने वाले कार्यक्रम किये। उसके बाद जब सेठ की पेटी खोलकर डिब्बे निकालकर देखे तो डिब्बों में सोने की बात तो दूर एक पैसा भी नहीं था.....। सेठ ने पहले भूल की लेकिन मित्र की युक्ति से अपनी वृद्धावस्था में शान्ति से जी गया लेकिन आप ऐसी गलती कभी नहीं करें।

दो-चार मित्र अवश्य बनायें

यदि आपके बचपन से ही या यौवनावस्था से ही मित्र बने हुए हैं तो बहुत अच्छा है। वृद्धावस्था में सभी मिलकर सुबह शाम दोपहर एक-दो घण्टा मनोरंजन अवश्य करें। आपस में मिल बैठ, अपने सुख-दु:ख की बातें करें। एक-दो घण्टा एक-साथ मिलकर मंदिर में भगवान की पूजन-भक्ति-स्वाध्याय आदि करें। एक-साथ ही साधु-संतों के दर्शन करने, तीर्थयात्रा करने, घूमने आदि के लिए जावें। ताकि यात्रा-दर्शन आदि का आनन्द आवे क्योंकि बराबरी वालों में सब काम अच्छे लगते हैं। मन प्रसन्न रहता है। आप रिटायर होकर अपनी जन्मभूमि में आकर रहते हैं तो वहाँ पर भी धीरे-धीरे आप अपने समान उम्र-विचार वाले दो-चार मित्र अवश्य बना लें। मित्रों के अभाव में यदि आप अपने बेटे-बहू के साथ तीर्थ यात्रा जाते हैं, संतों के दर्शन करने जाते हैं तो बेटे-बहू अपनी उम्र के अनुसार स्वतंत्र नहीं रह पाते हैं। और उनकी थोड़ी सी भी यद्वा-तद्वा मस्ती आपको अच्छी नहीं लगेगी। ठीक है, कभी-कभी बेटे-बहू के साथ चले भी गये, कोई बात नहीं। लेकिन हमेशा-हमेशा बहू-बेटे के साथ लगे रहना या उनके साथ ही जाने की आशा लगाये रखना अच्छी बात नहीं है। ऐसा करने से बहू-बेटे बिना पूछे, बिना कहे घूमने, तीर्थ-यात्रा

आदि जाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। वे गुप-चुप तैयारियाँ करके जाते समय धीरे से कह कर चले जाते हैं कि हम वहाँ जा रहे हैं और आप भौंचक्के से देखते मात्र रह जाते हैं। यह सब देखकर आपके ऊपर क्या बीतेगी। अत: आप अपने मित्रों का समूह रखें ताकि आप उनके साथ जा सकें और यात्रा के समय, घूमने आदि में भी आप सभी (वृद्धा-वृद्ध) धीरे-धीरे ही चलने वाले, धीरे काम करने वाले हैं तो किसी को एक-दूसरे के प्रति विकल्प उत्पन्न नहीं होंगे। बराबरी वालों में आपकी हँसी-मजाक, भोजन, घूमना-फिरना आदि मन लगाने वाला होता है। इसलिए आप अपना मित्र परिवार अवश्य बनावें जो आपके दैनिक जीवन में, तीर्थादि धार्मिक कार्यों में तथा अन्त समय में भी सहारा देने वाला हो।

बेटे-बहू की धारणा बनायें

आप वृद्धावस्था और प्रौढ़ावस्था के समय ही बहू-बेटे की यह धारणा बनायें कि मुझे अर्थात् सास-ससुर को बीमार होने पर हॉस्पिटल में नहीं ले जावें क्योंकि अब तो हमारे मरने के दिन हैं। हमने जिन्दगी में दवाई नहीं खाई, कभी हॉस्पिटल नहीं गये, एडमिट नहीं हुए, बॉटल नहीं चढ़ाई, अब अन्त समय में हॉस्पिटल अर्थात् मध्यलोक के नरक में ले जाकर हमें भ्रष्ट मत करना, हमें तो किसी संत के पास ले जाना। डॉक्टर को न बुलाकर किसी धर्मात्मा व्यक्ति को बुलाना जो मुझे मन को शान्ति प्रदान करने वाली, क्षमा भाव सिखाने वाली, मृत्यु से निर्भय करने वाली धर्म रूपी औषधि पिलावे, धर्मामृत का पान करावे जिसका सेवन करके मैं इस शरीर रूपी कारागृह से छूटने में दु:ख की अनुभूति नहीं करूँ। इसे सहज रूप से छोड़कर महाप्रयाण कर सकूँ...। इसी प्रकार कभी-कभी समाज के प्रतिष्ठित, परिचित तथा रिश्तेदारों के सामने भी इस बात की चर्चा करते रहें ताकि वे भी बेटे के हॉस्पिटल नहीं ले जाने में सहयोग दें अर्थात् हॉस्पिटल नहीं ले जाने पर नुक्ताचीनी नहीं करें। कभी-कभी माँ-पिताजी की आज्ञानुसार बेटा यदि उन्हें हॉस्पिटल नहीं ले जाता है तो रिश्तेदार-परिचित लोग ही कहने लगते हैं कि अरे, पैसे बचाने थे इसलिए माँ/पिताजी को हॉस्पिटल नहीं ले गया। अरे ये तो उनको मारना ही चाहता है आदि...। इस प्रकार की बातें सुनकर भी बेटा आपको हॉस्पिटल ले जाने के लिए मजबूर हो जाता है। उसके दिल में भी ये भाव आने लगते हैं कि यदि माँ को हॉस्पिटल नहीं ले जाऊँगा तो लोग क्या कहेंगे, आदि सोचकर भी उन्हें ले जाना ही पड़ता है। अत: आप रिश्तेदार आदि के सामने भी इस बात का जिक्र

अवश्य करते रहें कि बीमारी होने पर वे किसी हॉस्पिटल में न ले जाकर किसी सन्त के चरणों में ले जावें।

दूसरी बात, यदि आपको हॉस्पिटल नहीं जाना है, आपको हॉस्पिटल में नहीं मरना है तो थोड़ा आप भी ध्यान रखें - बीमार होने पर धैर्य रखें, आकुलता नहीं मचावें, घबराकर लोगों को इकट्ठा नहीं करें। बीमार होते ही उस बेटे को खबर कर दो, उस बेटी को बुला दो। अरे! मुझे तो इतनी तकलीफ हो रही है कि प्राण ही निकले जा रहे हैं, अब तो मेरे से बिलकुल हिला ही नहीं जाता, लगता है अब मेरी मौत आ गई है, आदि-आदि दूसरे के दिल को दहलाने वाली, करुणास्पद बातें नहीं करें। साहस रखें, सामने वाले घबरा भी रहे हों तो उनको आश्वस्त करें कि कुछ नहीं, ऐसा तो कभी-कभी हो जाता है। घबराने की कोई बात नहीं है। तुम भगवान का नाम लो/सुनाओ, वही सार है, उसीसे कल्याण होगा, उन्हीं के स्मरण से मुझे शान्ति मिलेगी.....। इन बातों को सुनकर पुत्र-पौत्र आदि को अच्छा लगेगा। उनके मन में भी लगेगा कि अहो! इनके इतने अच्छे भाव हैं तो हम क्यों इन्हें हॉस्पिटल ले जाकर इनकी गति बिगाड़ें। क्यों नहीं इनको भगवान का नाम सुनाकर इनकी गति सुधारें। और यदि आपने मना भी कर रखा है तो भी आपकी घबराहट को देखकर बेटे डॉक्टर को बुलाने के लिए, हॉस्पिटल ले जाने के लिए मजबूर हो जायेंगे इसलिए आप अपनी भी धारणा बनायें कि कितनी भी वेदना हो मुझे घबराना नहीं है, मुझे साहस पूर्वक अपनी गति सुधारना है।

नोट- उम्र भी ज्यादा नहीं है और मरने जैसी बीमारी भी नहीं है तो इलाज अवश्य करावें।

सकारात्मक विचार रखें

वृद्धावस्था में मृत्यु के भय से अधिकतर लोगों की नकारात्मक सोच बन जाती है लेकिन आप अपने भविष्य के प्रति सकारात्मक विचार रखें अर्थात् अपने भावी जीवन के बारे में उलटे-सीधे विचार नहीं बनावें। जैसे- कहीं मुझे पेरालेसिस हो जायेगा तो मैं क्या करूँगा/करूँगी। अरे, मुझे आजकल पेटदर्द रहने लगा है/होता रहता है। कहीं मेरे पेट में पथरी/अलसर तो नहीं हो गया है। अरे, देखो मेरे पेट में गाँठ सी लग रही है, कहीं कैंसर की गाँठ तो नहीं है। हे भगवान! अभी तो मुझे पता नहीं कितने साल और जीना है, क्या-क्या होगा, पता नहीं कौन सेवा करेगा आदि.....। इस प्रकार के विचारों से भय उत्पन्न होता है, मन हमेशा शंकित रहता

है, भय के कारण शरीर में ऐसा जहर उत्पन्न होता है जो शरीर और मन दोनों को निर्बल बनाता है, फिर हमारी भावनाओं का प्रभाव भी वैसा ही होता है जैसी हमारी भावनाएँ होती हैं। आप हमेशा अच्छे विचार रखें। भविष्य में जैसा होना होगा, फिर भविष्य में हमारा खराब ही होगा, ऐसा कोई जरूरी नहीं है तो हम क्यों भविष्य की खोटी कल्पनाएँ करके वर्तमान के सुख को भी दु:ख बनाकर भोगें। आप हमेशा भविष्य की उज्ज्वलता की भावना करें। विश्वास रखें कि हमारा भविष्य अच्छा ही होगा। फिर यदि खराब होगा तो हमें भोगना ही है। जब हम किसी का बुरा नहीं सोचते/नहीं करते, अच्छे काम करते हैं तो हमारा भविष्य खराब होगा ही क्यों?

दूसरी बात, आप अपनी बीमारी, रुपया-पैसा, आव-आदर, बहू-बेटे आदि को लेकर दूसरे से तुलना करके दु:खी नहीं हों। आप यह नहीं सोचें कि देखो-हमारे पड़ोस वाले/रिश्तेदार इतनी उम्र में भी कितने स्वस्थ हैं, वे इतने वृद्ध हैं फिर भी उनके हाथ में कितना पैसा है, उनकी बहुएँ-बेटे उनका कितना कायदा/आदर करते हैं। दादा-दादी के पैर दबाये बिना तो बहू-बेटे सो ही नहीं सकते; एक-न-एक पौत्र-पौत्री तो दादा-दादी के साथ हमेशा रहते ही हैं, आदि-आदि विचारकर दु:खी न हों अपितु आप अपने से ज्यादा दु:खी/रोगी जिसको ब्लडप्रेसर, शुगर, गठियावात आदि चार बीमारियाँ हैं उनको देखें, उनके बारे में सोचें, उनसे आप कितने सुखी हैं। उनके बारे में सोचें जिनके बेटे-बहू बाहर/अलग रहते हैं। आने-जाने, पैसा भेजने/देने की बात तो बहुत दूर समाचार देने पर भी कोई जवाब नहीं देते हैं, जिनके बेटे सामने से होकर निकल जाते हैं, आवाज देने पर भी बूढ़ी, दु:ख से कराहती माँ की बात को अनसुनी कर देते हैं। जिनकी बहुएँ दो रोटी के साथ चार झिड़कियाँ अवश्य परोसती हैं। जिनको रूखी-सूखी रोटी भी खाने के नहीं मिल रही, आप उनकी अपेक्षा कितना खाते हैं, आपके पास कितना पैसा है। इन सब की तरफ देखकर आप तुलना करेंगे तो अपने आप में बहुत सुखी अनुभव करेंगे, आपके दिल में प्रसन्नता की रेखाएँ खिंच जायेंगी। आप वृद्धावस्था में भी स्वयं को भाग्यशाली महसूस करेंगे। एक दार्शनिक ने एक अपंग व्यक्ति को देखकर करुणार्द्र होकर पूछा- ''भाई! तुम पैरों से चल नहीं पाते, हाथों से कुछ काम नहीं कर पाते, तुम्हारे पास मकान-दुकान, पैसा कुछ भी नजर नहीं आता। फिर भी तुम इतने खुश कैसे नजर आते हो?'' अपंग व्यक्ति ने कहा- ''अरे भाई, क्या हो गया मेरे हाथ-पैरों में शक्ति नहीं है तो, क्या हो गया मेरे पास मकान, दुकान-पैसा नहीं है तो, मुझे

इस बात का कोई गम नहीं है, मुझे तो इस बात की प्रसन्नता है कि मैं इस सृष्टि को देख सकता हूँ, किसी दु:खी के मन का दु:ख सुनकर उसे सान्त्वना के दो शब्द कह सकता हूँ। मेरे पास दिमाग है, मन है, दिल है जिनसे मैं प्रभु/ईश्वर का स्मरण, मनन, भजन करके पूर्वोपार्जित पापों का नाश कर सकता हूँ और पापों से बचकर भविष्य को उज्ज्वल बना सकता हूँ, क्या यह कम है, क्या इतनी अच्छी चीजें पाकर भी मुझे खुश नहीं रहना चाहिए....।'' इसे ही सकारात्मक सोच कहते हैं।

एक वृद्धा की सकारात्मक सोच

एक वृद्ध महिला थी, जिसकी कमर झुकी हुई थी, चाँदी के सफेद बाल थे, मुँह में एक भी दाँत नहीं था वह अक्सर जमीन पर कुछ ढूँढ़ा करती थी। मोहल्ले के बच्चे उससे पूछते-माई ! माई! काँई ढूँढ़े?

माई – मैं सुई ढूँढ़ रही हूँ।

बच्चों ने जिज्ञासा की – सुई से तू कांई करेगी?

माई बोली – सुई से मैं कोथली सीऊंगी।

बच्चों ने पूछा – कोथली में तू काँई भरेगी?

माई उत्साह से बोली – कोथली में मैं पैसा धरूँगी।

बच्चों ने फिर पूछा – पैसा का तू कांई करेगी?

माई – पैसा से मैं भैंस लाऊंगी।

बच्चों ने छेड़ने की कोशिश की – माई, तू भैंस को कांई करेगी?

माई – भैंस को मैं दूध निकालूंगी।

बच्चे – और दूध को तू कांई करेगी?

दूध को.....दूध की मैं खीर बनाऊँगी/खाऊँगी। डोकरी के चेहरे पर खीर के स्वाद की रेखाएँ उभर आईं.... बच्चे हँसने लगे। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह खीर खाने की शौकीन थी अपितु इसका अर्थ यह है कि वृद्ध होकर भी उसमें उत्साह था। वह दूध बेचकर पैसा कमाकर बुढ़ापे में भी आत्मनिर्भर रहना चाहती थी।

तीसरी बात, यदि बेटे-बहू आपको सबसे ऊपर के फ्लोर में रखें/रहने के लिए कहें तो आप उसका उलटा अर्थ नहीं लें। आप यह नहीं सोचें कि मेरे से इतना ऊपर चढ़ा नहीं जाता, घुटने दुखते हैं और इन लोगों ने मुझे अकेला पटक दिया। यहाँ न कोई चहल-पहल है और न कोई बोलने वाला ही है आदि....। अपितु

आप यह सोचें कि चलो, ऊपर अकेले में आराम से भगवान का नाम ले सकता हूँ/ लूंगा। अच्छा हुआ, मैं इनके (घर-गृहस्थी) द्वन्द्व-फन्द से बच गया, शान्ति से मैं यहाँ 'टेन्सनफ्री' रहूँगा....। इन विचारों से आपको क्लेश ही उत्पन्न होगा, आपको पाप का बन्ध होगा। अभी भी दु:खी रहेंगे और भविष्य को भी दु:खमय बना लेंगे। आपको यदि सबसे नीचे रखा है/रहने के लिए स्थान दिया है तो आप सोचें- बहुत अच्छा, नीचे रहती हूँ तो कम-से-कम मैं आते-जाते लोगों को देख सकती हूँ, उनसे थोड़ा-कुछ बोल सकती हूँ, नीचे रहती हूँ तो मंदिर जाने, सन्तों के उपदेश सुनने जल्दी से जा सकती हूँ.... आदि। सकारात्मक विचार रखेंगे तो आपको बहुत शान्ति मिलेगी, आपको आनन्द की अनुभूति होगी। आप अपने आप में सक्षम सहनशील एवं समाधान शक्ति से युक्त अनुभव करेंगे और इस प्रकार के विचारों में आपकी संतोष वृत्ति से आपके बहू-बेटे आपसे प्रसन्न रहेंगे, वे आपकी प्रशंसा करेंगे। समाज में भी आपके परिवार को आदर की दृष्टि से देखा जायेगा। एक दिन एक वृद्ध अम्मा सीढ़ियाँ उतर रही थी। उसके पीछे-पीछे बहू भी आ रही थी। अचानक अम्मा का पैर फिसल गया। बहू ने जल्दी से अम्मा को पकड़ने की कोशिश की लेकिन वृद्धा गिर ही गई। वह कहने लगी, अरे! बहू ने मुझे धक्का दे दिया है इसलिए मैं गिर गई हूँ। इस नकारात्मक सोच/ऐसे विचार से/ऐसा कहने से बहू पर क्या प्रभाव पड़ेगा। बहू के मन में आपके प्रति कैसे विचार उत्पन्न होंगे? आपके ऐसे व्यवहार से क्या बहू कभी आपकी सेवा कर सकती है?

प्रसन्न रहें

वैसे वृद्धावस्था में व्यक्ति को सहज रूप से चिड़चिड़ापन आने लगता है चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। क्योंकि एक तो वृद्ध लोगों के शरीर में शक्ति नहीं रहती है, उनसे कुछ काम नहीं हो पाता है, काम करने वाला सहज रूप से मिल नहीं पाता है फिर वृद्ध लोगों को लगता है कि मेरे कहते ही बेटे-बहू, नाती-पोते काम कर दें लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है, क्या घर के लोग उनका काम करने के लिए बैठे ही रहते हैं....। दूसरी बात अधिकतर लोगों का बुढ़ापा चिड़चिड़ा ही होता है। मुझे लगता है कि शायद शरीर में कुछ ऐसे विटामिन्स-प्रोटीन्स की कमी हो जाती होगी जिससे बुढ़ापे में चिड़चिड़ापन आ जाता है लेकिन ये सब बातें उसीके लिए घटित होती हैं जिसने यौवन और प्रौढ़ावस्था में अपने आपको संस्कारित नहीं किया है या इन तीनों अवस्थाओं में जिसको किसी घटना विशेष ने नहीं झकझोरा है अथवा

जिसने अपने मन-वचन-काय को संयमित करना ठीक नहीं सीखा है। एक दिन एक लड़का आया। उसने बताया- ''मैं अपने पिताजी की मृत्यु हो जाने के कारण पढ़ना-लिखना छोड़कर एक गुण्डा बन गया क्योंकि मैं मात्र अपने पापा की ख्वाहिस पूर्ण करने के लिए पढ़ रहा था। मैं एक बड़े बदमाशों की टोली में था। मेरे एक मित्र को किसी लड़की से प्रेम हो गया। वह हमेशा अस्त्र-शस्त्र आदि छोड़कर अपनी प्रेमिका से मिलने जाता था। एक दिन किसीने समय का ध्यान करके गुप्त रूप से उसको मार डाला अर्थात् अपनी प्रेमिका से मिलते समय मार डाला। उस घटना को सुनकर/देखकर मैं उसी दिन से स्त्री मात्र से विरक्त हो गया। मैंने बहुत चोरियाँ कीं, शराब पी, माँस खाया, मारा-पीटा, गोलियाँ चलाईं लेकिन कभी किसी लड़की से किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया। ऐसी कोई घटना जिसके जीवन में घट जाती है उसको एक सीख मिल जाती है। आपके जीवन में भले ही कोई घटना नहीं घटी हो तो भी वृद्धावस्था में पापों से विरक्त रहें। अपने आप में प्रसन्न रहें ताकि आपके परिवार वाले भी आपसे सन्तुष्ट रहें और आप भी सन्तुष्ट रहें।

यूनान के सुप्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने एक बार सदा खुश रहने वाले एक वृद्ध से पूछा- ''आपकी प्रसन्नता का राज क्या है?'' वे वृद्ध किंचित् मुस्कराये और बोले- ''मैं अपने समस्त पारिवारिक दायित्व अपने समर्थ पुत्रों को सौंपकर निश्चिंत हूँ। वे जो कुछ कहते हैं- सुन लेता हूँ, जो खिलाते हैं खा लेता हूँ। और अपने पोते-पोतियों के साथ हँसता-खेलता रहता हूँ। बच्चों की गलतियों पर चुप रहता हूँ। मैं उनके कार्यों में टोकाटोकी नहीं करता। यदि सलाह माँगते हैं तो परामर्श दे देता हूँ। अपने अनुभव से उन्हें परिणाम समझा देता हूँ। पर वे मेरी राय पर कितना अमल करते हैं, इसकी चिंता नहीं करता।'' वृद्ध की बात ने सुकरात को प्रसन्न कर दिया- उम्र के आखिरी पड़ाव पर कैसे सुख से रहा जाए- यह सूत्र हाथ आ गया। फ्रांसिस ने वृद्धावस्था में प्रसन्न रहने के लिए कहा है-

हे प्रकाश के स्वामी (भगवन्) मेरे ऊपर इतना अनुगृह करना कि-

माँगने को मेरा मन ही न करे और
मात्र देना ही अच्छा लगे
जिसे सान्त्वना चाहिए उसे स्नेह दूँ
जिसे समझ चाहिए उसे ज्ञान दूँ।
जिसे ममता चाहिए उसे प्रेम दूँ।

और देकर प्राप्त करूँ।

खाली होकर भर जाऊँ।

सुखद वृद्धावस्था और सुखी जीवन के लिए यही सद्‌विचार जरूरी है।

बेटी से अधिक लगाव न रखें

वृद्धावस्था में आप अपनी बेटियों से विशेष लगाव नहीं रखें क्योंकि अब आप बेटे-बहू के पास रहते हैं। उसके यहाँ आना-जाना, उसके सामने बहू-बेटे की निन्दा के रूप में बातें करना, अपनी सम्पत्ति में से चुपके-चुपके उनको दे देना, बड़ी-पापड़ जैसी छोटी चीज भी बेटियों के यहाँ भेजना, आदि, काम नहीं करें। इतने दिन आप बेटी को कुछ देते थे। उसके यहाँ भेजते थे उस समय आपका अपना धन था, अपना शारीरिक बल था लेकिन अब आपके पास भले ही धन हो, भले ही बेटे से ज्यादा आप दुकान चलाते/देखते हों। बहू से ज्यादा घर का काम आप करती हों फिर भी अब घर आपका नहीं है, इसलिए आप बेटी से इतना मोह नहीं रखें। ऐसा करने से बहू को भी लगने लगता है कि मैंने तो इतनी मेहनत/खर्चा करके पापड़ बनाये और मम्मी जी ने तो झट से दीदी के यहाँ भेज दिये। इससे तो अच्छा है कि बाजार से थोड़े से पापड़ खरीद लाओ और खा लो अथवा चलो, अपन (पति-पत्नी, बच्चे) तो होटल में जाकर खा लेते हैं....। बेटियों की तो आदत होती है कि वे अपने मायके की अधिक से अधिक चीजें खा लें। अपने माता-पिता की सम्पत्ति में से जितना मिल रहा हो ले लें। यद्यपि माँगती नहीं हैं पर मिल रहा हो तो छोड़ती भी नहीं हैं। भले ही कितनी ही धनाढ्य घर की बहू हो उसे भी मायके की चीजें अच्छी लगती हैं, उसको हमेशा मायके की चीज पाने की इच्छाएँ रहती हैं। कहते हैं, कहीं मायके का कुत्ता भी मिल जावे/दिख जावे तो बेटी का मन प्रसन्न हो जाता है। वह उसको भी रोटी डाल देती है, उसे भी सम्मान की दृष्टि से देखती है। इसलिए आप जितना बेटी की तरफ झुकाव रखेंगे बेटी उतना ही आपको प्रोत्साहन देगी। आप बेटी के यहाँ जावें लेकिन लिमिट से। क्योंकि बेटी के यहाँ माता-पिता शोभा नहीं देते। दुनिया की दृष्टि में भी और बेटी के ससुराल वालों की दृष्टि में भी आपका वहाँ रहना अखरता है, इसमें बेटे की इन्सल्ट भी होती है, लोग उसको इस दृष्टि से देखने लगते हैं कि अरे कैसा बेटा है, माता-पिता की सेवा नहीं करता है। नहीं करता होगा तब तो वे बेटी के यहाँ रहते हैं, उन्हें बेटी के यहाँ रहना पड़ता है.....।

दूसरी बात आपने कन्या-दान किया है। बेटी आपके यहाँ आकर सेवा करे, सेवा करने में भाई-भाभी की मदद करे। यह एक अलग बात है और माता-पिता बेटी के वहाँ जाकर रहें, यह अलग बात है। पुराने जमाने में माता-पिता, बड़े भैया बेटी के यहाँ (ससुराल में) पानी तक नहीं पीते थे। उनका विचार रहता था कि बहिन-बेटी को तो हमेशा दिया जाता है, उनसे लिया नहीं जाता है। इसलिए वे कभी बहिन-बेटी के जाते थे तो अपना भोजन लेकर जाते थे यदि नहीं ले जा पाते, उन्हें मजबूरी से कभी उनके यहाँ खाना पड़ता था तो वे खाने-पीने के खर्च से कुछ अधिक देकर ही आते थे। उनका मानना था कि कन्यादान कर देने के बाद उसके यहाँ से अर्थात् दान दी हुई वस्तु में से वापस कैसे लिया जा सकता है? आज वह परम्परा नहीं है लेकिन फिर भी जो वृद्ध माता-पिता अपनी बेटी से विशेष सम्पर्क रखते हैं उनसे उनके बच्चे प्रसन्न तो नहीं रहते हैं। कभी-कभी तो बेटे-बहू को शंका हो जाने पर, जब भी ननद/बहिन माता-पिता से मिलने आती है तो वे घर के किसी-न-किसी सदस्य को उनके पास बिठाये रखते हैं। उनको लगता है कि मम्मी-पापा को दीदी से बहुत प्रेम है इसलिए ये कहीं सोने-चाँदी के जेवर आदि उसको न दे दें। कई घरों में ऐसा करने पर बहू-बेटे माता-पिता की तरफ ध्यान देना ही बन्द कर देते हैं। कोई-कोई कह भी देते हैं कि बेटी को देते हो तो हमारे से सेवा की आशा मत रखना/क्यों रखते हो? एक बेटा कई वर्षों से माता-पिता से अलग रहता था। एक दिन उसकी माँ बहुत बीमार हो गई। उसको हॉस्पिटल में एडमिट कराया गया। बेटा भी माँ की सेवा के लिए हॉस्पिटल में पहुँच गया। उसने माँ की तन-मन से सेवा की। पैसा पिताजी ने खर्च किया। हॉस्पिटल में बेटी भी सेवा के लिए पहुँच गई। हॉस्पिटल में भी माँ का रुझान बेटी की तरफ ही था। फिर भी कुछ ठीक होने पर बेटा सेवा करने के लिए माँ को अपने घर ले आया। उसकी पत्नी भी प्रसन्नता से सास की सेवा में लग गई। कुछ दिन सब उसकी सेवा करते रहे। एक दिन बेटे ने कहा- ''माँ! अपना कुछ धन बता दो/देने का वादा कर दो। मैं मृत्यु पर्यन्त आपकी सेवा करूँगा।'' माँ ने धन बताने और देने के लिए मना कर दिया तो बेटा उस बीमार माँ को ले जाकर उस घर (जहाँ माता-पिता रहते थे) छोड़ आया....। बेटी से अधिक लगाव रखने पर ऐसा ही होता है। आप सोचें ऐसा करने वाले के पीछे बचने वाले का बेटा- माँ मर गई तो पिता, पिता मर गये तो माँ- की सेवा कर सकता है, असंभव, नहीं कर सकता।

तीसरी बात, बेटी को धन आदि देने से भाई-बहिन में मन-मुटाव हो जाता है। आपके मरने के बाद क्या भाई अपनी ऐसी बहिन से जिसने उसके अधिकार को ही छीन लिया हो, रिश्ता निभा सकता है/निभायेगा? नहीं, आपके जाने के बाद आपकी बेटी को पीहर में कोई मान-सम्मान, प्रेम-वात्सल्य नहीं मिल सकता। इसलिए बेटी कितनी भी अच्छी हो, आपके जँवाई भी आपको अपने घर रखना चाहते हों तो भी यदि आपका बेटा सेवा करता है/करना चाहता है तो आप उसी के पास रहें ताकि समाज में आपकी इज्जत रहे, बेटे को अपना कर्त्तव्य करने का अवसर मिले और भविष्य में बेटी का भी मायके में स्थान बना रहे।

वृद्धावस्था में दिनचर्या बनावें

(१) आप प्रात:काल ४-५ बजे उठकर घंटा-आधा घंटा माला-जाप्यादि द्वारा भगवान का स्मरण करें।

(२) फ्रेश होकर २५-३० मिनट व्यायाम-आसन-प्राणायाम करें।

(३) योगासन के बाद एक घण्टा घूमने जावें। यदि बच्चों के सुबह का स्कूल नहीं है तो उन्हें भी ले जावें। यदि पहले दूध लेने जाना हो तो दूध लेने जावें। यदि उसी में आधा-पौन किलो मीटर घूमना हो जावे तो अलग से जाने की आवश्यकता नहीं। यदि एक-डेढ़ किलोमीटर दूर कोई मन्दिर हो, संत समागम-दर्शन की सम्भावना हो तो उन्हीं के दर्शन कर आवें, उसीमें घूमना भी हो जायेगा।

(४) थोड़ी देर विश्राम करके दूध पीवें। यदि भगवान के दर्शन करके दूध पीने का नियम है तो घूमकर आते समय ही दर्शन करके आवें।

(५) दूध पीने के बाद न्यूज पेपर पढ़ें या समाचार सुनना चाहें तो १५-२० मिनट सुन लें।

(६) मंदिर जावें, भगवान का अभिषेक पूजन करें। घंटा, आधा घंटा स्तोत्र पाठ-भक्ति-पाठ आदि करें। यदि बन सके तो दो-चार व्यक्ति मिलकर आगम ग्रन्थों का स्वाध्याय करें, फिर कुछ जाप करें।

(७) मंदिर से बाहर आकर थोड़ी देर गप-शप करें।

(८) इस प्रकार लगभग ग्यारह बजे आप अपने घर पहुँचें। घर पर थोड़ा घर

नोट : विशेष बीमारी हो तो घंटा, दो घंटा प्राणायाम आदि करें निश्चित लाभ होगा। औषधियाँ नहीं खानी पड़ेंगी।

वालों, बच्चों आदि के साथ हँसी-मजाक करें-खेलें।

(९) लगभग पौने बारह बजे से पहले भोजन कर लें, अनुकूलता न हो तो साढ़े बारह बजे के बाद भोजन करें। क्योंकि संधिकाल में भोग रोग का कारण होता है और रोग होने पर प्राणी में शोक उत्पन्न होता है कहा भी है-

सन्धिकाल में सूर्य तत्त्व का
अवसान देखा जाता है और
सुषुम्ना यानी
उभय तत्त्व का उदय होता है।
जो ध्यान-साधना का
उपयुक्त समय माना गया है।
योग के काल में भोग का होना
रोग का कारण है
और
भोग के काल में रोग का होना
शोक का कारण है। (मूक माटी. ४०७)

(१०) घंटा-डेढ़ घंटा रेस्ट करें। उठकर २-३ घंटे बाजार में घूम आवें। आकर कुछ स्वाध्याय-अध्ययन, पाठ-जाप आदि करें।

(११) शाम को अल्प मात्रा में भोजन करें या भोजन नहीं करें। पानी, दूध, एक-आध फल ले लें।

(१२) संध्या के समय बच्चों के साथ भगवान की आरती-भजन आदि (यदि मंदिर पास में हो तो मंदिर में) करें।

(१३) रात्रि में मंदिर जावें...... लगभग दस बजे आकर सो जावें।

बीच के समय में बच्चों को छोटी-छोटी स्तुतियाँ, शिक्षाप्रद दोहे, भजन, भगवान के नाम आदि सिखावें। नानी-दादी की कहानियाँ सुनावें।

यदि आप बही-खाता आदि का कुछ काम करते हैं तो धर्म के समय को छोड़कर शेष समय में एडजस्ट करें।

यदि बेटा दुकान पर आपका बैठना पसन्द करता है, टोका-टोकी नहीं करता है तो उसकी दुकान पर बैठ सकते हैं। यदि भोजन के अर्थात् जब बेटा भोजन करने जावे तब दुकान पर आपकी आवश्यकता हो तो आप दोनों टाइम दुकान पर

अवश्य जावें।

यदि कुछ भी काम नहीं है तो एक दुकान किराये ले लें वहीं पर धर्मध्यान करें, सोएँ, बैठे रहें ताकि आपको पूरे दिन घर में नहीं रहना पड़े, ताकि घर वालों को भी डिस्टर्ब नहीं हो और आपका भी मन लग जावे।

एक महिला ने अपनी दिनचर्या बतायी-

वह पाँच बजे उठती है, पूजा के बर्तन साफ करती है। नहा-धोकर चाय बनाकर पीती है। उसी समय यदि किसी को चाय पीना हो तो उसे भी पिलाती है। उसके बाद सुबह-सुबह पाइप से बगीचे में पानी सींचती है, पूजा के लिए फूल चुनती है। फिर अपने पति के पसन्द की कुछ सब्जी तैयार कर देती है, भगवान की पूजन करने मंदिर जाती है। दोपहर में आजकल वह साड़ी की किनार से पाँव-पोश तैयार करने में लगी है। वह धूप में बैठकर कभी बत्ती बनाती है, कभी स्वेटर बुनती है। शाम को, कभी दोपहर में भी अपनी डायरी में महत्त्वपूर्ण श्लोक लिखती है, पुराने लिखे हुए को पढ़ती है उसका कहना है कि लिखने से कंठस्थ, याद हो जायेंगे।

व्यायाम

(१) ५-१० बार मुट्ठी बाँधकर खोलें।

(२) पैर के पंजों को सभी प्रकार से (जिस-जिस प्रकार से हिला सकते हैं) हिलावें।

(३) पैर लम्बे करके घुटने की कटोरी को चलावें।

(४) पेट को अन्दर बाहर (कपाल भाती) गोल आदि रूप से चलावें।

(५) हाथ-से-हाथ का घर्षण कर-कर के पूरे शरीर पर फेरें।

(६) पंजों को आपस में मिलाकर घर्षण करें। इन दोनों को करने से एक गिलास दूध की ऊर्जा मिलती है, आलस दूर होता है।

(७) जहाँ दर्द हो वहाँ हथेलियों को आपस में घर्षण करके बार-बार फेरने से कुछ ही दिनों में आराम मिलता है।

(८) अनुलोम-विलोम, गहरी श्वास लेने सम्बन्धी व्यायाम भी कर सकते हैं।

(८) संन्यास अवस्था के संस्कार

भूमिका

संन्यास का अर्थ जीवन के अन्त में होने वाली अवस्था। मृत्यु को अन्तक कहा जाता है। जो अन्त करने वाला है, जो अन्त में होता है, आता है वह 'अन्तक' है। हमारे पूर्वजों ने अनेक प्रकार की कलाएँ बताई हैं उनमें मरण को भी एक कला माना गया है। उन्होंने बताया है कि हम मरण को मांगलिक कैसे बना सकते हैं। जीना तो सभी जानते हैं पर मरण कैसे हो, यह जानना भी आवश्यक है। भारतीय संस्कृति मात्र जन्म लेना और जीवन का सुचारु ढंग से निर्वाह करना ही नहीं सिखाती है अपितु जीवननिर्वाह के साथ-साथ जीवन का निर्माण करना भी सिखाती है। जीवन के निर्माण की पूर्णता ही 'निर्वाण' है जिसे लौकिक भाषा में मोक्ष, मुक्ति, शिव, भगवान बनना कहते हैं अथवा जिसे जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करना भी कहा जा सकता है। उस अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जन्म और मरण के बीच में आने वाली अवस्थाओं-परिस्थितियों में सावधानी बरतना बहुत आवश्यक होता है। महापुरुषों का मत है कि कोई व्यक्ति यदि छाछ पीता है तो उसे छाछ की ही डकार आती है और यदि वह कोई कड़वी चीज खाता है तो उसका मुँह कड़वा ही होता है, मीठा नहीं हो सकता। उसी प्रकार यदि कोई अपने जीवन में हमेशा गलत काम करता है, व्यसनों का सेवन करता है, अन्याय-अनीति से धन का अर्जन करता है, धर्मकार्य से सर्वथा विमुख रहता है उस व्यक्ति के उसी प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं, फिर विचारों के अनुसार व्यक्ति का चाल-चलन होना कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है। इसीलिए भारतीय नागरिक बच्चे के गर्भ में आते ही उसमें जीवन-निर्माण के संस्कार डालना प्रारम्भ कर देते हैं यहाँ तक कि गर्भ में आने के पहले ही अपने आप को संस्कारित करते हुए भावी शिशु को भी संस्कारित करते हैं। इस सबका वर्णन पुस्तक के पूर्वार्ध खण्ड में कर दिया गया है। किसी में वे संस्कार लुप्तप्राय: हो जाते हैं, किसी में वे मंद-ज्योति के समान चमकते रहते हैं तो किसी में वे वृद्धि को प्राप्त होते हुए पूर्णता को प्राप्त हो जाते हैं। संस्कारों की पूर्णता या संस्कारों का प्रभाव तब नजर आता है जब मृत्यु सामने आती है अथवा मृत्यु का समय निकट आता है। मृत्यु के समय अपने आप को कैसे सुधारा जाय? किस प्रकार मनोनुकूल भोजन के समान या एक सच्चे मित्र के समान उसे सहज रूप से स्वीकारा जाय? इन बातों को भारत के सभी धर्मों, धर्मात्माओं एवं धार्मिकगून्थों ने

स्वीकार किया है लेकिन सबकी विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं। किसी धर्म में जलसमाधि लेने का वृत्तान्त है, किसी में काशी में करवट लेने का विधान है, किसी में श्वासोच्छ्वास निरोध करके मरने को कहा गया है, कहीं अपने इष्ट देवता के सामने अपने आप को बलिदान करने की आज्ञा है तो कहीं पर्वत से गिरकर मरने की प्रेरणा दी गई है। इस प्रकार की मृत्यु, इस प्रकार से मरना कितना उचित है और कितना अनुचित यह तभी अनुभव में आ सकता है जब हम सही ढंग से संन्यास/समाधि का लक्षण समझें। विधियों के भिन्न होने पर भी सबका लक्ष्य तो एक ही है- शान्ति से सुखपूर्वक मृत्यु का सम्मान करते हुए उसे गले लगाया जाय।

क्या पापी भी सल्लेखना कर सकता है

उपर्युक्त बातों को सुनकर/पढ़कर यह भी नहीं सोचा जा सकता है कि पापी जीव की समाधि नहीं हो सकती है और पुण्यशाली जीव की समाधि होती ही है; क्योंकि 'जैसी मति वैसी गति' अथवा 'अन्ते मति सो गति' ऐसी कहावत है। इसका अर्थ है कि अन्त में जिसकी जैसी दृष्टि होती है वैसी ही उसकी गति, आगामी जन्म की श्रृंखला बनती है इसलिए यह जरूरी भी नहीं है कि जीवनभर यदि कोई पाप करे तो वह अन्त में अपने भाव नहीं सुधार सकता है और यह भी जरूरी नहीं है कि जिसने जीवनभर अच्छे काम किये हैं अन्त में भी उसके भाव अच्छे ही रहेंगे। क्योंकि भाव हर क्षण बदलते रहते हैं, मन परिवर्तनशील है। उनके बदलने के कारण भी अनेक होते हैं, कभी स्वयं पूर्वोपार्जित कर्म के प्रबल उदय से नहीं चाहते हुए भी भाव बिगड़ जाते हैं। कभी किसी द्रव्य या क्षेत्र के निमित्त से भावों में परिवर्तन आता है। कभी-कभी काल के निमित्त से बहुत पुरुषार्थ कर लेने पर भी व्यक्ति भावों को नहीं संभाल पाता है इसलिए यह भी निश्चित नहीं है कि पापी हमेशा पापी रहते हुए दुर्गतिगामी हो और पुण्यात्मा की सद्गति ही हो। और यहाँ यदि एकान्त से ऐसा मान लिया जाय तो फिर संसार में पापी कभी सद्गति को प्राप्त ही नहीं होगा। लेकिन ऐसा देखा नहीं जाता है। यहाँ भयंकर पाप करने वाले भी सद्गति को प्राप्त करते हुए देखे जाते हैं। क्रूर परिणामी शेर आदि भी अन्त समय में भाव सुधार कर स्वर्गगामी हो जाते हैं। अंजन चोर जैसे दुर्व्यसनी भी निरंजन बनते हुए देखे गये हैं। अंजन चोर एक राजकुमार था। वह कुसंगति में फँसकर परस्त्रीगामी तो बन ही गया था। उसके साथ-साथ वेश्यागमन करने में भी उसने कमी नहीं रखी थी और चोरी में तो वह इतना प्रसिद्ध हो गया था कि आज हजारों वर्ष उसे संसार से

मुक्त हुए हो गये हैं फिर भी उसको लोग भगवान अंजन चोर के नाम से ही जानते हैं। ऐसा पापी भी अपने अन्त समय (मृत्यु) को सुधार सकता है तो आप और हम तो सदाचारी, शिष्ट हैं यानी कि उतने पापी नहीं हैं और उतने पापी तो इस युग में मिलने ही कठिन हैं क्योंकि वह तो राजकुमार था, अपने पिता का इकलौता पुत्र था। उसके पिता के पास अटूट सम्पत्ति थी जिसका उपयोग करने के लिए वह स्वतंत्र था और यही कारण उसके बिगड़ने का था। फिर हम तो अपनी अन्तिम घड़ियाँ सुधार ही सकते हैं। और शायद हमारे पूर्वजों ने इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर उपर्युक्त कहावतें कही होंगी।

दूसरी बात, भारत में युगों-युगों से यही परम्परा चलती आ रही है और आगे भी चलती रहेगी कि जब व्यक्ति मृत्यु के सम्मुख होता है तो बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी यह कहते और करते देखे/सुने जाते हैं कि अरे बेचारा मर रहा है, अब तो इसको भगवान का नाम सुना दो, कुछ धर्म करवा दो, अब तो कम-से-कम इसको विकल्प नहीं कराओ....। यहाँ तक कि मनुष्य की बात तो बहुत दूर यदि साँप जैसा प्राणी भी मर रहा हो तो भी व्यक्ति उसे भगवान का नाम सुनाने का भाव कर ही लेते हैं। भले ही वे उसके पास में नहीं आ पावे तो भी दूर से सुनाते ही है। फिर जो ऊपर 'छाछ पीने पर छाछ की डकार आती है' यह बात कही गई है वह भी एकान्त नहीं है। छाछ पीने पर छाछ की डकार आती है और जिस दिन वह छाछ नहीं पीता है उस दिन उसे छाछ की डकार नहीं आती है; उसी प्रकार जो जिन्दगी भर पाप करे, जब तक पाप करता रहे तब तक उसके भाव खराब ही रहेंगे लेकिन जिस समय जिस दिन वह दूध पीना शुरू कर देता है/पीता है उसे दूध की डकार आती ही है। वह पाप छोड़कर धर्म करना प्रारम्भ कर देता है तो उसके भाव भी अच्छे हो जाते हैं और मीठा दूध पीने पर भी, पित्त ज्वर आ जाने पर डकार तो कड़वी ही आयेगी। उसी प्रकार पुण्यात्मा व्यक्ति पापज्वर आ जाने पर/पापात्मक प्रवृत्ति में लग जाने पर पाप रूप भाव ही उत्पन्न करता है। उसी का फल होता है कि बड़े-बड़े धर्मात्मा भी मरकर अपने धन के खजाने पर साँप बनकर बैठते हुए देखे जाते हैं। कई साधु सन्त तक भी दुर्गति में चले जाते हैं। एक संत बड़ा तपस्वी था। महीनों-महीनों के उपवास तो उसके लिए सहज बात थी। एक दिन वह ध्यान में बैठा था। उसकी मौत निकट थी। वहीं भगवान का मंदिर था। मंदिर में किसी व्यक्ति ने एक खरबूजा लाकर चढ़ाया। खरबूजा अच्छा पका हुआ

होने से उसकी खुशबू पूरे मंदिर में फैलती हुई संत की नाक में पहुँचती हुई मन को भी स्पर्श कर गई। संत का मन खरबूजे में चला गया। उसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। फलत: वह मरकर खरबूजे में कीड़ा बन गया। इसलिए हमने चाहे कितने ही पाप किये हों, कोई कितना ही बड़े से बड़ा पापी हो, अन्त में अपने परिणामों को सुधार करके सद्गति प्राप्त कर सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप यह धारणा बनाने लगें कि अपन तो जीवन के अन्त में परिणाम सुधार लेंगे। यह एक अपवाद है, कोई विरले ही व्यक्ति होते हैं जो जीवनभर पाप करें और अन्त में परिणाम सुधारकर सद्गति को प्राप्त कर सकें। कोई विरले ही योद्धा होते हैं जो शस्त्रविद्या का अभ्यास किये बिना भी सामने आये शत्रु को परास्त करने में सफल हो पाते हैं। इसलिए उत्सर्ग अर्थात् सही मार्ग तो यही है कि हम अपना जीवन अच्छा बनावें। जीवन भर दूध ही पीवें और अन्त समय तक भी पाप रूप पित्त ज्वर से दूर रहते हुए अपने परिणाम सुधारकर मरण सुधारें।

संन्यास क्या है

सम्+न्यास= सम्= समानता, समता में, न्यास-स्थापित करना। अपने आप को समता में अर्थात् राग-द्वेष, मोह, धन-वैभव परिवार आदि से अलग करके जन्म-मृत्यु, लाभ-हानि, सुख-दु:ख आदि में समान भाव रखते हुए आत्मा में अर्थात् भगवान की भक्ति में स्थापित करना संन्यास है। शरीर, वचन और मन के समीचीन न्यास को संन्यास कहते हैं। वैसे जीवन की अन्तिम अवस्था संन्यास आश्रम मानी गयी है। इस युग में लगभग सौ वर्ष की आयु मान ली जाय तो अन्तिम में २५ वर्ष अर्थात् ७५ वर्ष की उम्र में संन्यास आश्रम प्रारम्भ हो जाता है। लेकिन सबकी आयु सौ वर्ष की नहीं होती। इसलिए अपनी शारीरिक शक्ति तथा मानसिक भावनाओं के अनुसार संन्यास आश्रम की धारणा बनानी चाहिए। यहाँ संन्यास आश्रम को वृद्धावस्था के रूप में स्वीकार न करके जीवन की उन घड़ियों को मुख्य रूप से स्वीकार किया गया है जिन घड़ियों में मृत्यु आकर सिर पर मँडराने लगती है। जिस समय तक मृत्यु का पत्र, तार और वायरलेस आ चुके होते हैं। मौत आने के पहले व्यक्ति को तीन बार खबर देती है। सबसे पहले सिर के बाल सफेद करके पत्र के रूप में समाचार देती है कि अब तुम्हारे पास (निकट) मृत्यु की दूती वृद्धावस्था आ चुकी है। कुछ ही दिनों में मौत आने वाली है। हे मानव! सावधान हो जा। लेकिन यह मानव मानों इस बात को भुलाने के लिए ही बालों को डाइ करवा लेता

है। डाई करवा के बालों की सफेदी छुपाने का प्रयास करता है। दूसरी बार मौत तार के रूप में कान, आँख तथा दाँतों को (एक, दो या तीनों को) खराब करके संकेत देती है और सावधान करती है। वह कहती है कि हे प्राणी! अब तुझे आँखों से दिखाई नहीं देता और दाँतों के टूट जाने से पापड़-नमकीन आदि कड़क वस्तुओं की बात तो दूर, रोटी तक नहीं चबती है, कानों से सुनाई नहीं देने के कारण बार-बार तिरस्कृत होता है और घुटनों में दर्द होने से लाठी भी हाथ में आ गई है इसलिए तू अब इन भोगों की आसक्ति छोड़कर अपने अगले भव के लिए भी कुछ तैयारी कर ले, नहीं तो बाद में पश्चाताप के आँसू बहाने पड़ेंगे/बहाएगा। इन सब संकेतों से भी अनजान बनने के लिए ही मानों यह प्राणी आँखों पर चश्मा लगा लेता है, कानों में सुनने की मशीन तथा मुँह में बत्तीसी बँधवा लेता है। मौत ने सोचा इसे एक बार फिर संकेत देना चाहिए। उसने 'अटैक' करवा कर 'इमरजैंसी' वायरलेस ही दे दिया। फिर भी यह मूर्ख प्राणी कहाँ सावधान हुआ ''बाई पास सर्जरी'' करवा करके निश्चिंत होकर पुन: उन्हीं भोगों, धन संग्रह और पारिवारिक झंझटों में फँस जाता है। अन्त में मौत आ धमकती है। काल रूपी सिंह अपने मुँह में दबा लेता है और यमराज इसके प्राणों को लेकर भाग जाता है। यह हाथ मलता ही रह जाता है।

यहाँ (संन्यास अवस्था के संस्कारों में) अब तक मौत आई नहीं है लेकिन मौत के एक, दो या तीनों संकेत आ चुके हैं अथवा इन संकेतों के अलावा शारीरिक स्थिति से भी कुछ संकेत मिल रहे हैं; तभी संन्यास की अवस्था मानी गई है। वैसे मौत में कोई व्यक्ति विशेष नहीं है जो संसार के प्राणियों को मारने का काम करती हो। यदि मौत कोई व्यक्ति होता तो प्रत्येक क्षण संसार में अनन्त जीव (एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदि) मरते हैं अकेली मौत बेचारी किस-किस को मारेगी...। वास्तव, में हमारी आयु का समाप्त हो जाना ही यमराज, काल या मौत मानी गई है।

सल्लेखना की परिभाषा बताते हुए **आचार्य विद्यासागर मुनि महाराज** ने **'मूकमाटी'** (पृ. ८७) में कहा है-

सल्लेखना, यानी
काय और कषाय को
कृश करना होता है बेटा!
काया को कृश करने से
कषाय का दम घुटता है

......घुटना ही चाहिए। और-
काया को मिटाना नहीं
मिटती काया में
मिलती माया में
म्लानमुखी और मुदितमुखी
नहीं होना ही
सही सल्लेखना है, अन्यथा
आतम का धन लुटता है, बेटा!
वातानुकूलता हो या न हो
बातानुकूलता हो या न हो।
सुख या दु:ख के लाभ में भी
भला छुपा रहता है
देखने से दिखता है समता की आँखों से
लाभ शब्द ही स्वयं
विलोम रूप से कह रहा है-
ला.....भ......भ........ला।

मरण क्या है

एक परिवार के सदस्यों को लगभग नौ माह पहले यह मालूम हो जाता है कि परिवार में किसी नये सदस्य का आगमन होने वाला है लेकिन घर से किस व्यक्ति, बच्चे-बूढ़े की विदाई कब और कैसे होनी है, या हो जायेगी। यह जानकारी किसी को भी नहीं रहती है इसलिए कहते हैं कि जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। कब मृत्यु आ जाये इसका कोई भरोसा नहीं है। मृत्यु का अर्थ है जिन प्राणों से हम जी रहे हैं उन प्राणों का अभाव हो जाना, उन प्राणों का विघटन हो जाना। संसार में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति से लेकर कीड़े-मकोड़े, चींटी, हाथी-घोड़ा, पशु-पक्षी, मनुष्य, देव-दानव, भूत-पिशाच आदि प्रत्येक प्राणी का मरण होता है। मरण संसारी प्राणी के जीवन की वह अवश्यम्भावी घटना है जो प्रत्येक प्राणी के साथ घटित होती है। यहाँ तक की परमात्मा, पुण्यशाली भगवन्त भी इस घटना से नहीं बच सकते। जिसने संसार में जन्म लिया है वह निश्चित रूप से मरण को प्राप्त होता है पर जिसने मरण को प्राप्त किया है वह पुन: इस संसार में देह धारण करे ऐसा कोई नियम नहीं है क्योंकि जो इस जन्म-मरण की श्रृंखला के

कारणभूत हेतुओं अर्थात् कर्मों को/शुभाशुभ रागद्वेषादि परिणामों को नष्ट कर देता है, साम्य भाव को प्राप्त हो जाता है। इच्छाओं-आकांक्षाओं तथा इह लौकिक-पारलौकिक अभिलाषाओं से रहित हो जाता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। इसी से सिद्ध है कि संसार में मरण ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसको सुधार लेने पर जन्म की परम्परा नष्ट हो सकती है। जीव अमरत्व को प्राप्त हो सकता है। अब उसके लिए प्राप्त करने योग्य कुछ भी शेष नहीं बचता है। कहा भी है- **''जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च''** अर्थात् जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है जो मरता है (मरण को नहीं सुधारता है) उसका जन्म भी निश्चित है।

आयुक्षय के कारण प्राप्त होने पर शरीर का अथवा दस प्राणों, पाँच इन्द्रियों, मनोशक्ति, वचन शक्ति, काय शक्ति, श्वासोच्छ्वास और आयु के विनाश को ही मृत्यु कहा जाता है। कहा भी है- जैसे गरजते हुए बादलों को हवा अनायास ही एक जगह से उड़ाकर दूसरी जगह ले जाती है वैसे ही प्राणी को कालरूपी हवा अनायास ही दूसरी गति में ले जाती है।

विद्वानों का मत है कि **'मरण प्रकृति: शरीरिणाम्'** मरना देहधारियों का स्वभाव है। स्वभाव में तर्क नहीं चलता। जैसे- अग्नि का स्वभाव उष्णता है, इसमें कोई तर्क नहीं दिया जा सकता कि अग्नि गर्म क्यों होती है या अग्नि ठण्डी क्यों नहीं होती। सन्तों का कहना है कि यदि तुम रो कर मरोगे तो भी मरना पड़ेगा और हँस करके मरोगे तो भी मरना पड़ेगा। यदि तुम भक्ष्याभक्ष्य का, शुद्धाशुद्ध का, शाकाहारी-मांसाहारी का विवेक किये बिना अच्छे से अच्छा अर्थात् मन को भाने वाला खाते रहोगे तो एक दिन तुम्हें मरना ही पड़ेगा और यदि तुम क्रमपूर्वक भोजन की अभिलाषा/आकांक्षा/आशाओं को छोड़कर भोजन का त्याग करके मरोगे तो भी मरना पड़ेगा। किसी से लड़-झगड़कर, छीना-झपटी करके धन बटोरोगे तो भी पूरे धन को यहीं छोड़कर जाना (मरना) पड़ेगा और उसी सम्पत्ति का यथाशक्ति दान देकर, दूसरे का सहयोग करके जाओगे तो भी जाना ही पड़ेगा। लेकिन दोनों स्थितियों में मरण का फल भिन्न-भिन्न होगा। एक (पहला) मरण आपको नरक और तिर्यंच गति में ले जाकर पटक देगा, भवों-भवों, वर्षों-वर्षों के लिए दु:खी बना देगा। जहाँ तुम चाहोगे तो भी भक्ष्याभक्ष का विवेक नहीं कर पाओगे, मात्र अपनी करनी पर दु:खी होते हुए पछताओंगे। और दूसरा मरण आपको स्वर्ग के सुखसागर में आकण्ठ डुबो देगा, करोड़ों-अरबों वर्षों तक मात्र सुख ही सुख की अनुभूति करा करके

अन्त में उस अवस्था को भी देगा जो अवस्था ही प्राप्त हो जाने पर स्थायी-शाश्वत होती है। जिसके पश्चात् पुन: संसार की जन्म-मरण, क्लेश, सुख-दु:ख आदि की कोई कल्पना उत्पन्न नहीं होती, जिसको प्राप्त करने के बाद तीन लोक की ऐसी कोई वस्तु शेष नहीं रहती जिसको यह जीव नहीं जान पावे, जिसको जानने के लिए कुछ श्रम करना पड़े। अत: अच्छा तो यह है कि हम प्रसन्नता पूर्वक मरण का वरण करें।

एक संत से किसी ने पूछा- आप मृत्यु का वरण कैसे करेंगे?

संत ने जवाब दिया- ''एक मित्र की तरह। जिस तरह आप मेरे पास आते हैं मैं आपके साथ उठकर चल देता हूँ। इसी प्रकार मैं मृत्यु का भी स्वागत करूँगा और उसके साथ उठकर चल दूँगा। रोने-बिलखने, छुपने तथा और भी बचने के लिए अनेक उपाय करने पर भी मृत्यु आपको नहीं छोड़ेगी, न ही छोड़ सकती है वह।'' आप मृत्यु से नहीं बच सकते। सभी धार्मिक ग्रन्थों में लिखा है और अनुभव में भी ऐसा ही आता है कि- यह जीव मृत्यु से बचने के लिए किसी ऊँचे गिरि पर चढ़ जावे, समुद्र के तल भाग में जाकर छुप जावे, मजबूत किले के अन्दर बन्द होकर रहे, तलघर से बाहर भी न आवे तो भी मृत्यु का दूत अर्थात् कालराजा वहाँ पर भी सहज रूप से पहुँच जाता है और वह पूर्ण रूप से सुरक्षित जीव को भी अपना ग्रास बना ही लेता है। खुश होकर मरने वाला इस लोक में प्रशंसा का पात्र बनता है और परभव में भी सुगति को प्राप्त करता है।

संन्यास-मरण किसे कहते हैं

(१) मृत्यु के समय को सुधारना समाधि या संन्यासमरण है।

(२) समताभाव पूर्वक कषाय एवं शरीर को धीरे-धीरे कृश करके प्रसन्नता पूर्वक मरण का वरण करना संन्यासमरण है।

(३) खाने-पीने, देखने, सूंघने, सुनने आदि सभी प्रकार की भोगेच्छा एवं स्पर्श सम्बन्धी कामेच्छा को छोड़कर मात्र अपनी आत्मा की शरण ग्रहण करके मरना संन्यासमरण है।

(४) जिस प्रकार निश्छल जन्म लिया था वैसे ही निश्छलतापूर्वक मरण करना संन्यासमरण है।

(५) निडरता पूर्वक मृत्यु को अपना उपकारी समझते हुए अपने प्राणों का विसर्जन करना संन्यासमरण है।

(६) मैंने जब जन्म लिया था मेरे पास कुछ नहीं था, मेरा कोई नहीं था तो मृत्यु के समय भी मैं क्यों किसी को साथ ले जाऊँ। इस प्रकार विचार करते हुए परिग्रह से ममता एवं पारिवारिक जन में अपेक्षा/उपकार की इच्छा छोड़कर मरण करना संन्यासमरण है।

(७) नियम पूर्वक जीवन जीना और जब मरण अवश्यंभावी हो तो बिना किसी खेद-खिन्नता के स्वयं अपने शरीर को यमराज के हाथों में सौंपते हुए अपने परिणामों को संभालने की विधि को सल्लेखना कहते हैं।

(८) मृत्यु जीवन की एक अवश्यंभावी घटना है। इसे प्रसन्नता से स्वीकार करना ही वीरता है। इस प्रकार विचारकर शान्ति से देह त्यागना संन्यासमरण है।

(९) मरण के भय, आशंका एवं दुर्गतिगमन से बचाने वाला श्रेष्ठ प्रयोग ही सल्लेखना है।

(१०) समाधिमरण न आत्महत्या है और न जीवन से भागने का प्रयत्न, अपितु वह जीवन के द्वार पर दस्तक दे रही अपरिहार्य बनी मृत्यु का स्वागत है।

(११) संन्यासमरण की साधना देह के पोषण के प्रयत्नों का त्याग करके देहातीत होकर मरने की कला है।

(१२) शान्ति के उपासक आदर्श मृत्यु को ही सल्लेखना कहते हैं।

(१३) समाधिमरण स्वयं को साक्षी बनाकर देह-परित्याग की वह विधि है जिसमें आत्मा अपने अवसान को एक दृश्य की भाँति देखता है और देह ऐसे छूट जाती है जैसे नृत्य करते-करते मयूर पंख छूट जाते हैं/छोड़ देता है।

(१४) विषय-आकांक्षा की उत्पत्ति का अभाव ही संन्यास है।

(१५) क्रमश: भोजन-पान आदि को छोड़कर शरीर छोड़ना संन्यासमरण है।

कई लोग संन्यासमरण को आत्महत्या मानते हैं क्योंकि जिस प्रकार आत्महत्या में बुद्धिपूर्वक व्यक्ति किसी उपाय से मर जाता है इसी प्रकार संन्यासमरण में भी व्यक्ति भोजन आदि छोड़कर मर जाता है। उनका कहना है कि संन्यासमरण में जबरदस्ती अन्नादि भोजन छोड़कर मृत्यु की गोद में जाया जाता है और मौत आने के पहले ही भोजनादि छोड़कर प्राणों का विसर्जन करना आत्महत्या नहीं है तो क्या है? ऐसा कहने वालों को पहले निम्नलिखित बातों को जान लेना चाहिए-

(१) संन्यास क्या है और आत्महत्या क्या है?

(२) संन्यास के कारण क्या हैं और आत्महत्या के कारण क्या हैं?

(३) संन्यास एवं आत्महत्या में क्या अन्तर है?

(४) संन्यासमरण का फल क्या है और आत्महत्या का फल क्या है?

संन्यासमरण का लक्षण पहले कह दिया है।

आत्महत्या क्या है

(१) कषाय के वशीभूत होकर अपने आपको मारना आत्महत्या है।

(२) भावी सुख की आकांक्षा से अपने प्राणों का विसर्जन करना आत्महत्या है।

(३) जीने के योग्य शरीर के होने पर भी किसी कारण विशेष से अपने आप को मौत के मुख में धकेल देना आत्महत्या है।

संन्यासमरण के कारण

संन्यासमरण के अनेक कारण हैं। उनमें से कुछ कारण यहाँ लिखे जाते हैं-

(१) जब इन्द्रियाँ (स्पर्शन, जीभ, नाक, आँख और कान) शिथिल हो काँपने लगें अर्थात् उत्साहित नहीं रहें, तृष्णा या मन के आदेश से उन्हें नहीं चाहते हुए भी काम करना पड़े, घुटनों से चलने-फिरने, उठने-बैठने की शक्ति समाप्त हो जावे, लाठी के सहारे भी काम करने में समर्थ न हो तब समाधिमरण करना चाहिए।

(२) ऐसा कोई उपसर्ग अर्थात् मरण का निमित्त जैसे- शेर, चीता, व्याघ्र, अष्टापद आदि ऐसे जीव सामने आ जावें जिनका सामना, बराबरी, मुकाबला करना मनुष्य की शक्ति के बाहर हो, जो मनुष्य को सामने देखते ही मार डालता हो, खा जाता हो, सामने आ जाय तो संन्यास गृहण कर लेना चाहिए।

(३) दुर्भिक्ष के कारण जब भोजन-पानी, फल आदि जिनसे शरीर की स्थिति बनती है, जिनको खाकर प्राणी संसार में जीवित रहता है, जीवन जीना दुर्लभ हो जाय अर्थात् पानी के अभाव में अन्नादि वस्तुओं का उत्पाद न हो, देश-विदेश तक जाने पहुँचने की क्षमता भी न हो और देश-विदेश से इन पदार्थों की उपलब्धि भी नहीं हो पा रही हो या अतिवृष्टि (पानी की बहुलता) के कारण जहाँ है वहाँ से कहीं अन्य स्थान पर जाना असंभव हो गया हो तो संन्यास-समाधि गृहण कर लेना चाहिए।

(४) अचानक भूकम्प आ जाने से जमीन में दब गये हों, सुनामी लहरों के साथ बह जाने से या बाढ़ में बहने से समुद्र में गोते (ऊपर-नीचे होना) खा रहे हों; ज्वालामुखी के लावा में झुलस रहे हों, जंगल या घर-दुकान, सामूहिक कार्यकृम आदि में अकस्मात् दावानल, अग्नि या करण्ट आदि से अग्नि प्रज्वलित हो गयी हो; कुए-बावड़ी, नदी-तालाब, स्वीमिंग पूल आदि में तैरना नहीं आने के कारण डूबने की सम्भावना उत्पन्न हुई हो, भयंकर आँधी-तूफान आदि में फँस गये हो, कार-जीप से भयंकर एक्सिडेंट हो गया हो, जीने की सम्भावना कम हो तो संन्यासमरण करना चाहिए।

(५) रोग-कोई ऐसा रोग हो जाये जिसका इलाज नहीं हो अथवा जिसका इलाज इतना महँगा हो, जिसको करवाने की क्षमता न हो या ऐसा रोग जो असह्य हो, जिसका इलाज करवाने से पहले मृत्यु सम्भावित हो, संन्यास गृहण कर लेना चहिए।

(६) यदि ऐसा समय या परिस्थिति आ जाये जिसमें अपने गृहण किये हुए वृत, शील, सदाचार, त्याग, तप आदि नियमों का नाश होने लगे, नियम टूटने लगे तो खुशी-खुशी अपने या दूसरे के हाथों-शस्त्रों से या अग्नि-पानी आदि में प्रवेश करके मरण को प्राप्त करने रूप विधि से संन्यास गृहण करना भी अच्छा ही माना गया है।

(७) मरण किसी को इष्ट नहीं है। जैसे- अनेक प्रकार के रत्न आदि बहुमूल्य पदार्थों का व्यापार करने वाले किसी व्यापारी को अपने घर का विनाश इष्ट नहीं है। यदि कदाचित् विनाश के कारण उपस्थित हो जायें तो वह उसकी रक्षा का पूरा उपाय करता है। और जब रक्षा का उपाय सफल नहीं होता तब घर में रखे हुए बहुमूल्य पदार्थों को निकाल लेता है और घर को अपनी आँखों के सामने ही नष्ट होते देखता है। इसी प्रकार व्यक्ति को सेवा-परोपकार, वृत-संयम आदि गुणों के स्थानों के आधारभूत शरीर की रक्षा आहार-औषधि आदि के द्वारा करना चाहिए। लेकिन जब रोग असाध्य हो जाय तो सल्लेखना के द्वारा वृत आदि गुणों की रक्षा करते हुए प्रसन्नता पूर्वक शरीर को छोड़ देना चाहिए।

(८) जब तक आशा एवं उपाय संभव हों तब तक जीने की पूर्ण चेष्टा एवं सात्त्विक उपाय किये जाते हैं लेकिन जब समस्त सात्त्विक साधन व्यर्थ हो

जावें तब सल्लेखना करना चाहिए।

आत्महत्या के कारण

(१) प्रेम या रोमांस की असफलता आत्महत्या का कारण है।

(२) मानसिक तनाव जैसे- चिन्ता, भय, मानसिक अस्थिरता, निराशा, क्रोध तथा भावुकता आदि आत्महत्या के लिए प्रेरित करते हैं।

(३) कभी-कभी शारीरिक कमियाँ जैसे- अन्धा होना, बहरा होना, अपंग होना, कुरूप होना, नपुंसक होना आदि कारणों से होने वाला तिरस्कार या अपने आप में हीनता की भावनाएँ भी आत्महत्या की कारण बनती हैं।

(४) व्यापार में बहुत घाटा (नुकसान) होना, जुआ आदि में हार जाना या ऐसे कार्यों को कर लेना या ऐसे कार्य हो जाना जिनके कारण ''अब मैं संसार में मुँह दिखाने लायक नहीं हूँ, कैसे मुँह दिखाऊँ'' आदि विचार करते-करते आत्महत्या के भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

(५) इलियट व मैलिन का मत है कि आत्महत्या व्यक्ति के विघटन का दु:खद तथा अपरिवर्तनशील अन्तिम परिणाम है। यह व्यक्ति के दृष्टिकोणों में होते उन क्रमिक परिवर्तनों का अन्तिम स्तर है जिनमें व्यक्ति के मन में जीवन के प्रति अगाध प्रेम के स्थान पर घृणा उत्पन्न हो जाती है।

(६) दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या ऐसी सकारात्मक या नकारात्मक क्रिया है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक स्थिति में मृत्यु के रूप में प्रतिफलित होती है। इस क्रिया का कर्त्ता स्वयं ही इस क्रिया के परिणाम का भक्ष्य बनता है।

(७) रूथ कैवन के अनुसार आत्महत्या अपने आप स्वेच्छा से जीवन लीला समाप्त करने हेतु अथवा मृत्यु द्वारा आतंकित होने पर अपने जीवन को बचाने में असमर्थता की प्रक्रिया है।

(८) जुंग कहता है कि जब व्यक्ति के स्व की प्रवृत्ति अहं में केन्द्रित हो जाती है वह आत्महत्या कर लेता है।

संन्यासमरण एवं आत्महत्या में अन्तर

(१) संन्यासमरण करने वाले में न जीवन के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और न जीवन के प्रति अगाध प्रेम होता है अपितु वह जीवन और मृत्यु के प्रति समभाव धारण करता है, जबकि आत्महत्या करने वाले में जीवन के प्रति

घृणा होती है, फिर भी जीने की इच्छा रखते हुए भी मरने की कोशिश करता है।

(२) संन्यासमरण करने वाले में मृत्यु का भय नहीं होता जबकि आत्महत्या में भय प्रबल कारण होता है।

(३) संन्यासधारी आत्मकेन्द्रित, संयमी एवं विवेकी होता है तो आत्महत्यारा असंयमी, अविवेकी एवं परद्रव्याश्रित होता है।

(४) समाधि ज्ञानी-योगी के होती है तो आत्महत्या मूर्ख लोग करते हैं।

(५) समाधि करने वाला सबको शान्ति और प्रसन्नता प्रदान करके/कराके जाता है तो आत्मघाती सबको अशान्ति, विवाद एवं दु:ख देकर जाता है।

(६) समाधिस्थ के मुखमण्डल पर हर्ष, आशा और अपूर्व तेज झलकता है जबकि आत्मघाती के मुख पर तनाव, निराशा एवं कालिमा झलकती है।

(७) संन्यासमरण प्रकाश है तो आत्महत्या अंधकार है।

(८) सल्लेखना निर्विकार है तो आत्महत्या विकार है।

(९) सल्लेखना का लक्ष्य व विचार कार्यसिद्धि तक स्थिर रहते हैं। जबकि आत्महत्या का विचार क्षणिक होता है जो इच्छित वस्तु/कार्य की सिद्धि हो जाने पर समाप्त हो जाता है।

(१०) सल्लेखनाधारी सल्लेखना काल में आनन्दित होता है उसके चेहरे और मन में समता का भाव स्पष्ट झलकता है जबकि आत्मघाती फाँसी लगाने, जहर खाने, कुए में कूदने एवं शरीरघात आदि की स्थिति के तुरन्त बाद छटपटाता है, चिल्लाता है, बचने की कोशिश एवं बचाने की प्रार्थना करता है।

(११) सल्लेखना में कषायों की कृशता/मन्दता होती है जबकि आत्महत्या में कषाय के परिणाम तीव्र होते हैं।

(१२) समाधिधारक पुरुषार्थी होता है जबकि आत्मघाती कर्म/पुरुषार्थ के प्रति पलायनवादी दृष्टि वाला होता है।

(१३) संन्यासमरण जीवन को गहरे अन्धकार से निकालने का सदुपाय है जबकि आत्महत्या जीवन को और गहरे अन्धकार में डालने का साधन है।

(१४) संन्यासमरण जीवन को भव-भव में भटकना बन्द कर स्थिर पद देने वाला

है जबकि आत्महत्या जीवन का ठहराव नहीं अपितु और ज्यादा जीवन का भटकाव है।

(१५) संन्यासमरण शाश्वतसुख का सूत्रधार है जबकि आत्महत्या सुखशान्ति का उपाय नहीं अपितु दु:खी होने का सूत्र है।

(१६) संन्यासमरण मुक्ति प्राप्त करने की युक्ति है जबकि आत्महत्या जीवन की मुक्ति नहीं है।

संन्यासमरण का फल क्या है

(१) समाधि/सल्लेखना पूर्वक मरने वाला वर्तमान में अर्थात् इसी भव में सल्लेखना का संकल्प लेते ही लौकिक जनों के द्वारा आदरणीय होता हुआ सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

(२) सल्लेखना करने वाला महीनों-महीनों के उपवास करने वालों से, कष्टप्रद कायक्लेश जैसे- खड़े-खड़े ध्यान करना, पर्वत की चोटी पर सूर्य की किरणों के सामने स्थित होकर ध्यान करने वालों से भी बड़ा होता है क्योंकि महीने भर का उपवास करने वाले को भी उपवास के बाद पारणा अर्थात् उपवास पूरा होने पर खाने की इच्छाएँ एवं आशाएँ लगी रहती हैं लेकिन सल्लेखना करने वाले की मृत्यु पर्यन्त भोजन आदि की आशाएँ समाप्त हो जाती हैं। उसी का फल होता है कि बड़े-बड़े महर्षि, साधु-संत तक भी उसकी यदि साधु है तो वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, दर्शन करने आते हैं और यदि गृहस्थ है तो उसकी सेवा करते हैं। सबको उसकी सेवा करने की प्रेरणा देते हैं। उसे बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उसको धन्य-धन्य कहते हैं। चाहे पशु भी यदि समाधि ले रहा है/लेता है तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं। सेवा करके अपना सौभाग्य समझते हैं। प्रथम चक्रवर्ती भरत जिसके नाम से हमारे देश का नाम भारत रखा गया/प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। उसने पूर्वभव में शेर की पर्याय में जब मांस के साथ-साथ सभी प्रकार के भोजन-पानी का त्याग कर दिया तो उसकी सूचना देने के लिए परम ऋद्धि (सिद्धि) प्राप्त महासन्त एक राजा के महल में गये थे। सन्त गुरुओं की प्रेरणा से राजा स्वयं उस स्थान पर गया जहाँ पर शेर (सिंहराज) समाधि लेकर स्थित था। उन्होंने उसकी १८ दिन तक अपने हाथों से सेवा की थी। फलत: शेर स्वर्ग में गया

और यहाँ आकर चक्रवर्ती भरत बना।

(३) समाधिमरण करने वाले की तपस्या एवं निडरता को देखकर कई लोग अपना जीवन सुधारते हैं। उसका पुण्य भी कुछ अंशों में उसको मिलता है।

(४) समाधिमरण करने वाला अपने समता भाव के फल में नियम से स्वर्गों में उत्पन्न होता है, जहाँ अणिमा, महिमा अर्थात् शरीर को अपनी इच्छानुसार छोटा-बड़ा, हल्का-भारी आदि बनाने की शक्ति मिलती है, पंचेन्द्रिय के विषय भोगों की सभी प्रकार से अनुकूलता रहती है। समाधि के फल में ही राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार आदि सुखसम्पन्न परिवारों में जन्म होता है।

(५) यदि समाधि के समय पूर्ण रूप से राग-द्वेषादि नष्ट हो जावें तो परम निर्वाण/मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(६) समाधि करने वाला उच्चकुल, सुन्दर-सुडौल शरीर वाला यशस्वी और ओजस्वी होता है।

(७) समाधि करने वाला तेजस्वी, विद्यावान एवं सर्वगुणसम्पन्न होता है।

(८) समाधिमरण करके शुभ फल को प्राप्त करने वाले सम्राट् चन्द्रगुप्त के उदाहरण को नहीं भूला जा सकता है।

सम्राट् चन्द्रगुप्त

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य पूर्वभव में एक गरीब ब्राह्मण के पुत्र थे। बुद्धि की कमी होने के कारण इनको किसी भी कार्य को करने में सफलता नहीं मिलती थी। माता-पिता के अनेक प्रयासों के बाद भी उनमें बुद्धि का विकास नहीं हुआ। एक दिन उनके माता-पिता ने क्रोधित होकर उन्हें घर से निकाल दिया। वह बच्चा जिसका नाम नन्दीमित्र था तीन दिन तक भूखा-प्यासा इधर-उधर भटकता रहा। लेकिन उसको कोई काम नहीं मिला। चौथे दिन एक लकड़हारे ने दया करके अपने यहाँ उसको काम दे दिया जिसका वेतन भोजन, कपड़ा और रहने के लिए स्थान मात्र निश्चित किया गया। लकड़हारे की पत्नी जब सबसे पहले दिन उसको भोजन कराने लगी तो वह तीन दिन का भूखा होने के कारण चार व्यक्तियों के लिए बना हुआ भोजन पूरा खा गया। यह देख लकड़हारिन को बहुत गुस्सा आया। वह दूसरे दिन से उसको पानी में दलिया उबाल कर पीने के लिए देने लगी। एक वर्ष तक मात्र दलिया पीते हुए भी नन्दीमित्र ने न कोई प्रतिकार किया और न कोई अन्य वस्तु खाने

की इच्छा व्यक्त की तो लकड़हारिन को उस पर दया आ गई। उसने एक बार त्यौहार के दिन उसको अच्छे मिष्टान्न खिलाए और नये वस्त्र पहनाए। मिष्टान्न खाने से उसकी दिन में ही नींद लग गई अर्थात् वह भोजन करके सो गया। लकड़हारे को जब यह मालूम हुआ कि पत्नी ने उसको मिष्टान्न खिलाए हैं इसलिए वह दिन में सो रहा है तो उसने लकड़ी लेकर पत्नी को पीटना प्रारम्भ कर दिया। नन्दीमित्र ने सोचा- अहो, मेरे कारण माँ तुल्य इस लकड़हारिन की पिटाई हो रही है, ऐसे स्थान पर मुझे नौकरी करने से क्या लाभ? वह वहाँ से भाग गया और जंगल से लकड़ी काटकर उसे बेचने के लिए बाजार में जाकर बैठ गया। लेकिन दो दिन तक लकड़ियाँ नहीं बिकीं क्योंकि उसे व्यापार करना अर्थात् वस्तु खरीदना-बेचना आता ही नहीं था। दो दिन का भूखा-प्यासा वह तीसरे दिन पुन: लकड़ियाँ लेकर बाजार में बैठा था तभी उसके सामने से एक दिगम्बर साधु निकल रहे थे, साधु को देखकर उसने सोचा अहो, यह व्यक्ति तो मेरे से भी ज्यादा दरिद्र लगता है।मेरे पास तो पहनने के लिए वस्त्र हैं, इसके पास तो लंगोटी तक नहीं है....। फिर भी मुझे देखना चाहिए कि यह कहाँ रहता है? क्या खाता है? इसके पत्नी-बच्चे आदि हैं या नहीं। वह उनके पीछे चल दिया। एक जैन परिवार ने बड़े आगूह एवं भक्ति से विधि पूर्वक उनको (साधु को) भोजन करवाया। वह भी यह सब, जबतक साधु का आहार हुआ, वहीं बैठा-बैठा देखता रहा। साधु के आहार करके जंगल में चले जाने के बाद जैन परिवार ने सोचा- यह कोई साधु का परम भक्त होगा, भविष्य में साधु बनने वाला होगा तभी तो साधु के साथ आया है और इतनी देर से यहाँ बैठा है। उन्होंने उसको भी बड़े प्रेम से भोजन कराया और आदर के साथ साधु के पास छोड़ आए। साधु के पास रहते हुए अभी तीन दिन ही बीते होंगे कि साधु ने अपने विशिष्ट ज्ञान से यह जानकर कि अब इसकी आयु कुछ ही समय की शेष रही है, उससे कहा- ''बेटा! अब तुम्हारी आयु बहुत कम शेष बची है। तुम सल्लेखना धारण करो।'' उसने गुरु की बात पर श्रद्धा करके गुरु से साधु बनाने अर्थात् दीक्षा देने की प्रार्थना की। गुरु ने उसको साधु के वृत दिये, दीक्षा दी। उसने भी दीक्षित होकर गुरु के चरणों में चारों प्रकार के आहार-पानी का त्याग कर समाधिमरण किया और उसके फल में यहाँ आकर भारत सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य बना। ऐतिहासिकता के अनुसार उनके पुण्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जब वह दिगम्बर मुनि बारह वर्ष तक चन्द्रगिरि पर्वत पर अपने गुरु की सेवा में लीन थे, आस-पास कोई नगर, ग्राम

आदि नहीं होने से उनके आहार (भोजन) की व्यवस्था मुनिचर्या के अनुकूल नहीं बन रही थी तब स्वर्ग के देवों ने गुप्तरूप से अर्थात् मनुष्यों का वेष धारण करके उनको आहार करवाया था। यह सहज रूप में गुरु के आदेशानुसार एक बार समाधिमरण करने का तात्कालिक/लौकिक फल है। परम्परा से तो समाधि मुक्ति का साधन है। समाधि करने वाला कुछ ही भवों में मोक्ष जाता है।

(९) जो फल बड़े-बड़े वृती पुरुषों को कायक्लेशादि तप, अहिंसादि वृत धारण करने पर प्राप्त होता है, उससे कई गुणा फल अन्त समय में सावधानी पूर्वक किए गये समाधिमरण से सहज रूप से प्राप्त हो जाता है।

(१०) जीवनभर की हुई साधना, तपस्या, धर्म-पुण्य का फल तभी मिलता है जब अन्त समय में समाधिपूर्वक मरण हो। कहा भी है- एक सेठ ने बड़ी कठिनाई से धन कमाया। रास्ते में चौरादि से रक्षा करते हुए वह अपने नगर के बाहर तक आ गया। लेकिन नगर के बाहर ही उसकी नींद लग गई। चोरों ने उसे लूट लिया। एक क्षण में बेचारा पुन: दरिद्रता के गः में गिर गया। उसी प्रकार सल्लेखना नहीं करने वाला भी जीवनभर धर्मरूपी धन कमाता रहा और अन्त समय आया तब थोड़ी सी प्रमाद रूपी नींद लग गयी। भाव बिगड़ गये या सल्लेखना लेने के पहले ही मौत आ गई तो पुन: उन्हीं दुर्गति रूपी गः में जाकर गिर गये, दु:खी के दु:खी ही रह गये।

आत्महत्या का फल

(१) आत्महत्या करते समय जीव के परिणाम नियम से संक्लेश रूप ही होते हैं और संक्लेश का फल हमेशा दुर्गति ही माना गया है।

(२) आत्महत्या करते समय जिसके (यदि किसी व्यक्ति के कारण की है तो) कारण आत्महत्या की उसके प्रति द्वेष परिणाम होने से वह उससे बदला लेने की भावना से मरता है तो उसकी गति अच्छी कैसे हो सकती है?

(३) आत्महत्या करने वाले अधिकांशत: नरक में ही जाते हैं क्योंकि जब दूसरे को मारने वाला भी नरक में जाता है तो स्वयं को मारने वाला नरक में जावे तो कोई आश्चर्य नहीं है।

(४) आत्महत्या करने वाला यदि किसी कारण से देव बन जावे तो भूत-पिशाच-डाकिनी आदि बनकर दूसरों को सताता है, उसकी अच्छी गति कैसे हो सकती है?

(५) आत्महत्या करने वाले का मन यदि धन आदि में अटक गया तो सर्प की पर्याय को प्राप्त होकर धन पर आकर बैठता है।

असूर्या नाम ते लोका:, अन्धेन तमसावृता:।
तान् ते प्रत्यभिगच्छन्ति, ये केचनात्महतो जना:।।

जो लोग आत्महत्या करते हैं वे मरने के बाद अन्धकार से आवृत असूर्य प्रदेश अर्थात् जहाँ सूर्य नहीं है ऐसे अन्धकार प्रदेश में जन्म लेते हैं।

संन्यासमरण के भेद

संन्यासमरण दो प्रकार के होते हैं-

(१) अक्रम (अनियत) संन्यास (२) क्रमिक (नियत) संन्यास।

अनियत संन्यासमरण- ऐसी बीमारी, उपसर्ग, दुर्भिक्ष आदि जिनके आने पर भी जीवित रहने की सम्भावना हो उस समय कुछ निश्चित समय के लिए अर्थात् उपसर्ग आदि समाप्त होने तक अन्नादि समस्त भोजन एवं मोह-ममता, भोग आदि का त्याग करना अनियतसंन्यासमरण है। जैसे- गर्भवती अंजना को जब सास केतुमती ने घर से निकाल दिया था, अंजना जंगल-जंगल भटक रही थी। एक दिन वह एक गुफा में बैठी थी। अचानक उसे गुफा की तरफ आता हुआ एक अष्टापद दिखाई दिया। उसने अष्टापद को देखते ही ''जब तक यह अष्टापद यहाँ से नहीं जायेगा अर्थात् अष्टापद यदि मुझे खाने लगेगा, उससे बचने तक मुझे समस्त आहार-पानी तथा इस शरीर से भी ममत्व का त्याग है।'' इस प्रकार संकल्प करके वह भगवान की भक्ति में लीन हो गयी। अष्टापद उसके निकट आया और उसे भगवान की भक्ति में लीन देखकर बिना कुछ किये लौट गया। अंजना का संकल्प पूरा हो गया। यदि उस समय अंजना को अष्टापद खा जाता तो उसका वह मरण अनियतसंन्यासमरण कहलाता। उसके फल में भी वह स्वर्ग को ही प्राप्त होती। अनियत संन्यास में श्रेष्ठी सुदर्शन का जीवन भी एक आदर्श है।

सेठ सुदर्शन शीलव्रत का निर्वाह करने में प्रकाण्ड पण्डित माने जाते थे। उनके जीवन में चार बार ब्रह्मचर्य नष्ट होने के विशेष निमित्त कारण मिले थे लेकिन अपनी चतुराई से उन्होंने अपने शील को नष्ट नहीं होने दिया था।

(१) उनके मित्र की पत्नी ने अपने चंगुल में फँसाया था तब वे अपने आप को नपुंसक कहकर बचे थे।

(२) राजा की रानी अभया ने छल से आत्मध्यानलीन सेठ को उठवाकर अपने महल में मंगवा लिया और वह अनेक हाव-भाव तथा युक्तियों से उन्हें अपनी तरफ आकर्षित करने लगी। जब सेठ पर इन सब बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उसने राज्य, भोगोपभोग सामग्री आदि का प्रलोभन दिया और जब अनेक प्रकार के प्रलोभनों से भी कुछ नहीं हुआ तो उसको राजा से दण्डित करवाने के उद्देश्य से झूठा कलंक लगाने का षड्यंत्र रचा तो उन्होंने संकल्प कर लिया कि मैं यदि इस रानीके चंगुल से सुरक्षित निकल जाऊँगा तो सन्त बनकर अपनी आत्मा को शुद्ध करूँगा। तप की अग्नि में तपाकर सम्पूर्ण विकारों को नष्ट करूंगा। इस प्रकार संकल्प करके भगवान की भक्ति में तल्लीन हो गया। रानी ने सेठ को बदनाम करने के लिए और 'मेरा यह षड्यंत्र कोई जान न पाये' इसके लिए अपने बाल बिखेरकर, अपने पहने हुए वस्त्र फाड़कर, अपने ही हाथों से अपने ही शरीर को नोंच (लहूलुहान) कर आँखों को मसल-मसल लाल करके चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया। ''हे द्वारपाल, जल्दी से राजा को बुला लाओ'', कहकर हाय यह पापी सेठ मेरे महल में कैसे आ गया, अरे द्वारपालो, क्या तुम लोग सब सो गये थे ? इस बगुला-भगत ने मेरा शील नष्ट करने के लिए, मेरे साथ बलात्कार करने के लिए मेरी क्या दशा कर दी है। हे भगवन्! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो''.......आदि-आदि विलाप करने लगी। राजा ने आकर जब एक तरफ रानी की दशा देखी-विलाप सुने और दूसरी तरफ सेठ की सौम्यमुद्रा देखी तो यह निर्णय नहीं कर पाया कि वास्तव में दोष किसका है? उसने रानी के मोह में फँसकर उसकी बात सच्ची मान ली और सेठ को सूली की सजा की घोषणा कर दी। सजा सुनकर भी सेठ अपनी समाधि से च्युत नहीं हुआ। घोषणा के अनुसार सेठ को सूली के स्थान पर ले जाया गया। प्रभु के प्रति भक्ति को देख स्वर्ग के देवों ने उनकी रक्षा की। देवों ने यहाँ आकर सूली के स्थान पर सिंहासन बना दिया। सेठ का उपसर्ग टल गया। सेठ अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वन में जाकर सन्त तपस्वी बन गया।

(३) संत बनने के बाद पुन: एक बार अचानक वे वेश्या के चंगुल में फँस गये। वहाँ उन्होंने वेश्या के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर यदि उपसर्ग टल गया तो

ग्राम-नगर में प्रवेश का त्याग कर दिया। वहाँ भी उनका उपसर्ग टल गया।

(४) जंगल में फिर से उनके ऊपर एक व्यंतर देव ने उपसर्ग किया। उस समय भी सेठ ने अनियत सल्लेखना धारण की थी अर्थात् जब तक उपसर्ग दूर नहीं होगा तब तक के लिए सभी प्रकार के आहार आदि का त्याग कर दिया था। इस बार के उपसर्ग में सच में संत सेठ की मृत्यु हो गई। वे निर्वाण-मोक्ष को प्राप्त हो गये।

उपर्युक्त उदाहरणों में से पहले दृष्टान्त में तो सती अंजना मृत्यु से बच गई थी। दूसरे दृष्टान्त में सेठ तीन बार तो मृत्यु से बच गया था लेकिन चौथी बार में सेठ मृत्यु को प्राप्त हो गया। और भी ऐसे असंख्यात जीव इस संसार में हो चुके हैं जिन्होंने इस प्रकार का संन्यास धारण किया है। इसके अलावा ऐसे भी अनेक जीव हुए हैं जिन्होंने अचानक मृत्यु के क्षण आ जाने पर भगवान के चरणों में अपने आपको समर्पित कर स्वर्गादि सद्गतियों को प्राप्त किया है। श्री रामचन्द्र ने पूर्वभव में मरणशय्या पर पड़े हुए एक बैल को भगवान का नाम सुनाया। फलत: बैल मरकर सुग्रीव बना और उसने रामचन्द्र की सहायता की। राजा सत्यंधर के पुत्र जीवन्धर ने एक कुत्ते को जो लाठियों की मार पड़ने से तड़प रहा था, भगवान की भक्ति करने की प्रेरणा दी। कुत्ते ने भगवान में अपना मन लगाया और वह मरकर स्वर्ग में देव हुआ। इसी प्रकार ऐसे अनेक प्राणी हुए हैं जिन्होंने बिना किसी की प्रेरणा के स्वयं अपने आप पूर्वोपार्जित संस्कारों से प्रेरित होकर मरते समय प्रभु भक्ति में मन लगाकर सद्गति को प्राप्त किया, जैसे - भीष्मपितामह आदि।

नोट- क्रमिक संन्यास का वर्णन आगे विस्तार पूर्वक किया है।

सामान्य रूप से क्रम पूर्वक भोजन का त्याग करते हुए शरीर को कृश करना तथा स्नेह, शोक-मोह आदि को छोड़कर कषायों को कृश करके मरण करना क्रमिक-नियत संन्यासमरण है।

अथवा- संन्यास मरण के और भी भेद हैं-

(१) अकाम मरण (२) सकाम मरण।

(१) बाह्य सल्लेखना (२) अभ्यन्तर सल्लेखना।

(१) काय सल्लेखना (२) कषाय सल्लेखना।

(१) द्रव्य सल्लेखना (२) भाव सल्लेखना।

(१) मन संन्यास (२) वचन संन्यास (३) काय संन्यास।

अकाम मरण - बिना पुरुषार्थ के उद्देश्य से रहित या निष्प्रयोजन मरण अर्थात् जिस मृत्यु को प्राप्त करने से कोई सार, अर्थ, प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो वह अकाम मरण है। अनन्त काल से जीव ने यही मरण किया है इसलिए जन्म-मरण की शृंखला समाप्त नहीं हुई।

सकाम मरण - सल्लेखना पूर्वक मृत्यु को सुधारना सकाममरण है।

बाह्य सल्लेखना - अभ्यन्तर सल्लेखना की सिद्धि के लिए चार प्रकार के आहारों का क्रम से त्याग करते हुए पूर्ण रूप से त्याग करना बाह्य सल्लेखना है। इसे ही द्रव्य सल्लेखना कहते हैं।

अभ्यन्तर सल्लेखना - क्रम-क्रम से स्नेह-राग को घटाना या शोक, भय, जीविताशा, मरणाशा, मोह, कषाय आदि का त्याग करना अभ्यन्तर सल्लेखना है, इसे ही भाव सल्लेखना कहते हैं।

काय सल्लेखना - शरीर को सम्यक्प्रकार से अर्थात् ख्याति-पूजा, लाभ आदि की अपेक्षा छोड़कर कृश करना काय सल्लेखना है। शरीर के आधीन होकर नहीं चलना ही काय सल्लेखना है।

कषाय सल्लेखना - बाह्य वस्तुओं में मूर्च्छा का त्याग करके अपने-पराये, हानि-लाभ, अच्छे-बुरे आदि में राग-द्वेष कम करना कषाय सल्लेखना है। कषाय सल्लेखना के बिना मात्र शरीर को कृश करना सल्लेखना नहीं है। मात्र काय सल्लेखना से मृत्यु नहीं सुधर सकती अत: सल्लेखना में कषाय सल्लेखना ही मुख्य है।

जिस प्रकार मूल से उखाड़ा हुआ विषवृक्ष ही प्रयोजन की सिद्धि करता है, मात्र शाखाओं, डालियों एवं पत्रों आदि का उखाड़ना नहीं, उसी प्रकार कषायों की कृशता के साथ हुई कायकृशता ही प्रयोजन की संरक्षिका है, कोरी कायकृशता नहीं।

मन संन्यास - मन में लौकिक इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में हर्ष-विषाद आदि उत्पन्न नहीं होना या दुर्ध्यान का त्याग करना ही मन संन्यास है।

वचन संन्यास - कषायवर्धक, गाली-गलौच तथा क्रोधादि के आवेश में आकर यद्वा-तद्वा नहीं बोलना वचन संन्यास है।

काय संन्यास - शरीर में बिना प्रयोजन गमनागमन की प्रवृत्ति का तथा आँखें दिखाना, दूसरे को या स्वयं को मार-पीट करना आदि दुष्चेष्टाओं का त्याग

करना कायसंन्यास है।

सल्लेखना के विषय में लोगों के विचार

संसार में अधिकतर लोग सोचते हैं कि जब मौत आयेगी तब देखेंगे। अभी से सल्लेखना के बारे में क्या सोचना। उनको थोड़ा सा गहराई से सोचना चाहिए कि मृत्यु आने के बाद आप कितने समय तक जीवित रहेंगे। क्या मृत्यु के पहले आप यह समझ जायेंगे कि अब मेरी मौत आने वाली है? क्या मौत आने के बाद आप उससे कह सकेंगे कि ''प्लीज! पाँच मिनट के लिए रुक जाओ। मैं तुम्हारे साथ चलने के लिए कुछ तैयारी कर लेता हूँ। मैं अगले भव के लिए कुछ दान-पुण्य धर्म कर लेता हूँ।'' क्या आपके इस प्रकार मौत के सामने गिड़गिड़ाने से मौत आपकी बात सुन लेगी, आपके लिए पाँच मिनट रुक जायेगी? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इस प्रकार के विचार तो उस व्यक्ति के विचारों जैसे है कि जब ट्रेन आयेगी तब स्टेशन पहुँचेंगे। जब ट्रेन में बैठना होगा तब अटेची जमाएंगे। जब आग लगेगी तब कुआ खोदेंगे। ऐसे व्यक्तियों को अपने कार्य में कभी भी सफलता नहीं मिल सकती है। कुछ लोग कहते हैं कि यदि हमने समाधि, संन्यास धारण कर लिया और हमारी मौत नहीं आयी, हमारा जीवन समाप्त नहीं हुआ तो हम बिस्तर में पड़े-पड़े सड़ते रहेंगे; दु:खी होते हुए तड़फते रहेंगे। इसलिए हम तो तब सल्लेखना करेंगे जब मृत्यु आयेगी। कोई-कोई व्यक्ति यह भी सोचते हैं कि हे भगवान्! हमें तो खाते-पीते, चलते-फिरते ही उठा लेना ताकि किसी से सेवा नहीं करवाना पड़े। हमारे प्राण तो बिना किसी वेदना के चटपट निकल जावें। ऐसा कहने वाले वास्तविक धर्म से अपरिचित हैं। वे मात्र भगवान के दर्शन, पूजा-पाठ, जाप्य, वृत-उपवास आदि को धर्म मानते हैं; उनकी सफलता अर्थात् जीवनभर किये गये अनुष्ठानों का फल जो शान्तिपूर्वक मरण हो, उसको नहीं जानते हैं इसीलिए उनके मन में ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं। दूसरी बात शायद वे सोचते हैं कि यदि मैं किसीसे सेवा करवाऊंगा तो अगले भवों में मुझे फिर उनकी सेवा करनी पड़ेगी। मैं किसीसे सेवा करवा कर अपने ऊपर अहसान नहीं लेना चाहता हूँ। लेकिन सेवा कभी करवाई नहीं जाती है, सेवा तो की जाती है और इसीलिए परोपकार, सेवा को लोक में या सर्व धर्मों में उत्तम पुण्य का कार्य माना गया है। जो करवाई जाती है वह सेवा नहीं है, वह ड्यूटी नहीं एक नौकरी है। नौकरी बदले में कुछ लेने की भावना से की जाती है तो ड्यूटी सहज रूप से अपना कर्त्तव्य समझ कर की जाती है। और यदि आपके बेटे-बहू-

पौत्र आदि आपकी सेवा कर भी दें तो कोई बड़ी बात नहीं है। आपने कितनी सेवा की है। उसके उपकार में थोड़ी सेवा करवा भी लें तो कोई खेद की बात नहीं है, कोई संकोच की बात नहीं है फिर यदि आप बाह्य परिग्रह को छोड़कर और कषाय को कृश करते हुए सल्लेखना कर रहे हैं तो पुत्र-पौत्र की बात तो बहुत दूर गाँव के अपरिचित लोग तक भी आपकी सेवा करके अपने आपको भाग्यशाली समझेंगे।

चलते-फिरते मरना कैसा है

यद्यपि लोक में चलते-फिरते मरना, चटपट प्राण निकलना अच्छा माना गया है लेकिन मेरे विचार से और सल्लेखना के प्रकरण में उसे उचित नहीं माना जा सकता है। क्योंकि चटपट चलते-फिरते प्राण निकलने वाले को अन्त समय में न कोई भगवान का नाम सुनाने वाला मिलता है और न वह स्वयं भगवान का नाम ले पाता है, उसे भगवान का नाम लेने का ध्यान ही नहीं आता है अर्थात् वह भगवान का नाम लेते/सुनते हुए नहीं मर सकता है। जो मरते समय भगवान का ही स्मरण नहीं कर पाता है तो अपनी आत्मा का स्मरण आना, आत्मा के कल्याण का विचार आना कैसे सम्भव है? फिर उसकी मौत अच्छी कैसे मानी जा सकती है? क्योंकि मौत सुधरने का मूल आधार तो अन्त समय में भी सावधानी, सचेतन अवस्था, हँसते-हँसते मौत का वरण करना है। इसलिए मौत के कारणों को कहा गया है। मौत के कारण उपस्थित हो जाने पर बुद्धिपूर्वक बाह्य आडम्बर, भोजन-पानी, रिश्ते-नाते आदि के विकल्पों को छोड़कर धीरे-धीरे मौत की तरफ कदम बढ़ाये जाते हैं। वास्तव में संन्यासमरण स्वीकार करने वालों के यहाँ मौत नहीं आती अपितु वह स्वयं मौत के पास जाता है।

मैं तो सोचती हूँ कि मृत्यु के पहले व्यक्ति को कुछ (१५-२०) दिनों तक तो बीमार रहना/होना ही चाहिए अर्थात् मरने वाले के साथ कुछ दिन पहले कोई-न-कोई ऐसी बीमारी या विशेष प्रक्रिया अवश्य होनी चाहिए जिससे उसे यह अहसास होने लगे कि अब मेरी मौत आने वाली है, अब मैं मौत के बहुत निकट पहुँच चुका हूँ ताकि वह बाह्य आडम्बरों के विकल्पों को छोड़कर भगवान का स्मरण कर सके, स्वयं सावधान रह सके। वह स्वयं सोच सके कि अब मेरी मौत आने वाली है, उसे सुधारने के लिए मुझे भगवान का स्मरण करना चाहिए। कषायों, वैर भावों को छोड़ देना चाहिए...। और उसके साथ बेटे-बहू, पुत्र-पौत्र, पति (पत्नी के मरण के समय)-पत्नी आदि सावधान रह सकें अर्थात् बीमारी देखकर उन्हें भी ऐसा लगे कि

कोई-न-कोई एक व्यक्ति इनके पास अवश्य रहना चाहिए। इनको अब किसी बात के विकल्प न करवाकर भगवान का नाम सुनाना चाहिए क्योंकि बीमार हैं। बीमार व्यक्ति का क्या भरोसा....। बीमारी होने से दोनों को सावधानी का मौका मिलता है अन्यथा अचानक मृत्यु आ जाने पर मरने वाले के मन की बातें मन में ही रह जाती हैं, वह अपनी सम्पत्ति आदि कहाँ रखी, किसको देनी हैं, आदि सभी विकल्पों से मुक्त नहीं हो पाता है और यदि किसी से लड़ाई-झगड़ा, वैर-विरोध आदि हो गया तो क्षमा भी नहीं माँग पाता है तो वह वैर भी साथ में चला जाता है जो कि भव-भव में दु:ख देने वाला होता है। मैं तो भगवान से प्रार्थना करती हूँ कि हे भगवन्! कम-से-कम मृत्यु आने के कुछ दिन पहले मुझे सावधान होने का अवसर अवश्य मिले।

मृत्यु के पहले प्रकट होने वाले चिह्न

मृत्यु से कुछ समय पूर्व शरीर की स्थिति बनाये रखने वाले परमाणुओं में विपर्यास (विकृति) आ जाता है जिससे उसकी इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जाती है और संघटित परमाणु विघटित होने की ओर अग्रसर होने लगते हैं। स्मृति में भी न्यूनता आने लगती है। यही प्रक्रिया शारीरिक अरिष्टों की सूचक है। कुछ अरिष्ट चिह्न नीचे दिये जाते हैं-

(१) जिस व्यक्ति को अपने पैर दिखाई न दें वह ३ वर्ष जीवित रहता है।
(२) जिस व्यक्ति को अपनी जंघा दिखाई न दे वह २ वर्ष जीवित रहता है।
(३) जिस व्यक्ति को अपना घुटना दिखाई न दे वह १ वर्ष जीवित रहता है।
(४) जिस व्यक्ति को अपना वक्षस्थल दिखाई न दे वह १० माह जीवित रहता है।
(५) जिस व्यक्ति को अपनी कमर दिखाई न दे वह ७ माह जीवित रहता है।
(६) जिस व्यक्ति को अपनी गर्दन दिखाई न दे वह १ माह जीवित रहता है।
(७) जिस व्यक्ति को अपने हाथ दिखाई न दें वह १५ दिन जीवित रहता है।
(८) जिस व्यक्ति को अपने बाहु दिखाई न दें वह ८ दिन जीवित रहता है।
(९) जिस व्यक्ति को अपने कन्धे दिखाई न दे वह ३ दिन जीवित रहता है।
(१०) बिना कारण अधिक हँसे, दिन-रात आँसू एवं पसीना बहे तो ७ दिन जीवित रहता है।
(११) सुकुमार हाथ काले-कठोर हो जायें, अँगुलियाँ सीधी न हों तो ७ दिन जीवित रहता है।
(१२) कानों को बन्द करने पर भीतर की आवाज सुनाई न दे तो ७ दिन जीवित रहता है।

(१३) भौंह का मध्य भाग न दीखे तो ९ दिन तथा नाक न दिखे तो ३ दिन जीवित रहता है।
(१४) जिह्वा न दिखे तो एक दिन, हाथ-पैर पर डाला जल शीघ्र सूख जाय तो ३ दिन जीवित रहता है।
(१५) गर्दन स्थिर न रहे, टेढ़ी हो जाय, श्वास हृदय में रुक जाय, मुख-नाक और गुप्तेन्द्रिय से शीतल वायु निकलने लगे तो शीघ्र मृत्यु।
(१६) हाथ-पैर आदि के पीड़ित करने पर भी पीड़ा अनुभव न हो तो शीघ्र मृत्यु।
(१७) अकस्मात् स्थूल शरीर कृश एवं कृश शरीर स्थूल हो जाय, शरीर काँपने लगे, सिर पर हाथ रखकर निरन्तर सोए तो १ मास की आयु शेष रहती है।
(१८) इसी प्रकार स्नान करने के बाद यदि पहले वक्षस्थल सूखता है और सर्व शरीर गीला रहे तथा जो दूसरों का रूप न देख सके वह पन्द्रह दिन तक जीवित रहता है।
(१९) जिस व्यक्ति की आँखें स्थिर हो जायें, अकस्मात् परिवर्तन हो जैसे- बिना किसी निमित्त के, स्वभाव के/मृदु या कठोर होने पर भी मृत्यु को निकट ही समझना चाहिए।
(२०) जो चन्द्रमा को नाना रूपों में या छिद्रों में परिपूर्ण देखता है, अर्ध चन्द्र को मण्डलाकार देखता है। जिसको दिन में धूप दिखना बन्द हो जाये, जो सूर्य बिम्ब को छिद्रपूर्ण और अनेक रूपों में देखता है वह व्यक्ति एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहता।

इसी प्रकार मृत्यु के और भी संकेतों को जानने के लिए 'अरिष्ट (दिष्ट) समुच्चय' आदि ग्रन्थ पढ़ने चाहिए।

महिला को आभास हुआ

एक वृद्धा, जो लगभग ६०-६५ वर्ष की थी, एक बार तीर्थयात्रा के लिए गई थी। एक क्षेत्र पर उसको अपनी मृत्यु का आभास होगया। उस क्षेत्र के दर्शन करके उसको लगा कि अब मैं तीन महीने से ज्यादा नहीं जीऊँगी। उसने अपने पुत्र (ओरस पुत्र) से कहा- ''बेटा! अब यह मेरी अन्तिम यात्रा है। अब मुझे लग रहा है कि मैं तीन महीने से ज्यादा नहीं जी सकती हूँ। इसलिए इस क्षेत्र पर सिद्ध हुए भगवन्तों एवं तेरी (वह ब्रह्मचारी व्रती था) साक्षी में नियम लेती हूँ कि अलसी,

अजवाइन और हर्र के अलावा कोई औषधि नहीं खाऊँगी।'' उसने घर आकर अपने शरीर पर पहने हुए आभूषण भी खोल दिये, सिर के बाल कटवा दिये और जीवन भर के लिए एक बार भोजन में एक छटाँक (५० ग्राम) दलिया और शाम को एकबार केवल पानी के अलावा सभी प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। वह नित्य ही प्रात: उठकर भगवान के नाम का जाप करती, मंदिर जाती, प्रभु की पूजा-भजन आदि करती, घर पर आकर भी स्वाध्याय करती, फिर दलिया खाती। इस प्रकार एक माह तक चलता रहा। उसके बाद उसने दलिया आधा कर दिया और शाम का पानी भी कम कर दिया। जब तीन महीने में १० दिन शेष रहे तब उसने पुत्र से भी क्षमा माँगी और उससे बोलने का लगभग पूरा त्याग कर दिया। भोजन में दलिये को आधा अर्थात् (१०-१२ ग्राम) कर दिया तथा शाम का पानी पूरा बन्द कर दिया। जब दो दिन शेष रहे उसने पूरे दलिया का त्याग करके मात्र पानी रखा। उन्हीं दिनों एक दिन उसका बेटा उसके पास जाकर स्वास्थ्य पूछते हुए कुछ उदास सा नजर आया तब उसने कहा, ''भैया! अब तुम बाहर चले जाओ, वापस यहाँ मत आना और चिन्ता भी मत करना। धर्म ये वर्णीजी (जो दूसरे उनकी समाधि में सहयोग के लिए आये थे) सुना देंगे। तुम्हारे आने से मुझे मोह उत्पन्न होता है।'' वह समझदार बेटा भी जब तक उसकी समाधि नहीं हुई, माँ के सामने नहीं आया। अन्तिम दिन अर्थात् ठीक नब्बेवें दिन उसने पानी का भी जीवन भर के लिए त्याग कर दिया और समता भाव पूर्वक मरकर स्वर्ग सिधारी। आप भी भगवान के सामने इस प्रकार मृत्यु का आभास कर सकते हैं।

मृत्यु के समय को जान लेने से लाभ

उपर्युक्त प्रकार से मृत्यु के लक्षणों को जान लेने पर ज्ञानी-समझदार व्यक्ति का मन उसका (मृत्यु) स्वागत करने के लिए तैयार होने लगता है तथा नासमझ-अज्ञानी व्यक्ति का मन व्याकुल होकर और ज्यादा विषयासक्ति में फँसकर और अधिक दु:खी हो जाता है। एक सेठ एक दिन बैठा-बैठा अपनी सम्पत्ति के बारे में विचार कर रहा था। उसने अपनी सम्पत्ति का जोड़ लगाकर एक-एक पीढ़ी के साथ होने वाले खर्च का अनुमान लगाया और दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया तो उसकी सात पीढ़ी तक के पौत्र-प्रपौत्र आदि यदि बैठे-बैठे अर्थात् कुछ भी व्यापार-व्यवसाय नहीं करें तो भी शांति से ऐश के साथ जी सकते हैं, खाते-पीते मौज उड़ा सकते हैं। जब सेठ को यह समझ में आया कि मेरे पास केवल सात पीढ़ी के

पालन-पोषण जितना ही धन है तो उसे बहुत चिन्ता लगी। उसके दिमाग में विचार आया कि हाय मेरी आठवीं पीढ़ी कैसे जियेगी? उसके खाने-पीने, पहनने-रहने की व्यवस्था कैसे होगी? इसलिए मुझे अब पुरुषार्थ करके और धन संगृह करना चाहिए ताकि सातवीं पीढ़ी के बाद वाली पीढ़ियाँ भी आनन्द से रह सकें। यही सोचकर उसने धनार्जन के लिए विदेश/परेदश जाने का विचार किया। परदेश जाने के लिए वह सबसे पहले एक ज्योतिषी के पास पहुँचा। उसने परदेश जाने का अच्छे-से-अच्छा मुहूर्त्त पूछा। ज्योतिषी बहुत पहुँचा हुआ निमित्त ज्ञानी था। उसने उसके प्रश्न से ही समझ लिया कि यह सेठ सातवें दिन मरण को प्राप्त हो जायेगा। उसने सेठ से कहा- ''सेठ जी! तुम्हारी मात्र ७ दिन की आयु शेष बची है। इसलिए तुम विदेश कमाने नहीं जाओ।'' सेठ को ज्योतिषी की बातों पर कुछ विश्वास हुआ। लेकिन पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। इसलिए वह एक संत के पास पहुँचा। उसने अपनी कार्यसिद्धि के लिए आशीर्वाद की याचना की। सन्त ने कहा- ''हे श्रेष्ठिन्! तुम अब धन कमाने नहीं जाओ। यदि तुम्हारी यह धनतृष्णा समाप्त नहीं हुई तो तुम मरकर अपने ही शौचालय में कीड़ा बनोगे।'' यह सुनकर कुछ देर (५-१० मिनट) तो सेठ को बहुत वैराग्य आया लेकिन उसने सोचा अभी तो मेरे पास सात दिन और हैं। मैं सात दिन में तो २-४ लाख कमा सकता हूँ। मरना तो मुझे है ही फिर क्यों न थोड़ा धन कमाकर आगे के लिए व्यवस्था करके ही मरूँ। वह धन कमाने में लग गया और ठीक सातवें दिन मरकर अपने ही शौचालय में कीड़ा बन गया। ये अज्ञानी जीवों के विचार हैं। इसलिए अज्ञानी जीव तो मृत्यु को, मृत्यु के समय को जान ले तो भी कोई लाभ नहीं है और नहीं जाने तो कोई हानि नहीं है क्योंकि उसका मरण तो सुधरना ही नहीं है। उसको तो मरण सुधारना ही नहीं है। फिर भी क्या ऐसा कोई स्थान या उपाय है जिसकी शरण लेने पर व्यक्ति मृत्यु से बच सकता है? नहीं, ऐसा न कभी हुआ और न ही कभी हो सकता है। मौत के मुँह में तो सबको एक दिन नियम से जाना ही होगा।

ज्ञानी के विचार

अज्ञानी से विपरीत ज्ञानी जीव को जब अपनी मृत्यु का आभास होता है, मृत्यु की जानकारी हो जाती है, मृत्यु के कुछ लक्षण नजर आने लगते हैं तो वह प्रसन्न होता है। उसके मन में ये विचार उत्पन्न होते हैं कि अहो, मुझे अपनी मृत्यु सुधारने का यह स्वर्णिम अवसर मिला है। मुझे पहले से मृत्यु की जानकारी हो गई

है, इसलिए मुझे अगले भव में क्या-क्या साथ ले जाना है उसकी तैयारी कर सकता हूँ/कर लूंगा ताकि मेरी दुर्गति नहीं हो। मैं सद्‌गति को प्राप्त होकर पुन: गुरुओं का भगवन्तों का समागम प्राप्त करके शाश्वत सुख को प्राप्त कर लूंगा। इस प्रकार विचार करते हुए वह अपनी जिम्मेदारियों को यथायोग्य पुत्र (बहू, बेटी, पौत्र) आदि को सौंपकर निर्विकल्प हो जाता है। वह अपनी धन-सम्पत्ति को दान-पुण्य, परोपकार में, जिससे विशेष प्रेम है या जिसने विशेष सेवा की है, जिसको (रिश्तेदार आदि) धन की आवश्यकता है, देकर निश्चिंत हो जाता है। वह निर्भारता की अनुभूति करता हुआ प्रसन्न नजर आता है। वास्तव में, परिगृहका जाल हट जाने पर किसको प्रसन्नता नहीं होती है। मृत्यु की जानकारी होने के बाद यह अनुभव में आने लगता है कि ''अरे! अब मुझे क्या करना है। इतने दिनों अर्थात् छह महीना या आठ दिन या साल भर में तो जाना ही है। क्यों किसी से लड़ाई-झगड़ा करूँ, क्यों किसी को कटु-कठोर वचन कहूँ, क्यों किसी का बुरा विचार करूँ.....। जिस प्रकार किराये का मकान खाली करने का निश्चय हो जाने के बाद कोई उस मकान की रिपेयरिंग नहीं करवाता, कोई उसमें रंग-रोगन, धुलाई-पुताई आदि का व्यय नहीं करता, ट्रेन आदि में सफर करते समय कोई डिब्बे में पंखे, सीट आदि ठीक नहीं करवाता, उसी प्रकार मरण का निश्चय हो जाने पर किसी का मन शरीर की पुष्टि-सुरक्षा करने में नहीं लग सकता। यदि कोई शरीर की सुरक्षा के लिए कहता भी है तो उसके दिल दिमाग में हमेशा यह बात बनी रहती है कि अब शरीर को पुष्ट करने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि अब तो इसे छोड़कर जाना ही है।

दूसरी बात, व्यक्ति अन्तिम समय तक भी मांसाहारी औषधियाँ खाकर, यहाँ तक कि खून की बॉटलें चढ़वाकर भी जीने की कोशिश करते हैं। कई लोग तो अस्सी और नब्बे वर्ष की उम्र में भी इस प्रकार की औषधियाँ लेने की आशा लगाये रहते हैं/लेते हैं। लेकिन मृत्यु की गोद में जाने से कोई नहीं रोक सकता है। वह जानता है कि आज तक कोई ऐसा धार्मिक व्यक्ति भी इतनी रिश्वत नहीं दे पाया कि जिससे यमराज उसे छोड़ दे या उसका जीवन बढ़ा दे। खिला हुआ फूल और पका हुआ फल कभी वृक्ष पर ठहर सकता है? नहीं, वह तो निश्चित गिरेगा। सराय छोड़ते समय यात्री को, डाल छोड़ते समय चिड़ियों को, पतझड़ में वृक्ष से अलग होते समय पत्तों को वियोग की अनुभूति नहीं होती फिर मुझे शरीर रूपी पिंजरे को जो कृमियों के सैकड़ों जालों से भरा हुआ है तथा नित्यप्रति जर्जर हो रहा है, छोड़ने

में किसका दु:ख और किसका भय? क्योंकि मैं तो ज्ञानशरीरी होने से शाश्वत-अविनाशी आत्मा हूँ। कवियों ने मृत्यु का वर्णन करते हुए कहा है कि जैसे कोई वधू डोले पर बैठकर ससुराल जा रही हो। ऐसे ही शरीर से मुक्त होते (छूटते) हुए आत्मा को बताया है। वे कहते हैं- सजनि! डोले पर हो जा सवार। लेने आ पहुँचे हैं कहार। यहाँ आत्मा को सजनी, अरथी को डोला और मृत्यु को कहार कहकर परिणीता वधू के ससुराल के आनन्द को मरण के साथ तन्मय कर दिया है। ज्ञानी इस बात को जानता है कि-

माली आवत देखकर, कलियाँ करै पुकार।
फूले फूले चुन लिये, काल हमारी बार।।

अर्थ - कलियों की भाँति, आज जिसकी मृत्यु नहीं हुई है, उसकी कल होगी और खिले हुए फूलों की भाँति जिसकी मृत्यु आ चुकी है वे आज ही तोड़ लिये गये हैं अर्थात् आज ही वे मृत्यु को प्राप्त हो जावेंगे।

अरथी शब्द की व्याख्या करते हुए संत कहते हैं - शरीर रथ है और आत्मा रथी, रथ में बैठने वाला। रथी चला जाता है, यह आत्मा शरीर को छोड़कर चला जाता है। शरीर को जिस पर रखकर ले जाया जाता है उसे अरथी अर्थात् आत्मा से रहितरथ। अरथी जैसे बिना दूल्हे की बारात या बिना सामान का पैकेट।

प्राज्ञ पुरुष मृत्यु की चिन्ता नहीं करते हैं वे सोचते हैं कि **''क्षणध्वंसिनी काये का चिन्ता मरणे रणे''** वे जानते हैं कि सूर्य का उदय अस्त होने के लिए ही होता है, उसी प्रकार व्यक्ति का जन्म मरने के लिए ही होता है। नीति में कहा है- **''यमस्य करुणा नास्ति, कर्त्तव्यो धर्मसंचय:''** अर्थात् यमराज को किसी पर दया नहीं आती है अत: धर्म का संचय करना चाहिए।

भील ने भव सुधारा

एक भील ने संत के चरणों में कौए का मांस खाने का त्याग कर दिया। त्याग करने के बाद एक दिन वह बीमार हो गया, उसे भयंकर रोगों ने घेर लिया। वह वैद्य के पास अपना इलाज करवाने गया। वैद्य ने उसे कौए का मांस खाने की सलाह दी। उसने कौए का मांस खाना स्वीकार नहीं किया। फलत: उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरने लगा। उसकी पत्नी ने उसको समझाने के लिए अपने भैया को बुलवाया। जब उसके भैया अपने जीजाजी को समझाने के लिए आ रहा था उसे रास्ते में एक वृद्धा अम्मा रोती हुई दिखाई दी। उसने वृद्धा से रोने का कारण पूछा।

वृद्धा ने कहा - तुम जिसका नियम तुड़वाने जा रहे हो वह २-४ दिनों में मरने वाला है। तुम उसका नियम तुड़वा दोगे। यदि उसने तुम्हारी बातों में आकर नियम तोड़ दिया तो उसकी दुर्गति हो जायेगी। वह मरकर मेरा स्वामी बनने वाला है, नहीं बन पायेगा। भैया वृद्धा से नियम नहीं तुड़वाने का संकल्प लेकर अपनी बहिन के घर पहुँचा। जीजाजी का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ था। वे मौत के बहुत निकट पहुँच चुके थे। वह व्यावहारिकता के नाते उनको कौए का मांस खाने के लिए तैयार करने लगा। लेकिन जब सफल नहीं हुआ तो उसने रास्ते की पूरी घटना उनको सुना दी। उन्होंने कुछ ही दिनों में अपनी मृत्यु होने वाली जानकर जीवनभर के लिए सभी प्रकार के मांस का त्याग कर दिया तथा पत्नी-बच्चों आदि रिश्तेदारों से मोह-ममता छोड़कर शान्ति से मरण को प्राप्त किया। जिसके फल में वह स्वर्ग गया और वहाँ सेआकर क्रमश: भगवान महावीर बना। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध सम्राट सिकन्दर ने दिगम्बर साधु कल्याण मुनि से यह जान लिया कि जब धरती लोहे की एवं आकाश सोने का हो जायेगा तब तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी तथा जिस दिन उसके साथ यह घटना घटी तो उसने तत्काल यह जान लिया कि अब कुछ ही क्षणों में मेरी मृत्यु होने वाली है। उसने शीघ्र ही सब परिग्रहों से विरक्त होकर अपने मंत्रियों से जनता को यह संदेश देने के लिए कहा कि यह पापी सिकन्दर मुट्ठी बाँधकर आया था और खाली हाथ जा रहा है इसलिए इसके दोनों हाथ अरथी के बाहर खोलकर रखे गये हैं/रखे जावें और इसकी अरथी राज्य के प्रसिद्ध वैद्यों के कन्धों पर निकाली जा रही है/निकाली जावे। क्योंकि मुर्दे में भी प्राण फूंकने का अभिमान करने वाले वैद्य भी मृत्यु के मुख से नहीं बचा सकते अर्थात् उसने मंत्रियों से दो बात कही थी-

(१) मेरे दोनों हाथ खोलकर (मुट्ठी बँधी न हो) अरथी के बाहर रखे जावें।

(२) मेरी शवयात्रा के समय अरथी राज्य के मुख्य वैद्य-डॉक्टर-हकीम आदि के कन्धों पर निकाली जावे।

यह है मृत्यु का समय जान लेने का फल। जीवनभर पाप करने वाले अभिमानी, निर्दय माने जाने वाले सम्राट् सिकन्दर ने भी अपनी मृत्यु को सुधार लिया तो फिर जो मृत्यु पर पूरा विश्वास रखते हैं, उसे जीवन का अकाट्य नियम मानते हैं वे तो अपनी मृत्यु का समय जानकर अन्तिम घड़ियों को सुधार ही लेते हैं और सुधार ले तो कोई आश्चर्य नहीं है अथवा उन्हें तो अपनी मृत्यु सुधार ही लेना चाहिए। और फिर जिसकी मौत बिगड़ना ही है अर्थात् जिसने पूर्वभव में ऐसे कठोर

कर्म का ही बन्ध किया है, जिनका मोक्ष (संसार से पार होना) बहुत दूर है, जिनका अभी संसार में अनेक बार जन्म-मरण करना लिखा है, अथवा जिसने नरक-तिर्यञ्च की अशुभ आयु का बन्ध कर लिया है उसको कितना भी सावधान किया जाय वह नहीं सुधर सकता। एक मूर्ख-लोभी व्यक्ति को यह अहसास हो चुका था कि वह अब बहुत जल्दी मरने वाला है, उसके बेटों ने भी सोचा- ''अब पिताजी को अन्त में भगवान का नाम सुनाना चाहिए।'' एक बेटे ने कहा-''पिताजी! अब हो सकता है मृत्यु आपको अपना ग्रास बना ले इसलिए आप अब भगवान का नाम स्मरण करो।'' यह सुन पिताजी तपाक से बोले- ''अच्छा याद दिलाया तुमने-भगवानदास पण्डित से तकादा करके रकम वसूल करना है....।'' बेटा सोचने लगा, ''अहो, मैंने इनको भगवान का नाम याद दिलाया लेकिन ये तो अभी भी लेन-देन के चक्कर में ही हैं। फिर भी मुझे इनकी मृत्यु को सुधारना चाहिए।'' वह फिर बोला ''पिताजी, राम का नाम लो, पण्डित जी से पैसा तो मैं वसूल कर लूंगा।'' राम का नाम सुनते ही पिता बोला- ''वाह बेटा वाह! तूने बड़ा अच्छा किया। मुझे याद नहीं आ रहा था तूने याद दिला दिया कि रामदास से एक हजार रुपये लेने हैं। छह महीनों से उसने एक पैसा भी नहीं दिया है। बेटा यह सुनकर आश्चर्य चकित हुआ सोचने लगा....।'' ऐसे होते हैं नासमझ लोग जो मौत पर भी विजय प्राप्त करने की कोशिश करते हैं लेकिन मौत पर विजय प्राप्त करने में सफलता तो वही प्राप्त कर सकता है जो विधि पूर्वक सल्लेखना करता है।

क्या तुम अमर होना चाहते हो

क्या आपको मृत्यु के नाम से अथवा अपने शरीर में मृत्यु के चिह्नों को देखकर कभी ऐसा लगता है कि मैं नहीं मरूँ तो अच्छा है या मेरी मृत्यु कभी नहीं होती तो कितना अच्छा होता, आदि....। इन विकल्पों के पहले आप यह सोचें कि क्या अमर होने मात्र से सुख मिलता है? क्या अमर हो जाने पर आपका शरीर जीर्ण-शीर्ण नहीं होगा? क्या रोग से भरे इस जीर्ण-शीर्ण शरीर में ही रहना आपको अच्छा लगेगा? क्या आपने जो यहाँ सुकृत किये हैं उनका सुख-शान्ति रूप फल इस शरीर में रहते हुए प्राप्त कर सकते हैं। यदि नहीं, तो फिर आप अमर होने की कामनाएँ क्यों करते हो? यदि आपको अमर होना है तो आप ऐसा उपाय करें कि आपका जन्म ही नहीं हो। जिसका जन्म नहीं होता है उसका मरण भी नहीं होता, वह अनन्तानन्त काल के लिए शाश्वत मोक्ष स्थान को प्राप्त हो जाता है। सम्राट्

सिकन्दर ने लगातार अनेक युद्ध जीते और अपार धन, सम्पत्ति, यश-नाम सब कुछ कमाया। लेकिन एक दिन जब उसके दिल में यह विकल्प आया कि मैं बूढ़ा हो जाऊँगा और मर जाऊँगा तब इस दौलत का क्या होगा.....। उसने अपने विकल्प शान्त करने के लिए राजवैद्यों को बुलवाया और बोला- ''हे वैद्यो, तुम कोई ऐसी जड़ी-बूटियाँ बताओ जो मुझे अमर बना दे, मृत्यु की गोद से बचा ले।'' लगभग सब वैद्यों ने इन्कार कर दिया, सबने एक स्वर में कह दिया कि ''संसार में ऐसी कोई जड़ी-बूटी औषधि नहीं है जिसको खाने से व्यक्ति अमर हो जावे। लेकिन एक व्यक्ति ने कहा - हे बादशाह! सुनो, यद्यपि संसार में ऐसी कोई जड़ी-बूटी नहीं है जो तुम्हें अमर कर दे लेकिन अमुक दिशा में एक पहाड़ है। उस पहाड़ के पास एक जलाशय है। आप यदि उस जलाशय में स्नान कर लें तथा उसका जल पी लें तो आप अमरत्व को प्राप्त हो जायेंगे।'' सिकन्दर उस जलाशय पर पहुँचा और पानी पीने के लिए जैसे ही अपनी अंजलि पानी में डुबोने लगा, पानी में से एक विशाल कृशकाय शिथिल सी मगरमच्छ की आकृति उभरकर सामने आकर बोली- ''रुको सिकन्दर।'' सिकन्दर ने विस्मय तथा आक्रोश से युक्त होकर पूछा- ''कौन?'' उसने कहा- ''मैं मगरमच्छ हूँ, मुझे देखो।'' सिकन्दर ने एकागृता से उसे देखा और बोला- ''अरे, आपकी स्थिति तो बहुत दयनीय है। आपकी आयु बहुत अधिक हो गई लगती है।'' मगरमच्छ फिर टोकते हुए बोला- ''सिकन्दर! बहुत बलशाली और ज्ञानी लगते हो फिर भी तुम......।'' सिकन्दर ने पुन: साहस करके पानी में हाथ डालने की कोशिश की। मगरमच्छ फिर बोला- ''क्या कर रहे हो?'' सिकन्दर ने गर्व से कहा- ''मैं अमरत्व चाहता हूँ, मैंने अपार धन-दौलत कमाई है।'' मगर संवेदनाशील वाणी में बोला- ''सिकन्दर! तुम्हारा कहना सच है लेकिन एक बार पुन: मेरी दशा देखो, देख रहे हो? युगों-युगों से पड़ा हूँ इस पानी में क्योंकि मैंने भी तुम्हारी तरह अमर होने की लालसा से यह जलाशय पसन्द किया था। आज कितनी पीढ़ियों का अन्त मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ। अपनी आने वाली पीढ़ी की उन्नति देखकर सभी प्रसन्न होते हैं पर उसका क्षय/विनाश देखना बहुत कठिन है। मैं आज वर्षों से इस अभिशप्त जीवन को भोग रहा हूँ। क्योंकि मैंने विधाता से अमर होने का वरदान माँगा था/लिया था.....।'' सिकन्दर जिज्ञासा दिखाते हुए बोला ''फिर भी आप अमर हैं इसलिए भाग्यवान तो हैं ही।'' मगरमच्छ सिकन्दर को समझाने का प्रयास करते हुए पुन: बोला- ''सिकन्दर! एक बार मेरे इस जर्जर

शरीर को फिर से गौर से देखो।'' सिकन्दर ने उसके शरीर को जब ज्ञान चक्षु खोलकर देखा तब उसे वास्तविकता समझ में आ गई। वह उलटे-पैर लौट आया, ''नहीं, मुझे क्षययुक्त काया को अमर नहीं करना...।''

संभवत: यह (उपर्युक्त) काल्पनिक घटना ही होगी। क्योंकि संसार के किसी भी देव में यह ताकत नहीं है कि वह किसीको अमर बनने का वरदान दे सके। यदि कोई देव किसी को अमर कर सकता है, उसका अमर होने का वरदान फल सकता है तो वह देव स्वयं ही संसार से क्यों मरा, क्यों अपनी उस पर्याय को छोड़कर बैकुण्ठ, स्वर्ग या मोक्ष में चला गया। जबकि उसकी उसी देह से करोड़ों जीवों का उपकार हो रहा था, कष्ट मिट रहे थे और स्वयं भी सुखी था। और यदि वह स्वयं अमर नहीं हो सकता है तो दूसरों को अमर कैसे बना सकता है? वास्तव में, मृत्यु तो प्राप्त की हुई आयु का क्षय/समाप्त होने का परिणाम है। इसीलिए तो आज तक कोई भी इस मृत्यु की गोद से नहीं बच पाया। दूसरी बात, यदि कुछ देर के लिए इस बात को सच मान भी लिया जाय कि व्यक्ति अमर हो जाएगा। लेकिन क्या अमर होने से उसका शरीर? प्रयत्नों से (भोजन, व्यायाम, औषधि, टेंशन फ्री रहना आदि) पुष्ट करने पर भी आज तक किसी का भी शरीर मृत्यु पर्यन्त यौवन या बचपन जैसा नहीं रहा तो जो अमर हो गया उसका शरीर अच्छा कैसे रहेगा? यदि अस्वस्थ, चिंतागृस्त, अभावगृस्त दु:खी व्यक्ति अमर हो गया तो वह उन वेदनाओं को कब तक कैसे भोग पायेगा ? यह भी नहीं कहा जा सकता है कि अस्वस्थ व्यक्ति अमर नहीं हो सकता, वह भी अमर हो सकता है और यह भी नहीं कहा जा सकता कि अमर होने के बाद स्वस्थ व्यक्ति बीमार कभी नहीं हो सकता हो....। अत: अमर होने की कल्पना का अर्थ ही यह है कि इस जीर्ण-शीर्ण शरीर में ही सड़ते-रहना, अपने जीवनभर किये गये सुकृतों के फल को भोगने का अवसर ही प्राप्त नहीं करना। इसलिए भूलकर भी आप कभी अमर होने की भावना न करें। यदि अमर होना है तो मृत्यु को भी मार दें अर्थात् जन्म-मरण की परम्परा को नष्ट कर दें तो आप अनन्तकाल के लिए अमर हो जायेंगे।

सल्लेखना सुधारने के लिए ध्यान दें

(१) मृत्यु का स्मरण रखें।
(२) परिवार वालों को दूर रखें।
(३) क्षेत्र का ध्यान रखें।

(४) प्रायश्चित्त अवश्य लें।

मृत्यु का स्मरण रखें

मृत्यु की तलवार तो हमेशा सबके सिर पर लटकी ही रहती है, न मालूम कब और किस वक्त हम उसके शिकार हो जाएं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम मृत्यु को याद कर-करके दु:खी होते जाएं अथवा अपने कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन हो जावें, जीवन के प्रति विरक्त हो जावें। मृत्यु का स्मरण पाप प्रवृत्ति से बचने का, अपने जीवन को साफ-सुथरा रखने का संकेत मात्र है। मृत्यु का स्मरण जीवन को नीरस बनाने के लिए नहीं है बल्कि जीवन को सार्थक बनाने हेतु है। जीवन का एक लक्ष्य निर्धारित करना है जो मृत्यु सुधारने के लिए अति आवश्यक है। वास्तव में मृत्यु जीव का एक मित्र है जिसका स्मरण होते ही जीवन का सही मूल्य समझ में आने लगता है। कहा गया है- **''जब मौत नजर आती है जिन्दगी राह पर चलने लगती है।''** मृत्यु का स्मरण जीव को अनादि काल से चली आ रही मोह दशा और विषयासक्ति के भाव को घटाकर अनासक्त भाव से जीने के लिए सहायक है। एक संत था जो बड़ा वैरागी था। एक दिन एक भक्त उसके पास आकर बोला- ''महाराज! धन्य है आज की वेला और धन्य है आज का दिन जिसमें आप जैसे संतों के दर्शन मिले। आपको तो कोई चिन्ता नहीं है। सच में आपका जीवन कितना सुखी एवं शान्त है और मेरा जीवन कितना दु:खी तथा अशान्त है। मैं हमेशा चिन्तागृस्त रहता हूँ, मुझे रात में नींद तक शान्ति से नहीं आती है। मैं आपसे इन सब दु:खों का समाधान चाहता हूँ, मुझे आप कुछ ऐसा मार्ग-दर्शन दीजिए कि मैं भी आपके समान निश्चिन्त रह सकूँ, निश्चिंत रहने की साधना कर सकूँ।'' सन्त ने कहा- ''बेटा! तेरे इन सब प्रश्नों/विचारों का समाधान मैं अभी नहीं दूंगा/नहीं दे सकता। पहले मैं तुम्हें एक बात बताता हूँ उसे ध्यान से सुनो। तेरी मृत्यु आज से सातवें दिन होने वाली है इसलिए अभी तो तुम उसकी चिन्ता करो।'' सन्त महात्मा की बात सुनकर वह घबराया और दौड़ता-दौड़ता घर पहुँचा। उसने घर जाकर अपने परिवार वालों को (संत के द्वारा बताई गई) मृत्यु सम्बन्धी बात बताते हुए क्षमा माँगी। उसके बाद उसने अपने आस-पड़ोस वालों से भी क्षमायाचना की। अपने मित्रों-रिश्तेदारों आदि से भी अपने पूर्व में जान-अनजान में हुए दोषों के लिए खेद प्रगट करते हुए माफी मांगी तथा घर के कार्यों एवं विषय-भोगों से विरक्त होकर धर्मध्यान में अपना समय व्यतीत करते हुए मृत्यु का इंतजार करने लगा। इस प्रकार

प्रसन्नता से प्रभुभक्ति में लीन छह दिन कैसे बीत गये उसको पता नहीं चला। सातवें दिन वह संत के पास जाकर बोला- ''महाराज! मेरे मरने में अब कितना समय और बाकी है?'' सन्त ने कहा- ''मौत कब आयेगी? यह तो भगवान जानता है लेकिन तू पहले यह बता कि मेरी (सात दिन के बाद मृत्यु की) बात सुनकर तेरे सात दिन कैसे बीते? भक्त ने कहा- ''संत जी! मेरे सामने तो मौत नाच रही थी इसलिए मुझे कोई भी भोग-सामग्री और पारिवारिक काम-काज (करते हुए भी) कुछ भी अच्छे नहीं लग रहे थे। मैंने तो सब कार्यों से विमुख होकर भगवान की भक्ति, भजन आदि अच्छे कार्य करके अपने सात दिन व्यतीत किये क्योंकि मेरा मरना निश्चित हो चुका था मुझे पता था कि इन सब परिगृहों, पारिवारिक जनों को छोड़कर अब मुझे जाना है.....।'' संत ने उसकी बातें सुनकर कहा- ''बस, जब तुम्हें मौत का भय लगा तो तुम पापों से, विषय-कषायों से विरक्त हो गये, तुम्हारी सब चिन्ताएँ समाप्त हो गईं। फिर हम साधुओं को तो हर समय मौत सामने दिखती है इसलिए हमको (साधुओं को) विषयभोग की लालसाएँ नहीं सतातीं, हमारे सिर पर भविष्य की चिन्ताएँ सवार नहीं होतीं फिर उनकी (साधुओं की) पापों, आर्त्तध्यानों तथा विषय-कषायों में प्रवृत्ति कैसे हो सकती है इसलिए वे (हम) हमेशा शान्ति से निष्फिक्र् सोते हैं, रहते हैं, आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं।'' भक्त को सब बात समझ में आ गयीं। उसने उसी दिन से मृत्यु को याद रखना प्रारम्भ कर दिया। फलत: वह समय आने पर शान्ति से मरण करके सद्गति को प्राप्त हुआ। अत: आप भी यदि अपनी मृत्यु को सुधारना चाहते हैं तो मृत्यु को याद रखें, आज तक नहीं रख पाये तो आज से ही दिन में कम से कम से चार बार मृत्यु को अवश्य याद कर लें। कुछ विषय-कषायादि पापात्मक कार्य करते समय सोच लें कि मुझे इस संसार से जाना है, कब मौत आ जायेगी। कोई विश्वास नहीं इसलिए मुझे ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए।

सल्लेखना के समय क्षेत्र कैसा हो

मृत्यु के अर्थात् सल्लेखना के समय क्षेत्र का भी बहुत प्रभाव पड़ता है क्योंकि जैसा वातावरण होता है वैसा परिणामों में भी परिवर्तन होता है। यदि कोई हॉस्पिटल में पलंग पर पड़ा है, बॉटलें चढ़ रही हैं, चारों तरफ कराहने-चिल्लाने की दु:खप्रद आवाजें आ रही हैं, ऐसे स्थानों पर यदि मरण का समय नहीं भी हो तो भी परिणाम विकल रहते हैं तो फिर मरण के समय तो वैसे ही परिणाम बिगड़ने की

संभावनाएँ ज्यादा ही रहती हैं अत: मरण के समय स्थान का ध्यान अवश्य रखें। एक बार बैरिस्टर चम्पतराय विदेश में अस्वस्थ हो गये तो वे भारत आने की आकुलता करने लगे। अंग्रेज मित्रों ने उन्हें अस्वस्थता में यात्रा करना खतरे का काम बताया और समझाया कि इंगलैण्ड में जितने उपचार के साधन हैं उतने भारत में नहीं है। चम्पतराय जी ने कहा- ''मेरे भाई, क्षमा करना, पश्चिमी देशों में मरना कहाँ आता है, यहाँ तो मरते दम तक मांस-मदिरा खिलाते, इंजेक्शन लगाते रहते हैं, मरने वाला कायर होकर रोता हुआ मरता है। भारत में जैसा आया वैसा बालकवत् निरीह होकर चला जाता है क्योंकि वह अर्थात् भारतीय व्यक्ति या तो देश की रक्षा करते हुए रणक्षेत्र में वीरता-पूर्वक मरण करता है या समाधिपूर्वक सब वस्तुओं का त्याग कर मृत्यु के साथ खिलवाड़ करता हुआ वन में मरता है। शायद इसीलिए भारत के साधारण नागरिक भी मृत्यु के समय व्यक्ति को पलंग-बिस्तर से नीचे अर्थात् धरती पर लिटा देते हैं। इसी बात को **'मूकमाटी'** में यों कहा है-

राजा का मरण वह
रण में हुआ करता है
प्रजा का रक्षण करते हुए, और
महाराजा का मरण वह
वन में हुआ करता है
ध्वजा का रक्षण करते हुए।
जिस ध्वजा की छाँव में
सारी धरती जीवित है
सानन्द सुखमय श्वास स्वीकारती हुई

परिवार वालों को दूर रखें

यदि आप शांति से मरना चाहते हैं तो अन्त समय में परिवार वालों को दूर रखें/परिवार के लोग सामने हों तो शांति से मरण नहीं हो सकता क्योंकि वे मोह उत्पन्न करते हैं। धन-दौलत वाला व्यक्ति हो तो बेटा धन के सम्बन्ध में पूछने लगता है, पिताजी! धन कहाँ-कहाँ है, पहले यह बता दीजिए। जैन शास्त्रों के अनुसार साधुओं को भी सल्लेखना लेने के पहले अपने संघ को अर्थात् शिष्यों को, भक्तों को, साधु गणों को जो साथ में रहते हैं उन सबको छोड़कर अन्य किसी अपरिचित या अल्प-परिचित संघ-आचार्य के पास चले जाना चाहिए। ताकि सल्लेखना के

समय मोह-ममता, राग-द्वेष तथा क्रोधादि कषाय उत्पन्न न हों, शान्ति से मरण हो। अपने संघ में समाधि करने वालों को क्या-क्या हानि होती है और दूसरे संघ में जाकर समाधि करने से क्या-क्या लाभ होता है, इन बातों का विस्तृत वर्णन शास्त्रों में किया गया है। परिवार वाले शान्ति से मरने में बाधक होते हैं। यदि जीवन भर वृत-उपवास, जप करने के बाद भी अन्त समय में मोह से जकड़े रहे, भगवान का नाम नहीं लेवे, दु:ख मनाते हुए पारिवारिक जन की चिंता करते हुए मरे तो उन वृत, उपवास, जप-तप-त्याग का क्या महत्त्व रहा, क्या लाभ मिला? मरते समय भी यही सोचते रहे कि अरे! मेरे पीछे इस बेटे का क्या होगा? मेरी बेटियों को घर पर कौन बुलाएगा? मेरे चले जाने पर पुत्र-पौत्रों को मेरी कमी कितनी खटकेगी, मेरे बिना इनका काम कैसे चलेगा आदि..... खोटे भ्रम में पड़कर आर्त्तध्यान करते रहना कोई समझदारी का काम तो नहीं है। इस प्रकार के विचार करते रहने से तो मरण बिगड़ेगा ही। मृत्यु के पहले ही व्यक्ति को यह विचार प्रारम्भ कर देना चाहिए कि संसार में कोई अपनी इच्छा के अनुसार किसी को सुख-दु:ख नहीं दे सकता और न स्वयं अपनी इच्छानुसार भोग ही सकता है। सभी अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्म के अनुसार जन्म-मरण, सुख-दु:ख आदि भोगते हैं। किसी के चले जाने से किसी के काम में कोई बाधा नहीं आती और किसी के रहने से एकान्त से किसी के कार्य की सिद्धि नहीं होती। किसी के रहने और नहीं रहने से किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता, दुनिया स्वार्थी है। जब तक स्वार्थ सधता है, स्वार्थ पूरा होते दिखता है, आगे-पीछे फिरती रहती है और स्वार्थ सिद्धि में थोड़ी सी भी बाधा दिखी तो अच्छे-से-अच्छे व्यक्ति को भी छोड़कर भाग जाती है। व्यक्ति के मर जाने के बाद परिवार वालों के रोने का कारण बताते हुए एक कन्नड कवि ने कल्पना की है-

मरने वाले व्यक्ति ने अपने जीवन में कभी जप-तप, पूजा-पाठ, दान-धर्म कुछ भी नहीं किया। हमारे परिवार की कीर्ति नहीं बढ़ाई। बेचारा साथ में कुछ भी नहीं ले जा पाया, यही सोच-सोचकर परिवार वाले रोते हैं। और जो धर्मात्मा व्यक्ति होता है उनके गुण-गान करते हैं, यह व्यक्ति बहुत धर्मात्मा था, परोपकारी था, सेवाभावी था, इसके जन्म से हमारा परिवार धन्य हो गया। धर्म-ध्यान करते-करते मर गये। वे थे तो थोड़ा हम भी धर्म करते थे, अब हम धर्म कैसे करेंगे, आदि......।

वास्तव में व्यक्ति की यह भ्रमणा रहती है कि मैं नहीं रहूँगा तो क्या होगा?

ऐसा कुछ नहीं है, जन्म लेते ही माता-पिता के मर जाने पर भी बच्चे बड़े होते ही हैं। हनुमान का जन्म भयंकर अटवी में हुआ था। वहाँ उसकी देख-रेख करने वाला, उसके पालन-पोषण की सामग्री जुटाने वाला कोई नहीं था तो भी हनुमान स्वस्थ थे, वे भी बड़े हुए। इसी प्रकार जीवन्धर का जन्म श्मशान में हुआ। प्रद्युम्न को जन्म लेते ही पूर्व भव के वैरी ने हरण करके मारने का प्रयास किया फिर भी वह नहीं मरा। इतनी निगरानी रखने के बाद भी मामा कंस श्रीकृष्ण को नहीं मार पाया। इन सब दृष्टान्तों से यह सिद्ध होता है कि व्यक्ति अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के फल में ही सुख और दु:ख की सामग्रियों, सुख-सुविधाओं को प्राप्त करता है/भोगता है। यदि बिना भाग्य के एकान्त से कोई किसी को सुख-दु:ख देता तो संसार में न कोई सुखी रहेगा और न कोई दु:खी। क्योंकि एक ही समय में एक ही व्यक्ति को कोई सुख देना चाहता है तो कोई दु:ख, फिर उसका क्या होगा और यदि दूसरे ही सुख-दु:ख देते हैं तो स्वयं के किये हुए शुभाशुभ कर्मों का क्या होगा? अत: आप यह विकल्प छोड़ दें कि मेरे जाने के बाद क्या होगा, कैसे होगा, कौन करेगा....। इन सब कार्यों में अर्थात् पाप-पुण्य के उदय में आप निमित्त बनते थे, अब कोई और निमित्त बनेगा और उसी निमित्त से उसे अपने कर्मों का फल मिलेगा।

ब्राह्मण की भूल

एक ब्राह्मण था, उसके घर में ५-१० बच्चे थे। वह हमेशा श्रेष्ठियों के यहाँ से 'सीदा' (जिसमें आटा, दाल, घी, मिर्ची, नमक आदि रखा जाता है) लाकर अपने बच्चों का पालन-पोषण करता था। वह स्वस्थ था। उसे इस बात का गर्व भी था और विश्वास भी था कि वह सेठों के यहाँ से सीदा लाकर बच्चों को खिलाता-पिलाता है इसलिए बच्चे जीवित हैं तथा इसी मेहनत का फल है कि वह और उसका परिवार आज खुश है। एक दिन उसे एक सन्त मिले। उसको सन्त से सहज ही कुछ लगाव हो गया। वह सन्त के पास घंटों-घंटों बैठने लगा। संत ने एक दिन उससे कहा- ''ब्राह्मण महाराज! अब वृद्धावस्था आने वाली है। अपना कुछ कल्याण कर लो। घर-बार छोड़कर संन्यासाश्रम में प्रवेश कर लो। आगे के लिए भी कुछ कमा लो अन्यथा बाद में पछताओगे।'' ब्राह्मण ने संत की बात सुनी, उसे संत की बात सौ प्रतिशत सच लगी। लेकिन उसने सोचा ''यदि मैं सन्त के साथ चला जाऊँगा संन्यासी बन जाऊँगा तो मेरे बच्चों का पालन कैसे होगा।'' सेठ-साहूकारों के यहाँ से सीदा लाकर उन्हें कौन खिलाएगा....। यह सब विचारकर उसने सन्त से

कहा- ''संन्यासी जी! आपका कहना बिल्कुल सत्य है और मैं भी यही चाहता हूँ कि अगले भव के लिए भी कुछ कर लूँ लेकिन एक समस्या है जिसका मैं कुछ समाधान नहीं कर पा रहा हूँ, उसका समाधान नहीं हो सकता। अत: अभी मैं आपके साथ नहीं चल सकता।'' सन्त ने कहा- ''ऐसी क्या समस्या है? बताओ, हो सकता है तुम्हारी समस्या का हल निकल आवे।'' ब्राह्मण ने कहा- ''सन्त जी! मेरे कुछ बच्चे छोटे हैं जो बनियों के घर से सीदा नहीं ला सकते, कुछ बच्चे बड़े अभिमानी हैं जिनको सीदा लाने के लिए श्रेष्ठियों के घर जाने में शरम आती है और कुछ बच्चे इतने लापरवाह/कम बुद्धि के हैं कि सीदा ले भी आयेंगे तो आधा तो रास्ते में ही बिखेर देंगे। अत: आप ही बताइये यदि मैं सन्त बन जाऊँगा तो पीछे बच्चों का काम कैसे चलेगा? उनके भोजन आदि की व्यवस्था कैसे होगी?'' सन्त बोले- ''भैया, ऐसी कोई बात नहीं है। पत्नी-बच्चों के भाग्य में लिखा होगा तो येन-केन प्रकारेण उन्हें मिलेगा और नहीं लिखा होगा तो हाथ में आया हुआ भोजन भी कुत्ता-बिल्ली आदि झपट कर ले जायेगा। अत: तुम तो सन्त बन जाओ।'' सन्त के अनेक युक्तियों से समझाने पर भी ब्राह्मण की भ्रमणा समाप्त नहीं हुई तो अन्त में सन्त ने कहा- ''अच्छा, तुम मात्र तीन दिन के लिए मेरे साथ चलो। तीन दिन के बाद आकर देख लेना। यदि तुम्हारे बच्चे-बीबी अच्छे हों, उनके भोजन आदि की व्यवस्था अच्छे ढंग से बन रही हो तो लौट आना और नहीं बन रही हो तो उनकी व्यवस्था में लग जाना।'' ब्राह्मण, यह सोचकर कि सन्तों की पूरी-पूरी बातें टालना अच्छी बात नहीं है इसलिए मुझे यह बात तो स्वीकार कर ही लेनी चाहिए। मात्र तीन दिन की ही तो बात है फिर लौटकर आना ही है। सन्त की बात उसने स्वीकार कर ली। वह सन्त के साथ जंगल में चला गया। शरीर से वह सन्त के पास था लेकिन उसका मन तो घर में ही लगा था। घर की चिन्ताएँ उसे बड़ा व्यथित कर रही थीं। लेकिन वह घर जा नहीं सकता था क्योंकि उसने संत को तीन दिन का वचन दिया था। इधर जब ब्राह्मण देवता श्रेष्ठियों के यहाँ सीदा लेने नहीं पहुँचे तो उनके मन में भी चिन्ता हुई कि आज ब्राह्मण महाराज क्यों नहीं आये ? अभी तक वे सीदा.....। उनकी खबर करने के लिए उन्होंने ब्राह्मणी के घर नौकर भेजे। पत्नी-बच्चे, गाँव के सेठ-साहूकारों ने मिलकर ब्राह्मण को बहुत ढूंढ़ा। लेकिन जब ब्राह्मण कहीं नहीं मिला तो सबने यह निर्णय किया कि ब्राह्मण महाराज नदी में नहाने गये थे सो बह गये होंगे, डूब कर मर गये होंगे.....। तीसरे दिन ब्राह्मण के घर पर गाँव के मुख्य-

मुख्य लोग इकट्ठे हुए। सबने शोक मनाया। किसी ने कहा- अब अपने घर सीदा लेने कौन आयेगा। किसी ने कहा- इसी बहाने हमारे घर से थोड़ा दान निकल जाता था। किसी ने कहा- अब इसके घर की व्यवस्था कैसे होगी ? आदि.....। सबने मिलकर सलाह मिलाई कि इनके घर की व्यवस्था चलाने के लिए उनकी स्मृति में एक वर्ष का सामान इकट्ठा इनके घर पर रखवा दिया जाय। किसी ने शक्कर, किसी ने घी, किसी ने तेल, किसी ने अनाज, किसी ने मसाला आदि एक-एक सेठ ने ब्राह्मण के घर पर एक वर्ष का सामान रखवा दिया। दोपहर में पत्नी-बच्चों ने जब इतना सारा सामान एक साथ घर में देखा तो खुशी के मारे फूले नहीं समाये। उन्होंने शाम को ही अच्छे-अच्छे मिष्टान्न बनाना शुरू किया। उधर ब्राह्मण घर जाने की आज्ञा लेने के लिए संत के पास पहुँचा। संत ने कहा- ''ठीक है तुम जाओ, लेकिन एक कम्बल ओढ़कर जाना और पहले छुपकर देखना कि वे (घर वाले) क्या कर रहे हैं? ब्राह्मण गुरु की आज्ञा के अनुसार कम्बल ओढ़कर अपने घर के छप्पर पर जा पहुँचा। और जब उसने एक-दो खप्पर अलग कर घर के अन्दर झाँका तो वहाँ कुछ मिठाइयाँ बन चुकी थीं। नमकीन, पूड़ी आदि की तैयारी चल रही थी। मिठाइयाँ देख ब्राह्मण के मुँह में पानी आ गया। वह बिना सोचे-समझे वहीं से घर में कूद गया। उसको देख पत्नी-बच्चों ने सोचा- ब्राह्मण महाराज भूत बनकर आये हैं। (क्योंकि उसने कम्बल ओढ़ रखा था इसलिए वह काला दिख रहा था) वे चूल्हे में से जलती लकड़ी लेकर उसको मारने लगे। ब्राह्मण जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, मैं तुम्हारा पिता हूँ, मैं तीन दिन के लिए जंगल में गया था.......। लेकिन किसी ने उसकी नहीं सुनी, वह मार के डर से भागा तो वे भी उसके पीछे भागकर मारने लगे। आखिर ब्राह्मण लौटकर पुन: सन्त के पास आ गया। उसको सही-सही बात समझ में आ गई कि मैं इनको नहीं खिला रहा था, इनका भाग्य ही इनका पोषण करता है....।

अत: आप भी कर्त्तृत्व (मैं करता हूँ) का भाव छोड़कर शान्ति से मरण करें। आपके जाने के बाद सब काम अपने आप अपने-अपने भाग्य के अनुसार होंगे/होते हैं। आपके पिताजी के जाने के बाद जिस प्रकार आपने जीवन के पूरे कार्य सुचारु ढंग से किये, उसी प्रकार आपके जाने के बाद आपके बेटे-पोते भी करेंगे। फिर रुकना (नहीं मरना) आपके हाथ में भी तो नहीं है फिर चिन्ता करने से भी क्या लाभ?

दूसरी बात, घर-परिवार वाले पास रहेंगे तो निश्चित रूप से उनको दवाई कराने के, डॉक्टर को दिखाने के विकल्प आयेंगे और मोह के वशीभूत होकर वे आपके लिये हुए छोटे-मोटे नियम भी तुड़वा सकते हैं, तुड़वा ही देंगे, जिससे मरते समय भी आपको उसका टेंशन बना रहेगा। एक व्यक्ति लगभग ९० वर्ष की उम्र का था, उसे कैंसर जैसी भयंकर बीमारी थी जो बढ़ गयी थी। फिर भी उसके परिवार वालों ने उसको हॉस्पिटल में ले जाकर औषधि करवाई उतना तो ठीक है। लेकिन आखिर मरते समय तक उनको खून की बॉटल चढ़ती रही। आप सोचें ऐसी स्थिति में मरण कैसे सुधर सकता है? आप सोचें ९० वर्ष की उम्र के बाद जीवन कितना लम्बा और हो सकता है जिसकी रक्षा के लिए खून जैसी चीज का उपयोग किया जावे। फिर भी ऐसा हुआ और होता है अत: आप घर में समाधि करें तो भी परिवार वालों का सम्पर्क कम ही होने दें।

तीसरी बात, यदि घर वालों को सल्लेखना कराने वाले ने कहा कि इनको आधा ग्लास मनुक्का का पानी देना है तो वे बड़ा ग्लास लायेंगे। और आधा भरकर दे देंगे, जो सामान्य ग्लास उतने पानी में पौन से भी ज्यादा भर जायेगा। कभी दस मनुक्का का पानी कहेंगे तो वे बीस मनुक्का का देकर भी दस का ही कहेंगे। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं में भी अपने मन की कर सकते हैं। एक बार एक विद्वान ने एक संत के चरणों में सल्लेखना ली। उसने संत के मना करने पर भी अपनी अनुकूलता अर्थात् मेरे बेटे-पोते आदि मेरी प्रकृति को अच्छी तरह जानते हैं, मेरे संकेतों को समझते हैं इसलिए सेवा करने केलिए उनको रखने में सुविधा रहेगी आदि..... कहकर संत से हाँ भरवा ली। समाधि चल रही थी। संत के आदेशानुसार ही भोजन की प्रक्रिया अर्थात् भोजन कम किया जा रहा था लेकिन जितना संत कहते थे उससे कुछ विशेष भी जो कि उनकी दृष्टि में कुछ नहीं था, दिया जाता था। जैसे- कभी सौंफ तो कभी इलायची खाने को दे देते थे। यद्यपि ये चीजें कुछ नहीं थीं/हैं लेकिन सल्लेखना करने वाले के क्षीण-कृश/कमजोर शरीर में जाकर वे नुकसान करेंगी या लाभ, इस बात को मोही जीव नहीं समझ सकते हैं इसलिए दे देते। ऐसा करने पर सल्लेखना के समय विकृति होने की पूरी सम्भावना रहती है, शरीर में विकृति होने पर परिणाम बिगड़ते हैं और परिणाम बिगड़ने पर समाधि भी निश्चित रूप से बिगड़ती है।

चौथी बात, यदि घरवाले होंगे तो आप (समाधि करने वाले) स्वयं कह देंगे कि कुछ नहीं, गुरुजी ने तो इतना ही कहा है पर तुम इतना-इतना कर लेना। यदि

घर वाले मना कर देंगे तो आप उनके ऊपर गुस्सा होकर करवा लेंगे। एक महिला की समाधि चल रही थी। उसकी सेवा करने वाले उसके अतिपरिचित लोग थे। उनको निर्देशन दिया गया कि तुम्हें १५ मनुक्का का पानी देना है। वे पानी बनाने के लिए पन्द्रह मनुक्का ले जा रहे थे। उसने (समाधिस्थ महिला ने) कहा, दस-बारह मनुक्का और ले जाना, तुम तो समझते हो। गुरुजी ने कह दिया तो क्या हो गया। और फिर पानी बनने के बाद कुछ भी समझ में नहीं आयेगा कि पन्द्रह मनुक्का का पानी है या ज्यादा का.....। इसी प्रकार अन्य चीज में भी दबाव डालकर काम करवा सकते हैं।

पाँचवीं बात, समाधि के समय यदि घर वाले या प्रेमीजन हैं तो यदि उनके हाथ से थोड़ा सा भी गलत काम हो गया या अनुकूलता नहीं बन पाई तो जल्दी से गुस्सा आ जायेगा। क्योंकि आपके मन में ऐसा लगेगा कि ये जानते हैं फिर भी ऐसा कहते हैं/करते हैं.....। मैंने जीवनभर इनकी सेवा की, इनका काम किया और ये मेरे अन्त समय में इतना भी सहयोग नहीं दे रहे हैं आदि.....अनेक विकल्प उत्पन्न होकर परिणाम बिगड़ेंगे तथा यदि दूसरे होंगे तो ये विकल्प उत्पन्न नहीं होंगे, हो भी गये तो मन जल्दी समझ जायेगा कि बेचारे इनको क्या पता कि मुझे कैसा चाहिए था। मैंने कब, इनका कुछ काम किया है जो ये मेरा करें, फिर भी ये मेरा इतना काम कर रहे हैं यह बहुत है....आदि परिणाम उत्पन्न होने से संक्लेश नहीं होगा।

उपर्युक्त बिन्दुओं पर विचार करके आप सल्लेखना के समय अपने परिवारजनों या निकट रिश्तेदार-मित्र परिजन आदि को निकट नहीं रखें। उनकी तरफ देखें ही नहीं, आपकी सल्लेखना सुधरने में बहुत सहयोग मिलेगा।

कभी-कभी कोई अपने पारिवारिक सदस्य भी नहीं हैं लेकिन चिरपरिचित हैं, घनिष्ठ मित्र हैं, अतिस्नेह वाले अड़ोसी-पड़ोसी भी हों तो उन्हें भी अपने पास नहीं रखें क्योंकि उसमें भी मोह जागृत हो सकता है। यहाँ तक कि यदि आपने किसी सन्त, गृहत्यागी की बहुत सेवा की है, उनके साथ लम्बे समय तक रहे हैं, उनके पास भी जाकर सल्लेखना नहीं करें अर्थात् उनके सामने रहने पर भी मौत बिगड़ सकती है, आपका उनके प्रति या उनका आपके प्रति प्रेम उमड़ सकता है। आपके मन में यह भाव उत्पन्न हो सकता है कि मैं अब इतने उपकारी गुरुवर को छोड़कर कैसे जाऊँगा। अब ये मुझे वापस नहीं मिलेंगे आदि.....। धर्मस्थल के श्री मंजैया हेगड़े बहुत बड़े व्यक्ति कहलाते थे। वे बड़े विद्वान् थे। उनका जीवन धार्मिक एवं

सात्विक था। उनकी परम्परा आज भी (दूसरी-तीसरी पीढ़ी तक) चल रही है। उनके घर वाले जो/जितना दान देते हैं उतना दान शायद ही विश्व में कोई देता होगा। उनकी भोजनशाला में दोनों टाइम १०००-१००० व्यक्ति बिना किसी फीस के अर्थात् निःशुल्क भोजन करते हैं। कर्नाटक प्रदेश में होने से दोनों टाइम दाल-चावल, अचार आदि सामग्री मिलती है। जिस चीज का मौसम होता है उसीका ताजा अचार वे अपने अतिथियों को परोसते हैं। त्यौहार आदि विशेष अवसरों पर रोटी-पूड़ी, मिठाई आदि भी बनाई जाती हैं। आप यह नहीं सोचें कि १००० व्यक्तियों के लिए इतना चावल कैसे बनता होगा। उनकी भोजनशाला में १००० लीटर के कुकर, बड़ी-बड़ी मिक्सियाँ आदि सभी अच्छी व्यवस्थाएँ हैं। यहाँ तक व्यवस्था है कि अतिथि को भोजन कराने के लिए स्थान और थाली रखने के लिए मारबल लगा हुआ बड़ा हाल है, अतिथियों को भोजन के बाद थाली उठाने तक की आवश्यकता नहीं है....। ऐसे मंजैया हेगड़े ने भी मृत्यु का स्वागत किया था। जब उनको मृत्यु का आभास हो गया था तब वे अपने भाई एवं पुत्रों को बुलाकर घर की सब चाबियाँ सौंपते हुए बोले- हे भाई (पुत्र) तुम अपनी कुल परम्परा के अनुसार दान-पूजा आदि की परम्परा अच्छी तरह चलाना....। वहाँ एक साधु भी थे 'नेमीसागर जी वर्णी'। उन हेगड़े जी ने ३० वर्ष तक उनकी सेवा की थी, उनके आहारादि की व्यवस्था भी की थी। उन्होंने अपनी मृत्यु के समय वर्णी जी को यह सोचकर बुलवाया कि वे उन्हें कुछ धर्म सुनायेंगे। वर्णी जी की आँखों में हेगड़े जी को ये कितने सज्जन हैं, धर्मात्मा हैं, बड़े दान-दातार हैं आदि-आदि प्रशंसात्मक/अच्छाइयों, बातों को याद करते हुए आँसू आ गये। हेगड़े जी उनके आँसू देखकर बोले- ''महाराज, आप मुझे संबोधन करो, धर्म-पाठ सुनाओ मेरा मरण बहुत निकट है।'' एक गृहस्थ की स्थिरता को देखकर वर्णी जी ने तटस्थ होकर हेगड़े जी को संबोधन किया, धर्म-पाठ सुनाये। तभी उनकी बेटी आयी वह रोने लगी। उसे देख हेगड़े जी ने कहा, तुम क्यों रोती हो? मैंने तुम्हारे लिए सब कर दिया, धन सम्पत्ति दे दी। अब तुम रोकर मेरा जीवन/मरण क्यों बिगाड़ती हो? यदि कुछ कर सकती हो तो मुझे धर्म सुनाओ ताकि मेरा आत्मकल्याण हो सके। यह भी एक आदर्श घटना है। परिवार वाले या अतिपरिचित की निकटता जीवन के अन्तिम क्षणों को सुधारने में बाधक होती है। फिर भी ऐसी स्थिति आ जाने पर दृढ़ता रखनी

चाहिए।

प्रायश्चित्त अवश्य करें

प्रायश्चित्त का लक्षण – सल्लेखना गृहण करने के पहले आप जन्म से लेकर आज तक आपके जीवन में जो भी गलती जान-अनजान में हुई हो उसे निन्दा (पश्चाताप), गर्हा (गुरु के चरणों में दोषों का निवेदन करना) पूर्वक स्वीकार करते हुए गुरु के द्वारा दिये गये प्रायश्चित्त (यम-नियम) को अवश्य स्वीकार करें।

प्रायश्चित्त किस प्रकार करें

जिस प्रकार शिशु सरल अन्त:करण से कार्य-अकार्य अथवा योग्य-अयोग्य सभी कुछ माता-पिता से कह देता है अर्थात् शिशु यह विचार नहीं करता है कि किसके सामने क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिए। शिशु तो जैसा देखता है वैसा ही कह देता है, जैसा कहलवाते हैं वैसा कह देता है। जैसे- कभी कोई घर पर आकर के पूछे कि- ''बेटा, तुम्हारी माँ घर में है या नहीं?'' यदि अन्दर से माँ कहती है कि बेटा, कह दो माँ घर में नहीं है तो वह वैसा ही कहता है कि ''चाचाजी! माँ कह रही है कि कह दो माँ घर में नहीं है।'' उसी प्रकार दोष जिस स्थान में, जिस परिस्थिति में, जिन भावों-अपनी इच्छा से हुआ या मजबूरी से करना पड़ा, किसी के दबाव में आकर किया किसी से डर कर किया, अभिमान के कारण, अपना बड़प्पन दिखाने के लिए, हीनता को छुपाने के लिए किया आदि जिस समय, जितने दिन-महीने वर्ष पहले हुआ है, किया हो उसे उसी तरह स्पष्ट रीति से गुरु के सामने जाकर कहना चाहिए।

जन्म से लेकर आज तक हुए दोषों के प्रति पश्चाताप पूर्वक गुरु के सामने निश्छल होकर निवेदन करना चाहिए। उनसे (गुरु से) प्रायश्चित्त देने के लिए विनम्र प्रार्थना करनी चाहिए तथा गुरु जो प्रायश्चित्त दें उसका बिना किसी तर्क-वितर्क किये, संशय छोड़कर पालन करने से मेरे सभी अपराध निश्चित रूप से समाप्त हो जायेंगे ऐसा विश्वास करते हुए स्वीकार करना चाहिए और उसका निर्दोष रीति से पालन भी करना चाहिए। कहा भी है- अपराध का अन्धापन पश्चाताप (प्रायश्चित्त) की शरण गृहण कर ले तो वह भी क्षम्य हो जाता है।

प्रायश्चित्त नहीं करने से हानि

अपने दोषों को गुरु के सामने प्रगट नहीं करने से मन में हमेशा यह विकल्प

बना रहता है कि मैं कितना ही धर्म कर लूँ, जाप्य कर लूँ, पूजा-पाठ-दान आदि कर लूँ तो भी मुझे कुछ भी फल तो मिलना है नहीं क्योंकि मैंने इतना बड़ा पाप तो कर लिया। अब....। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि विकल्पों के कारण शरीर में एक प्रकार का 'विष' उत्पन्न होता रहता है जिससे शरीर में अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। एक सिख महिला जब भी गुरुद्वारे में जाती थी, उसके शरीर में खुजली (खाज) चलना शुरू हो जाती थी। उसने सोचा-इन वस्त्रों के कारण ऐसा होता होगा। वह वस्त्र बदल कर गुरुद्वारे में गई लेकिन भीतर प्रवेश करते ही पुन: खुजली, प्रारम्भ हो जाती। उसने खुजली को एक बीमारी समझ कर डॉक्टरों को दिखाया, दवा ली लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन उसको किसी ने मनोवैज्ञानिक को दिखाने की सलाह दी। उसने मनोवैज्ञानिक को दिखाया। उसने कहा- तुमने अपने जीवन में कुछ ऐसा गलत काम किया है जो अन्तर्मन में अव्यक्त रूप से मन को कचोटता रहता है और गुरुद्वारे (किसी भी धार्मिक स्थान) में जाने पर मन पवित्र होने लगता है। मन की पवित्रता बढ़ने लगती है। उस समय मन अपने पूर्वकृत पापों का पश्चाताप करने के लिए तैयार, तत्पर होता है इसीलिए तुम्हें धार्मिक स्थल गुरुद्वारे में प्रवेश करते ही उस अव्यक्त दोष के कारण अव्यक्त ग्लानि उत्पन्न होती है। उसी ग्लानि के कारण शरीर में विष उत्पन्न होता है। वही विष खाज के रूप में शरीर में तकलीफ उत्पन्न करता है। महिला ने कहा- मैंने कभी कोई गलत काम नहीं किया है। डॉक्टर ने कहा- ऐसा नहीं है, तुम याद करो। तुम्हारे से कोई-न-कोई गलती अवश्य हुई है। उसने डॉक्टर के कहने से फिर अपने जीवन की घटनाओं को याद किया। उसे अचानक अपने जीवन की वह घटना याद आई जब कई वर्षों पहले उसने अपने मालिक सेठ के पन्द्रह सौ रुपये रख लिये थे। देने की भावना रखते हुए भी किसी कारणवश वह दे नहीं पाई थी। अन्तराल विशेष हो जाने से शर्म के कारण बाद में उसने पैसे नहीं दिये। इस बात को वह भूल चुकी थी। लेकिन सूक्ष्म मन में संस्कार जमे हुए थे। उसने पूरी घटना डॉक्टर को सुना दी। डॉक्टर ने कहा- तुम पन्द्रह सौ रुपये अपने सेठ को लौटा दो। तुम्हारी बीमारी ठीक हो जायेगी। यद्यपि डॉक्टर की सलाह सुनकर उसके मन में अनेक विकल्प उत्पन्न हुए फिर भी वह साहस जुटाकर पन्द्रह सौ रुपये लेकर सेठ के पास गयी। सेठ ने जब उसकी ईमानदारी देखी तो प्रसन्न होकर उसकी पोस्ट बढ़ा दी। और पैसा चुका देने से उसकी बीमारी भी ठीक हो गयी। यह है अन्तरंग में बैठे हुए दोषों के संस्कार एवं

उनके प्रति ग्लानि का परिणाम।

प्रायश्चित्त नहीं लेने से दोष के प्रति ग्लानि समाप्त नहीं होती, ग्लानि समाप्त नहीं होने से मन में अन्दर-ही-अन्दर एक टीस लगी रहती है, वह बात चुभती रहती है जिससे मन निर्विकल्प नहीं हो पाता है और मन में शान्ति के अभाव में किसी भी हालत में मरण नहीं सुधर सकता है।

एक नगर में एक लड़की ने अज्ञानता में एम.सी. का कपड़ा बिना धोए ही फेंक दिया। जब किसी ने उसको यह बताया कि इस प्रकार के काम करने से बहुत पाप लगता है, इससे एम.सी. बिगड़ जाती है, ऐसा कपड़ा अनजान स्थान में डाल देने से भूत-प्रेत आदि की बाधा भी हो सकती है....। जब उसने ये बातें सुनीं तो उसके मन में इतनी ग्लानि भर गई कि जब भी वह भगवान के दर्शन करने जाती उसको मंदिर में वैसे ही (जैसा उसने फेंका था) गंदे-गंदे कपड़े दिखने लगते। वह माला फेरती, जाप करती तो भी उसे चारों तरफ भयंकर गन्दगी नजर आती रहती। कभी-कभी तो उसका मन इतना खराब हो जाता कि वह यह तक सोच लेती कि अब मैं मंदिर नहीं आऊँगी। मैंने बिना धुला कपड़ा फेंक दिया। इससे मुझे इतना पाप लग गया कि मंदिर में भी मुझे वैसे कपड़े दिखते हैं। कोई भूत-व्यंतर मुझे इस प्रकार की गन्दगी दिखाते हैं इस प्रकार की कल्पनाओं से हर आठ-दस दिन में उसको अशुद्धि का भ्रम हो ही जाता था। घर में कभी कोई धार्मिक अनुष्ठान करने के लिए बैठती तो उसे वही-वही दिखता था। एक दिन उसने एक साधु के सामने अपनी व्यथा कही। साधु ने भी उसको समझाया कि तुम इस प्रकार की बात ही अपने दिमाग से निकाल दो कि मैंने गन्दा कपड़ा फेंका था इसलिए यह सब हो रहा है.....। साधु के कहे अनुसार उसने भी दिमाग में से यह बात निकालने की बहुत कोशिश की। लेकिन वह टेंशन फ्री नहीं हो पायी, टेंशन समाप्त करने में उसे सफलता नहीं मिली। उसने फिर दूसरे साधु से अपनी बात कही। साधु ने कहा- तुम अपनी गलती का प्रायश्चित्त कर लो। सब कुछ अच्छा हो जायेगा। उसने गुरु से अपने दोषों की आलोचना की। पश्चाताप किया और प्रायश्चित्त गृहण किया। धीरे-धीरे उसका मन शांत हो गया। आज वह कोई भी धर्मानुष्ठान करे उसको किसी प्रकार का कोई विकल्प नहीं होता है।

अत: सल्लेखना लें या न भी लें। मरण के पहले दोषों का प्रायश्चित्त तो अवश्य कर लें।

प्रायश्चित्त कब, किससे

वैसे तो दोष होते ही तत्काल किसी गुरु आदि के पास जाकर प्रायश्चित्त ले ही लेना चाहिए। यदि तत्काल गुरु का समागम नहीं मिल पावे तो जल्दी से जल्दी गुरु की खोज करनी चाहिए। गुरु के पास जाने का प्रयास करना चाहिए। बहुत प्रयास के बाद भी यदि गुरु नहीं मिलें तो जब भी गुरु के दर्शन हों प्रायश्चित्त ले लेना चाहिए और यदि बहुत दिन तक गुरु के दर्शन की आशा नहीं हो तो जब तक प्रायश्चित्त नहीं हो तब तक के लिए किसी एक चीज का त्याग कर देना चाहिए ताकि किये हुए दोष का स्मरण बना रहे, प्रायश्चित्त हो ही जावे। और यदि अभिमानवश या संकोच से या अज्ञानता से जीवनभर भी प्रायश्चित्त नहीं ले पावें तो मरण/सल्लेखना/समाधिधारण के पहले तो अवश्य ही अपने दोषों की आलोचना कर ही लें। क्योंकि प्रायश्चित्त के बिना अर्थात् दोषों की समाप्ति हुए बिना मन शांत-नि:शल्य नहीं हो पाता है और मन के शांत हुए बिना किसी भी हालत में मरण नहीं सुधर सकता।

शल्य- जैसे पैर आदि में लगा हुआ काँटा मनुष्य या पशु को दु:ख देने वाला है, वैसे ही जीवन में किये गये या प्रमाद से हो गये दोष/गलतियाँ जो जीवन के अन्तिम क्षण तक भी मन को शांत नहीं होने देती हैं वे ही शल्य/विकल्प कहलाते हैं।

आप अपने मन से प्रायश्चित्त लेकर संतुष्ट होने की भूल नहीं करें। क्योंकि अपने मन से प्रायश्चित्त के रूप में उपवास, दान, पूजा, वृत आदि कितने भी कर लिये जावें, दोष समाप्त नहीं होता। क्योंकि मन से प्रायश्चित्त करने वाले के मन में मान कषाय छिपी रहती है। फिर मन से या भगवान के सामने प्रायश्चित्त ले लेने वाला अपने मन की चीज ही छोड़ देता है। अपनी शक्ति आदि को नहीं देखते हुए तो अति प्रायश्चित्त ले लेता है या बहुत कम लेता है। इन दोनों ही प्रकार से प्रायश्चित्त करने में दोष समाप्त नहीं हो पाता है क्योंकि डॉक्टर को दिखाये बिना अपनी मन की दवाई से बीमारी ठीक नहीं होती। अत: गुरु से ही प्रायश्चित्त लें। गुरु यदि प्रायश्चित्त के रूप में एक लौंग (लवंग) या बादाम मंदिर में चढ़ाने के लिए, दान देने के लिए कहे तो वह एक लौंग का दान भी हजारों रुपयों के दान से अधिक महत्त्व रखता है। इसी प्रकार गुरु यदि एक बार मंत्र पढ़ने का या एकासन करने का प्रायश्चित्त दे तो वह अनुष्ठान हजारों बार मंत्र आराधना एवं बीसों उपवास-वृत करने की अपेक्षा

महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि वह मान कषाय को छोड़कर नम्रतापूर्वक दोषों के निवेदन करने का फल है।

एक दिन एक युवक गुरु के पास प्रायश्चित्त लेने के लिए आया। उसने गुरु को अपनी परिस्थितियाँ बताते हुए कहा- गुरुजी, मेरी मम्मी जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ नहीं रहती है और चाची दिन में भोजन करने नहीं देती है और मैं हमेशा-हमेशा (शाम को) भूखा नहीं रह सकता हूँ इसलिए मुझे मजबूरी से रात्रि में भोजन करना पड़ता है। जब मेरी मम्मी वहाँ आ जायेगी, मैं रात्रि में भोजन करना बन्द कर दूँगा। गुरुजी ने उसकी बात सुनी और कहा- कल आना। वह दूसरे दिन फिर पहुँचा। गुरुजी ने फिर दूसरे दिन आने के लिए कहा- इस प्रकार गुरु जी, उसे दस दिन तक बुलाते रहे। ग्यारहवें दिन युवक ने कहा- गुरुजी! अब मैं जा रहा हूँ। मुझे प्रायश्चित्त दे दीजिए। गुरु जी ने कहा- मम्मी, जब वहाँ आ जावे तब रात्रि में भोजन मत करना, यही प्रायश्चित्त है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि गुरुजी ने यह बात पहले ही दिन क्यों नहीं कह दी? इसका उत्तर यह हो सकता है कि शायद गुरुजी को उस युवक में अपने दोषों के प्रति कितनी ग्लानि है, कितना उसे अपराध बोध है, यह देखना था। इसलिए दस बार आने के बाद भी उन्होंने कोई प्रायश्चित्त नहीं दिया। वह अपने मन से कितना भी कुछ कर लेता, उसका दोष नहीं धुलता, उसके मन में संतुष्टि नहीं होती; जबकि गुरु के द्वारा कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं देने पर भी उसका मन संतुष्ट हो गया। वास्तव में, गुरु अपने शिष्यों की परिस्थितियों, शारीरिक क्षमता तथा उसकी रुचि आदि को जानकर प्रायश्चित्त का विधान करते हैं इसलिए अनेक व्यक्तियों के एक जैसे दोष होने पर भी सबको अलग-अलग प्रायश्चित्त देते हैं।

जो लोग गुरु का महत्त्व नहीं समझते हैं वे ही दोष-गलती हो जाने पर भावुकता में अर्थात् दोष के प्रति अतिग्लानि के कारण बिना सोचे-समझे अपने मन से ही प्रायश्चित्त के रूप में यद्वा-तद्वा नियम आदि ले लेते हैं। या मरकर ही उस दोष की समाप्ति हो सकती है, इस प्रकार सोचकर अपने हाथ से ही मर जाते हैं, परन्तु ऐसा करना भी दोषों का निवारण करने में समर्थ नहीं है। ऐसे लोग दोनों ही तरफ से पिछड़ जाते हैं क्योंकि भावुकता में लिए गये यम-नियम निभ नहीं पाते अर्थात् शक्ति से बाहर होने के कारण टूट जाते हैं और अपने मन से ही करने के कारण दोषों का निवारण नहीं कर पाते हैं। अत: अपने मन से प्रायश्चित्त नहीं करें।

एक व्यक्ति लगभग ७५-८० वर्ष का हुआ जा रहा था। उसने अपनी

यौवन अवस्था में भोगासक्ति के कारण अनेक पाप किये थे। वह अपने परिवार की बहू-बेटियों के साथ भोग-बलात्कार करने में भी नहीं चूका था। वह पैसे के बल पर जिस किसी के साथ इस प्रकार का कार्य कर लेता था। इसके साथ-साथ शराब पीना, जुआ खेलना आदि दुर्व्यसनों का भी उसने अनेक बार सेवन किया था और यूँ कहो कि उसने अपने जीवन में क्या पाप नहीं किया था। जब उसको कुछ होश आया, जवानी का नशा उतरा, उसे गुरु का उपदेश सुनने को मिला, उसने पाप के फल को समझा तो उसे अपने पापों के प्रति बहुत पश्चाताप होने लगा। उसने सभी पापों का त्याग कर दिया और पूर्व में किये पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए उसने बहुत दान दिया। प्रतिदिन घंटा-डेढ़ घण्टा भगवान की भक्ति-पूजा आदि करना प्रारम्भ कर दिया तथा और भी अनेक प्रकार के जाप अनुष्ठानादि किये लेकिन उसको संतुष्टि नहीं हुई। वह कई बार गुरु के पास प्रायश्चित्त लेने के लिए पहुँच गया पर गुरु के पास पहुँचते ही उसका मन फिर बदल जाता। उसके मन में ये विचार उत्पन्न होने लगते कि यदि मैं अपने दोष गुरुजी को बताऊँगा तो गुरुजी क्या सोचेंगे, कहीं गुरु जी ने मुझे डाँट दिया तो क्या होगा, कहीं गुरुजी ने मुझे ऐसा प्रायश्चित्त दे दिया जो मेरे से पूरा नहीं हुआ तो मुझे और ज्यादा पाप लगेगा, मैं कैसे गुरुजी के सामने अपने दोष कहूँ आदि..... सोचकर पुन: लौट आता। फिर उसे अपने दोषों के प्रति ग्लानि आने लगती......इस प्रकार करते-करते उसने कई वर्ष बिता दिये थे। वह बाहर से किसी को दु:खी, उदास नजर नहीं आता था लेकिन अन्दर से वह एक क्षण भी सुख का अनुभव नहीं कर पाता था। आखिर उसने एक दिन साहस जुटाकर एक 'गुरु माँ' से प्रायश्चित्त ले लिया। उसने प्रायश्चित्त लेने के बाद अपनी अनुभूति सुनाते हुए अपनी गुरु माँ से कहा- ''माँ, आज मुझे ऐसा लग रहा है मानों वर्षों से मैं बहुत भारी वजन सिर पर लाद कर फिर रहा था वह आज उतर गया हो, आज मुझे बहुत हल्केपन की अनुभूति हो रही है, आज मुझे इस मनुष्य पर्याय की सफलता लग रही है, आदि......।'' कहते हैं- अपने दोषों की निन्दा-आलोचना कर लेने पर एक चौथाई पाप नष्ट हो जाता है, गुरु के सामने उनका निवेदन कर देने पर आधा पाप नष्ट हो जाता है, गुरु प्रदत्त प्रायश्चित्त का पालन कर लेने पर तीन-चौथाई पाप क्षय हो जाता है और निर्विकल्प समाधि में स्थित हो जाने पर पूर्ण रूप से पाप नष्ट हो जाता है। अत: मरने से पहले प्रायश्चित्त लेकर जीवन का भार हल्का अवश्य कर लें।

प्रायश्चित्त लेते समय सावधानियाँ

(१) गुरु के सामने अपने दोषों को कहते समय इतना धीरे भी नहीं बोलें कि गुरु आपके दोषों को अच्छी तरह से सुन ही नहीं पावे और इतना जोर से भी नहीं कहें कि उद्दण्डता नजर आवे और गुरु के अलावा दूसरे (बाहर आस-पास के) लोग भी उन दोषों को सुन लें।

(२) बहुत भीड़ में प्रायश्चित्त न लें क्योंकि भीड़ में गुरु आपके दोषों को अच्छी तरह से नहीं सुन पायेंगे, दोषों को नहीं सुनने से प्रायश्चित्त भी सही नहीं हो पायेगा।

(३) यदि गुरु का मूड ठीक नहीं हो, गुरु किसी विशेष चिन्ता में हों या विशेष कार्य में लगे हुए हों, गुरु के पास कोई विशेष चर्चा हो रही हो तो अपने दोषों को नहीं कहें क्योंकि इसमें भी पूर्वोक्त दोष ही आयेगा।

(४) प्रायश्चित्त लेते समय यह नहीं सोचें कि यह तो छोटा सा दोष है इतने से दोष का क्या प्रायश्चित्त लेना। या इतना बड़ा दोष मैं गुरु से कैसे कहूँ, मैं गुरु से यह दोष कहूँगा तो गुरु मेरे बारे में क्या सोचेंगे....आदि विकल्प नहीं करें। सहज रूप से अपने छोटे-बड़े सभी दोषों का निवेदन कर दें।

(५) प्रायश्चित्त लेते समय यह विचार नहीं करें कि क्या पता गुरु क्या प्रायश्चित्त दे देंगे जिसको मैं पालन नहीं कर पाऊँगा तो क्या होगा....आदि। क्योंकि गुरु आपकी शक्ति-क्षमता आदि को सोचकर ही प्रायश्चित्त देंगे, यह विश्वास रखें। यदि गुरु के द्वारा दिया गया प्रायश्चित्त पालन करने की क्षमता न हो तो तत्काल नम्रता पूर्वक निवेदन कर दें।

(६) आप ''जैसा दोष उसने किया था ऐसा ही दोष मेरा भी है इसलिए गुरु ने उसको जो प्रायश्चित्त दिया था वही प्रायश्चित्त मुझे भी कर लेना चाहिए।'' अपने मन से ऐसा काम नहीं करें क्योंकि अपने मन से किया गया प्रायश्चित्त दोषों को नष्ट करने वाला नहीं होता है।

(७) अगर आप पुरुष हैं, आपको गुरु माँ से प्रायश्चित्त लेना है तथा यदि आप स्त्री हैं और आपको गुरु (पुरुष) से प्रायश्चित्त लेना है तो आप अकेले कभी नहीं जावें। अपने साथ किसी विश्वासपात्र स्त्री-पुरुष को साथ ले जावें। अगर किसी के भी सामने कहने जैसा दोष नहीं है तो गुरु माँ से ही (पुरुष हो तो गुरु से ही) प्रायश्चित्त लें। ऐसा न बन पावे तो आप कागज

पर लिखकर भी अपने दोषों की आलोचना कर सकते हैं।

(८) कभी ऐसी बात है जो मुँह से कहने में संकोच/शर्म की अनुभूति होती हो तो लिखकर भी प्रायश्चित्त ले सकते हैं लेकिन दोषों को साथ लेकर अर्थात् प्रायश्चित्त लिये बिना मरण नहीं सुधर सकता है।

भोजन छोड़ दिया और नहीं मरे तो

कई लोग सोचते हैं कि मौत आने के पहले ही भोजन आदि छोड़कर मरने से क्या लाभ? तथा फिर यदि हमने भोजन-पानी आदि छोड़ दिये और मौत नहीं आई तो हम बिस्तर पर पड़े-पड़े तड़फते रहेंगे। भोजन नहीं करने या कम करने से कमजोर हो जाने के कारण उठकर अपना काम भी नहीं कर पायेंगे और मौत नहीं आने के कारण मर भी नहीं पायेंगे। ऐसी स्थिति में अर्थात् भूख आदि की वेदना के कारण संक्लेश परिणाम होंगे, कषायें और ज्यादा जागृत हो जायेंगी। फलस्वरूप सल्लेखना/मरण सुधर रहा होगा तो भी बिगड़ जायेगा। इसलिए सल्लेखना लेकर मरने की अपेक्षा तो ऐसे ही जब मौत आयेगी तभी भाव सुधारकर मरने में तो फिर भी सम्भव है मौत सुधर जावे। ऐसा कहने वालों को अभी इतना भी पता नहीं है कि संसार में भोजन आदि छोड़ देने से/या नहीं मिलने पर व्यक्ति/जीव मर जाता है/मरते हुए देखे जाते हैं। इसीलिए तो व्यक्ति भोजन छोड़ने से डरता है। मनीषियों का मत है कि यदि व्यक्ति के शरीर में ब्लड कम हो जावे, व्यक्ति यदि अग्नि में कूद जावे, पर्वत के ऊपर से गिर जावे अथवा किसी विशेष कारण से एकदम हृदय में आघात हो जावे, किसी से अचानक भय उत्पन्न हो जावे तो वह/व्यक्ति मौत आने के पहले भी मरण को प्राप्त हो जाता है।

यदि व्यक्ति जहर खा ले, फाँसी लगा ले, ट्रेन आदि के नीचे सो/बैठ जावे, ट्रेन आदि की टक्कर लग जावे तो वह तत्काल या दो-चार घंटे में मरण को प्राप्त हो सकता है।

शारीरिक दृष्टि से यदि शरीर में से किसी एक्सिडेंट आदि के कारण अधिक मात्रा में खून बह जाये तो भी व्यक्ति मर सकता है/मर जाता है।

अत्यन्त आवेगशील होना, क्रोध करना, अधिक कुण्ठा का जीवन जीना, बात-बात में चिड़चिड़ा बन जाना भी अकालमरण का कारण है।

डायरिया आदि बीमारियों के होने पर शरीर में भोजन-पानी नहीं पहुँच पाने से भी व्यक्ति मर सकता है और यदि तत्काल बॉटल आदि के माध्यम से शरीर

में पानी पहुँच जावे तो मरता हुआ व्यक्ति मरण से बच जाता है इसलिए समय पर योग्य औषधियाँ व्यक्ति को मरण से बचाने में कारण बनती हैं। इसी प्रकार कैंसर या टी.बी. की बीमारी आदि से या फेफड़े में कफ जम जाने से या गले आदि में अटक जाने पर भी मृत्यु हो सकती है।

और भी अनेक कारण हैं जिनके मिल जाने पर व्यक्ति समय से पहले मर जाता है। ये सब बाह्य निमित्त हैं। इन बाह्य निमित्तों से आयु क्षीण/क्षय हो जाती है। जिस प्रकार कोई दीपक तेल से भरा है वह अपनी गति से जलते हुए पूरी रात प्रकाश दे सकता है लेकिन यदि किसी निमित्त से भभक जावे तो वह तेल एक सैकेंड (मिनट) में जलकर समाप्त हो जाता है; उसी प्रकार जहर आदि के निमित्तों से अस्सी-नब्बे वर्षों तक उदय होने वाली आयु एकक्षण में उदित होकर नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार किसी भी कारण से आयु कभी भी क्षय हो सकती है अत: मौत कब आयेगी, कैसे विश्वास किया जा सकता है। इसलिए आप यह विचार रखते हैं कि मौत आने पर हम सल्लेखना धारण करेंगे या जब मौत आयेगी तब भाव सुधार करके हम अपना भव सुधार लेंगे। फिर आपका जो यह तर्क है। यदि हमने सल्लेखना धारण कर ली और मौत नहीं आई तो हम बिस्तर पर पड़े-पड़े तड़फते रहेंगे, कहाँ तक सत्य हो सकता है ? सल्लेखना में जब शरीर को पुष्ट करने वाले और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले विटामिन्स, प्रौटीन्स, कैलोरियाँ नहीं पहुँचेंगी तो वह (शरीर) आपका साथ कैसे दे सकेगा, कैसे वह आपके साथ रह सकता है। जिस प्रकार किसी के घर में नौकर है, उसको जब तक तनख्वाह मिलती रहती है उसके पद के योग्य मान-सम्मान मिलता रहता है तब तक वह दिल से अच्छा काम करता रहता है और तनख्वाह बन्द कर देने पर भी वह नौकर कृतज्ञता का निर्वाह करते हुए कुछ दिन और काम करता है लेकिन थोड़े दिन और काम करने के बाद सेठ यदि उसकी तनख्वाह शुरू नहीं करता है/नहीं देता है, उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता है तो वह नौकर काम करना छोड़कर भाग जाता है। उसी प्रकार भोजन रूपी तनख्वाह नहीं मिलने पर शरीर रूपी नौकर इस आत्मा रूपी सेठ का कब तक काम करेगा। वह तो काम करना छोड़कर भाग ही जायेगा अर्थात् जीव का साथ देना बन्द कर देता है, इसे ही मृत्यु कहते हैं।

दूसरी बात, जिसकी आयु भोजन आदि किसी भी निमित्त से समय के पहले खतम होने योग्य नहीं है उसके इस प्रकार के भाव ही नहीं होते हैं कि वह

भोजन आदि छोड़कर सल्लेखना धारण करे।

तीसरी बात, पूर्व में सल्लेखना के लिए जो उपसर्ग आदि कारण बताये गये हैं उन कारणों के मिल जाने पर तो कोई सल्लेखना ले या न ले उसकी मृत्यु तो निश्चित रूप से होगी ही। अत: गुरु-सन्त आदि की सलाह ले लेने पर भी इस बात का समाधान हो सकता है।

एक व्यक्ति ने घर में सल्लेखना की

मालवा का एक सेठ, जिसको कैंसर की बीमारी हो गई थी, उसने बीमारी को ठीक करवाने के लिए बॉम्बे, इंदौर आदि अनेक स्थानों के डॉक्टरों को दिखाया लेकिन सभी डॉक्टरों ने उनकी बीमारी को असाध्य बताया। जब उन्होंने बीमारी को डॉक्टरों के मुख से असाध्य सुना तो शास्त्रों और गुरुओं के मतानुसार सल्लेखना करने का विचार किया। मन में मृत्यु को प्रसन्नता पूर्वक वरण करने का विचार करके उन्होंने सबसे पहले अपने घर वालों के सामने अपने विचार रखे। घर वालों ने मोह के वशीभूत होकर एक बार तो मना किया। लेकिन जब सेठ ने सल्लेखना नहीं करने पर भी मौत की अनिवार्यता को समझाया तो घर वाले उनकी सल्लेखना में अपना कर्त्तव्य एवं सहयोग देने के लिए तैयार हो गये। सेठ ने सर्वप्रथम उन लोगों को बुलाया जिन लोगों से उन्होंने सबसे ज्यादा धन कमाया था, जिनको लोक में आसामी कहते हैं- अर्थात् छोटे-छोटे गाँवों के वे लोग जो किसी एक सेठ से बँधे रहते हैं उसने उन आसामियों से कहा- मैंने तुम लोगों को लगभग हमेशा ही कम तौल कर दिया और तुम्हारे से अधिक तौलकर लिया है मेरे घर में जो धन की वृद्धि हुई है वह सब तुम लोगों से मैंने छल करके लिया है। और मैंने तुम्हारे से यह धन कैसे ले लिया। इस बात को तुम नहीं जान पाये होंगे, समझ जाते तो मैं तुम्हें ठग ही नहीं सकता था। यह लोभ के कारण मेरी छल की प्रवृत्ति थी.....मैं उन सबके लिए तुम लोगों से क्षमा चाहता हूँ और पाँच लाख रुपये तुम लोगों के नाम से बैंक में रखता हूँ। इनके ब्याज में तुम लोग अपनी विशेष परिस्थितियों में अपनी व्यवस्था कर लेना, काम ले लेना। इस प्रकार कह कर उनको विदा किया और अपने परिवार-पत्नी, बेटे-बहू आदि को बुलाकर क्षमा माँगते हुए बोले-बेटा (पत्नी, बहू)! मैंने तुम्हें बहुत बार आवश्यक-अनावश्यक डाँटा, तुम्हारे हित के लिए मैंने कई बार तुम्हें उल्टा-सीधा कहा है, घर की व्यवस्था बनाने के लिए तुम्हें ताड़ना दी, आदि-उस सबके लिए मैं तुम लोगों से क्षमा चाहता हूँ। इसी प्रकार पत्नी, बहु-बेटे,

पौत्रादि से क्षमा माँगी। अपनी सम्पत्ति में से परोपकार, तीर्थक्षेत्र, धर्मशाला आदि में दान दिया और शेष बची सम्पत्ति के यथायोग्य पत्नी, पुत्र-पौत्रादि को बाँट कर निश्चिंत हो गये। फिर बोले- मैं अब सल्लेखना धारण कर रहा हूँ। मुझे आज से उबले हुए पानी को छोड़कर सभी प्रकार के भोजन का त्याग है। मैं आज से तुम लोगों से भी नहीं बोलूँगा। तुम्हें जिन बातों ध्यान रखना है, उनको सुनो-

(१) तुम मेरे कमरे में किसी भी डॉक्टर-वैद्य को नहीं लाओगे।

(२) कोई भी मेरे कमरे में आकर प्रभु भक्ति के पाठ, भजन, शास्त्र आदि धार्मिक चर्चा के अलावा कोई भी चर्चा नहीं करोगे।

(३) कोई भी मेरे सामने रोना, दु:खी होना, राग-प्रेम दिखाना आदि के साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी चर्चा नहीं करेगा।

(४) यदि तुम भगवान का नाम सुना सकते हो तो ठीक नहीं तो चौबीस घंटे धीमी आवाज में कैसेट चलाए रखना, चाहे मैं सो रहा हूँ या जाग रहा होऊँ।

(५) तुम्हारे घर में या जीन (कपास की फैक्ट-ी) आदि में आग भी लग जावे, किसी प्रकार का लाभ-हानि हो मेरे पास उसकी भनक भी नहीं आनी चाहिए।

(६) इस कमरे में जो मेरे कपड़े रखे हैं वे दो-चार (लघुशंका आदि के लिए), आवश्यक बर्तन और थोड़ी रुई लाकर रख देना। उसके अलावा मेरे सभी वस्तुओं का त्याग है तथा इस कमरे के बाहर जाने का भी जीवन भर के लिए त्याग है।

उनकी इस कठोर प्रतिज्ञा की खबर चारों तरफ फैल गई। कई अपरिचित-परिचित लोग उनसे मिलने के लिए आने लगे। सभी लोग बाहर से ही उनको देख दर्शन करके संतुष्ट हो जाते थे। उनके निर्देशों के अनुसार किसी का कमरे में अन्दर जाना, उनसे बोलना, स्वास्थ्य पूछना आदि का निषेध कर दिया था। एक दिन उनकी बहिन भी उनसे मिलने आई। उसको मना करने के बाद भी ''मैं धार्मिक चर्चा ही करूँगी'' इस प्रकार बहाना बनाकर सेठ जी के कमरे में पहुँच गई और मोह के वशीभूत होकर उनको अनेक प्रकार की स्वास्थ्य आदि के बारे में मोह भरी अर्थात् भाई साहब! आपने ये क्या किया, आपको कितनी तकलीफ हो रही है? आपने सब चीजें क्यों छोड़ दी, मेरे से तो देखा ही नहीं जाता, आदि.....बातें करने

लगी। सेठजी ने संकेत से उसको बाहर ले जाने के लिए कहा। यह सुन बहिन को गुस्सा आ गया। वह गुस्से में अपनी अटैची लेकर जाने लगी। घर वालों ने जब उसे वास्तविक स्थिति समझाकर बताया तो उसे भी बहुत प्रसन्नता हुई। इस प्रकार १७ दिन तक उनका समय धर्मध्यान पूर्वक व्यतीत होता रहा। अन्त में, मृत्यु के एक दिन पहले उनके नाक और मुँह में से ब्लड निकलना प्रारम्भ हो गया। देखने वाले घबरा गये। लेकिन वे स्वयं नहीं घबराये। वे अपने ही हाथ से नाक का ब्लड रुई से पौंछ-पौंछकर फोए डालते रहे तथा मुँह के ब्लड को थूकते रहे। उन्हें ब्लड निकलने का कोई विकल्प नहीं था। वे तो इस स्थिति में भी प्रभुभक्ति के भजन-पाठ-पूजन सुन रहे थे। सुनाने वाले बीच में थोड़ा रुक भी जाते पर वे स्वयं भगवान का स्मरण करते रहे थे, भगवद्भक्ति की प्रेरणा दे रहे थे। इस प्रकार एक दिन और एक रात तक ऐसी स्थिति रही। आखिर सल्लेखना की प्रतिज्ञा के १८ वें दिन उनकी आत्मा इस नश्वर शरीर को छोड़कर सद्गति को प्रयाण कर गई और तथाकथित आधुनिकों और थोड़ी सी बीमारी होते ही दवाई खाने वालों के सामने एक आदर्श छोड़ गई।

ऐसे अपूर्व साहसी व्यक्ति बहुत कम होते हैं जो परिवार के बीच में रहकर भी जल के बीच कमल के समान निर्लिप्त-निर्मोही बन सकते हैं। अधिकांश लोगों को तो, चाहे कितनी ही भावना हो, परिवार वाले हॉस्पिटल ले ही जाते हैं और नहीं चाहते हुए भी उनको मजबूर होकर बॉटल आदि चढ़ाते हुए मरना पड़ता है। इसलिए सल्लेखना घर छोड़कर किसी संत-त्यागी व्यक्ति के सान्निध्य में होना/लेना ही श्रेष्ठतम है।

हमारी भारत वसुन्धरा पर मनुष्यों-संतों की सल्लेखना के विषय में इतिहास भरा पड़ा है। अनेक संतों ने उपसर्ग आ जाने पर, अनेक ने अप्रतिकार्य शारीरिक व्याधि हो जाने पर, अनेक ने सहज रूप से निर्व्याधिक शरीर होने पर भी मृत्यु की दूती जरावस्था से शरीर के कृश हो जाने पर, अनेक ने अपने व्रत-शील आदि के नष्ट होने का प्रसंग आ जाने पर सल्लेखना धारण की है। इसी प्रकार कई गृहस्थों ने (राजा के विरोधी हो जाने पर), अपने धर्म-पालन में विघ्न आने से, अपने धर्म को साथ ले जाने के लिए सहर्ष अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। इसी भाँति हमारे देश की कई स्त्रियों ने अपने शील की रक्षा करने के लिए स्वयं अग्नि में जलकर, कुए में कूदकर अपने प्राणों को विसर्जित कर दिया। जैसे- चित्तौड़गढ़ पर शत्रुओं का आक्रमण होने पर चित्तौड़गढ़ के आधीन राजाओं की इतनी रानियों ने जौहर (अग्नि

में कूदकर) किया कि उनके जलने के बाद उनकी राख में चालीस मन (४० किलो का एक मन होता है) सोने की नथें (नाक में पहनने का आभूषण) निकली थीं। वह एक प्रकार से सल्लेखना है लेकिन उस समय उन्होंने चारों प्रकार के आहार का त्याग किया या नहीं, यह मुझे भी पता नहीं है। महारानी चेलना की माँ महाराज चेटक की पत्नी ने मंत्री के द्वारा बलात्कार की नौबत आने पर अपने पेट में कटार घोंपकर मृत्यु का वरण किया। इसी प्रकार जैन गून्थों में आता है कि युद्धक्षेत्र में कई सैनिक जब घायल हो जाते थे उनको अपने जीने की कहीं से आशा नजर नहीं आती थी, गिद्ध पक्षी उनके शरीर को नोंच-नोंचकर खा रहे होते थे उस स्थिति में भी वे धर्मनिष्ठ सैनिक भगवान का स्मरण करते हुए चारों प्रकार के आहार का त्याग करके सल्लेखना गृहण करते थे, भगवान का स्मरण करते हुए मरकर वे स्वर्ग को प्राप्त होते थे। ये सब भारतीय संस्कृति में मनुष्यों के उदाहरण हैं। ऐसे ही भारतीय संस्कृति में अनेक पशु-पक्षियों के उदाहरण भी सहज रूप से मिलते हैं। जैसे- बैल, हाथी, शेर, सियार, कुत्ता, सर्प आदि। इन सबने अपने मन से अथवा किसी की प्रेरणा से अपने आराध्य के चरणों में चित्त को लगाकर समाधि धारण करके भव सुधारा था। कुछ दिन पहले मैंने एक पत्रिका में अफ्रीका के एक हाथी का जीवन पढ़ा था। मुझे बहुत अच्छा लगा इसलिए मैं उसे आपको भी बताना चाहती हूँ।

अफ्रीका का हाथी

एक ऐतिहासिक घटना है। अफ्रीका के बियावान जंगलों में हाथियों की बहुलता है। उसी जंगल में लगभग पचास फुट की दूरी पर एक हाथी शान्त चित्त से चर रहा था। कुछ शौकीन फोटोग्राफर्स पीछे चल रहे थे। वे भी एकागृता से अपना काम कर रहे थे। एक विदेशी ने हाथी पर पत्थर फेंकना शुरु कर दिया। पहला निशाना चूक जाने पर दूसरा पत्थर निशाने के साथ फेंका, पत्थर वृक्ष से टकरा कर हाथी की पीठ पर आकर लगा परन्तु हाथी निर्विकल्प था। उसने विदेशी की हरकत पर कोई ध्यान नहीं दिया। तीसरा पत्थर हाथी के कपाल पर लगा और उसके बाँयें दाँत से फिसलता हुआ जमीन पर आ गिरा, फिर भी हाथी शांत रहा। उसने विदेशी की इस नादानी पर भी कोई उत्तेजना-नाराजगी व्यक्त नहीं की। सिर्फ अपनी पीठ फेर ली। वह पास वाले वृक्ष के पीछे चला गया। वह मानों उनको इस दृष्टि से देख रहा था/कह रहा था कि तुम लोग यहाँ से चले क्यों नहीं जाते हो? मेरे शान्त-एकान्त जीवन को इस प्रकार संकट में क्यों डाल रहे हो? हाथी का यह आचरण

आश्चर्य में डालने वाला था। वह कितना अहिंसक था, कितना अनाक्रामक रुख था उसका। ओहो! जहाँ एक वृद्ध मानव की बुभुक्षा पराकाष्ठा पर पहुँचती है वहाँ एक वृद्ध हाथी कितना शान्त था। उस दुस्साहसी विदेशी ने अनेक बार हाथी पर पत्थर बरसाये लेकिन फिर भी हाथी शान्त, अविचल, प्रसन्न और सौम्य प्रवृत्ति में रहा जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो।

दूसरे दिन उसी विदेशी का एक मित्र हाथी के निकट गया। वह भयभीत था लेकिन हाथी तो अभी भी शान्त चित्त से पेड़ के नीचे चर रहा था। विदेशी को ऐसा लगा कि यह हाथी या तो घायल है या रुग्ण अथवा अन्धा है इसलिए कुछ भी प्रतिकार नहीं करता है। प्रतिकार करने की इसमें शक्ति नहीं है। उसने हाथी के चारों तरफ घूमकर देखा, हाथी भी उसे टुकर-टुकर देख रहा था लेकिन उसकी आँखों में क्रोध की कोई भनक नहीं पड़ी, न कोई बदले की भावना, न उन्माद-उत्तेजना ही दिखाई दे रही थी। सघन अनुसंधान के पश्चात् उसने निर्णय किया कि हाथी में किसी प्रकार की कोई गड़बड़ी नहीं हैं वह वृद्ध हो गया है। तीसरे दिन उसने उसे गन्ने खाने को दिये। उसने दो गन्ने खाये बाकी के गन्नों का स्पर्श मात्र करके मना कर दिया। वह अपने नये मित्र के सम्मान के साथ-साथ अपने भावी संकल्प के प्रति सजग था। पुन: अगले दिन उसने अपने अगाध मित्र से एक गन्ना नहीं लिया। वह मौन खड़ा था उसकी आँखे सजल थीं, मुखमण्डल से क्षमा भाव एवं नेत्रों से कृतज्ञता झाँक रही थी। कोई भावी संकल्प की ज्योति उसकी बुझती आँखों से दिख रही थी। उसने मुड़कर देखा तो ऐसा लगा कि किसी पुराने मित्र का बिछोह हो रहा हो। अन्त में, वह हाथी वहाँ गया जहाँ हमारे पूर्वाचार्य निवास करते थे। बड़े पोखर में समाधि लेते थे। वह वहाँ जाकर जीवन भर के लिए शांत हो गया।

हाथी के जीवन की इन सब घटनाओं को देखकर सल्लेखना करने वालों को सोचना चाहिए कि-

(१) एक हाथी ने ऐसी अभूतपूर्व क्षमा कैसे धारण की, क्या हम वैसी क्षमा धारण नहीं कर सकते? अवश्य करेंगे।

(२) हाथी ने हमले का उत्तर हमले से क्यों नहीं दिया, यदि हमारे साथ ऐसा होगा तो हम क्या करेंगे?

(३) इतने उपसर्ग में भी उसने अपने परिणामों को निर्मल कैसे रखा? हम भी ऐसे परिणाम निर्मल रखेंगे।

(४) हाथी को मृत्यु का आभास कैसे हुआ?

(५) मृत्यु के पूर्व आहार का त्याग क्यों और किसकी प्रेरणा से किया, आदि-आदि सब बातें हमें यह बतलाती हैं कि व्यक्ति में यदि शास्त्र ज्ञान नहीं भी हो, व्यक्ति के पास कोई सेवा करने वाला नहीं हो, व्यक्ति को कोई प्रेरणा एवं सम्बोधन देने वाला भी नहीं हो तो भी व्यक्ति सल्लेखना धारण कर सकता है। अपने अन्तिम समय को सुधार कर सद्गति को प्राप्त कर सकता है। हाथी की समता के आगे एक शिकारी भी नतमस्तक हो गया।

प्रश्न – मौत के कारण मिलने पर संन्यास धारण करे यह तो ठीक है लेकिन किसी की अचानक मौत आ जावे तो वह उसके आने के पहले क्या तैयारी करे, ताकि उसकी मौत सुधर सके?

उत्तर – मौत का कोई भरोसा नहीं है वह कब आ जावे, उसके लिए पहली बात तो यह है कि व्यक्ति हर समय सावधान रहे। कभी यह विश्वास नहीं करे कि अभी मेरी मौत नहीं आयेगी। अभी तो मैं जवान हूँ, हृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ हूँ, मेरी मौत कैसे आ सकती है, अभी तो मेरी इतनी सी उम्र है, अभी मैं कैसे मर सकता हूँ आदि.....। एक बार महाराज युधिष्ठिर के पास एक व्यक्ति भीख मांगने आया। युधिष्ठिर ने कहा- ''अभी इतना ले जाओ बाकी कल ले जाना। कल मैं तुम्हें अवश्य दे दूंगा।'' भिखारी युधिष्ठिर की बात पर विश्वास करके चला गया। भीम ने यह सब सुनकर ढोल बजाना शुरू कर दिया। अचानक और असमय में ढोल की आवाज सुन युधिष्ठिर ने भीम से ढोल बजाने का कारण पूछा। भीम ने कहा- ''महाराज! जब आपने भिखारी को कल आने के लिए कहा तो मुझे बहुत खुशी हुई कि आपने कल तक के लिए काल (मौत) को जीत लिया है अर्थात् आप कल तक नहीं मर सकते क्योंकि यदि आपको यह विश्वास नहीं होता कि मैं कल तक अवश्य जीऊँगा तो आप भिखारी से कल आने का वादा कैसे कर सकते थे? इसलिए मैंने ढोल बजा दिये।'' युधिष्ठिर ने यह सब सुन अपनी गलती का अहसास करते हुए तत्काल भिखारी को बुलाकर उसकी आवश्यक वस्तुएँ दे दीं। युधिष्ठिर इतने बड़े महापुरुष होकर मौत का भरोसा नहीं करते थे, उनको भी मौत का विश्वास नहीं था तो आप-हमारी मौत का विश्वास कैसे हो सकता है इसलिए मौत आने के पहले ही-

(१) **''शुभस्य शीघ्रं''** की कहावत के अनुसार अच्छे कार्यों को जो आज ही

करने योग्य हैं, किये जा सकते हैं, उनको आलस करके आगे के लिए नहीं टालें। एक दिन युधिष्ठिर अपने बायें हाथ से किसी को दान दे रहे थे, किसी ने उन्हें सावधान करते हुए कहा- युधिष्ठिर, उलटे हाथ से दान नहीं दिया जाता। दान हमेशा सीधे हाथ से दिया जाता है। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया- ''भाई, यद्यपि दान उलटे हाथ से नहीं दिया जाता। लेकिन मैं इस (दान की) वस्तु को बायें हाथ से दाहिने हाथ में लूंगा। तब तक यदि मेरे भाव बदल गये तो क्या होगा? मैं इस शुभ कार्य से वंचित रह जाऊँगा।'' इसलिए आप भी यदि आपके दान, पूजा, भक्ति, तीर्थ-गुरुदर्शन आदि के भाव उत्पन्न हों तो उनमें देर नहीं करें। जितना जल्दी हो सके जल्दी करने का प्रयास करें। आप यह नहीं सोचें कि पहले गृहस्थी के सभी काम पूरे कर लें, बाद में धार्मिक कार्य देख लेंगे/कर लेंगे। आपका यह विचार तो ऐसा होगा जैसे समुद्र पर स्नान करने के लिए गया हुआ व्यक्ति यह सोचे कि समुद्र की लहरें शान्त होते ही मैं स्नान करूंगा। स्पष्ट है, न समुद्र की लहरें कभी शान्त होंगी न कभी स्नान कर पाओगे। इसी प्रकार न कभी गृहस्थी के काम समाप्त होंगे और न कभी धार्मिक कार्य कर पाओगे। इसका अर्थ आप यह नहीं लगा लें कि भोगों की भावना उत्पन्न हुई है उन्हें शीघ्र ही पूरी कर लेनी चाहिए। अरे, संसारी जीव भोगों की भावनाएँ तो पूरी कर ही लेता है, उस सम्बन्धी भाव बदलते ही कहाँ हैं, भोगों के भाव बदलना तो बहुत दुर्लभ है और यदि भोगों के भाव बदल भी जावें तो कोई हानि नहीं है क्योंकि भोगों के भाव तो पापबन्ध के ही हेतु हैं फिर भोग तो यह जीव अनन्त काल से भोगता ही आ रहा है।

(२) आप अपनी सम्पत्ति के बारे में बेटे-पत्नी आदि में से किसी को पहले से बताये रखें अर्थात् ऐसी सम्पत्ति नहीं रखें जिसके बारे में केवल आप ही जानते हैं।

(३) यदि किसी से लेना-देना है तो उसके बारे में भी घर में चर्चा करते रहें ताकि अचानक मृत्यु का समय आ जावे तो आपको उसका विकल्प नहीं सतावे।

(४) जब भी कोई लड़ाई-झगड़ा आदि हो जावे तो तत्काल या किसी त्यौहार आदि के बहाने जल्दी क्षमा मांग लें, आगे के लिए नहीं छोड़े कि ऐसा होगा तब मांग लूँगा ताकि अन्दर में किसी के प्रति वैर परिणाम बँधा हुआ

नहीं रहे, बदले की भावना न रहे जिससे मरकर दुर्गति प्राप्त न हो।

(५) दुकान के विषय में अर्थात् माल कहाँ से खरीदते हैं, कहाँ बेचते हैं आदि चर्चाएँ भी करते रहें।

(६) हमेशा धर्म के प्रति रुझान रखें, देव-शास्त्र-गुरु के प्रति आस्था रखें, कुछ-कुछ धार्मिक कार्य करते रहें ताकि अचानक मृत्यु आ जाने पर भी कुछ तो साथ ले जा सकें /साथ चला जावे।

नोट- विशेष **'मृत्यु का स्मरण रखें'** प्रकरण को पढ़ें।

क्या सल्लेखना के लिए ज्ञान आवश्यक है

कई लोगों के विचार रहते हैं कि जो अच्छे पढ़े-लिखे विद्वान् होते हैं, धर्मात्मा होते हैं समझदार होते हैं वे ही सल्लेखना करने के अधिकारी/योग्य होते हैं, अपन तो भाई धर्म-कर्म कुछ जानते ही नहीं हैं, हम क्या सल्लेखना करेंगे? हमें तो धर्म क्या है, ये ही पता नहीं है तो फिर सल्लेखना की बात ही नहीं कर सकते हैं। हाँ, कोई सल्लेखना कर रहा हो तो हम थोड़ी बहुत सेवा अवश्य कर सकते हैं, आदि......। उनका ऐसा विचार करना किसी भी अपेक्षा उचित नहीं है क्योंकि सल्लेखना के लिए ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। सल्लेखना में तो 'भेदविज्ञान' की आवश्यकता होती है। भेद-विज्ञान का अर्थ 'शरीर भिन्न है और मैं (आत्मा) भिन्न हूँ। शरीर के नाश होने से मेरा नाश नहीं होता। मैं अजर-अमर-अविनाशी, शाश्वत तत्त्व हूँ। शरीर में जो कुछ हो रहा है उसको मैं देखने वाला/संवेदन करने वाला हूँ। उसमें अच्छा-बुरा, राग-द्वेष आदि करना मेरा स्वभाव नहीं है आदि.....। इस प्रकार का भेद-विज्ञान तो, ज्ञान की बात तो दूर यदि कोई साक्षर भी नहीं है तो उसे भी हो सकता है। अंधा हो, लूला हो, लंगड़ा हो, काणा हो, बहरा हो, जैन-अजैन आदि कोई भी हो इस प्रकार के भेद-विज्ञान से युक्त हो सकता है। इस प्रकार का भेद-विज्ञान जब किसी के ऊपर आपत्ति आती है, किसी के इष्ट का वियोग हो जाता है, स्वास्थ्य आदि ज्यादा खराब हो जाता है, धनादि के नष्ट हो जाने पर कोई अति आकुल-व्याकुल दिखाई देता है तब वचनों से उसको सम्बोधित करते समय स्पष्ट रूप से समझ में आता है। हाँ, इसे भेद विज्ञान इसलिए नहीं कहते हैं कि वह दूसरों को उपदेश दे रहा है, स्वयं पर लागू नहीं कर रहा है, स्वयं पर आपत्ति आने पर रोता है, घबराता है, सहायता ढूंढ़ता है इसलिए उसका भेद-विज्ञान मात्र शब्दों तक सीमित होने से फलदायी नहीं है। अत: यह सिद्ध है कि किसी भी जाति का हो,

अज्ञानी, मूढ़बुद्धि हो वह भी सल्लेखना कर सकता है। संसार का प्रत्येक प्राणी भले ही सल्लेखना का नाम नहीं जानता हो लेकिन हमारा मरण अच्छा हो इस प्रकार की भावना अवश्य रखता है।

किसी विद्वान् ने कहा भी है- किसी देश का कोई धार्मिक/दार्शनिक ऐसा नहीं होगा जो मृत्यु को सुधारना नहीं चाहता हो। दु:ख पूर्वक, सड़-सड़ कर हाय-हाय करते हुए कोई भी मरना नहीं चाहता है। कोई अनपढ़-अशिक्षित व्यक्ति भी नहीं चाहता कि वह दु:ख से घिस-घिस कर मरे। एक दिन एक साध्वी आहार गृहण कर लौट रही थी। रास्ते में एक वृद्ध हरिजन महिला सड़क पर झाड़ू लगा रही थी। उसने साध्वी जी को आते देखा तो अपनी झाड़ू एक तरफ रखकर कर श्रद्धा के साथ साध्वी को प्रणाम किया। साध्वी जी ने आशीर्वाद दिया तो बोली- ''मुझे ऐसा आशीर्वाद दो कि मैं अंत समय भगवान का नाम लेते हुए मरूँ। शांति के साथ भगवान का नाम लेते-लेते मेरा मरण हो।'' उसने कोई सांसारिक वस्तु नहीं चाही। बेटे-पोते देखने की इच्छा नहीं की। उसने भी 'शांति से मरूँ' ऐसा आशीष चाहा। वह हरिजन महिला अनपढ़ होकर भी कितने अच्छे संस्कार वाली थी। इसीलिए तो उसके मन में जीवन सुधारने के विचार उत्पन्न हुए थे.....।

जैन दिगम्बर परम्परा में एक शिवभूति नाम के संत हुए हैं। उनको एक अक्षर का भी ज्ञान नहीं था, न उन्हें कुछ याद ही रहता था। यहाँ तक कि उन्हें अपने आवश्यकों की भी पूरी जानकारी नहीं थी। वे अपने गुरु के प्रति श्रद्धा रखते हुए उन्हीं को देखकर अपने आवश्यकों का पालन करते रहते थे। एक दिन वे आहार (भोजन) चर्या के लिए जंगल से ग्राम की ओर आ रहे थे। रास्ते में उन्हें एक बुढ़िया दिखी जो उड़द की काली दाल में से छिलके और दाल अलग-अलग कर रही थी। उसे देखकर उन्हें भेदविज्ञान हो गया अर्थात् उसे देखकर उन्होंने विचार किया कि जिस प्रकार दाल और छिलका अलग-अलग है उसी प्रकार मेरी आत्मा भी इस शरीर से भिन्न है। इस प्रकार विचार आते ही उन्होंने भोजन का विकल्प छोड़ दिया। वे लौटकर अपने स्थान पर पहुँच गये और ध्यान में लीन हो गये। ध्यान में उन्होंने अपनी आत्मा को पहचान लिया। फलत: उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो गई। उनके कर्मों का नाश हो गया। वे संसार से परे शाश्वत मोक्ष अवस्था को प्राप्त हो गये। अत: आप यह धारणा नहीं बनायें कि ज्ञानी की ही समाधि होती है, अज्ञानी भी समाधि धारण कर सकता है।

भगवान का नाम कब सुनें/लें

यदि कोई धर्मात्मा व्यक्ति किसी की वृद्धावस्था देखकर कह दे कि हे भाई! दादा जी! अब तो घर के विकल्प जाल छोड़कर थोड़ा सत्संग कर लो। दिन में ४-६ घंटे धर्म ध्यान करा करो, संतों के चरणों में अपनी सल्लेखना करने की कोशिश करो ताकि अगला भव सुधर जावे....। यह सब सुनकर वह उसे (धर्मात्मा व्यक्ति को) भी नि:शंक होकर बात को मजाक में टालते हुए कह देता है- ''अरे पण्डित जी! अपन तो खड़े होकर आये हैं तो आड़े होकर जायेंगे/निकलेंगे। आप कुछ भी कहें हम ऐसे-वैसे निकलने वाले नहीं हैं। हमने भी तो इनकी अर्थात् परिवार वालों की खूब सेवा की है.....।'' ऐसा कहने वालों से मेरा कहना है कि अरे तुम आड़े होकर भी निकलोगे कहाँ, तुम्हें तो आड़ा डालकर दो व्यक्ति पैर पकड़कर अर्थात् टांगा-टोली करके उठाकर बाहर पटक आते हैं। इसीलिए तो लोक में आदमी के मर जाने के बाद भी अरथी को बिना बाँधे नहीं ले जाते हैं। और जो घर में से जीते-जागते प्रसन्नता पूर्वक निकल जाते हैं, उन्हें मरने के बाद विमान में बिठाकर, जय-जयकार करते हुए, धन्य हो-धन्य हो कहते हुए ले जाया जाता है। यद्यपि उनके मरने का दु:ख संसारी जीवों के मरने से कई गुना अधिक होता है क्योंकि वह हितचिन्तक था, हित का उपदेश देने वाला था, हमारे देश की विभूति, गौरव था, फिर भी उनके मरने का यह सोचकर महोत्सव मनाया जाता है, बाजे बजाये जाते हैं कि उसने अपनी मनुष्य पर्याय में जो करना चाहिए था, जो बहुत दुर्लभ है उसको भी उसने करके दिखाया, उसने अपना जीवन सफल किया और इसी भाँति हमारा जीवन भी सफल हो, हमें भी उनके जैसा आत्मविश्वास और आत्मशक्ति प्राप्त हो, हम भी इसी प्रकार सल्लेखना पूर्वक मरण करके सद्गति को प्राप्त हों.....।

कोई-कोई व्यंग्य करते हुए यूँ भी कह देते हैं कि अरे भाई! तुम करते हो खूब धर्म इसलिए तुम जाओगे स्वर्गों में, तुम्हारा होगा बैकुण्ठ में वास, अपन तो पापी हैं अपने को नरक में जाना ही है, चले जायेंगे, कोई बात नहीं। कोई कहते हैं अरे जिनको कमाना नहीं आता है वे छोड़ें घर-बार, जिसके घर में खाने को नहीं है वह भोजन छोड़कर जबरन मरने की कोशिश करे। अपने घर में तो खूब खाने-पीने को है, अपन तो खाते-पीते ही मरेंगे, आदि-आदि अनेक प्रकार की धारणाएँ होती हैं। कभी-कभी कोई बीमार पड़ जाता है तो घर-परिवार वाले सोचते हैं कि चलो, भगवान का नाम सुना दो तो कम-से-कम इनका अन्त तो सुधर जावे। उस समय

भी कोई भोगी जीव, जो मात्र भोगों के लिए ही संसार में जी रहा है, कहने लगता है कि ''अरे! क्या मैं अभी मर रहा हूँ जो तुम मुझे भगवान का नाम सुनाने लगे हो?'' जैसे महाभारत के समय जब दुर्योधन मृत्युशय्या पर पड़ा था तब धर्मराज युधिष्ठिर उसकी मृत्यु सुधारने का लक्ष्य बनाकर बोले- ''भाई दुर्योधन! यह धरा न किसी की थी और न कभी किसी की होगी। भूतकाल में अनेक लोग इसके स्वामी बन चुके हैं और आगे भी अनेक लोग इसके स्वामी होंगे। यह धरा न किसी के साथ गई है और न जाएगी। अत: अपने परिणामों को सुधारो। युधिष्ठिर की बात सुनकर दुर्योधन ने टेढ़ी दृष्टि करके देखा और बोला- ''युधिष्ठिर! तुम क्या सोचते हो, मैं मर रहा हूँ? नहीं, मैं अभी मर नहीं रहा हूँ, जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं तब तक तुम एक इंच जमीन भी नहीं ले सकते हो.....।'' ऐसी होती है पापी दुर्गतिगामी जीवों की भावनाएँ। यदि आपको कभी ऐसे विचार आने लगें तो आप सोचें कि क्या भगवान का नाम सुनाने मात्र से कोई मर जाता है? अरे भाई! भगवान का नाम तो हमेशा ही जपना, लेना चाहिए। उससे तो पापों का नाश ही होता है और उसके साथ आगे के लिए पुण्यबन्ध भी होता है इसलिए भगवान का नाम तो चौबीस घण्टे लेना चाहिए।

सल्लेखना के समय ध्यान दें

यदि सल्लेखना करने वाले का शरीर मोटा है तो चर्बी अवश्य घटावें क्योंकि जिसके शरीर में मोटापन है उसके शरीर में अंत समय में अनेक रोग हो सकते हैं। मलावरोध होने से सन्निपात, बेहोशी आदि भी हो सकते हैं सन्निपातादि ऐसी बीमारियाँ हैं जिनमें व्यक्ति को होश नहीं रहता है। होश-ध्यान नहीं रहने से सल्लेखना बिगड़ सकती है। दूसरी बात शरीर भारी होने पर सेवा करने वाले को एवं स्वयं सल्लेखना करने वाले को भी शरीर संभालने में तकलीफ होती है जिससे गिरने, लगने आदि से नयी वेदना उत्पन्न हो सकती है।

(१) चर्बी कम करने के लिए

(१) रस परित्याग- घी, नमक आदि रसों के त्याग से शरीर में चर्बी कम होती है इसलिए सल्लेखना की तैयारी के समय ही सात-सात दिन के लिए मीठा, घी, नमक, दूध आदि क्रम से छोड़ते जाना चाहिए अर्थात् सात दिन तक घी, सात दिन तक मीठा (शक्कर, गुड़ आदि) का त्याग।

(२) लम्बे-गहरे श्वास लें।

(३) कब्ज दूर करें- इसके लिए तरल पदार्थ अधिक लें जिससे पेशाब अधिक

हो, शरीर से पसीना निकले।

(४) खाली पेट गरम पानी पीयें।

इन सब में से जो अनुकूल लगे, उसको अपनावें। अन्य उपाय भी किसी अनुभवी के या गुरु के निर्देशन में कर सकते हैं।

(२) पेट साफ रखें/करें

अन्नादि बन्द करने के बाद मुनक्का, सौंफ, इलायची, लौकी आदि में से किसी एक चीज को उबाल कर मसले बिना ही छानकर पानी तैयार कर लें। पानी का स्वाद बदल जाने से पानी की मात्रा बढ़ती है अर्थात् पानी ज्यादा पिया जा सकता है। मुनक्का के पानी से पेट साफ होकर काला मल निकल जाता है जिससे घबराहट नहीं होती है।

यदि किसी भी घरेलू औषधि से पेट साफ नहीं हो रहा है तो डॉक्टर की सलाह से एनिमा, बत्ती, वस्तिकर्म कर सकते हैं। यदि दस्त लगते हों तो बीज सहित मुनक्का उबाल कर लें।

यदि शारीरिक अनुकूलता हो तो पके केले खाने से भी पेट साफ हो जाता है लेकिन मात्र पेट साफ करने के लिए ही खावें।

(३) क्षमा याचना करें

सल्लेखना का संकल्प करने के पहले अपने सम्पर्क में आने वाले या पूर्व में जिनसे सम्पर्क था, उनके यहाँ जाकर या उनको बुलाकर अथवा पत्रादि जिससे भी संभव हो अपने जान-अनजान में हुए दोषों की सामान्य क्षमा माँगें तथा जानकर यदि किसी के साथ कोई अपराध किया है, यदि वह अपराध उसको पता है तो विशेष क्षमायाचना करें और यदि पता नहीं है तो गुरु से प्रायश्चित्त लेकन अपनी शुद्धि करें।

अपने पारिवारिक छोटे-बड़े सदस्यों से उनके प्रति कटु वचन, ताड़न, तिरस्कार जो भी हुए हों। किये हों उन सबकी नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करें।

अपने मित्र, अड़ोस-पड़ोस आदि से भी जिनके यहाँ आना-जाना लगा रहता है, क्षमायाचना करें।

जिस मंदिर में आप नित्य जाते हैं, भक्ति-पूजन आदि करते हैं उन भगवान के चरणों में भी अज्ञानता व प्रमाद के वश हुई उनकी विराधना, अपमान (पीठ लगाना, छींकना, गैस पास करना/होना, धर्म के अलावा अन्य इधर उधर की बातें

करना, अशुद्धि में मंदिर के उपकरण का स्पर्श, माला आदि उपकरण अपने हाथ से टूट गया है, शास्त्र फट गया है, गंधोदक हाथ से गिर गया हो) आदि के लिए क्षमा माँगें। पापों के लिए भगवान के चरणों में निन्दा-गर्हा करते हुए **'मिच्छामी दुक्कडं'** करें।

(४) अपनी सम्पत्ति किसको दें

(१) यदि आप घर छोड़कर किसी संत के चरणों में जाकर सल्लेखना कर रहे हैं तो अपनी सम्पत्ति में से अपनी बेटी, बहिन, पुत्र, पुत्रवधू, पौत्र-पौत्री, दोहित्रादि जिनको देना हो सबके सामने या अपनी पारिवारिक अनुकूलता के अनुसार बँटवारा कर दें। सभी बहुओं को बराबर-बराबर दें तो बहुत अच्छा रहेगा। इसी प्रकार सभी पौत्रों, पौत्रियों आदि को भी बराबर हिस्सा देने से अन्त समय में राग-द्वेष पक्षपात नजर नहीं आते। फिर आप सल्लेखना करने के लिए जा रहे हैं तो पक्षपात करके पाप क्यों कमावें।

(२) सामाजिक संस्था जैसे- हॉस्पिटल, स्कूल, अनाथालय आदि में आपको जितना देना हो, आपके पास हो या आपके बेटे-बहू अन्त समय में आपसे दान दिलवाने की भावना रखते हों तो अवश्य दें।

(३) अतिशय क्षेत्र, सिद्ध क्षेत्र आदि जहाँ आपको विशेष द्रव्य लगाना है, अपने नगर का मन्दिर जहाँ आपने जीवनभर धर्म-ध्यान किया है वहाँ पर भी दान दें, जिस साधु-सन्त से आप विशेष जुड़े हैं, आपका उनके प्रति विशेष अनुराग है उनको भी वस्त्र-शास्त्र, उपकरण आदि देकर अपने को संतुष्ट रखें।

यदि साधु-संत के पास सल्लेखना निश्चित हो गई है, उन्होंने सल्लेखना कराने का आशीर्वाद दे दिया है तो विशेष (मूल्यवान) परिगृह संत की अनुमति लेकर ही रखें। वैसे वहाँ सम्पत्ति रखने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि संत के पास सल्लेखना करने में सेवा करने वाले सहज रूप से मिल जाते हैं। और यदि किसी पण्डित-साधर्मी आदि के सान्निध्य में सल्लेखना करना है तो सेवा करने वालों के लिए थोड़ी सम्पत्ति अलग से रख दें, ताकि सेवा करने वालों को भार की अनुभूति न हो।

(५) खाने-पीने में

आप आज तक जिन पदार्थों को छोड़/त्याग चुके हैं या कुछ दिन महीने

आदि के लिए त्याग चुके हैं या कुछ दिन-महीने आदि का त्याग है तो उनका जीवन पर्यन्त के लिए त्याग कर दें और जिन पदार्थों को आप खाते हैं उनमें से भी प्रमाण कर लें।

जमीकन्द-गाजर, मूली, सकरकन्द आदि, आचार, पापड़, बड़ी, मुरब्बा आदि जिनको खाने का बहुत शौक है, एक-दो बार खाकर या बिना खाये ही त्याग कर दें क्योंकि सल्लेखना के समय इन चीजों की आवश्यकता नहीं रहती है।

मिठाइयाँ- गुड़, शक्कर, बादाम, छुहारा, नारियल आदि की मिठाई खाने का मन हो रहा है तो खाकर त्याग कर दें या यह सोचकर त्याग कर दें कि आज तक मैं इस जन्म में भी कितने किलो शक्कर-गुड़ की मिठाइयाँ खा चुका हूँ फिर भी मेरी इच्छा तृप्त नहीं हुई। पुन: पुन: खाने की लालसाएँ जागृत होती रही हैं तो अब एक बार और खा लेने से मेरी इच्छा समाप्त हो जायेगी? जो इच्छाएँ समुद्र भर का पानी पीने से तृप्त नहीं हुईं, वे क्या आधा गिलास पानी या थोड़े से इच्छित भोजन से तृप्त हो जायेंगी, आदि.....। जैसे- लौकी, मुनक्का, दूध, मूंग की दाल, सौंफ आदि चीजें गिनकर रख लें। बाकी पदार्थों का त्याग करें। शेष चीजों में भी औषधि और गुरु के आदेश की छूट रखें। **पण्डित दौलतराम जी** के सल्लेखना की साधना करने के लिए परिगृह का परिमाण इस प्रकार था, जो अनुकरणीय है- ओढ़ने-पहनने आदि के लिए १५ गज कपड़ा, दो आसन चटाई के, एक पानी भरने का बर्तन-ढक्कन सहित, एक शास्त्र रखने की पेटी, ४ आने के पोस्टकार्ड। भोजन में गेहूँ, चावल, मूँग, हरी मैथी, सेम, सूखा आंवला, सूखा अमचूर, घी, नमक, दाख, जीरा, लौंग, मैथीदाना, अजवाइन, पानी इन पन्द्रह वस्तुओं में से भी एक रस रोज छोड़ते थे। आप भी अपने स्वास्थ्य के अनुसार और गुरु के निर्देशन में वस्तुओं का प्रमाण रखें।

(६) वाहन

ट्रेन, कार, जीप आदि में भी विशेष परिस्थिति अर्थात् गुरु के दर्शन को छोड़कर बैठने का त्याग कर दें। हवाई जहाज, हेलिकाप्टर, ऊँटगाड़ी, बैलगाड़ी, पानी का जहाज-नाव आदि में बैठने का जीवनभर के लिए त्याग करें। क्योंकि किसी भी वाहन में नहीं बैठने पर भी उस सम्बन्धी इच्छाओं की समाप्ति नहीं हो पाने के कारण पाप का आस्रव होता ही रहता है। जिस प्रकार सोते समय भी बिल्ली को चूहे आदि प्राणियों को खाने का पाप लगता ही रहता है क्योंकि जब भी बिल्ली की

नींद खुली/खुलेगी और सामने यदि चूहा आदि कोई जीव-जन्तु दिखा तो उसको खाये बिना नहीं रहेगी, उनके ऊपर अवश्य झपटेगी। इसी प्रकार पदार्थ का उपयोग नहीं करने पर भी त्याग नहीं होने से वस्तु के सामने आने पर इच्छाएँ जागृत हो सकती हैं/हो जाती हैं उसका पाप लगता ही है। बिजली, फोन आदि का उपयोग नहीं करने पर भी न्यूनतम खर्चा तो लगता ही है। वर्षों-वर्षों तक मकान का ताला नहीं खोलने पर भी यदि मकान खाली नहीं किया है, मालिक को नहीं सौंपा है तो किराया लगता ही है; उसी प्रकार त्याग के अभाव में वस्तुओं का उपयोग नहीं करने पर भी उस सम्बन्धी पाप लगता ही है क्योंकि उस वस्तु सम्बन्धी अव्यक्त इच्छाएँ अन्दर दबी हुई पड़ी रहती हैं। इसलिए सल्लेखना लेने के पहले ही सभी वाहनों का त्याग कर दें ताकि उनके चलने, बनने, एक्सीडेंट होने, खरीदने आदि में जितना पाप हो रहा है वह सब समाप्त हो जावे, अन्यथा उपयोग नहीं करने पर भी छठा अंश तो लगता ही है। क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर झट से हम मकान का उपयोग कर सकते हैं/कर लेंगे। इसलिए उसका भार हमारे ऊपर ही है और फिर उसमें आग आदि लगनेपर उसका नुकसान भी हमें ही होता है। अत: उनका सबका त्याग कर ही दें।

(७) लेन-देन का विकल्प छोड़ें

अब आप सल्लेखना ले रहे हैं अत: घर में क्या-कितना, कहाँ से खरीदना है, कहाँ बेचने पर कितना विशेष लाभ हो सकता है, किस माल का स्टॉक करने पर आगे भाव बढ़ेंगे और किसका स्टाक करने पर हानि होगी। इन सब बातों के टेंशन से फ्री रहें, इन सब बातों का त्याग कर दें। आप यह भी चिन्ता नहीं करें कि कौन दुकान पर बैठा है? कौन बाहर गया है? कौन अपनी जिम्मेदारी से काम संभाल रहा है? और कौन अपनी जिम्मेदारी के प्रति लापरवाही बरत रहा है? इन सब विकल्पों से आप अपने आपको बिल्कुल दूर रखें। अन्यथा आपकी दशा ऐसी होगी कि- एक सेठ मरणशय्या पर पड़ा हुआ था। उसने पूछा- बड़ा बेटा कहाँ है? बेटे ने कहा- पिताजी! मैं आपकी सेवा में हाजिर हूँ। सेठ ने कहा- दूसरा बेटा कहाँ है? दूसरे बेटे ने कहा- पूज्य पिताजी! मैं आपके ही सामने खड़ा हूँ। सेठ ने कहा- तीसरा कहाँ है? तीसरे ने कहा- मैं आपके चरणों में खड़ा हूँ। सेठ ने कहा- अच्छा, चौथा कहाँ है? चौथे ने कहा- जी पिताजी! मैं आपकी औषधि तैयार कर रहा हूँ। सेठ ने गुस्से में चिल्लाते हुए कहा - मूर्खों, तुम चारों के चारों यहाँ आ गये तो दुकान पर कौन है? मैं तो तुममें से एक-दो नहीं आते तो भी मर जाता....। ऐसा आपके साथ

नहीं हो जावे इसलिए आप पहले ही सब विकल्पों को छोड़ दें।

(८) बोलना कम करें

आप सल्लेखना लेने के पहले से ही बोलना कम कर दें। घंटे-दो घंटे मौन का संकल्प ले लें ताकि बोलना अपने आप कम हो जावे और कुछ आपको भी अनुभव में आने लगे कि अब मैं मौत का सम्मान करने की तैयारी कर रहा हूँ। मेरी मौत आयेगी नहीं, मैं मौत को बुलाऊँगा, मैं मौत के सामने जाऊँगा। उसी की ये उपर्युक्त तैयारियाँ चल रही हैं। लोगों को भी लगने लगे कि वास्तव में आप अब किसी विशेष कार्य की तैयारी कर रहे हैं। बिना मौन के भी आप कम बोलें, अनावश्यक नहीं बोलें। बोलने के पहले सोचें कि इस बात का उत्तर देना या इस प्रसंग में आपका बोलना कितना उचित एवं आवश्यक है। मौन रखने से शारीरिक एनर्जी भी बचती है और विकल्प भी कम होते हैं। शारीरिक एनर्जी बचने से भगवान का नाम लेने में मन लगता है और मन शांत रहने से पापों का आस्रव नहीं होता है। मैंने लगभग बारह वर्ष पहले एक स्त्री संत को देखा था जिनकी आयु लगभग ७८-७९ वर्ष की होगी। वे पूरे दिन माला फेरती रहती थीं। यदि कोई आ जाता तो बोलती थी। दो-चार मिनट बोली और फिर १०-२० मिनट माला फेरती रहती थी, कोई नहीं आता तो लगातार भी दो-दो घंटे तक माला जपती थी। मैंने पूछा- ''माता जी! आप पूरे दिन किसकी माला फेरते हैं, दिन में कितनी मालाएँ फेर लेते हैं।'' उन्होंने कहा- ''बेटा, मैं समाधि की साधना कर रही हूँ। मैं दिन भर में १०८ मालाएँ फेरती ही हूँ। मेरे गुरुजी ने मुझे इस प्रकार की साधना के लिए कहा है। वे इसी वर्ष भाद्रपद में लगभग ७-८ दिन तक पानी का त्याग रखते हुए इस नश्वर देह को छोड़कर चले गये। उन्हीं (बारह वर्ष तक किये गये) जाप्यानुष्ठान एवं त्याग-तपस्या का फल है कि उन्होंने अपनी मृत्यु को बुलाया और अपने जीवन को सफल किया। आप भी अपने शरीर और उम्र को देखते हुए समाधि की साधना करें। समाधि सुधारें। सद्गति प्राप्त करें।

(९) समाधि लेते समय भोजन कितना/कैसा हो

(१) एक महिला ने समाधि होने के ८० वर्ष की उम्र में अन्न का त्याग किया था। अल्प मात्रा में दूध, फल या फलों का रस लेती थी। फिर फल और दूध का त्याग करके छाछ, मुनक्का की चटनी और पानी। तीन महीने के बाद मुनक्का का त्याग किया। ५ दिन के बाद पानी का भी त्याग किया, पानी के त्याग के पाँचवें दिन समाधि हुई।

(२) एक साध्वी ने १० महीने पहले घी, नमक, दही, मीठा, तेल तथा अन्न का त्याग किया। उसके बाद फल आदि सभी चीजों का त्याग करके दूध, मलाई, मुनक्का और अनार का रस रखा। समाधि के १९ दिन पहले २० मुनक्का और आधा गिलास अनार का रस रखा। उसके बाद आठ दिन पहले केवल पानी रखा। छह दिन बाद पानी का भी त्याग कर दिया। अन्त में, दो दिन कुछ नहीं लिया और भगवान का स्मरण करते-करते स्वर्ग सिधारी।

(३) किसी एक साधु ने लगभग दो वर्ष तक रसत्याग पूर्वक अर्थात् दूध, घी आदि सभी रसों को छोड़कर नीरस भोजन किया। पश्चात् अन्न छोड़ा, फिर सभी वस्तुएँ छोड़कर केवल छाछ (घी निकाली हुई) रखी, छाछ को भी छोड़कर पानी रखकर समाधि की।

(४) किसी एक ने दो उपवास और एक दिन भोजन (अल्प और नीरस) इस प्रकार कई महीनों तक किया। अन्त में केवल मौसमी का रस रखा। और फिर पानी का भी त्याग करके समाधि की।

(५) एक श्रावक ने भोजन छोड़ते-छोड़ते केवल लौकी का पानी रखा। उस पानी को वह एक कटोरे में लेकर पीता था और प्रतिदिन अपनी अंगुलियों से नापकर एक-एक अंगुल घटाता था जिस दिन कटोरे में स्पर्श मात्र पानी रह गया , उन्होंने पूरा त्याग करके यम सल्लेखना की। सफल हुए।

इस प्रकार जिसके शरीर में जो चीज अनुकूल लगे, जिससे शरीर में विकृति उत्पन्न न हो ऐसा भोजन सल्लेखना करने वाले को गृहण करना चाहिए। वैसे सल्लेखना करने वालों ने संतों की आज्ञा के अनुसार अन्त समय में छाछ का ही सबसे अधिक उपयोग किया है लेकिन छाछ ऐसी हो जो पुराने जमाने में गाँव के गरीब लोगों को बिना किसी मूल्य के सहज रूप से दी जाती थी। कई लोग बिना घी/मक्खन निकाले दही को बिलोकर छाछ मान लेते हैं, ऐसी छाछ से तो शरीर में गर्मी बढ़ती है, कब्ज हो जाती है, ऐसी छाछ समाधि के समय लेने से चक्कर आ सकते हैं, सन्निपात भी हो सकता है अत: छाछ लेवे तो घी निकली ही लेवें। यदि छाछ अनुकूल नहीं पड़ती हो तो दूध भी ले सकते हैं लेकिन दूध लेते समय गाय का दूध लें। गाय के दूध से वात का प्रकोप नहीं होता है। उसमें भी पानी मिलाकर लें।

प्रतिदिन दूध की मात्रा कम करके पानी की मात्रा बढ़ाते जावें। जैसे- पहले दिन एक गिलास दूध और एक गिलास पानी मिलाकर लिया तो उसको कम करते हुए कम से कम पाँचवें दिन तक आधा गिलास दूध और डेढ़ गिलास पानी रह जावे। इस विधि से कम करते-करते केवल पानी पर आ जावें। पानी भी इसी प्रकार घटाकर त्याग करें।

(१०) सल्लेखना लेने के बाद कैसा भोजन न लें

(१) मांस, मधु (शहद), मक्खन, साबुत (बिना टुकडे किये) फल, आलू, प्याज आदि कन्दफल संन्यास धारण करने वाले को नहीं खिलाना चाहिए क्योंकि ये महाविकार अर्थात् शरीर में महान् विकृति उत्पन्न करने वाले हैं तथा परिणामों में भी विकार-क्लेश उत्पन्न करने वाले हैं। दूसरी बात ये गरिष्ठ होने से कमजोर शरीर वालों को अच्छी तरह से पच नहीं पाते हैं, शरीर में पड़े-पड़े सड़ते रहते हैं जिससे मन तथा मस्तिष्क पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। डॉक्टरों का मत है कि सन्निपात, मस्तिष्क में गर्मी बढ़ना, मूर्च्छा (बेहोशी या तन्द्रा) कब्जी के कारण ही होते हैं।

(२) जो भोजन कटुक, तिक्त, अम्ल, कसैला, नमकीन, विरस, दुर्गन्धित, अस्वच्छ, अतिउष्ण और अतिशीत हो उसे सल्लेखना करने वालों को नहीं देना चाहिए। इस प्रकार का भोजन मन को प्रमत्त करता है और शरीर में विकृति उत्पन्न करता है। नमकीन (कचौड़ी, पकौड़ी, नमकीन सेव आदि) से यद्यपि तत्काल में मन प्रसन्न हो सकता है लेकिन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होने से परिणाम (फल) में मन को अप्रसन्न करने वाला ही है।

(३) जो भोजन वायुकारक (गैस बनाने वाला) हो जैसे- मूंगफली, गवारफली, काजू, बादाम आदि, जो पित्त बढ़ाने वाला हो जैसे- ककड़ी, तोरई आदि और कफवर्धक जैसे- नारियल, घी, भैंस का दूध आदि ऐसा भोजन संन्यास लेने वालों को नहीं देना चाहिए क्योंकि इनसे शरीर पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

(४) जिस भोजन का रूप, रस, गन्ध, स्पर्श बिगड़ गया हो, जो फफून्द से युक्त हो, पुराना (बहुत दिनों पहले बना) हो ऐसा भोजन संन्यास लेने वाले को नहीं देना चाहिए।

(५) संन्यास गृहण करने वाले को ऐसा भोजन नहीं देना चाहिए जिसको उसकी जठराग्नि नहीं पचा सके अर्थात् किसी भी प्रकार का भारी भोजन नहीं देना चाहिए।

(६) संन्यास गृहण करने वाले को उसकी प्रकृति के विरुद्ध, देश-काल-मौसम आदि के प्रतिकूल भोजन नहीं देना चाहिए।

मेरे विचार से भोजन-त्याग का क्रम

जब आपकी उमृ इतनी हो जावे कि मृत्यु का अनुमान लगने लगे या आपके पास अपनी कुण्डली है तो ज्योतिषी से भी आयु का अनुमान लगवा सकते हैं। सल्लेखना का निश्चय बारह वर्ष पहले भी किया जा सकता है। सल्लेखना का निश्चय यदि बारह वर्ष पहले किया है तो क्रम-क्रम से भोजन को कम करते हुए उपवास आदि से शरीर को कृश करें। एक-दो वर्ष रहने पर तो पूर्ण रूप से गरिष्ठ भोजन घी, दूध, तेल, मीठा और दही तो छोड़ ही दें। (दूध रखें तो पूर्व विधि से लें) छाछ-रोटी, लौकी-रोटी को अर्थात् हरी सब्जी को भोजन में प्रधानता दें। एक वक्त भोजन करें, शाम को पानी ले सकते हैं। सप्ताह में दो-तीन उपवास करें। यदि शरीर में पानी की कमी है तो उपवास के दिन गरम पानी लें। बादाम, पिस्ता, काजू, अखरोट आदि भारी सूखे मेवा नहीं लें। मुनक्का, किसमिस गिनकर लेवें अर्थात् कम मात्रा में लें। केला, आम, सीताफल, सेवफल आदि शरीर को पुष्ट करने वाले फल नहीं लें। रोटी मामूली चुपड़ी, सब्जी बगरी हुई चाहे तो ले सकते हैं।

वैसे शरीर वैज्ञानिकों का मत है कि पचास-पचपन की उमृ के बाद व्यक्ति के द्वारा किये गये भोजन से शरीर इतने विटामिन्स एवं प्रोटीन्स नहीं खींचता/गृहण करता है, जितना एक नौजवान का शरीर। डॉक्टरों का कहना है कि इस उमृ के बाद व्यक्ति को गरिष्ठ भोजन छोड़ देना चाहिए क्योंकि वृद्ध व्यक्ति को न तो गरिष्ठ भोजन की आवश्यकता ही होती है और न ही उसको गरिष्ठ भोजन पचाने की शक्ति ही होती है अत: २-४ वर्ष मात्र जीने की सम्भावना लेकर सल्लेखना का निश्चय किया है तो उपर्युक्त प्रकार का भोजन एवं उपवास प्रारम्भ कर दें।

साल-छह महीना शेष रहने पर अन्न की मात्रा कम करते हुए ठोस चीजों को कम करके हल्के तरल/पेय पदार्थ की मात्रा बढ़ाते जावें। चार-छह माह शेष रहने पर ही पूर्व में कहे अनुसार एक-एक ग्रास कम करें। पूर्ण रूप से त्याग कर दें। शास्त्रों में चार प्रकार का आहार बताया है- (१) खाद्य (२) स्वाद्य (३) लेह्य (४)

पेय।

खाद्य- खाने की चीजें जिनसे शरीर पुष्ट होता है, जैसे- लड्डू (चाहे बिना अन्न का हो खारिक-खोपरा, नारियल-मिश्री आदि का) पेड़ा, नमकीन, दाल-रोटी, चावल आदि।

स्वाद्य- जो मात्र स्वाद के लिए खाये जाते हैं, बहुत खाने के बाद भी पेट नहीं भरता है। जैसे- सौंफ, इलायची, लौंग, सुपारी आदि।

लेह्य- जो न खाये जाते हैं और न पिये जाते हैं, जो भोजन को स्वादिष्ट बनाने में सहयोग देते हैं। जैसे- चटनी, लपसी, महेरी आदि।

पेय- पीने की वस्तुयें, इनसे जल्दी पेट भर जाता है जैसे- छाछ, रस, पानी, दूध आदि।

इनमें से सबसे पहले खाद्य भोजन का त्याग करें क्योंकि उनसे शरीर पुष्ट होता है। उसके बाद क्रमश: पेय पदार्थों में भी जो पौष्टिक पेय हैं जैसे- दूध, मठा आदि छोड़ दें। लेह्य में भी जो चिकनाई वाले हैं नारियल, मूंगफली, तिली, छुहारा आदि की चटनी (इमली, अमचूर, कैथा, टमाटर, जामफलआदि की चटनी तो पहले से ही नहीं लेना है) आदि छोड़ें। अन्त में पेय पदार्थों में से भी पूर्वोक्त विधि के अनुसार कम करके पूर्ण छोड़ देवें।

विशेष- पानी उबला हुआ लें। यदि शरीर में पानी बिल्कुल नहीं टिक (पच) रहा हो तो एक गिलास पानी उबाल कर आधा रह जाने पर दें, टिकने लगेगा।

सेवा करने वाले कैसे/कितने हों

(१) सल्लेखना करने वाले को इस बात पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इन बातों पर विचार करने की आवश्यकता और जिम्मेदारी तो सल्लेखना कराने वाले की होती है। फिर भी सामान्य रूप से जिस संत/धर्मात्मा के चरणों में हम सल्लेखना लेने जा रहे हैं/ले रहे हैं उसका व्यक्तित्व/नेचर/व्यवहार कैसा है, क्या इनके पास सल्लेखना करने पर मेरे सल्लेखना के समय भावों की अनुकूलता/निर्मलता बनाये रखने के लिए संत के अलावा और भी कोई है या नहीं क्योंकि चौबीसों घंटे तो एक अकेला संत मुझे पकड़कर अर्थात् मेरे ही पास नहीं रह सकता, उसको भी अपने शरीर की स्थिति बनाये रखने के लिए भोजन, शौचादि क्रियायें

तथा धर्म की रक्षा के लिए अपने पद के अनुसार आवश्यक कर्म (दैनिक धार्मिक अनुष्ठान) भी करने ही होंगे। अत: सल्लेखना लेने के पहले यह ध्यान दें कि जिसके पास हम सल्लेखना ले रहे हैं, दो-चार सेवा करने वाले मुखिया की (जो सल्लेखना के समय निर्देशन देने के लिए निश्चित किये गये हैं), आज्ञा पालने वाले तथा उसके निर्देशों को समझने वाले हों। कम-से-कम २-४ व्यक्ति तो हों ही ताकि किसी अकेले को पूरा काम नहीं करना पड़े। रात्रि में सल्लेखना वाले के पास एक-एक व्यक्ति जागता रहे। भले ही समाधि वाला सो रहा हो क्योंकि यदि सब लोग सो गये और अचानक प्राण निकल गये तो सेवा करने वाले की मेहनत पर पानी फिर जायेगा, क्योंकि उन्होंने चौबीस घंटे सेवा की और मरते समय भगवान का नाम भी नहीं सुना पाये तो क्या सार निकला? या उसको कुछ आवश्यकता पड़ गयी और किसी की नींद नहीं खुल पाई तो उसको कितनी तकलीफ होगी। इसलिए एक-एक व्यक्ति अवश्य जागता रहे।

(२) जिसमें जैसी योग्यता हो और जिसकी जैसी रुचि हो वैसा ही काम उसको सौंपें ताकि वह उत्साह पूर्वक अपना काम कर सके। जैसे- जिसको भोजन सम्बन्धी रुचि है तो उससे सल्लेखना करने वाले के भोजन की व्यवस्था करवावें। यदि सेवा की रुचि है तो सेवा करवावें तथा रात्रि में जागने में अच्छा लगता है तो उसे रात्रि में जागने का काम दें। इसके साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखें कि सल्लेखना करने वाले को किसके हाथ का क्या काम पसन्द आता है अर्थात् किससे क्या काम करवाने में सुविधा/अनुकूलता लगती है, उससे वह काम करवावें। सेवा करने वालों में आत्मा और शरीर की भिन्नता, शरीर की नश्वरता आदि बताने की क्षमता भी हो ताकि समय-समय पर वे उसको याद दिला सकें।

(३) सेवा करने वाले सल्लेखना करने वाले के नेचर को देखकर बात-चीत, सेवा, हँसी-मजाक तथा उपदेश आदि दें ताकि वह प्रसन्न रहे। उसको यह विश्वास रहे कि ये सब लोग मेरी समाधि सुधारने के लिए तत्पर हैं, मुझे किसी प्रकार से कष्ट नहीं होने देते.......। इसका अर्थ यह नहीं कि सल्लेखना करने वाले को विकथा पसन्द है तो आप विकथा करने लगें। यदि वह विकथा (देश, राजनीति, इतिहास या इधर-उधर की कथाएँ)

छेड़ भी दे तो सेवा करने वाले उन्हीं बातों को अध्यात्म में ढालने की कोशिश करें। जैसे- वह ऐतिहासिक व्यक्तियों की वीरता बतावे तो- ''अहो! अपन भी अनन्त बार इतने ही वीर बने हैं और शरीर की ममता छोड़कर देश की रक्षा करने के लिए सहज ही अपने प्राणों को विसर्जित कर दिये, फिर अब तो हमने शाश्वत सुख प्राप्त करने के लिए इस सल्लेखना को धारण किया है तो हमें शरीर को छोड़ने में कैसे डर लग सकता है.....।'' इस प्रकार सल्लेखना करने वाले की बात को एकदम नकारें भी नहीं और विकथा भी नहीं होने दें। अथवा बात छिड़ते ही प्रकरण बदल दें या कोई बहाना बनाकर २-४ मिनट के लिए वहाँ से दूर हो जावें या किसी को बुला लें, इससे भी प्रकरण बदल जायेगा।

(४) सेवा करने वाले समाधि वाले के सामने ऐसी कोई बात नहीं छेड़ें जो उसके मन में विकल्प उत्पन्न करने वाली हो, भूतकाल की हो या वर्तमान या भविष्य में उस सम्बन्धी योजना बन रही हो।

(५) देश-विदेश में हो रही घटना-दुर्घटना, राजनैतिक विषय की भी कोई बातें नहीं करें क्योंकि इन सबका आत्मार्थी के लिए कोई प्रयोजन नहीं है।

(६) समय-समय पर उसकी प्रशंसा करते रहें ताकि उसके शरीर में शक्ति नहीं होने पर भी सल्लेखना के प्रति उत्साह वृद्धिंगत होता रहे। एक बार सल्लेखना करने वाले एक मुनिराज के परिणाम वेदना के कारण विकल हो रहे थे तो कुछ दूरी पर उनसे भी एक बड़े आचार्य विराजमान थे, वे उनके दर्शनार्थ पहुँच गये। उन्होंने दूर से ही सल्लेखना करने वाले को देखकर कहा- ''अहो, धन्य हो, धन्य हो, आप कितने महान् हैं! आपने इस जीवन के संयम रूपी मंदिर पर सल्लेखना रूप स्वर्ण कलश चढ़ाने का संकल्प लिया है। आपके चरणों में मेरा बारम्बार नमोऽस्तु-नमोऽस्तु।'' इस प्रकार कहते हुए उन्होंने निकट जाकर उनके चरणों की धूल अपने मस्तक पर चढ़ा ली। यह सब देखकर सल्लेखना करने वाले के बिगड़ते भाव सुधर गये। अत: आप भी उनके गुणों की प्रशंसा अवश्य करते रहें। उनके इस सराहनीय कार्य के लिए यदि छोटे हैं तो पीठ थपथपाते रहें। बड़े हैं तो गुणानुवाद करते रहें, लेकिन इतनी प्रशंसा भी नहीं करें कि वह मान कषाय का शिकार बनकर अपने भाव बिगाड़ ले।

(७) यदि सल्लेखना करने वाला कर्मोदय से कुछ खाने के लिए मांग ले, यद्वा-तद्वा बोल दे तो उसे प्रेम से समझावें, संबोधन करें, उसका तिरस्कार नहीं करें। क्योंकि तिरस्कार करने से वह पदच्युत हो जायेगा, उसके परिणाम बिगड़ जायेंगे। अत: सावधानी रखें। यदि कोई सेवा करने वाले तुच्छ बुद्धि के हैं, गम्भीर नहीं है, दोषग्राही दृष्टि वाले हैं तो उनसे दूर से होने वाले काम ही करावें।

(८) जिसको ज्यादा नींद आती हो, ज्यादा ही दया आती हो, ज्यादा बोलने वाला हो, अविवेकी हो उसको सेवा के लिए नियुक्त नहीं करें।

सल्लेखना कराने वाले विशेष ध्यान दें

सल्लेखना के लिए निर्देशन देने वाला एवं सेवा करने वाले समय-समय पर समाधि करने वाले के शारीरिक परिवर्तन पर पूरा ध्यान रखें। उसके शरीर में कुछ ऐसे परिवर्तन भी आपको देखने में आ सकते हैं (ये लक्षण इतने सामान्य होते हैं) जो सामान्य व्यक्तियों को भी दिख सकते हैं अत: आप ध्यान रखें, विशेष परिवर्तन को एकागृता से देखते रहें ताकि आपकी और समाधि करने वाले की मेहनत सफल हो सके। जैसे-

(१) यदि हाथ-पैर सहज रूप से पटक रहा है अर्थात् एक मिनट में दो-तीन बार हाथ-पैर अचानक (बिना पटके या हिलाये) पटके अथवा सेवा करने वालों के हाथ में से भी अचानक झटका लगने से छूट जावे तो एक-दो दिन में मृत्यु होने वाली है।

(२) हाथ-पैर के नाखून काले हो जायें या हाथ की हथेलियाँ काली हो जायें तो लगभग एक-डेढ़ दिन में मृत्यु हो जायेगी।

(३) नाक का अगृ भाग तिरछा हो जाय या कान के नीचे के भाग (लोरियाँ) यदि पीछे की तरफ झुकजावें तो ५-७ दिन निकलने कठिन हैं।

(४) पैर की सूजन ऊपर चढ़ने लगे अर्थात् सूजन पंजों से प्रारम्भ होकर ऊपर जावे तो कुछ महीनों में मरण सम्भव है।

(५) शरीर में किसी प्रकार की वेदना नहीं होने पर भी बेचैनी बढ़ने लगे तो कुछ ही घंटों का मेहमान है।

(६) हाथ की पाँचों अंगुलियाँ जमीन पर टिकाकर मध्यमा को अन्दर की तरफ मोड़ ले, फिर एक-एक अंगुली उठावे। यदि अनामिका (कनिष्ठा के पास

की) उठ जावे तो मृत्यु बहुत निकट है।

सल्लेखना करने वाले को सम्बोधन

(१) हे आत्मन्! तुमने अब तक जो त्याग-तपस्या-धर्म किया है उसका फल उसकी परीक्षा अब होने वाली है/हो रही है। इस समय यदि गाफिल हो गये, मन में पुन: भुक्त विषय को भोगने के भाव उत्पन्न हो गये या ऐसा भाव उत्पन्न हो गया कि मैंने क्यों सल्लेखना वृत धारण किया है, इसमें तो बहुत तकलीफ है, अब मैं इसे धारण नहीं करूँगा या छोड़ दूँगा तो सब किये-कराये पर पानी फिर जायेगा।

(२) अहो, यह आत्मा मरती ही कहाँ है, यह तो इस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण कर लेती है मानों किराये का मकान था सो खाली करके दूसरा मकान किराये ले लिया हो अथवा जो वस्त्र पहन रखे थे, वे फट गये, जीर्ण-शीर्ण हो गये। इसलिए उनको बदलना आवश्यक है। कौन ऐसा मूर्ख है जो फटे-पुराने कपड़ों को छोड़कर नये वस्त्र धारण करते समय रोता है, पुराने वस्त्र को छोड़ने में हिचकिचाता है, नहीं, बड़ों की बात तो दूर एक बच्चा भी फटे वस्त्र खोलकर नये पहनते समय खुश ही होता है तो तुम्हें दु:ख कैसे हो सकता है, तुम तो समझदार ज्ञानी हो....।

(३) अरे! यदि पुत्र-पौत्र-पत्नी, धन (शिष्य, मित्र, साथी, गुरु) आदि को छोड़ने की बात है तो पूर्व भवों में तुम और हम कितने स्त्री-पुत्र, धनादि को छोड़कर आये हैं, क्या उनको सम्हालने कभी गये हो? गये थे? क्या यहाँ आने के बाद उनको कभी याद किया है ? यदि नहीं तो फिर इनको छोड़कर जाने में क्या तकलीफ, क्यों तकलीफ? आखिर तो इनको छोड़कर जाना ही है, फिर बार-बार, पुन: पुन: मोह बढ़ाने से क्या लाभ? और मोह बढ़ाने पर भी ये जब साथ जा ही नहीं सकते तो फिर आशा लगाने से क्या....। सन्तों का कहना है कि इस जीव ने इस संसार में भ्रमण करते हुए इतनी माताएँ बनाई हैं कि जिनके दूध की एक-एक बूंद इकट्ठी की जाय तो कई समुद्र भर जायेंगे। तूने इतने शरीर धारण किये हैं जिनकी एक-एक हड्डी इकट्ठी की जाय तो एक बहुत बड़ा पर्वत जैसा ढेर बन जायेगा। अब पुन: शरीर धारण नहीं करना पड़े, माँ नहीं बनाना पड़े, इसका उपाय यही है कि हम शान्ति पूर्वक इन सबसे मोह छोड़कर मृत्यु का वरण करें।

(४) हे भव्यात्मन्! यह शरीर जिसको तुमने धारण किया है/कर रखा है वह तो अपवित्र है, ग्लानिपरक है, रोगों का भण्डार है, इसमें से हमेशा मल-मूत्र झरता रहता है, जिसको देखते ही घृणा आती है। इसकी गंध नाक में आ जावे तो नाक सिकुड़ जाती है, अर्थात् नाक बन्द करने का मन होता है, वहाँ से कहीं और जगह चले जाने को जी करता है, ऐसे कुत्सित शरीर को हर्ष और शान्ति पूर्वक छोड़ दोगे तो देव बनोगे वहाँ वैक्रियिक शरीर प्राप्त होगा जिसमें ये मल-मूत्रादि कुछ नहीं हैं और फिर मुक्ति होने पर ज्ञान शरीर प्राप्त होगा जो शाश्वत, अविनाशी, शुद्ध है.....।

(५) अहो, तुम कितने भाग्यशाली हो, धन्य हो तुम्हें! तुमने वह अवसर प्राप्त किया है जो बड़े-बड़े धनाढ्यों एवं धर्मात्माओं को भी मिलना कठिन है। अति दुर्लभ इस सल्लेखना को प्राप्त करके तुमने तो अपना कीर्तिमान ही स्थापित कर दिया है। तुम्हें देखकर तो भोगी जीवों को भी भोगों से विरक्ति उत्पन्न हो रही है। कई लोग तुम्हारे साहस को देखकर रात्रि-भोजन त्याग कर रहे हैं, कोई जिनेन्द्रदर्शन का नियम ले रहे हैं, कोई मांस, मद्य आदि खाने की बुरी आदतों को छोड़ रहे हैं, वास्तव में तुम्हें देखकर उन महर्षियों की तपस्या पर विश्वास हो रहा है कि वे ऋषि भी इसी प्रकार शरीर से ममता छोड़कर तपस्या करते होंगे.....।

अन्त समय की वैचारिक साधना

जब मृत्यु के दिन निकट आने लगते हैं उन दिनों यदि किसी ने सल्लेखना धारण की है तो लोग उसको देखने के लिए आने लगते हैं। कई लोग साधना देखने, कई परीक्षा करने तो कई लोग कौतूहलवश भी आते हैं। कोई समाचार लेने की दृष्टि से आने लगते हैं, इस प्रकार अनेक दृष्टियों से आने के कारण लोगों की भीड़ भी लगने लगती है। सम्भव है, आपकी समाधि के समय भी ऐसा ही हो अथवा साधक की मृत्यु के प्रति निडरता को देखकर कई लोग आपकी सेवा करने के लिए तत्पर होंगे। आपकी सेवा करके अपने आप को धन्य समझते हुए आपकी प्रशंसा करेंगे। आपके गुणगान करेंगे। इन सबको देखकर आपके (सल्लेखना करने वालों के) मन में मैं थोड़े दिन और जीवित रहूँ तो बहुत अच्छा रहे, इस प्रकार के भाव न आने दें क्योंकि सल्लेखना इतनी बड़ी तपस्या है कि जिसके फल में स्वर्ग एवं मोक्ष के सुख की प्राप्ति होती है। वर्तमान की इतनी सी ख्याति, इतने से सेवा करने वाले

लोग या थोड़ी सी अनुकूलताएँ क्या हैं जिनको देखकर कुछ दिन और जीवित रहने की भावना की जावे। **अथवा**

रोगों का प्रकोप हो जाने पर, वेदना असह्य हो जाने पर कर्मोदय, सेवा करने वालों की अनुकूलता नहीं बनने पर आप यह भाव भी नहीं करें कि मैं जल्दी से जल्दी मर जाऊँ तो अच्छा है। हे भगवान! अब तो मुझे उठा ले, मेरे से यह/इतनी वेदना सही नहीं जाती है। मैं इस वेदना से कब/कैसे छूटूँगा.....। आदि विचार करके मरने की भावना नहीं करें। आप सोचें कि यहाँ कितनी सी वेदना है। यदि आपने मरने के भाव किये तो वे परिणाम विशुद्ध तो नहीं कहे जा सकते हैं और संक्लेश परिणामों का फल कभी अच्छा नहीं हो सकता है।आप इन संक्लेश परिणामों से मरकर यदि नरक में चले गये, किसीगाय-भैंस आदि के गर्भ में चले गये; चींटी-कीड़ा, मकोड़ा आदि बन गये तो आपको कौनसा सुख मिल जायेगा। वहाँ इससे भी कई गुणा दु:ख ही मिलेगा। यहाँ भले ही इतनी वेदना है, कम-से-कम आप भगवान का नाम ले रहे हैं, भगवान का नाम सुन रहे हैं, सभी सुना रहे हैं। भगवान का नाम सुनने से तो कितनी भी वेदना हो शांत हो जायेगी। वहाँ तो इतनी वेदना में भी न कोई आपको सान्त्वना के दो शब्द कहने वाला मिलेगा, न कोई इलाज कराने वाला और न आपको यह भान ही रहेगा कि भगवान क्या होते हैं, भगवान का नाम लेने से पापों का क्षय होता है...। अत: आप वेदना से घबरा कर मरने की भावना न करें। अपनी सहज वृत्ति रखें, अपनी वेदना की तुलना महापुरुषों की वेदना से करें। महापुरुषों के साहस धैर्य और उनकी शरीर-निस्पृहता का विचार करें। शरीर और आत्मा की भिन्नता को समझकर थोड़ी देर वेदना सहन कर लें। ताकि आपकी इतनी मेहनत (सल्लेखना लेने तक की त्याग-तपस्या) पानी में न मिले। आपका भव नहीं बिगड़े। यदि आपने मरने की भावना कर ली तो आपका मरण बिगड़ सकता है।

यदि आपको सल्लेखना लेने के बाद अपने बालमित्र, पत्नी, भाई-बहिन आदि की स्मृतियाँ आकर परेशान करने लगें तो आप अपने उपयोग को वहाँ से हटावें। सोचें अहो, आज तक कौन जीव है जो मेरा भाई-बहिन-बेटी न बना हो। पूर्व भवों में करोड़ों भाई, बहिनों, पिता, पुत्रों को छोड़कर आया हूँ इसीलिए किसी को देखकर विशेष प्रेम उत्पन्न होता है, सहज रूप से किसी को खिलाने-पिलाने, लाड़-प्यार करने के भाव उत्पन्न होते हैं। ये सब पूर्व भवों के मोह का परिणाम है इसलिए अब मैं मरते दम मित्र को याद करूँ। फिर याद करने से लाभ ही क्या है?

एक बार यदि और मिल लूंगा तो भी उन्हें छोड़कर तो जाना ही होगा.....।

यदि आपको मरते-मरते पूर्व में भोगे हुए पंचेन्द्रिय के विषय भोगों की याद आने लगे तो आप सोचें, ''अहो! मैंने पूर्व भवों की बात तो दूर इस भव में भी कितना खाया है, कितनी बार खाया है, क्या-क्या खाया-पिया, पहना है, क्या तृष्णा शान्त हुई ? जो तृषा समुद्र के पानी से शान्त नहीं हुई वह प्यास क्या ओस के कणों से शान्त हो सकती है! जो दावानल बड़े-बड़े वनों को जला कर शान्त (तृप्त) नहीं होती वह अग्नि क्या एक जीर्ण तिनके से शान्त होसकती है? फिर मैंने अनन्त बार सभी पदार्थों को भोग-भोग कर छोड़ा है। देखो- मैंने मिठाई खाई, वह शरीर में जाकर मल बन गई। उसी मल को खेत में डाल दिया तो उसने खाद बनकर गेहूँ, गन्ना, बाजरा, चावल आदि को पुष्ट किया। उसी ज्वार, बाजरे आदि से पुन: मिठाई आदि भोजन सामग्रियाँ तैयार हुईं। इस प्रकार उन्हीं-उन्हीं पदार्थों को मैंने पुन: पुन: भोगा। अब उन भोगों से क्या....। इस प्रकार विचार कर भोगों के प्रति आकर्षित न हों।

सल्लेखना लेकर यदि आपको किसी का वैभव याद आवे, देखने को मिले, कोई शास्त्र आदि में सुनावे तो आप झट से यह न सोच लें कि मैं भी यह सल्लेखना कर रहा हूँ, इतनी तपस्या कर रहा हूँ। इसके फल में मुझे ऐसा वैभव मिले, ऐसे पुत्र-पौत्र, धन-सम्पत्ति आदि प्राप्त हों। मैं राजा-महाराजा, इन्द्र बनूँ। अगले भव में मेरी भी लोग इस-इस प्रकार महिमा गावें, आदि विचार नहीं करें। ये तो सहज रूप से मिलेंगे ही। यह तो एक प्रकार से फसल के साथ मिलने वाला भूसा है। कोई ज्ञानी अर्थात् कोई समझदार किसान कभी खेत में बीज बोकर भूसे-घास की कामना नहीं करता। वह तो अच्छी फसल चाहता है। यदि फसल अच्छी होती है तो घास-भूसा तो उसके साथ मिल ही जाता है। उसे मांगने, उसके लिए पानी देने, मेहनत करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। उसी प्रकार सल्लेखना करने वाले को जबतक मोक्ष प्राप्त नहीं होता है राजा-महाराजा आदि के सुख तो बिना माँगे मिलते हैं, उनके लिए त्याग-तपस्या, इच्छा आदि करने की आवश्यकता नहीं है। आपने यदि कुछ मांग लिया, कुछ विशेष पद आदि प्राप्त करने की इच्छा कर ली तो मानों एक धागे के लिए मोतियों का बहुमूल्य हार तोड़ दिया। ईंधन के लिए चन्दन का वृक्ष काट लिया, भार ढोने के लिए हाथी को बेचकर गधा ही खरीद लिया है। आप कभी इन लौकिक सामग्रियों के लोभ में नहीं पड़ें।

इस प्रकार संन्यासावस्था के संस्कारों में संन्यासमरण क्या है, संन्यास कब धारण करना चाहिए, संन्यासमरण एवं आत्महत्या करके मरने में क्या अन्तर है? दोनों के क्या-क्या फल हैं, मरण होने के पहले व्यक्ति किन-किन चिह्नों से अपनी मृत्यु का अनुमान लगा सकता है। मरण एवं संन्यासमरण के बारे में लौकिक जनों की क्या धारणाएँ रहती हैं। समाधि लेने के पहले किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। प्रायश्चित्त के बिना सल्लेखना मरण नहीं हो सकता, सल्लेखना में भोजन आदि के क्रम को बताते हुए सल्लेखना के समय अपने वैचारिक बल को किस प्रकार संभाल कर रखना चाहिए ताकि सद्गति की प्राप्ति हो, आदि बातों पर प्रकाश डाला गया है। सभी सल्लेखना धारण करके अपना कल्याण करें और मानव-जीवन के लक्ष्य को प्राप्त हों।

उपसंहार

यह संसारी प्राणी संस्कारों के अभाव में अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। संस्कार दो प्रकार के होते हैं। एक लौकिक संस्कार और दूसरे पारलौकिक संस्कार। लौकिक संस्कारों से जीवन का निर्वाह सुख-शान्ति से होता है, लौकिक सुखों की प्राप्ति होती है लेकिन उनसे जीवन-निर्माण एवं निर्वाण हो ही जाये, यह कोई नियम नहीं है; जबकि पारलौकिक संस्कारों से जीवन का निर्वाह, निर्माण और परम्परा से निर्वाण भी प्राप्त होता है। **संस्कार मञ्जूषा** के **पूर्वार्ध** एवं **उत्तरार्ध** के लगभग आधे से अधिक भाग में मुख्य रूप से लौकिक संस्कारों का वर्णन करते हुए पारलौकिक संस्कारों का बीजारोपण मात्र किया गया है। वृद्धावस्था तथा संन्यास अवस्थाओं के संस्कारों में लौकिक संस्कारों को गौण करके पारलौकिक संस्कारों पर जोर दिया गया है। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से हमारे पूर्वजों ने जीवन के बहुभाग में सांसारिक भोग भोगे, शूरवीरता से देश, राज्य और प्रजा की रक्षा की, पिता के समान उनका पालन-पोषण किया, यश कमाया और जीवन के उत्तर काल में अपनी राज्य लक्ष्मी को जीर्ण-शीर्ण तिनके के समान क्षणभंगुर, अनावश्यक एवं मूल्यहीन समझकर सहज रूप से छोड़ दिया और निर्विकल्प होकर वन में चले गये। वहाँ उन्होंने आकाश को ओढ़ना, धरती को बिस्तर, दिशाओं को वस्त्र, गिरि-गुफाओं को महल, चन्द्रमा की चाँदनी को दीपक तथा जंगली पशुओं को अपना मित्र बनाकर निश्चिन्त जीवन जिया। उन्होंने वहाँ तपस्या को ही अपना भोजन बनाया और ज्ञानामृत रूपी जल का पान करके तृप्त हुए, इस प्रकार जीवन

का उत्तरार्ध बिताया। उन्होंने इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर आदि के द्वारा पूजित होकर भी उनकी लक्ष्मी की लालसा नहीं की। उनके वैभव के प्रति उनमें आकर्षण उत्पन्न नहीं हुआ। सर्वप्रथम इस धरा के भोक्ता आदिब्रह्मा भगवान आदिनाथ स्वामी ने अपनी चौरासी लाख पूर्व की आयु में से तेरासी लाख पूर्व तक घर में रहकर भोग भोगे और अन्त में एक लाख पूर्व अर्थात् ७ नील, ५ खरब एवं ६० अरब×१००००० वर्ष तक घर के आरम्भ परिग्रह छोड़ कर तपस्या की और अन्त में परम निर्वाण प्राप्त किया। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने ३०,००० वर्ष की उम्र में जब २००० वर्ष शेष रहे तब तपस्या गृहण कर भगवद् पद को प्राप्त किया। इसी प्रकार अंजना पुत्र हनुमान, रावण के भाई विभीषण, सुग्रीव, पवनञ्जय आदि ने अपने जीवन के अन्तिम काल में थोड़ी उम्र तक तपस्या करके अर्हन्त पद को प्राप्त किया। यद्यपि गजकुमार, भगवान महावीर, भगवान पार्श्वनाथ आदि अनेक ने बालपने में भी आत्मसाधना करके कर्म कालिमा को धो डाला था, वे भी हमारे लिए वन्दनीय, अर्चनीय, प्रशंसनीय हैं फिर भी बहु प्रतिशत लोगों ने तो भोग-भोग कर ही उनका त्याग किया था। इसी कारण संस्कारों के प्रकरण में वृद्धावस्था एवं संन्यास अवस्था में पारलौकिक संस्कारों की मुख्यता रखी गई है और शेष में लौकिक संस्कारों की।

वास्तव में, संसार में ऐसे सौभाग्यशाली लोग बहुत कम होते हैं जिन्हें गर्भावस्था से संन्यासावस्था तक के संस्कार प्राप्त करने का अवसर मिलता है। जो संस्कारों से संस्कारित होते हुए जीवन के प्रत्येक मोड़ पर जीवन सार्थक करने में सफल होते हैं। कई लोगों को माँ के द्वारा गर्भावस्था में डाले गये संस्कार मिलते हैं और जन्म के बाद जन्मदात्री माँ का वियोग या आजीविका आदि की अनुकूलता नहीं मिलने के कारण वह माँ संस्कार नहीं डाल पाती है। किसी को गर्भावस्था के संस्कार नहीं मिलते लेकिन पुण्य योग से बाल्यावस्था में संस्कार मिल जाने पर भी किशोरावस्था में वह कुसंगति में पड़कर जीवन व्यर्थ कर देता है। किसी को किशोरावस्था तक भी अनुशासित माता-पिता के माध्यम से संस्कार मिलते हैं लेकिन कॉलेज प्रवेश के बाद अधिकतर बच्चे अपने लक्ष्य को भूल कर यौवन के नशे में पागल (हेय-उपादेय बुद्धि से रहित) हो जाते हैं। कोई विवाह के पहले तक सही रास्ते पर चलते हैं पर किसी बुद्धू लड़की के साथ विवाह हो जाने से उसके मोह में फँसकर पूर्व के सभी संस्कारों पर पानी फेर देते हैं। कोई तो गर्भादि सभी संस्कारों से संस्कारित होते हुए भी रावण के समान ''विनाश काले विपरीत बुद्धि:'' वाली

कहावत को चरितार्थ कर देते हैं अर्थात् ४५-५० वर्ष की उम्र में भी संकल्प का अभाव होने से कुसंगति में फँसकर संसार सागर में डूब जाते हैं। एक व्यक्ति के चार बेटे थे। सुन्दर पत्नी थी। धन-वैभव था। सब कुछ था, लेकिन उसका मन ऑफिस की एक लेडी ऑफिसर से लग गया। दोनों में प्रेम की अति हो गयी। फलत: एक सुबह तथा एक शाम को सुसाइड करके अनमोल मनुष्य पर्याय पाकर भी नरकगामी बन गये। एक व्यक्ति ने साठ वर्ष की उम्र में जुआ खेलना प्रारम्भ करके, दुर्गतिगामियों में अपना नाम जोड़ दिया। कोई-कोई व्यक्ति तो वृद्धावस्था में छोटी-छोटी परिस्थितियों से व्याकुल होकर जीवनभर संगठित संस्कारों को भूलकर संक्लेश करके स्वयं भी दु:खी होते हैं और घर-परिवार वालों को भी इतना दु:खी कर देते हैं कि वे उसके (वृद्ध के) मरने का इंतजार करने लगते हैं। कोई-कोई मौत से डरकर या जीवन के लोभ में अर्थात् थोड़ा और जी लूँ, संन्यास/समाधि को धारण किये बिना ही मरकर मानों पूरा मकान अच्छा बनवाकर भी फिनिसिंग सही नहीं करवा पाते हैं अर्थात् जीवन का अन्तिम क्षण संतोषप्रद नहीं बना पाते हैं। इससे विपरीत कई लोग गर्भावस्था के संस्कार नहीं मिलने पर भी बचपन में गुरुकुल, मामा-मौसी-काका आदि का सम्पर्क पाकर अच्छा पढ़-लिख लेते हैं, मेनर्स सीख लेते हैं जिनको देखकर कोई यह अनुमान भी नहीं लगा पाता है कि यह इस युगल (माता-पिता) की संतान भी हो सकती है। एक कहार की कन्या थी। उसके माता-पिता, संस्कार देने की बात तो बहुत दूर, उन्होंने संस्कार शब्द भी नहीं सुना होगा। वह कन्या जब लगभग ९-१० वर्ष की थी तो खेलते-खेलते एक पण्डित जी के प्रवचन सुनने पहुँच गई। प्रवचन सुनकर वह अहिंसक बन गई। कुछ दिन बाद उनके यहाँ बाढ़ आ गई। नदी के किनारे बने लगभग सभी घर बहने लगे/बह गये। सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर भगवान को याद करने लगे। उसके (कन्या के) माता-पिता भी भगवान से बचाने की प्रार्थना करने लगे तो उसने कहा- ''मछलियाँ मारते हो और भगवान से रक्षा की कामना करते हो। सुख-शान्ति से जीना चाहते हो तो हिंसा छोड़ो.......।'' उसके पिता ने पूछा- ''बेटी! तुम्हें ये सब बातें कैसे मालूम हो गईं, तुमने ये सब किससे/कहाँ से जाना।'' बेटी ने कहा- ''पिताजी! मैं एकदिन अपने घर से थोड़ी दूर जो मंदिर है वहाँ गई थी। उस मंदिर में एक महात्माजी उपदेश दे रहे थे। मुझे उनके उपदेश से ही यह समझ में आया कि जो दूसरों को दु:ख देता है उसे कभी सुख नहीं मिल सकता है।'' माता-पिता ने उसी दिन से हिंसा करना, मांस

खाना, बलि चढ़ाना, शराब पीना आदि पापात्मक कार्य छोड़ दिये। यह गर्भावस्था में संस्कार प्राप्त न करके भी बचपन में संस्कार प्राप्ति का एक उदाहरण है। हम भी यदि गर्भावस्था के संस्कार न मिले हों तो भी बचपन में सस्कारित होकर अपने जीवन को आदर्श बना सकते हैं।

कोई किशोरावस्था में शिक्षागुरु, मित्र, सत्संगति आदि से संस्कार प्राप्त करते हैं। किसी का भाग्य तो तब चमकता है जब उसकी शादी किसी कुलीन संस्कारित लड़की से हो जाती है। उसे गर्भावस्था, बचपन एवं किशोरावस्था के संस्कार नहीं मिलने पर भी उसकी धर्मपत्नी कभी गुरु, कभी मित्र तो कभी एक माँ का काम करती हुई उसके पतित जीवन को भी पावन बना देती है। तब उसके मन में माता-पिता के प्रति उत्पन्न हुए दुष्परिणाम भी समाप्त हो जाते हैं। किसी संस्कारित सभ्य युवक को देखकर उसे यह नहीं लगता कि काश! मेरे माता-पिता भी मुझे अच्छे संस्कार देते, संस्कारित करते.....। वह संस्कार देने में लापरवाही बरतने वाले माता-पिता के प्रति भी कृतघ्न नहीं बनता है, उनकी सेवा करने में तत्पर रहता है। और कोई तो प्रौढ़ावस्था में जब घर में एक धर्मात्मा बहू आती है, जो मुँह से कुछ नहीं कहती हुई भी आचरण से बहुत कुछ कह देती है। अपनी विवेकपूर्ण क्रियाओं से सास-ससुर को धर्म मार्ग में लगा देती है, उनके जीवन में भी पुण्य कार्य के फूल खिला देती है। वे अपने आपको पुण्यशाली अनुभव करने लगते हैं, उन्हें विवाहबन्धन का भार हल्का लगने लगता है। वे अपने बेटे-बहू के कार्यों से समाज में पहचाने जाने लगते हैं। एक संस्कारित बहू एक दिन अपने घर आये अतिथि (संत) को देखकर सास-ससुर को भी धर्म में लगाने के उद्देश्य से पूछती है-

बहू - हे साधो! आप इतने प्रात: कैसे आये?
संत - समय की कोई खबर नहीं थी।
संत - बेटी, तेरी उम्र कितनी है?
बहू - हे मुने, मेरी उम्र मात्र बारह वर्ष है।
संत - तेरे पति की उम्र कितनी है?
बहु - गुरुदेव! मेरे पति की उम्र अभी दो वर्ष की है।
संत - तेरी सास की उम्र कितनी है?
बहू - गुरुजी, मेरी सास की उम्र लगभग छह माह ही है।
संत - तेरे ससुर की उम्र कितनी है?

बहू - ''हे प्रभो! बड़े दु:ख की बात है, मेरे ससुर का तो अभी जन्म ही नहीं हुआ है। मुझे लगता है कि वे तो अभी तक गर्भ में भी नहीं आये हैं। गुरुवर! मुझे आशीर्वाद दीजिए, मेरे ससुर भी शीघ्र ही जन्म लेकर मुझे दर्शन दें।'' संत उसको आशीर्वाद देकर जंगल में चले गये। पास में ही थोड़ी दूर खड़ा-खड़ा ससुर इन सब बातों को सुन रहा था। बहू के उल्टे-सीधे उत्तर सुन-सुनकर उसका क्रोध बढ़ता जा रहा था। संत के जाते ही वह बहू पर टूट पड़ा अर्थात् चिल्ला-चिल्लाकर गाली-गलौच की वर्षा करने लगा। जब ससुर का गुस्सा उतर गया तब बहू ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक निवेदन किया- हे पूज्य पिताजी! मैंने संत को कुछ भी उल्टे-सीधे उत्तर नहीं दिये। फिर भी यदि आपको वे गलत लगते हैं तो अपन सब चल करके साधु से ही इन सबका निर्णय करवा लेते हैं। चलिए, साधु के उत्तर सुनकर आप निश्चित रूप से सन्तुष्ट होंगे। बहू की वाणी में मानों मिश्री ही घुली हुई थी। उससे प्रभावित हो ससुर सास, बहू-पुत्र, पौत्रादि के साथ संत के पास जाकर अपनी शंकाओं को रखता है। संत कहते हैं- हे श्रेष्ठिन् ! तुम्हारी बहू तो बहुत ही समझदार एवं गम्भीर है। उसके उत्तर सुनकर तो बड़े-बड़े विद्वान् भी उसकी पहेली नहीं सुलझा सकते हैं। सुनो, मैं तुम्हें उसका रहस्य समझाता हूँ। जो बहू ने मुझे पूछा कि इतने प्रात: कैसे आये? इसका अर्थ है कि मैंने इतनी बाल्यावस्था में दीक्षा क्यों ले ली? जब मैंने कहा कि समय का कोई विश्वास नहीं है, इसका अर्थ है कि जीवन कब समाप्त हो जावे, भरोसा नहीं है इसलिए जीवन का कल्याण जल्दी से कर लेना चाहिए। यही सोचकर मैं आ गया। आगे के प्रश्नों का रहस्य इस प्रकार है- उसने १२ वर्ष पहले धर्म को समझा था, उसके पति ने दो वर्ष पहले, सास/सेठानी छह माह से (बहू से प्रभावित होकर) धर्म को समझ रही है और आपने तो अभी तक धर्म को समझा ही नहीं है.....। संत और बहू की बातों का रहस्य सुनकर ससुर ने भी धर्म धारण कर लिया। वह भी धर्म का अभ्यास कर मुनि बन गया और उसने अपना जीवन सार्थक कर लिया।

कोई प्रौढ़ावस्था में भी संस्कार प्राप्त नहीं कर पाता है, जीवन और जीने के रहस्य को नहीं समझ पाता है तो अपने बेटे-बहू के कड़वे व्यवहार से अथवा जीवन की किसी ऐसी घटना से ठोकर खाकर सुधरते हैं तो कोई ''काकतालीय न्यायवत्'' मरण के समय संन्यास कराने वाले की अनुकूलता मिल जाने पर मरण सुधार कर जीवन का मूल्यांकन कर लेते हैं। अर्थात् गर्भावस्था आदि एक भी संस्कार का योग नहीं मिलने पर भी मरण सुधार लेते हैं। जीवन सार्थक कर लेते हैं।

'संस्कार मञ्जूषा' में गर्भावस्था से लेकर संन्यास अवस्था तक जो भी संस्कार प्राप्त हुए हैं उन संस्कारों की सुरक्षा कैसे करें? और यदि संस्कार प्राप्त नहीं हुए हैं तो स्वबुद्धि से या परोपदेश से अपने जीवन को संस्कारित करने की विधि बताई गई है। इस **संस्कार मञ्जूषा** में अज्ञानता या प्रमाद के कारण जो कोई प्रतिकूल लिखा गया हो तो उसी के अनुसार संस्कारित न होकर अपनी अनुकूलता के अनुसार अपने जीवन को अच्छे संस्कारों से संस्कारित करें। क्योंकि अनेक जीव हैं, उनके अनेक प्रकार के भाव हैं, अनेक प्रकार के कर्मों के उदय हैं इसलिए सभी जीवों को संस्कारित करने की विधि एक जैसी कैसे हो सकती है, फिर भी प्रत्येक प्राणी को अपना जीवन संस्कारित करना चाहिए। सभी जीव संस्कारित हों, उनका जीवन सुख-शान्ति से बीते, सबकी सद्गति हो, भगवान से मेरी यही प्रार्थना है।

मम जीवन को संस्कारित करने वाले सर्व गुरुजन के चरणों में बारम्बार नमन-नमन-नमन।

परिशिष्ट

卐 ईश प्रार्थना 卐

हे कृपासिन्धो भगवन्, मुझपर कृपा हो तेरी।
बस, नाम रटूँ मैं तेरा, जब मृत्यु होवे मेरी॥
मैं क्षमा सभि से मांगूँ, उर में क्षमा ही धारूँ।
घर बार सबहि तज दूँ, जब मृत्यु होवे मेरी॥
हे कृपा......... मेरी॥१॥
मैं खान-पान-वैभव, सब काम-काज छोड़ूँ।
ममता सभी विसारूँ, जब मृत्यु होवे मेरी॥
हे कृपा......... मेरी॥२॥
जो दुष्ट कर्म आकर, मुझको बहुत सतावें।
मैं ध्यान दूँ न उन पर, जब मृत्यु होवे मेरी॥
हे कृपा......... मेरी॥३॥
है अरज नाथ तुमसे, करता हूँ हाथ जोड़े।
इच्छा हो मेरि पूरी, जब मृत्यु होवे मेरी॥
हे कृपा......... मेरी॥४॥

卐 समाधिमरण 卐

छन्द-ज्ञानोदय

मात-पिता सुत बान्धव तिरिया, सुन लो अब मैं तुमसे भी।
नाता तोडूँ क्योंकी तुम सब, भिन्न रहे हो मुझसे जी॥
चेतन ही है मुझको प्यारा, लगता सारा जग न्यारा।
मृत्यू को मैं मित्र बनाकर, उसके साथे अब चाला॥१॥
अद्यावधि मैं भूल आत्म को, तुमको अपना जाना था।
तुमही को खुश करने हेतू, पाप किया मन-माना था॥
प्रभु से माँगूँ क्षमा सभी की, क्षमा करो हे सुखशाला॥
मृत्यू को मैं.....................॥२॥

विषय-भोग को सुख के कारण माना अब तक मूरख बन।
अब समझा ये केवल दुख हैं, मिलता इनसे दुखियापन॥
छोड़ सभी को तन से भी मैं, छोडूँ ममता नि:सारा।
मृत्यू को मैं.....................॥३॥

सर्व परिग्रह छोड़ दिये तो, इच्छा को क्यों पालूँ हा।
तृष्णा नागिन के वश होकर, प्रभु आज्ञा को टालूँ ना॥
आशिष दे दो गुरुवर मुझ पर, बढ़े-चढ़े ना दुख काला।
मृत्यू को मैं.....................॥४॥

राग-रोष से क्रोध लोभ से, छल कर-करके पछताया।
लेकिन उनको छोड़ा ना जो, भव-भव में हूँ भरमाया॥
हाय कष्ट है, मैंने स्वामिन्! वृत संयम को ना पाला।
मृत्यू को मैं.....................॥५॥

नरक-ढोर में, मनुज-देव में, जन्म लिया था मरण किया।
बार-बार मैं मरकर जन्मा, नये-नये तन धार जिया॥
बनूँ अजन्मा अत: अहं को, अरु मैंने सब मम टाला।
मृत्यू को मैं.....................॥६॥

जीर्ण देह से छुड़वा कर जो, नूतन सुन्दर तन देता।
उस अन्तक से क्या डरना है, स्वर्ग-सुखों को जो देता॥
क्लेशित होकर इससे डरकर, जीवन विरथा कर डाला।
मृत्यू को मैं.....................॥७॥

मैंने जो कुछ धर्म किया था, पुण्य कमाया दान दिया।
प्रभु पूजा की, गुरु-चरणों में, धर्मामृत का पान किया॥
ना समझा पर धर्म तभी तो, मान-मदों को बस पाला।
मृत्यू को मैं.....................॥८॥

अहो पूर्ण सुख देने वाले, इस अवसर को पाया है।
धारण कर संन्यास मरण को, मेरा मन हरषाया है॥
ममता विनशी समता आयी नहीं रहा मन मतवाला।
मृत्यू को मैं.....................॥९॥

क्लेश नहीं है चित में मेरे, नहि काया पर दृष्टी है।
सुमरन ना है परिजन का, अब लगती भिन तन यष्टी है॥
भेद ज्ञान से, तन चेतन के बनकर आतम बलवाला।
मृत्यू को मैं.....................॥१०॥

प्रभो प्रार्थना यही आपसे अंत समय तक तेरा ही।
जपते-जपते नाम सुमरते, रटते रटते चेतन ही॥
चेतन में रम जावे, तेरा नाम रहे बस रखवाला।
मृत्यू को मैं.....................॥११॥

卐 भजन 卐

कैसे चुपके से, तेरी बरात चली कैसे चुपके से।
कोई बोले ना मुख से वो, कैसे चली कैसे चुपके से॥
तुझको मल-मल कर धोया और पोंछा बदन।
और कपड़े पहना कर, सजाया ये तन।
आगे लेकर के अग्नि की हाँडी चले।
सभी वीर नाम, राम नाम लेते चले कैसे चुपके से।
कैसे चुपके..........।

डोली सजायी गई, माँ रोने लगी, कौन देगा ये जीवन सहारा मुझे।
पत्नी बोली कौन साड़ी मंगवायेगा, बहना बोली कौन मायरा भर लायेगा।
यहाँ स्वारथ के आँसुओं की भरमार चली कैसे चुपके से।
कैसे चुपके..........।

डोली रख दी गई, और सजाई चिता पुत्र ने दी अग्नि और रोने लगा।
भाई कहने लगा भैया कहाँ चले, इस परिवार के तुम खिवैया चले।
बिन महूरत के तेरी बरात चली कैसे चुपके से।
कैसे चुपके..........।

तूने देखा यह क्या संसार है, क्यों भटकता बता क्या यहाँ सार है।
तू प्रभु को सुमर, घड़ी टल जायेगी, न जाने ये डोली कब निकल जायेगी।
बिना मुहूर्त्त के तेरी बरात चली, कैसे चुपके से।
कैसे चुपके..........।

प्रशस्ति

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बराचार्य श्री शान्तिसागर महामुनिराज के पट्ट शिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी मुनि महाराज, उनके पट्टशिष्य आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महारज, उनके प्रथम शिष्य संत शिरोमणि आचार्य श्रीविद्यासागर जी महाराज तथा द्वितीय शिष्य आर्यिका विज्ञानमती के द्वारा अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ शिरपुर जहाँ तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी शताब्दियों से अधर में विराजमान हैं अर्थात् जो एक सेंटीमीटर भी भूमि को स्पर्श नहीं करते हुए विराजमान हैं। उन्हीं के चरणों में वीर निर्वाण संवत् 2533 माघ शुक्ला नवमी शनिवार ईस्वी सन् 27-1-2007 को यह 'संस्कार मञ्जूषा' पूरी हुई। इसकी रचना में मेरा कोई कर्त्तृत्व नहीं है। इसके पूरा होने में भव्य जीवों का पुण्योदय, पूर्वोपार्जित ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम तथा गुरुओं का आशीर्वाद ही निमित्त कारण है और वर्ण, अक्षर, शब्द आदि का मिलना उपादान कारण है। जब तक इस धरती पर सूरज, सुधाकर, समुद्र तथा संत रहें तब तक यह संसार के जीवों को जीवन-संस्कारित करने की विधि बताती रहें और भव्य जीव अपने जीवन को संस्कारित करते रहें, भगवान से मेरी यही प्रार्थना है। शुभं भूयात्। वर्धतां जिनशासनम्।